गोभिलीयगृह्यकर्मप्रकाशिका ।

RAJA

श्रीमद्राजाधिराजश्रौतस्मार्तानुष्ठानतत्परोदय-
प्रतापाद्यादत्तदेववर्मसोमयाजिनो
निदेशेन सुब्रह्मण्यविदुषा
विरचिता ।

श्रीमद्राजाधिराजश्रौतस्मार्त्तानुष्ठानतत्परराजेन्द्र-
बहादुरायदत्तदेववर्मणो निदेशेन
शुकदेववर्म्मकृत-
भाषानुवादसहिता च

प्रथमावृत्ति] सन् १९३२ ई० [संम्वत् १९८९



ओं ब्रह्म धर्म्मप्रभवाक्षरं [illegible]

अभ्यासवैराग्ययुतेन योगिना [illegible]

मनुष्य की अतीत परिस्थिति का ज्ञान [illegible] है। यदि किसी मनुष्यको आर्य्यों की [illegible] हो तो उसे वेदों का अध्ययन करना [illegible] आर्य्य-जाति के धर्म्माचरण ([illegible] साथ साथ उसकी वैज्ञानिक विभूतियों का [illegible] वेदाध्ययन से मनुष्य को यह भी ज्ञात हो सकता है कि [illegible] सभ्यता का आरम्भिक साहित्य है। मानव-समाज [illegible] प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। आर्य्यों की [illegible] है कि वेद समस्त मानव समाज के कल्याण के लिए [illegible] आदेश का भण्डार है। परमेश्वर ने इसी के द्वारा मानव [illegible] को आचार, व्यवहार, व्यापार और विज्ञान की शिक्षा दी है [illegible] इसका पठन-पाठन एक देशीय सा होगया है, तथापि जो [illegible] विद्वान् इसके अध्ययन का परिश्रम उठाए हैं उनकी आत्मा, [illegible] मानव-समाज के समक्ष यह घोषित करने के लिए विवश होती है कि "वैदिक संहिता का भाव, भाषा, तात्पर्य्य, रचना-शैली, और व्याकरण-घटित-विलक्षणता देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि संसार की विभिन्न जातियों में और किसी भी देश की किसी भाषा में

वैदिक संहिता के सदृश विलक्षण दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। यह अति प्राचीनतम ग्रन्थ है। वेद ही मनुष्य के हितार्थ रचा हुआ प्रथम ग्रन्थ और मानवीय सभ्यता का एक मात्र पथ-दर्शक है।"

ऋग्, यजु, साम और अथर्व नाम से सुविख्यात वैदिक संहिता और ब्राह्मणों की बृहस्पति आदि महर्षियों के अध्ययन अध्यापन, यजन-याजन में मन्त्रों के ऊहापोह और देवताओं के नामान्तर के कारण ११३१ प्रतियाँ (शाखाएँ) हो गई हैं, परन्तु उनकी सत्यता और गुरुता में कुछ अन्तर नहीं हुआ है। उन सब शाखाओं की समान गुरुता के कारण कात्यायन आदि महर्षियों ने नियमित कर दिया है कि "बृहस्पति, नारद आदि वेद-मर्मज्ञ महर्षियों ने अपने पुत्र या शिष्यों को जिस शैली का उपदेश किया है, उनकी कुल-मर्यादानुसार वही शैली उनके लिए आदरणीय रहेगी। जिस कुल में जिस शाखा का अध्ययन और जिस शाखा के आधार पर उपनयन आदि संस्कार और अग्नि-होत्र आदि उपासना होती चली आती हो उस कुल में उक्त कार्य उन्हीं के आधार पर होना उचित माना जाएगा।" यही कारण है कि आर्यों में ऋग्वेदीय, यजुर्वेदीय, सामवेदीय, अथर्ववेदीय, एवं शाकल्य शाखीय, कण्व शाखीय, कौथुम-शाखीय और शौनक शाखीय कुलाचार धर्म निश्चित होगया। उक्त कुलाचार के अक्षुण्ण बने रहने के लिए महर्षियों द्वारा आश्वलायन, कात्यायन, लाट्यायन आपस्तम्ब, गोभिल, पारस्कर, मानव आदि श्रौत और गृह्य-सूत्रों का निर्माण हुआ[2]। ये ही उपरोक्त ग्रन्थ आर्यों के व्यवहार, उपासना और आध्यात्मिक साधन के आधार हुए और हैं।

१—यह कथन मेक्समूलर साहब का है। २—पारम्पर्य्यागतो येषां वेदः सपरिबृंहणः। तच्छाखं कर्म कुर्वीत तच्छाखाध्ययनं तथा॥ पारस्करगृह्यसूत्रभाष्ये वासिष्ठ वचनम्।

पूर्वोक्त संहितादि ग्रन्थों मे उपदिष्ट ब्रह्मचर्य्यादि तप, सद् ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापनस्वरूप ब्रह्म-यज्ञ और अग्निहोत्रादि कर्म द्वारा ईश्वरप्रणिधान के प्रभाव से आर्य्यों का उत्कर्ष हुआ। वे समस्त भूमण्डल के आचार, व्यवहार, व्यापार और विज्ञान के आचार्य हुए[1]। जब आर्यों की संख्या बहुत बढ़ गई तो आर्य्यावर्त्त[2] के अतिरिक्त अन्य देशों में भी ज ावसे। स्वसंघ-विच्छेद के कारण उनमें वेदादि ग्रन्थों के अध्ययन, अध्यापन का ह्रास हो गया। धीरे धीरे अपने वेदादि ग्रन्थ प्रतिपाद्य आचार, व्यवहार उपासना आदि को भी भूल गए। फल यह हुआ कि वे पौण्ड्रक, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, आपह्लव, चीन, किरात, दरद, खश आदि नामों से प्रसिद्ध होकर अपने को आर्यों से पृथक् मानने लगे। वे वेदाचार रहित आर्यभाषा बोलनेवाले या म्लेच्छ भाषाभाषी सब दस्यू कहलाए[3]।

संसार परिवर्त्तन शील है सब की दशा बदलती रहती है। काल पाकर आर्य्यावर्त्तीय आर्य्यों की अवनति के अवसर उपस्थित हुए। इनमें भी अध्यात्मशक्ति की कमी होने लगी। "हमारा उस पवित्र

१—एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन.। स्व स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ मनु० अ० २ श्लो० २०

२—आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरा· र्य्यावर्त्तंविदुर्बुधाः ॥ मनु० अ० २ श्लो० २२

३—शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातय.। वृषलत्वं गतालोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ पौण्ड्रकाश्चौण्ड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः। पारदा· पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशा. ॥ मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः। म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवस्स्मृताः ॥
मनु० अ० १० श्लो० ४३ ४४-४५

स्थान को प्राप्त करना हमारे जीवन का उद्देश्य है। जिस पुण्यमय लोक में ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्पर प्रेम के साथ निवास करते हैं।" यह भूल गए। कर्त्तव्यपरायण महातेजस्वी, हिंसारहित यज्ञों के रक्षक, देवताओंके आवाहन करनेवाले, सात्विक वृत्त्युपजीवी, ईर्षा द्वेष रहित क्षत्रियों की कमी हो गई। "सब साथ साथ मिलकर चलें, एक मत होकर बोलें, सबका एक सिद्धान्त रहे।" इत्यादि वेद के आदर्श उपदेशों को भूल गए[1]। निदान उन्हें यह भी स्मरण न रहा कि "वेद के आचार, के ह्रास, आलस्य के वशीभूत मलिन अखाद्य अन्न के भोजन से मनुष्य अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है"[2]। परिणाम यह हुआ कि उन्हें आचार्य मानना तो दूर रहा, लोगों को शिष्य कहने में घृणा होने लगी। परन्तु आर्य एक आस्तिक जाति है। यह निराश होना जानती ही नहीं। इनकी तो दृढ़ धारणा है "कि जन्म मरण सुःख, दुःख उन्नति अवनति दिन रात के समान होते जाते रहते हैं। जो फलता है वह झरता है और जो बरता है वही बुझता है। जो जन्मता है वह मरता है और जो मरता है वह जन्मता है। जो अस्त होगया है उसका उदय होना अवश्य सम्भाव्य है"।

१—यत्रब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह। तँल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥ य० अ० २० म० २५॥ धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञ निष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः। अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोपो असृजन्ननुवृत्रतूर्ये॥ ऋ० मं० १० सू० ६६ मं० ८॥ सङ्गच्छध्वं संवदध्व संवोमनांसि जानताम्। देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते॥ ऋ० मं० १० सूत्र १९१ मं० २

२—अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यांदन्न दोषाच्चमृत्युर्विप्राञ्जिघांसति॥ मनु० अ० ५ श्लो० ४

गोभिलीयगृह्यकर्मप्रकाशिका



श्रीमान् पूज्यराजर्षिभिनगेश ।

ऐसा कौन मनुष्य होगा जो इन उपर्युक्त विषयों का पुजारी होते हुए अपने को अवनति के गर्त्त से निकलकर उन्नति के अति उत्तुङ्ग शिखर पर पहुँच जाने का यत्न न करे। सभी के चित्त में अपनी उन्नति का पवित्र उल्लास उत्पन्न होता रहता है। हाँ उन महापुरुषों की संख्या कम होती है जो स्वआत्मोद्धार के साथ साथ कुल, जाति और देश के उद्धार को स्वकर्त्तव्य समझते हैं। महानुभाओं का कहना है कि यों तो संसार मे वहुतेरे जन्मते मरते रहते हैं परन्तु जन्म लेना उसी का सफल है जिस पुरुष से स्वजाति और देश की उन्नति होती है। ऐसे पुरुषों के उपकार से कृतज्ञ होकर समाज उन्हें अवतार मान लेती है।

इन्ही आदर्श पुरुषों मे राजर्पि भी हैं। ये मानव-समाज को करके दिखला दिया है कि महापुरुप कि "विद्या, ज्ञान, धन, दान और शारीरिक वल दूसरों की रक्षा के लिए होता है[१]। इस स्वप्नवत् ससार में यथोचित स्व कर्त्तव्य का सम्पादन करते हुए मनुष्य को जीने की इच्छा करनी चाहिए। निष्काम क' मुक्ति का सहायक है। वन्धन का कारण नहीं होता। मनुष्यों के लिए इससे अतिरिक्त कल्याण का दूसरा मार्ग नही है। जो पुरुष जगत् में शरीर धारियों को पृथक् पृथक् देखते हुए भी सबकी आत्मा को एकही अनुभव करता है वह इन्द्रिय जन्य, सुख और दुःख से मोहित नही होता है। जिस अवस्था में पुरुष सम्पूर्ण संसार में एकही आत्मा का अनुभव करने लगता है उस दशा मे अर्थात् उस शुद्धात्मा के

२—विद्या विवादाय धनम्मदाय शक्तिःपरेषाम्परिपीडनाय। खलस्य साधो. विपरीतमेतत् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

अन्तः करण में शोक मोह आदि का स्थान ही नही रहता।[1]" इत्यादि सिद्धान्त राजर्षि के आदर्श ध्येय थे।

राजर्षि राजा उदय प्रतापसिंह सी० एस० आई (भिनगा राज के अधिप कलकत्ता और इलाहाबाद यूनिवर्सिटियों के फेलो, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल के सदस्य, सन् १८८२ में आनरेरी मजिस्ट्रेट, सन् १८८२ के शिक्षा कमीशन के समक्ष गवाही देने को निर्वाचित हुए; किन्तु सेल्फ गवर्नमेन्ट बिल पर बनी कमेटी के सदस्य (१८८३) पब्लिक सर्विस कमीशन में उत्तरीय-पश्चिमीय प्रान्त व अवध के प्रतिनिधि (सन् १८९०), इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउन्सिल के सदस्य (१८९२); भिनगा अनाथालय बनारस के संस्थापक, हिवेटक्षत्रियहाई स्कूल बनारस के संस्थापक (१९०८) तारीख ३ सितम्बर सन् १८५० ई० में पैदा हुए। अपने स्वर्गीय राजा श्री कृष्णदत्त सिंह के पश्चात् सन् १८६२ ई० में राज्याधिकार पाये; कोर्टआफ् वार्डस इन्स्टीट्यूट लखनऊ में शिक्षा पाये, संयुक्त प्रान्तान्तर्गत मिर्जापुर जिले के अघोरी बरहर राज्य के स्वर्गीय राजा रघुनाथशाह देवकी सबसे छोटी लड़की से शादी किये।

भिनगा विशेन वंशीय क्षत्रियों का राज्य है, जो अपने को भक्त-मयूर भट्ट के वंशज बतलाते हैं। अवध में इस वंश के तेरह राज्य हैं जो गोरखपुर के अन्तर्गत मझौली राजा को अपना प्रधान मानते हैं। तीन सौ वर्ष से अधिक हुए जब कि मझौली राज्याधिप राजा उरिय मल्ल के द्वितीय पुत्र प्रताप मल्ल, तत्कालीन शासक के कहने

१—कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवन्त्वयिनान्यथेतोऽस्ति न कर्म्मलिप्यतेनरे॥ यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्नेवानु पश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानन्ततो नविचिकित्सति॥ यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र कोमोहो कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः॥ (य० वेद० अ० ४० मं० ६-७)

पर अवध में आये और गोंडा राज्य को स्थापित किये। इस वंश के संस्थापक की तीसरी पीढ़ी में मानसिंह हुए, जिनको सम्राट् अकवर ने महाराजा की उपाधि से विभूषित किया और अधिकार दिया कि वे बाइस राजाओं के भाल पर तिलक लगाकर उनको राजा बना सकते हैं। इस कहानी से इस प्रकार स्वर्गीय डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने, अपने "अवध के उत्तरीय विशेन" नामक लेख में जो "कलकत्ता रिव्यू" में निकला था, वर्णन किया है। किन्तु जब अकवर गद्दी पर वैठा तो हालत वदल गई। उसके सेनापतियों ने हर एक स्थान पर सफलता प्राप्त की। उनमें से एक ने साहस पूर्ण आक्रमण कर गोंड़ा के दुर्ग को छीन लिया और मानसिंह को कैदी वनाकर अकवर के सामने ले गया। अकवर मानसिंह का लघुरूप देखकर चकित होगया और उसने सेनापति से पूछा "भला एक ऐसा बौना इतनी दुष्टता कैसे कर सका"। अकवर का इतना कहना मानसिंह के अभिमानी राजपूती रक्त की सहिष्णुता के बाहर की बात थी और उसने तुरन्त प्रत्युत्तर किया। "एक छोटी सी विजली कैसे इतना हानि कर जाती है?" इस उत्तर को सुनकर अकवर प्रसन्न होगया और उसने वन्दी को मुक्त कर दिया। उसने उनका राज्य भी वापस कर दिया और महाराज की उपाधि दी। साथही दूसरों का तिलक कर उपाधियों से सम्मानित करने और अपनी यात्राओं में डंके का इस्तेमाल करने का अधिकार भी दिया। इस प्रकार उस राज्य की नीव पड़ी जो पूरे ३०० वर्ष तक उत्तरी अवध में अपना सर्व श्रेष्ठ स्थान रक्खे हुए था। मानसिंह ही ने सब से प्रथम मझौली की मल्ल उपाधि ने सिंह की उपाधि को ग्रहण किया और तभी से उनके वंशजों ने इसी उपाधि को जारी रक्खा है। इस उपाधि के ग्रहण करने के थोड़े ही दिन बाद मानसिंह ने गोंड़ा को अपनी राजधानी बनाया।

मानसिंह की तीसरी पीढ़ी में रामसिंह हुए, जिनके दो लड़के, बड़े दत्तसिंह और छोटे भवानी सिंह थे। दोनों प्रसिद्ध सैनिक थे। दोनों ही ने अपने समय के इतिहास में अपना चिन्ह छोड़ गये हैं। छोटे ने भिनगा के राजा को जीता और उनके राज्य को ले लिया। दत्तसिंह सन् ११०५ फसली में अपने पिता के पश्चात् गद्दी पर बैठे और उन्हीं के शासन काल में गोंडा शहर और इस वंश के शासकों की प्रसिद्धि की वृद्धि आरम्भ हुई। दत्तसिंह एक साहसी वीर सेनापति थे। जिन्होंने अपने चारों ओर राजपूतों को एक अच्छी संख्या में इकट्ठा कर लिया था और उनकी सहायता से वे अवध सीमा के बाहर भी अपने शस्त्रों द्वारा विजय प्राप्त कर सके थे। दूसरे राजाओं के मुकाबिले में उन्होंने कम से कम बाईस धुआँधार लड़ाइयों को जीता था। उन्होंने बाँसी के राजा को पराजित किया और उनके राज्य-प्रासाद को लूट लिया प्रधान फाटक का चौखट उखाड़ ले गये और बाद को उसी को अपने महल के फाटक गोंडा में लगाया, जहाँ पर वह अब भी देखा जा सकता है। गाँवों की बैठक में ज़िला भर में जो पँवारे गाये जाते हैं वे उन्ही के बारे में हैं और अलावल खाँ के ऊपर बालपुर घाट में जो विजय दत्तसिंह ने प्राप्त की थी, उसकी गीत तो अब भी, आज कल के इस शान्ति समय में भी ठाकुरों को इकट्ठा कर देगी और उनके हृदय में जोश पैदा कर गो। गोंडा राज्य के अन्तिम राजा स्वर्गीय राजा देवीबख्श सिंह हुए हैं जिनके विषय में अवध के गजेटियर में इस प्रकार लिखा है कि "जाति राष्ट्रीय हलचल के एकही काल में महाराजा बलरामपुर और गोंड़ा के राजा देवी बख्शसिंह सरीखे, राजभक्ति और उससे विभिन्न देशभक्ति के ज्वलन्त उदाहरणों को जो एकही जिले के एक दर्जन नायकों में से उत्पन्न कर सकी हो उसके विषय में बुरी भावना

करना असम्भव है। एक ने तो अपने धन और प्राण को भी मुट्ठी भर अंगरेज दोस्तों के बचाने के लिए खतरे में डाल दिया और उस समय तक उनका सच्चा सहायक बना रहा जब कि अंगरेजों का हार जाना निश्चित सा होगया था। दूसरे तब तक राष्ट्रीय विद्रोहियों का साथ नहीं दिया जब तक कि उसने उसी सरकार के अफसरों और खजाने को जिससे वह घृणा करता था, एक सुरक्षित स्थान में नही पहुँचा दिया और युद्ध-क्षेत्र में जब तक लड़ाई सम्भव थी, सब से पीछे तक डटा रहा उसको यद्यपि विजेताओं ने माननीय मुलाकात वो उनकी मुसल्लम बड़ी रियासत को उन्हें भेंट देने के लिये कहा ताहम उसने इधर ध्यान न देकर, नेपाल की जंगल में भूखे निर्वासित की तरह अपने धन, मान और गौरव को त्याग कर जीवन बिताना पसन्द किया लेकिन अपनी पराजित मालीकिन को छोड़ना पसन्द नहीं किया। उनके भाग्य तो विभिन्न रहे किन्तु उनकी वीरता एकही थी। छोटे भाई भवानीसिंह ने जंगल और रापती नदी के बीच की समस्त भूमि को अपने अधिकार में कर लिया। साथही तराई का भी बहुत बड़ा भाग उन्होंने अपना लिया और भिनगा के राजा बन बैठे। वर्त्तमान राजा (राजर्षि) भवानीसिंह की सातवीं पीढ़ी में हैं और राजा की उपाधि खानदानी है।

राजा साहब उन थोड़े से ताल्लुकेदारों में से हैं जिनको भारत के वाइसराय और इंगलैण्ड के राज-वंशीय राजकुमारों के साथ लखनऊ आने पर मिलने का विशेष अधिकार प्राप्त है। सन् १८८७ में भारतीय सरकार ने इनको एक तोप भेंट की थी। शास्त्र विषय कानून तथा दीवान कचहरियों में स्वयं उपस्थित होने से ये बरी हैं। यद्यपि ये अपने जीवन में इतने सफल रहे, तब भी राजा उदयप्रताप सिंहजी सार्वजनिक जीवन से सन् १८९५ ई० में विरक्त होगये और

तभी से बनारस में वानप्रस्थाश्रम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

उस सभा के स्थापन में जिसको अब "क्षत्रिय उपकारिणी महासभा" कहते हैं, राजा साहेब प्रधान कार्यकर्ता थे और थोड़े दिन हुए कि उन्होंने इसके लिये २५,००० हजार और इतना ही सुमपत्र क्षत्रिय मित्र के लिये दिया है। उन्होंने भिनगा राज्य छात्रवृत्तियाँ कायम कीं जिनमें इस समय ८००००) जमा है और एडवर्ड छात्रवृत्तियाँ भी उन्हीं की कायम की है जिनमें ३००००) जमा है। और जो उन्हीं के बनारसवाले स्कूल के लिए हैं। एक क्षत्रिय को आक्सफोर्ड या केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में भेजने के लिए भी ११९००) उन्होंने दिये हैं किन्तु क्षत्रिय समाज के प्रति उनकी सर्व श्रेष्ठ उदारता उनके उस महादान की है, जिसमें उन्होंने १०) दश लाख रुपया सन् १९०८ ई० "में हिवेट क्षत्रिय स्कूल बनारस" के लिए जमा किया है और इसके साथ ही उसी स्कूल के लिए तीन लाख रुपये इमारतों और जमीन में व्यय किया है। इस संस्था की नींव संयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर जान प्रेसकाट हिवेट ने डाली थी और उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि "यद्यपि राजर्षि भिनगेश के सांसारिक विषयों से विरक्त हो जाने के कारण जिसने अपने जीवन के आरम्भिक काल में उन्होंने इतना अच्छा काम किया था, जनता और सरकार को क्षति पहुँची है किन्तु हमको प्रसन्नता है कि इस वैराग्यकाल में भी राजा साहब का उत्साह अपनी जाति की भलाई के प्रति उतना ही अधिक है जितना कि वह कभी था और उन्होंने अपनी दयालु वृत्ति के कारण अपनी जाति की भलाई के लिए इस कदर अधिक दान किया है। राजा उदयप्रतापसिंह भिनगा का नाम क्षत्रियों के घर में जिनके लिए उन्होंने इतना त्याग किया है सदैव स्मरण किया जायगा। इतर जातियों के उन लोगों के बीच में भी इनका नाम बराबर लिया जायगा जो अच्छे तथा उदारता पूर्ण कार्य्यों से पूरित इमा-

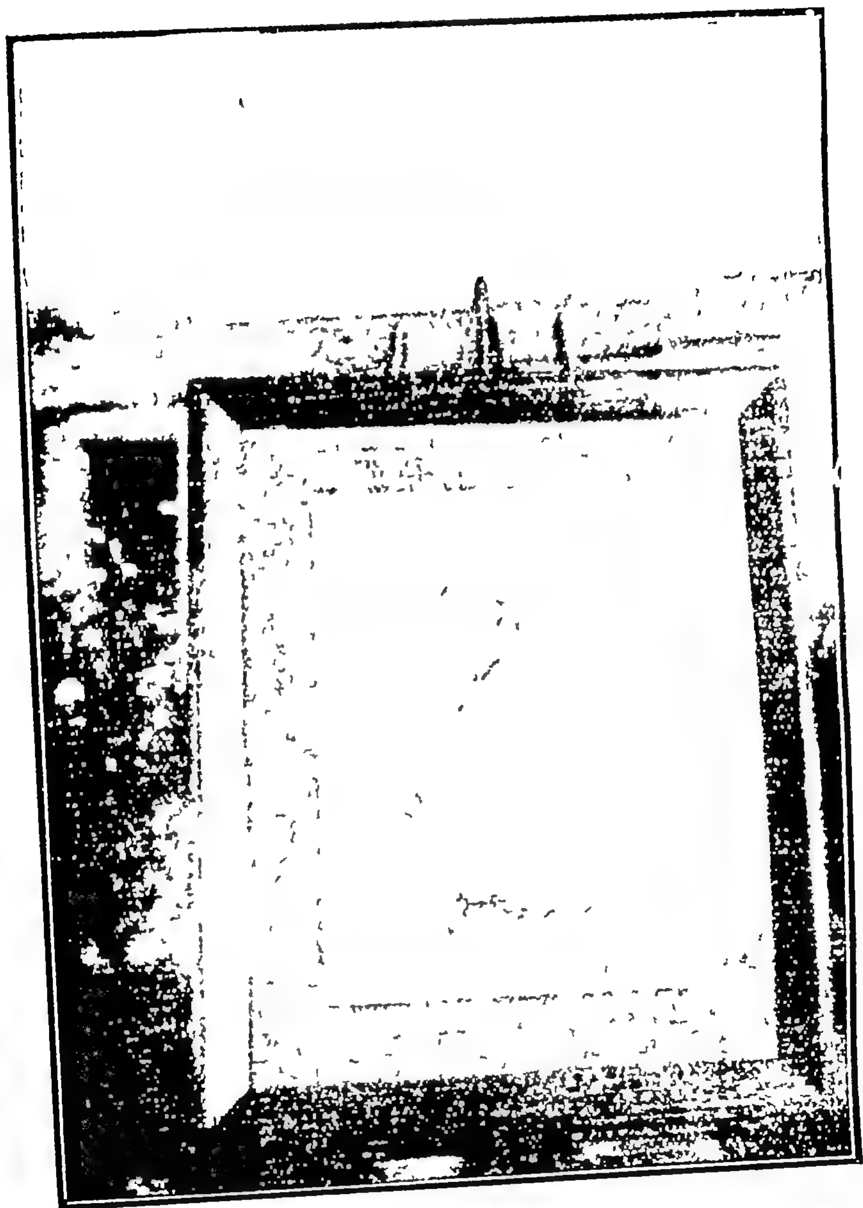
नदारी की जिन्दगी पर श्रद्धा करते हैं। उनकी सेवा का विचार करके महासभा ने उनको राजर्षि की उपाधि दी जिसको सरकार ने भी स्वीकार कर लिया था।

वयोवृद्ध तथा शारीरिक कष्टों से पीड़ित मनुष्यों के लिए चाहे वे किसी जाति या धर्म के हों, भिनगेश ने १८६८ में बनारस में एक अनाथालय खोला था जो उनकी विशेष दयालुता की दूसरी स्मरणीय कृति है। एक लाख १०००००) रुपया इसके स्थायी कोष के लिए दिया गया था और २३०००) इमारत के लिए उनके दूसरे दानों में से निम्नांकित उल्लेख किया जा सकता है। ३७०००) निःशुल्क चिकित्सा के लिए, १६०००) एक पाठशाला के लिए, १००००) म्युनिसपल्टी तथा दूसरे कामों के लिए, ७०००) अकाल पीड़ीत के लिए और ५०००) कूपर बाजार के लिए। उपरोक्त-सभी दान भिनगा राज्य की प्रजा के हित के लिये थे, किन्तु राजा साहेब की उदारता का अन्त अपनी जाति, प्रजा तथा काश्तकारों और रियासत तक ही न था। १२०००) बहराइच के लाल हाल के लिए, २००००) कालिवन स्कूल लखनऊ के लिए, १००००) भारतीय सहायक कोष (Indian Relief fund.) ५०००) मेडिकल कालेज लखनऊ और १८००, रुपया नागरी प्रचारिणी सभा बनारस के लिए भी आपने दिया था।

प्रकाशनः—भिनगा राज्य वंश का इतिहास (१८८३) प्रजातंत्र राज्य भारत के योग्य नही (१८८८); भूम्याधिकारी वर्ग की अवनति" (१८६२), १६वीं शदी भूम्यधिकारियों के लड़कों की शिक्षा सम्बन्धी मेमोरैन्डम (सन् १८८२); भारत वर्ष में राजविद्रोह सम्बन्धी कानून पर विरोधात्मक लेख (१८६२); "रसद का प्रश्न" (१८६३), (१६वीं सदी), "विचार और आलोचनायें" (संगृहीत लेख १६०७)।

अब पाठकगण अनुभव कर लिए होंगे कि राजर्षि का ध्येय पतित भारत को सत्पथ पर लाने का था। उनका तन, मन और धन भारत के कल्याणार्थ समर्पित था। जिस प्रकार हो सके भारतवर्ष सन्मार्ग अवलम्बन करे, उनके जीवन का यही लक्ष्य था। उन्हें भारत उत्थान के लिए आर्यों के कुलाचार पद्धति-गृह्यसूत्रों का उद्घाटन आवश्यक प्रतीत हुआ, गोभिलीयगृह्यकर्मप्रकाशिका, नित्याह्निकप्रयोग, अन्त्येष्टिदीपिका और मण्डप पूजा इत्यादि पुस्तकों को संकलन और संस्करण कराकर जनता के समक्ष उपस्थित किए। उक्त पुस्तकें जिज्ञासुओं की सहारा हुईं, अनेक द्विजातियों में पुनः उपनयन आदि संस्कारों के प्रचार होने लगे। अपनी धर्म-पत्नी, पुत्र वधू और राज्य परिवारों से कहा करते थे कि जब मेरा देहान्त हो इसी संकलन कराई हुई अन्त्येष्टिदीपिका के अनुसार मेरी अन्त्येष्टि क्रिया करना और कराना।

राजर्षि इस प्रकार सोम यज्ञ दीक्षित हो दर्श-पौर्णमास आदि यज्ञों को करते हुए ६२ वर्षकी अवस्था को प्राप्त होकर १४ जुलाई सन् १९१२ ई० में ब्रह्मपद लीन हो गए। उनकी धर्म्मपत्नी राजमहिषी महारानी-मुरारीकुँअरि राज्याधिकारिणी हुईं। महारानी की आज्ञा को पाकर हिवेट क्षत्रिय हाईस्कूल के समस्त अध्यापक और छात्र एक अत्यन्त सुन्दर विमान बनाए। उसीपर राजर्षि के शव को लेटाकर पीताम्बर से ढके हुए श्मशान ले गए और अन्त्येष्टिसंस्कार किए, पूज्य सती महारानी मुरारीकुंअरिजी ने अपने शासनकाल में जो कीर्त्ति की हैं वे भी भिनगेश राजर्षि से कम नही हैं। हिवेट क्षत्रिय हाईस्कूल के लिए जब जब जो आवश्यकता पड़ी है उन्हे अत्यन्त उदारता और प्रसन्नता के साथ महारानी पूरा करती रही। उक्त महाराणी ३० एप्रेल १९२६ ई० को इस असार संसार को



श्रीमान् पूज्यराजा राजेन्द्रबहादुरसिंहजी ।

छोड़कर परधाम को प्राप्त हुईं। इनके पश्चात् इनके छोटे देवर श्रीमान् राजेन्द्रबहादुरसिंहजी को राज शासन का भार लेना पड़ा।

श्रीमान् राजा राजेन्द्रबहादुरसिंह जी के राजसिंहासन पर बैठने के समय बड़ी ही भयानक बाधाएँ उपस्थित हुईं परन्तु भानु खद्योतवत् सब शीघ्र शान्त होगईं। महात्माओं के उपदेश कैसे स्पष्ट हैं। जिस प्रकार वृक्ष ऋतु को पाकर फलते रहते हैं वैसे अवसर पाकर पुरुष के तपस्या का संचित पुण्यही, सुख सम्पदा को एकत्रित करता रहता है[1]। सद्धर्म के प्रभाव से दुष्ट साधु, मूर्ख विद्वान, शत्रु मित्र गुप्त प्रकट और विष अमृत बन जाता है[2] वर्त्तमान भिनगेश में सत्क्रिया की उपासना और व्यसन में विरक्ति स्वाभाविक है। अतः तपस्या से परिमार्जित अन्तःकरण सौम्य, शान्त, दान्त भिनगेश को पाकर राजलक्ष्मी दमक उठीं जैसे सूर्य की प्रभा सायंकाल में अग्नि में प्रविष्ट होकर चमकने लगती है। जिन महात्माओं का पूर्वकृत पुण्य बहुत ही अधिक होता है उस पुरुष के लिए भयावना आरण्य राजप्रासाद, समस्त लोग सज्जन और सम्पूर्ण धरातल रत्न सुवर्ण आदि सम्पदायुक्त हो जाती हैं[3]।

१—भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि।
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः॥

२—या साधूँश्च खलान् करोति विदुषो मूर्खान् हितान् द्वेषिणः।
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहल तत्क्षणात्॥
तामाराधय सत्क्रियां भगवतींभोक्तुं फलं वाञ्छितुं।
हे साधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथामा कृथाः॥

३—भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं।
सर्वे जनाः सुजनतामुपयान्ति तस्य॥
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा।
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य॥

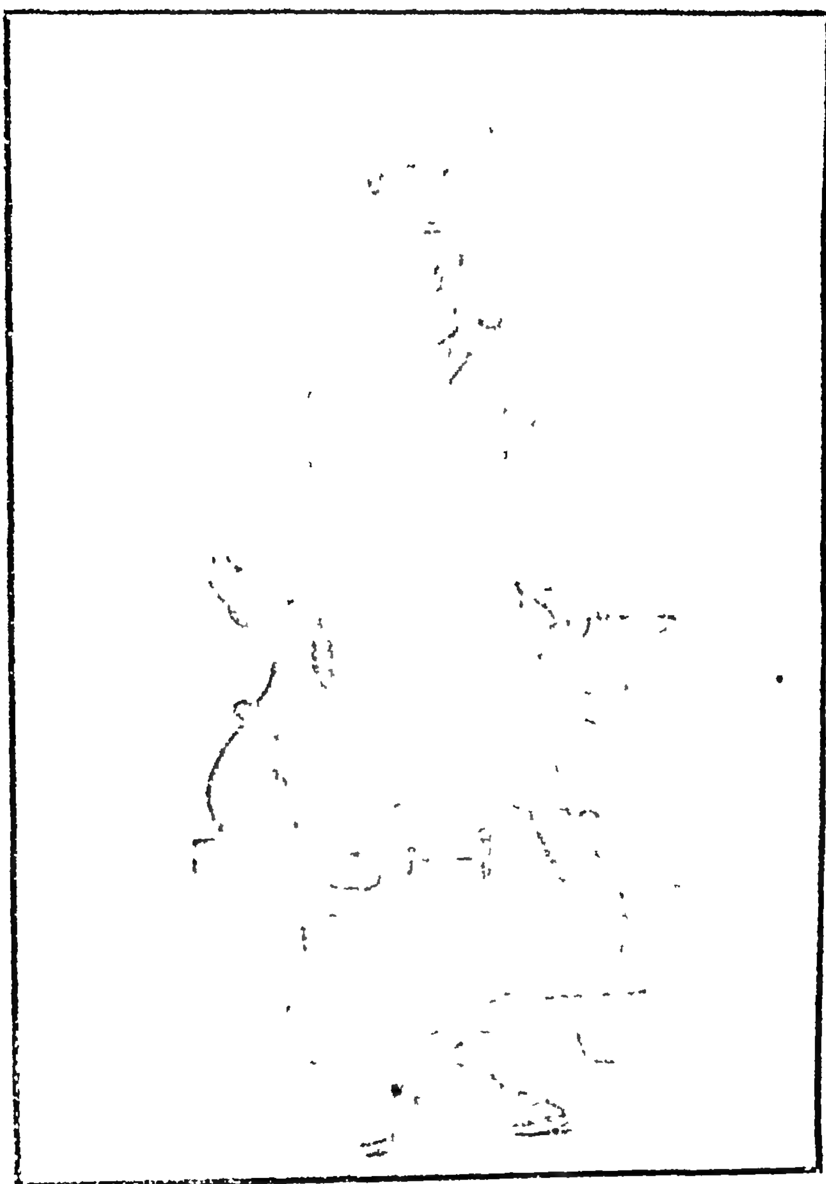
पुत्र सदाचारी, स्त्री पतिव्रता, स्वामी अनुग्रही, मित्र प्रेम करने-वाला, कुटुम्ब के लोग छलरहित, मन क्लेश रहित, सुन्दर रूप, स्थायी सम्पत्ति और विद्या से सुशोभित मुख उसी महापुरुष का होता है जिस पर परमेश्वर की असीम कृपा होती है।

श्रीमान् लाल वीरेन्द्रकान्तसिंहजीसाहब की पितृभक्ति ईश्वर प्रणिधान तथा वेदादि शास्त्रों पर विश्वास साधारण नहीं है। यद्यपि गृह्याग्नि युत पिता के विद्यमान अवस्था में लाल साहब जी के लिए सायं प्रातः होम, बलिवैश्व देवादि पंचमहायज्ञों का अत्यधिक आवश्यक नहीं है तथापि आप पृष्ठोदिवि विधि से नित्य होम बलि वैश्वदेवादि कृत्य सम्पन्न करते हैं। आप श्री कृष्ण भगवान की प्रतिमा स्थापित किये हैं, जिनकी नित्य प्रति स्वयं पूजा करते हैं। उनकी पूजा के समय के ध्यानावस्थित मूर्ति को अवलोकन कर देखने वाले के हृदय में भी भक्ति का तरंग उमण आता है। इस भिनगा राज वंश को देखकर हमें महाकवि कालिदास के पद्य स्मरण हो आते हैं कि "शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैपिणाम्। वार्द्धके मुनि वृत्तीनां योगे नान्ते तनुत्यजाम्।" अर्थात् आजन्म शुद्ध यथा विधि अग्निहोत्र के करने वाले प्रथम अवस्था में विद्याभ्यास, युवा अवस्था में संसार कार्य का सम्पादन एवं वृद्धावस्था में मुनि वृत्ति का पालन करने वाले सूर्यवंशोद्भव क्षत्रियों की कथा लिखते हैं।

समय पाकर श्रीमान् राजा राजेन्द्र बहादुर सिंहजी और लाल साहब विरेन्द्रकान्त सिंहजी श्रीमानों के पवित्र अन्तःकरण में यह संकल्प प्रादुर्भूत हुआ कि इस समय संस्कृत के पठन-पाठन का ह्रास हो गया है। गोभिलीयगृहकर्मप्रकाशिका से और अधिक उपकार होता यदि इसका हिन्दी अनुवाद हो जाता। इन्हीं महानुभाव की आज्ञानुसार हम अनुवाद कर रहे हैं। अनुवाद करते हुए परम पिता परमात्मा से मेरी सविनय प्रार्थना है कि



श्रीमान् लालवीरेन्द्रकान्तसिंहजी ।



श्रीमान् कु० अलक्षेन्द्र कान्तसिंह ।

श्रीमान् लाल वीरेन्द्रकान्तसिंहजी के पुत्र श्रीमान् कुँ० अलक्षेन्द्र-कान्तसिंह जी के हृदय में स्वपूर्वजों की कीर्त्तिकौमुदी को भारत में विकसित रखने की बुद्धि और साहस प्रदान करे जिससे भारत का कल्याण हो।

गोभिलगृह्यसूत्र सामवेद की कौथुमी शाखा का गृह्यसूत्र है जो कौथुमीय शाखाध्यायी द्विजों का जीवन चर्य्या है। यही गोभिलीय-गृह्यकर्मप्रकाशिका का मौलिक ग्रन्थ है। यद्यपि गोभिलीयगृह्यकर्मप्र-काशिका उक्त गृह्यसूत्र की टीका सी प्रतीत होती है, परन्तु वास्तविक उसकी टीका नहीं है। गोभिलगृह्यसूत्र में प्रतिपादित कर्म्मों की पद्धतियों का समूह है। यद्यपि इसकी रचना शैली से गृह्यसूत्र की टीकाही का भान होता है परन्तु टीका न होने का उदाहरण भी स्पष्ट है। इस ग्रन्थ का आरम्भ "अथ गृह्याकर्म्माण्यु पदेक्ष्यामः" सूत्र से नही हुआ है। "पश्चाद्वास्तीर्य्य दक्षिणतः प्राञ्चा-म्प्रकर्षति" "परिधी न्वप्येके समिलान परणान वा" इत्यादि सूत्रों का अर्थ इस ग्रन्थ में नही पाया जाता। अतः गोभिलीयगृह्यकर्मप्रका-शिका गोभिलगृह्यसूत्र की टीका नही कही जा सकती। हाँ गोभिलगृह्यसूत्र प्रतिपाद्य दर्श-पूर्णमास गर्भाधानसंस्कार आदि विषयों की ही सद्धतियां हैं।

अष्टका आदि कृत्यों में पशु संज्ञपन का विधान लिखा गया है। यह उल्लेख वर्त्तमान समय की भावना के प्रतिकूल है। हमारे पाठक महाशय इस बात पर विशेष ध्यान रक्खें कि सामाजिक भावना परि-वर्त्तन शील होती है। जिसको आज अपना कर्त्तव्य समझती है उसी को कल अकर्त्तव्य भी मानने लगती है। इसी धारणा के अनुसार पहले यज्ञों में पशु संज्ञपन परम धर्म माना जाता था जिसे आज आश्चर्य सा प्रतीत होता है। उक्त विषय में जनता का दो विश्वास है एक तो अपनी धारणा को "होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया०"

इत्यादि श्रुति "मधुपर्केच यज्ञेच पितृ दैवत कर्मणि अत्रैव पशून्" इत्यादि, इत्यादि स्मृतियों से प्रमाणित करते हैं। और दूसरे हिंसा को दुष्कर्म कह कर महा पाप सिद्ध करते हैं। दोनों अपने पक्ष को समर्थन में पूर्ण यत्न वान रहते हैं, परन्तु हमारी धारणा यह है कि जो कार्य जिस काल, देश जाति अवस्था में कर्त्तव्य माना जाता है उसे उस काल, देश आदि के लिए अवश्य कर्त्तव्य है, परन्तु उससे भिन्न देश, काल, अवस्था जाति में धर्म नहीं कहा जा सकता। मान लिया जावे कि आर्यों के समय पशु संज्ञपन धर्म था, परन्तु आज समाज में वह अधर्म सा प्रतीत होता है। ऐसी दशा में शास्त्रकारों का भी वैसाही मत है कि "लोक विकुष्टमेव च" जो समाज की धारणा के प्रतिकूल न हो वही धर्म है। अस्तु जो हो उसे तो समाजही निर्णय कर लेगी परन्तु हम "समुत्पत्ति च मांसस्य वधवन्धोच देहिनाम् पर समिक्ष निवर्तते सर्व मांसस्य भक्षणात्" मांस कि उत्पत्ति तथा प्राणि के वध वन्धन क्रुर कर्म को ख्याल कर मानवी भावना इसी "विषय को अधिक स्वीकार करती है कि किसी प्रकार की हिंसा कर्त्तव्य नहीं है।



भवदीय—

शुकदेववर्म्मा।

विषेश विवरण ।

होम कार्य में सर्वत्र-निम्नाङ्कित विधि का अनुसरण करना चाहिए ।

१—यजमान अपने दक्षिण हाथ को बाएँ हाथ के बाहर से रखकर दोनों हाथों की हथेलियों को स्वभिमुख रखते हुए भूमि जप करे।

२—अग्नि के जिस ओर से जाकर ब्रह्मासन पर जल की धारा देवे। उसी ओर से आकर अग्नि के उत्तर पात्रा सादन करे।

३ अग्नि के उत्तर स्रुवा में जल रक्खे यदि प्रणीता न रक्खा गया हो।

४—हवन के पहले २ अग्नि में एक समिध चढ़ाकर "अदिते अनुमन्यस्व" इत्यादि से उदकाञ्जलि देकर "देवसवित०" से तीन वार परियुक्षण करे और हवन के पश्चात् भी एक समिध अग्नि में चढ़ाकर प्रथम "देवसवित०" पर्युक्षण कर तद्पश्चात् "अदितेअनुम ँस्था" मन्त्र से उदकाञ्जलि देवे ।

५—प्रणीता में ४ अंगुल का दण्डा होना चाहिए ।

६—स्वादुकण्टक, विकंकत, वैकंकत, स्रुवावृक्ष, ग्रन्थिल, व्याघ्रपात् ये ५ नाम वेहली वृक्ष के हैं और वह वेर वृक्ष के समान होता है ।

७—तत्रावसथ्योल्मुकं महान् से कृत्वा तत्र वैश्वदेवार्थं पाकं विधान महानसादङ्गाराना हृत्यावसथ्ये निधाय ततः पाकादन्नमुद्धृत्याभिघार्यं अग्नेरुत्तरतः प्राङ्मुखः उपविश्व मणिकोदकेनाग्निं पर्युक्ष्य दक्षिण जान्वाच्य हस्तेन द्वादशपर्वपूरकमोदनमादाय जुहुयात्। गदाधर भाष्ये ।

गोभिलीयगृह्यकर्मप्रकाशिकानुक्रमणिका ।

विषयाः	पृष्ठे	पं.	विषयाः	पृष्ठे	पं.
ग्रन्थोपक्रम मङ्गलाचरणम्	१	१	ज्येष्ठकनिष्ठयोराधानकालः	७७	११
सकलकर्मपरिभाषा	४	१०	प्रमादादिनाऽकृताधानेप्रायश्चित्तम्	७८	२०
दर्शपूर्णमासयोः कालः	१०	१७	प्राजापत्यादिकृच्छ्राचरणम्	८०	१
पात्रलक्षणम्	१२	११	विच्छिन्नाधानेऽतीतहोमद्रव्यदानम्	८१	२
अथेध्मसमिधप्रमाणम्	१५	४	अथाधानप्रयोगः	८१	२२
पवित्र लक्षणं	१६	२४	कुण्डनिर्माणम्	८२	४
अथ क्षिप्रहोमलक्षणम्	१७	१०	अहतवासोलक्षणम्	८३	६
अथ प्रायश्चित्तप्रमाणम्	१७	२२	अथारण्योर्लक्षम्	८३	१८
यागपूर्वदिने दम्पत्योर्नियमाः	१८	८	प्रमन्योविलोमन्थनरज्जूनां लक्षणम्	८४	१
अथ प्रयोगः	२०	१६	अनुगुप्तावूलक्षणम्	८५	१३
स्थालीपाके विशेषविचाराः	४३	१६	मन्थनकालः प्रकारश्च	८६	३
ऋत्विक्सङ्ख्यादक्षिणादानादि	५३	१	कुण्डसंस्कारः	८७	१६
सायम्प्रातर्होमादीनां मुख्यकाले उक्तद्रव्यालाभे तत्प्रतिनिधयः	५३	१०	पूर्णाहुति.	८९	१८
			आहरणपक्षे	९०	२३
सायम्प्रातर्होमयोर्गौणकालः	५३	१४	पितरि मृते एकादशेऽह्नि	९१	३
अथ गोभिलोक्तप्रायश्चित्तम्	५४	१	अन्त्यसमिदाधानकालिकाधाने	९२	५
अथ परिशिष्टोक्तप्रायश्चित्तानि	५६	५	विवाहकालिकाधाने	९२	९
अथ वैश्वानरस्थालीपाकप्रयोगः	५८	१०	अथ विच्छिन्नाधानप्रयोगः	९३	१
नवयज्ञादीनां लोपे	५८	१५	उपस्थानमन्त्राः	९४	११
विविच्चिस्थालीपाकः	५८	१७	अथ सायंप्रातरौपासनहोमः	१००	८
स्थालीपाकस्थाने पूर्णाहुतिः	५९	१७	अनुगतप्रायश्चित्तम्	१०८	७
यजमानस्य प्रवासे पत्न्याकर्तव्यम्	६०	१७	प्रादुष्करणकालातिक्रमे	१०८	१३
स्वाहाकारे होमः	६०	२२	पुनराधाने निमित्तान्तरम्	१०९	१०
उपवातहोमलक्षम्	६१	१	समारोपणप्रकारः	११०	८
पुंसवनादिषु व्याहृतित्रयहोमः	६१	७	प्रत्यवरोहणम्	११०	१७
स्थालीपाकपदार्थक्रमः	६२	२२	यज्ञोपवीतकरणम्	१११	१४
अथाज्यतन्त्रपदार्थक्रम	६३	२१	धारणप्रकारः	११२	२२
अथाधानकालनिर्णयः	७४	१२	प्राचीनावीतिलक्षणम्	११३	१९

विषयाः	पृष्ठे	पं.	विषयाः	पृष्ठे	पं.
अथाचमनविधिः	११४	८	अथोपनयनप्रयोगः	२३९	९
सायम्प्रातर्वैश्वदेवप्रयोगः	११६	२४	समिदाधानप्रयोगः	२६३	१९
बलिहरणम्	११८	१८	अथ सावित्रचरुप्रयोगः	२६५	५
यजमानस्य प्रवासादौ	१२१	८	अथ गोदानव्रतप्रयोगः	२६७	४
बालवृद्धातुरादिविषये	१२१	२२	अथ गोदानाङ्गोपनयनम्	२६८	१६
उपवासदिनेऽपि	१२२	३	अथ व्रातिकव्रतप्रयोगः	२७०	२४
वैश्वदेवारम्भप्रयोगः	१२२	१८	अथादित्यव्रतप्रयोगः	२७१	२२
अथ विवाहः	१२५	१	अथौपनिषद्व्रतप्रयोगः	२७३	१
कन्यायाः शुभाशुभपरीक्षा	१२५	१५	अथ ज्येष्ठसामिकव्रतप्रयोगः	२७३	१९
वाग्दानप्रयोगः	१२७	१२	महानाम्निकप्रयोगः	२७६	६
कन्यास्नापनम्	१२९	३	ज्येष्ठसाम्नामध्यापनं	२८१	२२
कन्यादानप्रयोग.	१२७	८	अथोपाकर्म	२८२	१९
उत्तरविवाहः	१५५	९	उपाकरणं कृत्वाऽनध्यायाः	३१३	१
औपासनहोमारम्भः	१६०	२	उत्सर्जनप्रयोगः	३१३	१७
समशनीयस्थालीपाकप्रयोगः	१६३	११	अनध्याया उच्यन्ते	३१६	१
वध्वा रथारोहणे	१७२	१	अथ नैमित्तिकप्रायश्चित्तानि	३१७	१६
रथचक्रस्य भङ्गे	१७२	२२	कौथुमीयानां द्विपञ्चाशद्ग्रन्थाः	३२०	१
धृतिहोमः	१७४	१६	ब्रह्मचर्य्यव्रतान्तेस्नानम्	३२२	१४
अथ चतुर्थीकर्मप्रयोगः	१७६	३	व्रतलोपेप्रायश्चित्तम्	३२४	७
विवाहादिषु पूर्णाहुतिनिषेधः	१८०	६	अथ स्नानप्रयोगः	३२५	७
स्थालीपाकारम्भः	१८०	१६	अथ स्नातकव्रतानि	३३४	१७
अथ गर्भाधानप्रयोगः	१८१	१५	अथ गोपुष्टिप्रदकाम्यकर्माणि	३३७	२०
पुंसवनप्रयोगः	१८३	१४	अथ गोपुष्टयर्थं विलयनहोमः	३३६	१९
सीमन्तोन्नयनप्रयोग.	१८९	८	अथ वत्समिथुनयोर्लक्षणम्	३४०	२२
अथ सोष्यन्तीहोम	१९६	५	अथ गोयज्ञप्रयोगः	३४३	५
जातकर्मप्रयोगः	१९७	१७	अथाश्वयज्ञप्रयोगः	३४४	१५
अथान्नप्राशनप्रयोगनिर्णयः	१९८	२०	अथ श्रवणाकर्मप्रयोगः	३४६	१
चन्द्रदर्शनप्रयोगः	२१८	२	अथाश्वयुजीकर्म	३६०	१२
अथ नामकरणप्रयोगः	२२०	१५	पृषातकभक्षणे विचारः	३६०	१४
अथ प्रवासादागतस्य कृत्यम्	२२९	१३	अथ नवयज्ञप्रयोगः	३६३	१४
अथ चूडाकरण प्रयोगः	२३०	१९	अथाग्रहायणीप्रयोगः	३६९	३

विषयाः	पृष्ठे	पं
अथ स्वस्तरारोहणप्रयोगः	३७३	१७
अथाष्टकाप्रयोगः	३७६	८
अथ मध्यमाष्टका	३८१	१
अथान्वष्टक्यप्रयोगः	३९९	१०
अथ नान्दीमुखश्राद्धप्रयोगः	४१८	१
अथ पिण्डपितृयज्ञप्रयोग	४१८	१५
अथ शाकाष्टकाप्रयोगः	४२०	१८
अथ प्रसङ्गाद्वपाहोममन्त्र	४२३	७
अथ ऋणनिवृत्तिप्रयोगः	४२४	१७
अथ हलाभियोगप्रयोगः	४२५	९
अथेन्द्राणीस्थालीपाकप्रयोगः	४२८	१५
अत ऊर्द्ध्वं काम्यकर्मसु विधयः	४२९	११
स्यन्त्रकरणप्रकार	४३०	१२
परिसमूहनम्	४३०	१८
प्रपदवैरूपाक्षजपः	४३२	६
अथ काम्यकर्मविशेषाः	४३४	७
अथ पशुस्वस्त्ययनकर्म	४३५	१
अथ परचित्तप्रसादकरकर्म	४३६	१
अथ वृक्षइवेतिपञ्चर्चप्रयोगः	४३६	२०
अथ भोगार्थं कर्म	४३८	१७
अथ वृहत्पत्रस्वस्त्ययनप्रयोग.	४३९	४
अथ क्षुद्रपशुस्वस्त्ययनप्रयोगः	४३९	२०
अथ स्वस्त्यर्थकर्म	४४०	१२
अथ प्रवासादृगृहागमनप्रयोगः	४४१	१
अथानकाममारकर्म	४४१	१०
अथालक्ष्मीनिर्णोदहोमः	४४२	३
अथ स्वस्त्ययनकरोपस्थानम्	४४५	७
अथाचित्तशानकामप्रयोगः	४४६	६
अथ वास्तोष्पतियज्ञः	४४७	८
अथ स्वस्त्ययनकर्म	४५६	६
अथ प्रसादकरकर्मोच्यते	४५८	१०
पुराक्षण्यामृचि चत्वारिकर्माणि	४५९	१४
अथ वधकामस्य वधकरकर्म	४६१	८
ग्रामकामस्यामोघनामकंकर्म	४६१	१६
वृत्त्यविच्छित्तिकामस्यवृत्तिप्रदकर्म	४६३	१
सम्पदर्थं पण्यहोमप्रयोगः	४६४	५
पण्यवस्त्रप्राप्त्यर्थं तन्तुहोमः	४६५	८
पूर्णहोमः	४६५	१४
पुरुषाधिपत्यकर्मं	४६६	१२
पशुकामस्य प्रयोग	४६८	९
गोताप शान्तये होमः	४६८	१८
स्वस्त्ययनग्रन्थिकरणप्रयोग	४६९	११
अथचित्तकाम्यकर्म प्रयोगः	४७०	१
गवाश्वमहिषादेः गोमयहोमः	२७०	११
क्षुद्रपशुकामस्याविपुरीषहोमः	४७१	५
वृत्त्यविच्छित्तिकामस्यकम्बूकहोमः	४७१	११
अथ विषनिवृत्तिजपप्रयोगः	४७२	५
अथ स्नातकस्य स्वस्त्ययन प्रयोगः	४७२	१६
अथ कृमिचिकित्साजपः	४७३	७
अथ पशूनां कृमिनिवर्तनजपः	४७४	६
अथ मधुपर्कप्रयोग.	४७४	१८



* ओ३म् *

गोभिलीयगृह्यकर्मप्रकाशिका

के

अनुवादक का उपक्रम ।

ध्यायन्ति यं ध्यानगताः मनीषिणः, गायन्ति यं यज्ञपतिञ्च सामगाः । अर्चन्ति यं सोमरसेन सोमपाः, गीर्णन्ति यं विश्वनिमित्तकारणम् ॥ १ ॥ तं विश्वरूपञ्च नमाम्यहं विभुम्, सत्यात्मकं सर्वविकारवर्जितम् । यस्य प्रसादादियमुत्तमा शुभा, राजर्षिणा कीर्त्तिरनन्यशोभना ॥ २ ॥

अर्थ—ध्यानावस्थित महर्षि लोग जिस परमेश्वर का ध्यान करते हैं, जिस यज्ञ-स्वामी ईश का सामवेद के अध्ययनकर्त्ता गान करते हैं, सोमयज्ञ-कर्त्ता यजमान सोमरस से पूजन करते हैं, ऋग्वेदी ऋग्वेद के मन्त्र से जिस जगदाधार की स्तुति करते हैं, जिसकी असीम कृपा से राजर्षि के द्वारा की हुई यह उत्तम कल्याणप्रद अपूर्व शोभायुक्त गोभिलीयगृह्यकर्मप्रकाशिका रूपी कीर्त्ति विद्यमान है, उस सत्यस्वरूप सर्वव्यापी ईश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१–२॥

आसीद्धि राजष्युदयप्रतापः, नः क्षत्रियाणामरविन्दहंसः । श्रीमाँश्च राजेन्द्रकनिष्ठबन्धुः, गृ-

समुदाय को जान कर सामवेदीय कौथुमी शाखा के मन्त्रों से स्थालीपाकादि कर्मों के करने में प्रसन्न, वेदमार्ग में तत्पर, सरयू नदी के उत्तर पवित्र भिनगा नगरी में विराजमान हैं ॥ २—३ ॥

तेनाज्ञप्तो गोभिलीयगृह्यकर्मप्रकाशिकाम् ।
कुरुते बालबोधाय सुधीस्सूत्रानुसारिणीम् ॥ ४ ॥

अर्थ—उन श्रीमान् राजा उदयप्रताप सिंहजीसे आज्ञा पाकर, मैं पण्डित "सुब्रह्मण्य शास्त्री" अल्पज्ञ जिज्ञासुओं के उपकारार्थ गोभिलगृह्यसूत्र के अनुसार इस गोभिलीयगृह्यकर्मप्रकाशिका नाम की पुस्तक को बनाता हूँ ॥ ४ ॥

तत्रादौ सकलकर्मपरिभाषा ॥ कर्माणि यज्ञोपवीतिना कृताचमनेन कर्तव्यानि, पैतृकाणि प्राचीनावीतिना, मानुषाणि निवीतिना । कर्त्तव्यानीति तु तत्र तत्र वक्ष्यामः ।

अर्थ—इस गोभिलीयगृह्यकर्मप्रकाशिका में प्रथम सब कर्मों की परिभाषा अर्थात् साधारण विधि को लिखते हैं । (यज्ञोपवीतको इस रूपसे धारण करे कि जो वामस्कन्ध से दाहिने पार्श्व में लटकता हो, उसे यज्ञोपवीत, दाहिने स्कन्ध से वाम पार्श्व में लटकता हो उसे प्राचीना वीत और जो माला की भाँति गले में पहना जाय उसे निवीत कहते हैं) यज्ञो-पवीती हो आचमन कर तत्पश्चात् सम्पूर्ण देव कर्म करना चाहिए । पितृकर्मों को प्राचीनावीती और मनुष्य कार्य्यों को निवीती होकर करना चाहिए । जिन जिन समयों, स्थानों या अवस्थाओं में जो जो देव, पितृ और ऋषि संबंधी कर्म जिस विधि से करना चाहिए उस विधि को उन स्थलों पर पूर्ण रूप से लिखूंगा ।

सर्वेषां कर्मणामनुष्ठानमुत्तरायणे पूर्वपक्षे पुण्यनक्षत्रे पुण्यदिने मध्याह्नात्पूर्वं विशेषकालानुक्तौ ।

अर्थ—जिन कर्मों के लिये विशेष समय नही लिखा है उन सम्पूर्ण अग्न्याधानादि शुभ कार्य्यों को सूर्य के उत्तरायण होने पर शुक्लपक्ष, शुभनक्षत्र, शुभ दिवस और दोपहर से पहले करना चाहिए ।

येषां तु कर्मणामनुष्ठानं दक्षिणायनेऽपरपक्षेऽपराह्णे सायं रात्रौ वा भवति तानि वक्ष्यामः ।

अर्थ—जिन कर्मों को दक्षिणायन, दोपहर के पश्चात्, सायम् या रात्रि में करना शास्त्र में नियत किया गया है, उन्हें उन्हीं समयों पर करना चाहिए जो समय नियत हैं और उन उन स्थलों पर पूर्ण रूप से समय और विधि को लिखेंगे ।

यत्र दिङ् नोपदिश्यते, तानि कर्माणि प्राङ्मुख उदङ्मुख ईशानमुखो वा कुर्य्यात् ।

अर्थ—जिन जिन कर्मों के लिए यह नही लिखा है कि किस मुख होकर करना चाहिए उन्हें पूर्व, उत्तर अथवा ईशानकोण के मुख होकर करना चाहिए ।

तिष्ठन्नासीनः प्रह्वोवेति नियमो नोपदिश्यते, तदासीनः कुर्यात् ।

अर्थ—जिन कर्मों के लिए यह नही लिखा है कि बैठ कर या खड़ा होकर करना चाहिए उन्हें बैठकर करना चाहिए ।

यत्र कर्मकर्त्तुरङ्गोपदेशो न, तत्र दक्षिणमङ्गं विजानीयात् ।

अर्थ—जिन कर्मों में कर्त्ता के विशेष अंग का उल्लेख न हो वहाँ दाहिना अंग जानना चाहिए ।

बद्धशिखः पवित्रपाणिः कृतप्राणायामो देशकालौ सङ्कीर्त्त्य कर्म कुर्यात् ।

अर्थ—शिखा बांधे हुए, सपवित्र हाथ में, आचमन प्राणायाम और संकल्प कर क्रिया आरम्भ करना चाहिए ।

एकवासा न कुर्यात् । शूद्र-चाण्डाल-पतित-पङ्क्ति-च्युत-वेदस्मृतिपथाननुयायिब्राह्मणैर्मन्त्रश्रवणे कर्म न कुर्यात् ।

अर्थ—एक वस्त्रको पहन कर क्रिया न करे । शूद्र, चाण्डाल, पतित, पंक्तिच्युत (जातिवाह्य) और वेद-स्मृतिशास्त्रों को न मानने वाले ब्राह्मण से मन्त्र सुनकर कर्म नहीं करना चाहिए ।

पितृमन्त्रपठने, आत्मालम्भे, ऽधमदर्शने, ऽधोवायुविसर्गे, प्रहासे, ऽनृतभाषणे, मार्जारमूषकस्पर्शे, आक्रुष्टे, क्रोधसम्भवे, रौद्रराक्षसासुराभिचारमन्त्रपठने, छेदने, भेदने, निरसनेऽप उपस्पृशेत् ।

अर्थ—पितृ संबन्धी मन्त्रों के पढ़ने पर, अपने हृदय को स्पर्श करने पर, चाण्डालादि को देख कर, अपानवायु के छूटनेपर, हँसीकरने पर मिथ्या भाषण कर, बिल्ली मूस के छू जानेपर, क्रोध होने पर, या उसकी संभावना होने पर, रौद्र, राक्षस, आसुर तथा वशीकरणादि मन्त्रों के पढ़ने पर, पवित्रादि के छेदन और समिधादि के का-

---

⊛ कुश के दो पत्ते को उमेठि कर गांठ दे देते हैं। उसे कानी उंगली के पास की उंगुली में पहनते हैं। उन्हीं कुशपत्रों का नाम पवित्र है।

टनेपर एवं आसनादि कुशाओं के निरसन क्रियाओं के करने के पश्चात् जल स्पर्श करना चाहिए।

मन्त्रदेवतानुक्तौ प्रजापतिर्देवता । होमद्रव्यानुक्तावाज्यम् ।

अर्थ—जिन जिन मन्त्रों का कोई देवता नहीं लिखा हो उनका प्रजापति देवता जानना चाहिए। जिन जिन होम कार्य्यों में यह नहीं लिखा है कि अमुक वस्तु की आहुती देनी होगी वहाँ घी की आहुती देनी चाहिए।

व्यजनादिनाऽग्निधमनन्न कुर्यात् । किन्तु धमन्यादिना । विशिष्यदक्षिणानुक्तौ पूर्णपात्रं दक्षिणा । अन्तर्जानुः सर्वं कर्म कुर्यात् । सर्वकर्मस्वन्ते वामदेव्यं गायेत् । सर्वेषु कर्मसु दक्षिणादानमाभ्युदयिकश्राद्धं, कर्मसमाप्तौ यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनञ्च कर्त्तव्यम् ।

अर्थ—पंखा आदि से होम की आग को नहीं बारना चाहिए। किन्तु धमनी के साथ मुंह से फूंकना चाहिए*। जिस होमकी दक्षिणा न लिखी हो वहाँ पूर्णपात्रदक्षिणा देना चाहिए। सम्पूर्ण कर्मों में

---

* न कुर्यादग्निधमनं कुर्याद्वा व्यञ्जनादिना ।
मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्ध्येषोऽध्यजायत ॥
का० स्मृति ख० ९ श्लोक० १४–१५

अर्थ—होम की अग्नि को फूंकना नहीं चाहिए। अथवा आवश्यकता हो तो पंखा से बारना चाहिये, किसी २ आचार्यका मत है कि होम की अग्नि को मुख ही से फूकना चाहिए। कारण कि मुख से अग्नि उत्पन्न हुई है।

जाँघों के अन्दरही हाथ रखना, अन्त में वामदेव्य मन्त्र का गान आभ्युदयिक श्राद्धकर्म समाप्त होने पर ऋत्विजों को दक्षिणा देना और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।

न च सूत्रकारेण दक्षिणादानमाभ्युदयिकश्राद्धञ्च नोक्तमिति वाच्यम्, "सर्वाण्येवान्वाहार्यवन्ति" इति सूत्रेणोक्तत्वात्। सूत्रेऽन्वाहार्यशब्दोदक्षिणावाचकआभ्युदयिक श्राद्धवाचकश्च। तथा चायमर्थः। सर्वाणि कर्माण्यन्वाहार्यवन्ति दक्षिणाभ्युदयिकश्राद्धयुक्तानीति। तदुक्तं गृह्यासङ्ग्रहे। "यच्छ्राद्धं कर्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत्। आमावास्यं द्वितीयं यदन्वाहार्य्यं तदुच्यते"॥ नचैकेनोभय विधानमयुक्तं वाक्यभेदप्रसङ्गादिति वाच्यम्, सति प्रमाणे वाक्यभेदस्येष्टत्वात्। अस्ति प्रमाणमत्रैव चतुर्थप्रपाठके "वृद्धिपूर्त्तेषु युग्मानाशयेत्प्रदक्षिणमुपचारायवैस्तिलार्थे" इति। अस्यार्थः। वृद्धिर्जातकर्मादिका, पूर्त्तानि शान्तिपौष्टिकदेवतास्थापनादीनि, तेषु कर्मस्वादौ प्रकृतत्वात्पित्रर्थं युग्मान् ब्रह्मणान् भोजयेत्। आसनाद्युपचाराः प्रादक्षिण्येन कर्त्तव्यास्तिलार्थे यवैरेतत्सर्वमाभ्युदगिकश्राद्धे प्रसिद्धम्॥ यद्यस्मिन् गृह्यसूत्रे आभ्युदयिकश्राद्धविधानं न स्यात्, युग्मब्राह्मण भोजन विधानं निर्विषयमेव स्यात्, तस्मात्पूर्वत्राभ्युदयिक श्राद्धविधानमङ्गीकार्यम्। वस्तुतस्त्वन्वाहार्य शब्देनाभ्युदयिक श्राद्धं विधीयते, न तु दक्षिणा। तस्यास्तत्रतत्र विशि-

ष्योक्तत्वादनुक्तस्थले प्राकृतान्वाहार्य्यदक्षिणाया अतिदेशेन सिद्धत्वात्, तस्मात्कर्मादावाभ्युदयिकश्राद्धविधानमेव। तत्प्रयोगमन्यत्र वक्ष्यामः।

अर्थ—यह कहा नही जा सक्ता कि गोभिलाचार्य्य ने दक्षिणा देना और आभ्युदयिक श्राद्ध नही लिखा है क्योंकि "सर्वाण्येवान्वाहार्यवन्ति" इस सूत्र में अन्वाहार्य शब्द दक्षिणा और आभ्युदयिक श्राद्ध के उपदेशार्थ ही है। इस सूत्र का यह अर्थ है कि सब कर्म आभ्युदयिक श्राद्ध और दक्षिणा युक्त होते हैं। प्रमाण भी गृह्यासंग्रह में लिखा है कि जो श्राद्ध कर्मों के आरम्भ में किया जाता है, जो दक्षिणा कर्म के अन्त में दी जाती है और जो अमावास्या में दूसरा श्राद्ध होता है उन्हें अन्वाहार्य्य कहते हैं। एक ही अन्वाहार्य शब्द से श्राद्ध और दक्षिणा दोनों कर्म का समझना अयुक्त नहीं है, क्यों कि प्रकरण भेद से एक शब्द अनेक का बोधक होता है। गोभिलगृह्यसूत्र के चतुर्थ प्रपाठक के तृतीय खण्ड में ३४-३५ और ३६ सूत्र हैं। इन सूत्रों का अर्थ यह है कि जात कर्मादिकों को वृद्धि कहते हैं, शान्ति पौष्टिक और देवता स्थापनादिकों को पूर्त्त कहते हैं, इन कर्मों के प्रारम्भ में भी पितरों की अर्चना आभ्युदयिक श्राद्ध से करते हैं, किन्तु पार्वण में कहे हुए अयुग्म अर्थात् १—३—५ के स्थान पर युग्म अर्थात् २—४—६ ब्राह्मणों के भोजन कराने की विधि है। आसनादिक पदार्थ दक्षिण भाग से प्रदान करे। जिन जिन स्थानों पर तिल का प्रयोग होता हो वहां जौ प्रदान करे। उपरोक्त भेद आभ्युदयिक श्राद्ध में ही प्रसिद्ध हैं। यदि इस गृह्यसूत्र में आभ्युदयिक श्राद्ध का विधान न किया गया होता तो युग्म ब्राह्मण का विधान व्यर्थ ही हो जाता, इस लिए कर्मारम्भ में आभ्युदयिक श्राद्ध

का विधान मानना ही पड़ेगा । वस्तुतः अन्वाहार्य शब्द का प्रयोग आभ्युदयिक श्राद्ध ही के अर्थ में किया गया है न कि केवल दक्षिणा में । परन्तु विशेष स्थानों पर अन्वाहार्य दक्षिणा के प्रयोग से दक्षिणा का भी बोधक है । आभ्युदयिकश्राद्ध का प्रयोग आगे उन उन स्थानों पर पूरा लिखेंगे जहाँ पर उनका प्रसङ्ग आएगा ।

अथादौ सूत्रेऽग्न्याधानप्रयोग उक्तः, तस्य चाज्यसंस्काराद्यङ्गकर्मसापेक्षत्वात्तेषां दर्शपूर्णमासस्थालीपाकप्रकरणे सूत्रकृता साकल्येनोक्तत्वात्तस्यैवाज्यचरुहोमप्रकृतित्वादाधानप्रयोगं विहाय दर्शपूर्णमासस्थालीपाकप्रयोगो विरच्यते ।

अर्थ—गोभिलगृह्यसूत्र में प्रथम अग्निस्थापन की विधि लिखी है । परन्तु घृत, चरू इत्यादि होमीय पदार्थों का संस्कार दर्शपूर्णमास के स्थालीपाक प्रकरण में पूर्णरूप से लिखा है । घी आदि पदार्थों के संस्कार की आवश्यकता हर एक होम कार्य्यों में होती है । अत. इस गोभिलीयगृह्यकर्मप्रकाशिका में प्रथम दर्शपूर्णमास की स्थालीपाक यज्ञ की विधि लिखी जाती है । जिससे घी, चरु आदि पदार्थों के संस्कार ज्ञात हो जायेंगे, जो हर एक यज्ञ की आवश्यक विधि स्वरूप हैं ।

दर्शपौर्णमासयोः कालः पर्वप्रतिपदोः सन्धिस्तत्र यागः । पूर्वदिने सङ्कल्पादिकमन्वाधानं कर्म । यदाऽहोरात्रव्यापिनी पौर्णमास्यमावास्या वा तद्दिनेऽन्वाधानं परेद्युर्यागः । यदा रात्रौ पर्वसन्धिस्तदा सन्धिकाले यागस्यासम्भवात्सन्धिमद्दिने पूर्वाह्णेऽन्वाधानं परेद्युर्यागः । यदा दिवा पर्वप्रतिपदोः ,सन्धिस्तदात्वेवं निर्णयः ।

अर्थ—अमावास्या अथवा पूर्णिमा के साथ प्रतिपद् (परिवा) का जो संयोग काल है उसी संधि समय में यज्ञ कर्त्तव्य है। सङ्कल्प, अग्नि अन्वाधान और व्रत आदि यज्ञ दिन से पहले दिनमें करना चाहिए। जब अमावास्या या पूर्णिमा अहो रात्रि व्यापिनी हो तो उसी दिन अग्नि अन्वाधान और दूसरे दिन यज्ञ करना चाहिए । यदि रात्रि में अमावस्या अथवा पूर्णिमा के साथ प्रतिपद से संयोग होता हो तो उस रात्रि के समय यज्ञ करना असम्भव है, अत जिस दिन की रात्रि में अमावास्या या पूर्णिमा के साथ प्रतिप्रद का संयोग हो उसी दिन प्रातःकाल अन्वाधान कर दूसरे दिन यज्ञ करे। यदि दिन में अमावास्या अथवा पूर्णिमा के साथ प्रतिपद का संयोग होता हो तो उसकी व्यवस्था भी यही है कि प्रातःकाल अन्वाधान और दूसरे दिन यज्ञ करे।

पर्वपुच्छघटिकाः प्रतिपत्पुच्छघटिकाश्च संयोज्य ताश्च दिवाप्रमाणघटिकापेक्षयाऽधिकाश्चेत्पुच्छपर्वण्यन्वाधानं, पुच्छ प्रतिपदि यागः । दिवाप्रमाणघटिकापेक्षया न्यूनाश्चे चतुर्दश्यामन्वाधानं पुच्छपर्वाणि यागः। यदा दिवा प्रमाण घटिकास्समास्तदा चतुर्दश्यामन्वाधानं, पुच्छपर्वणि यागः। तदेतत्सर्वं प्राचीनग्रन्थे स्पष्टम् । बोधायनकात्यायनाश्वलायनानां यागकालोऽप्रकृतत्वान्नोक्तः । पिण्डपितृ यज्ञस्य कालं तत्प्रयोगे वक्ष्यामः ॥

अर्थ—अमावास्या और पूर्णिमा को पर्व कहते हैं। पर्व और प्रति पद् के तृतियांश को दिन मान के साथ मिलान करने पर, यदि दिन की मान घटिका से पर्व का भोग अधिक होता हो तो पर्व के

अन्तिम तृतियांश में अन्वाधान और प्रतिपद् के आदि तृतियांश में यज्ञ करे। यदि दिन मान घटिका से पर्व और प्रतिपद् के तृतियांशों के योग का भाग न्यून अर्थात् कम हो तो चतुर्दशी में अन्वाधान करके पर्वके अन्तिम तृतियांश भाग में यज्ञ करना चाहिये। यदि समस्त दिन पर्व का भाग हो तो चतुर्दशी में अन्वाधान और पर्व के तृतियांश में यज्ञ करे। यह विषय प्राचीन ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है। बोधायन, कात्यायन और आश्वलायन ऋषियों के यज्ञ काल को अप्राकृतिक होने के कारण नहीं लिखा है। समय का विचार पिण्डपितृ यज्ञ के लिए भी आवश्यक है परन्तु उसका विचार पिण्ड पितृयज्ञ के प्रयोग के साथ लिखेंगे।

तत्रादौ पात्रलक्षणं प्रासङ्गिकमन्यदप्युच्यते। स्रुवोऽरत्निमात्रो, बाहुमात्रा पालाशीस्रुक्। खादिरः स्रुवो द्व्यङ्गुष्ठपरिमितबिलो घ्राणवत्कृतमर्यादः। इध्मसजातीय निर्मितेध्मार्द्धप्रमाणाङ्गुष्ठपृथ्वग्रं हविरवदान समर्थं काष्ठं मेक्षणमुच्यते। मेक्षण सजातीय द्व्यङ्गुलपृथ्वग्रा दर्वी। वैणवश्शूर्पं। यज्ञियवृक्षनिर्मितमवहननसमर्थमुलूखलं मुसलश्च। वैकङ्कतमयो यज्ञिय वृक्षजो वा प्रादेश दीर्घश्चतुरङ्गुलविस्तृतस्त्र्यङ्गुलचतुरंगुलोर्द्धो वा त्वग्बिलश्चमसः। अत्र प्रमाणानि कर्मप्रदीपे "खादिरो वाऽथ पालाशो द्विवितस्तिः स्रुवः स्मृतः। स्रुग्बाहुमात्राविज्ञेया वृत्तस्तु प्रग्रहस्तयोः॥ स्रुवाग्रे घ्राणवत्खातं द्व्यङ्गुष्ठ परिमण्डलम्। इध्मजातीयमिध्मार्द्धप्रमाणं मेक्षणं भवेत्। वृत्तं चाङ्गुष्ठपृथ्वग्रमवदानक्रियाक्षमम्॥ एषैव दर्वी यस्तत्र

विशेषस्तमहं ब्रुवे। दर्वी द्व्यङ्गुल पृथ्वग्रा तुरीयोनं तु मेक्षणम्"। गृह्यासंग्रहेऽपि "खादिरोऽरत्नि दीर्घः स्यात् स्रुवोऽङ्गुष्ठपर्ववृत्तः। पार्णीं स्रुचं बाहुमात्रीं पाणितलाकारपुष्कलम्। त्वग्बिलां त्वग्रे कुर्वीत मेक्षणं स्रुक्स्रुवादिवत्"। आज्यस्थाल्या लक्षणं कर्मप्रदीपे। "आज्यथाली च कर्त्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा। माही मयी वा कर्त्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च। आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तु यथा कामं तु कारयेत्। सुदृढामव्रणां भद्रामाज्यस्थालीं प्रचक्षते"॥ चरुस्थाल्यालक्षणं तत्रैव। "तिर्य्यगूर्द्ध समिन्मात्रा दृढा नातिबृहन्मुखी। मृन्मय्यौदुम्बरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते। औदुम्बरी ताम्रमयीत्यर्थः। मुसलोलूखलेवार्क्षे स्वायते सुदृढे तथा। इच्छाप्रमाणे भवतः शूर्पं वैणवमेव च"॥ चमसलक्षणं कातीययज्ञपार्श्वाख्य परिशिष्टे। "चमसानां तु वक्ष्यामि दण्डाः स्युश्चतुरङ्गुलाः। त्र्यङ्गुलस्तु भवेत्स्कन्धो विस्तारश्चतुरङ्गुलः॥ विकङ्कतमयाः श्लक्ष्णास्त्वग्बिलाश्चमसाः स्मृताः। अन्येभ्यो वाऽपि वा कार्य्यास्तेषां दण्डेषु लक्षणम्"॥ अन्यत्रापि। "तच्छाखाश्चमसा दीर्घाः प्रादेशाश्चतुरङ्गुलाः। तथैवोत्सेधतो ज्ञेयाश्चतुरस्रास्त इत्यपि"॥

अर्थ—स्रुवा, स्रुची, प्रणीता, प्रोक्षणी आदि होम के पात्र किस पदार्थ का, कितना लम्बा चौड़ा और किस रूपका होना चाहिए। इस विषय का प्रमाण कर्मप्रदीप, गृह्यासंगृह और कातीययज्ञ पार्श्वाख्य

परिशिष्ट में लिखा है। यहां प्रसंग वश उसे उद्धृत किया जाता है। यदि और किसी स्थानों पर आवश्यकता होगी तो उन जगहों में भी लिखेंगे। खैर अथवा पलाश काष्ठ का एक हाथ अथवा दो बित्ते लम्बा स्रुवा और बाहु भर की स्रुची होनी चाहिए। स्रुवा का अग्र भाग घी उठाने के लिए दो अंगुल चौड़ा गोलाकार नासिकाछिद्र के समान गहरा होना चाहिए। स्रुची का अग्र भाग हथेली भर का कसोरे के सदृश होना चाहिए। जिन जिन काष्ठों की इच्छा होती है उन्हीं में से किसी एक काष्ठ का एक बित्ता लम्बा और अंगुष्ठ भर चौड़ा हवि उठाने योग्य काष्ठपात्र को मेक्षण कहते हैं। मेक्षणदी के सदृश अग्रभाग में दो अंगुल चौड़ी दर्वी होती है। बांस का सूप और धान आदि हवि कूटने के योग्य पीपल, पलाश, वैकंकत आदि यज्ञीय वृक्ष में से किसी का उलूखल और मूसल होना चाहिए। उनकी चौड़ाई और ऊँचाई यजमान की इच्छानुसार होनी चाहिए। उपरोक्त वैकङ्कत आदि काष्ठों में से किसी एक का बारह अंगुल लम्बा चार अंगुल चौड़ा और तीन या चार अंगुल ऊंचा प्रणीता होना चाहिए। कर्मप्रदीपमें लिखा है कि घी रखने के लिए सब होम कार्यों में आज्यस्थाली धातु अथवा मिट्टी की जो सुविधा हो बनावे। आज्यस्थाली की लम्बाई चौड़ाई जिसप्रकार घी रखना हो उसी अनुसार छोटी बड़ी होनी चाहिए। परन्तु सुदृढ़ देखने में सुन्दर और फूटी टूटी न हो। चरुस्थाली भी टेढ़ी मुख की बित्ते भर ऊँची अच्छी सुदृढ़ मिट्टी अथवा तामे की बनी होनी चाहिए। मुख बहुत चौड़ा नहीं होना चाहिए।

दारुमयपात्रनाशे विशेषःकर्मप्रदीपे। "विनष्ट स्रुकस्रुवं न्युब्जं प्रत्यक् स्थलमुदर्च्चिषि। प्रत्यगग्रञ्च मुसलं प्रहरे ज्ज्ञातवेदसि"।

कर्म प्रदीप में लिखा है कि यदि काष्ठ के पात्र टूट फूट जावें तो स्रुवा और स्रुक् को नीचे अग्रभाग कर मूसल को पूर्वाग्र अग्नि में छोड़ देना चाहिए ।

अथेध्मप्रमाणम् । "प्रादेशद्वयमिध्मस्य प्रमाणं परिकीर्त्तितम् । एवं विधाभिरेवेह समिद्भिः सर्वकर्मसु । समिधोऽष्टादशेध्मस्य प्रवदन्ति मनीषिणः । दर्शे च पौर्णमासे च क्रियास्वन्यासु विंशतिः" ॥ समिल्लक्षणमपि तत्रैव । "नाङ्गुष्ठादधिका ग्राह्या समित्स्थूलतया क्वचित् । न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता । प्रादेशान्नाधिका नोना न तथा स्याद्विशाखिका । न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु च विजानता । समिदादिषु होमेषु मन्त्रदैवतवर्जिता । पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च हीन्धनार्था समिद्भवेत् ॥"

अर्थ—(प्रत्येक होम कार्य्यों में घृताहुति के पहले अग्नि के चारो तरफ समिध रखते हैं जिसे परिधि कहते हैं[1] अठारह या बीस समिध को अग्नि में चढ़ाते हैं । उन्ही होमीय काष्ठोंको इध्म कहते हैं)। समिध एक वितस्त की होती हैं। ये काष्ठ विशेष वृक्षों के होते हैं। लम्बाई और मोटाई भी ऋषियों ने पृथक् पृथक् नियत किया है। ये पूर्वोक्त परिधि, और इध्म खैर पलाश आदि वृक्षों की होती हैं। और समिध तो पलाश, खैर, पिप्पल, शमी, गूलर वृक्ष तथा अपामार्ग (चिचिढ़ा) मदार, दूब या कुश इनमें से जो सुलभ्य हो बनाना चाहिए।* सम्पूर्ण कर्मोंमे बाहुभरकी परिधि दो विलस्त लम्बी इध्मा

---

[1] बाहुमात्रा परिधय ऋजवः, सत्वचोऽव्रणाः ।
त्रयोभवन्ति शीर्णाग्रा एकेषां तु चतुर्दिशम ॥ कर्मप्र० ख० १५ श्लो० १९

* पलाशखदिराश्वत्थशम्युदुम्बरजा समित् । अपामार्गार्कदूर्वाश्चकुशा चेत्यपरेविदुः ॥ स्मृत्यर्थसार वचनम् पारस्करगृह्यसूत्रभाष्ये गदाधरः ।

और एक वितस्त की समिध होनी चाहिए। महर्षियों ने दर्श और पौर्णमास यज्ञमें अठारह और इससे भिन्न होमकार्यों में बीस इध्मा हवन करने को लिखा है। ये उपरोक्त परिधि और इध्माएँ अंगूठे से मोटी नहीं होनी चाहिए। बोकले के सहित हो और कीड़े खाए (घूनी) न हों। उपरोक्त लक्षण युक्त समिध भी होनी चाहिए। परन्तु एक वितस्त से छोटी अथवा बड़ी, दो शाखा युक्त, पत्तों के साथ और सड़ी न हों। इन इध्म अथवा समिध होम के आदि और अन्तमें मन्त्र और देवता रहित अग्नि को प्रचण्ड करने के लिए इन्धन छोड़ना चाहिए। इध्म और समिध तो प्रजापति आदि देवताओं के लिए साकल्य हैं।

तत्रैव कर्मविशेषे इध्मनिषेधः। ((अङ्ग होमसमित्तन्त्र सोष्यन्त्याख्येषु कर्मसु येषां चैतदुपर्युक्तं तेषु तत्सदृशेषु च। अक्ष भङ्गादि विपदि जलहोमादि कर्मणि सोमाहुतिषु सर्वासु नैतेष्विध्मो विधीयते।,,

अर्थ—कर्मप्रदीपकार ने जहाँपर परिधि, इध्म और समिध का उल्लेख किया है वहीं पर यह भी स्पष्ट लिख दिया है कि (यथा पञ्चमहा यज्ञों के मध्य वैश्वदेव कर्म में बलिप्रदान करना प्रधान कर्म और प्रजापतयेस्वाहा, इत्यादि आहुतियाँ वैश्वदेव के अङ्गमात्र हैं। इसी प्रकार की आहुतियों को अङ्ग होम कहते हैं) अङ्गहोम, तन्त्र होम, सोष्यन्ती नाम से प्रसिद्ध जो जात कर्म संस्कार से पहले होता है उनमें और उपरोक्तों के सदृश जहाँ कहीं होम करने की आवश्यकता हो, रथके भङ्ग होने आदि आपत्तियों में, जल में होम करने में और सोमादि आहुतियों में इध्म की आहुतियाँ नहीं दी जाती हैं।

अथपवित्रलक्षणं तत्रैव। अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेवच। प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्।

एतदेव हि पिञ्जूल्या लक्षणं समुदाहृतम् । आज्यस्योत्पवनार्थं यत्तदप्येतावदेव तु" ।

अर्थ—कर्मप्रदीप में पवित्र बनाने का प्रमाण यों लिखा है कि घृत के उत्पवन संस्कारकार्य्य तथा श्राद्ध कर्म में जहाँ कही पर पवित्र बनाना हो कुशा के दो पत्तों के बनाना चाहिए। पवित्र बनाने के लिए कुशा के बीच के पत्तों को नहीं किन्तु अगल बगल के पत्तों को लेना चाहिए। पवित्र के कुशपत्रों के अग्रभाग टूटे न हों और एक बिलस्त के होने चाहिए। यही घृतउत्पवनार्थ पवित्र अथवा पिञ्जुली के लक्षण और प्रमाण हैं।

अथ क्षिप्रहोमलक्षणम् ।"एक साध्येष्वबर्हिष्षु न स्यात्परिसमूहनम् । नोदगासादनं चैव क्षिप्रहोमा हि ते मताः । न कुर्यात्क्षिप्रहोमेषु द्विजः परिसमूहनं वैरूपाक्ष च न जपेत्प्रपदञ्च विवर्जयेत् ।"

अर्थ—अब क्षिप्र होम के लक्षण लिखते हैं। यहाँ पर क्षिप्र शब्द का अर्थ शीघ्रता अथवा संक्षेप में होम करने का है। क्षिप्र होम में केवल अग्नि का पर्युक्षण कर होम मन्त्रों को पढ़ता हुआ अग्नि में आहुति छोड़े। अग्नि के चारो तरफ कुशा न बिछावे। कुशा से अग्नि कुण्ड को न झारे और न अग्नि कुण्ड के उत्तर भाग में जल भर कर प्रणीता अथवा स्रुवा आदि का आसादन करे। वरूपाक्ष और प्रपद मन्त्रों का जप भी न करे। यही क्षिप्र (शीघ्रता से) होम कर लेने की विधि है।

अथ प्रायश्चित्त प्रमाणम्। "यत्र व्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्तात्मको भवेत् । चतस्रस्तत्र विज्ञेयास्त्रीपाणिग्रहणे यथा । अपि वाज्ञातमित्येषा प्राजापत्याऽपि वाऽऽहुतिः होतव्या त्रिविकल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिस्स्मृतः" ।

प्रायश्चित्त और विवाह संस्कार में भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा इस प्रकार तीन और 'भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इस प्रकार तीनों को मिलाकर चौथी आहुति दी जाती है। इसी प्रकार प्रायश्चित्त के लिए चतुर्थ आहुति भी देनी चाहिए। अथवा इस चतुर्थ आहुति को अयास्य इस मन्त्र से या प्रजापति के नाम से देना चाहिए। इस चतुर्थ आहुति की विधि को उपरोक्त रूप से विकल्प समझना चाहिए।

अथ यागपूर्वदिनेऽमावास्यायां पौर्णमास्याञ्च दम्पत्योर्नियमाः कथ्यन्ते। यजमानस्य प्रवास निषेधः। स्वयं होमार्थं प्रवासादवश्यं गृहागमनं कर्त्तव्यम्। स्वद्रव्यविक्रयनिषेधः बहुलौकिकभाषणनिषेधश्च। सत्यस्यैव वदनम्। अपराह्णे पुनः स्नानादिकम्। दर्शे पिण्डपितृयज्ञो वक्ष्यते। तदैव दम्पत्योर्भोजनम्। रात्रिभोजननिषेधः। मधु-मांस-लवण क्षार-माष-कोद्रवादिनिषिद्धद्रव्यभोजननिषेधश्च घृत-दधि-क्षीर-फलौदनादिभिस्तृप्तिपर्य्यन्तं भोजनम्।

अर्थ यज्ञ से पूर्व दिन में यजमान और उसकी स्त्री को जिन नियमों के साथ रहना चाहिये उन्हें कहते हैं यजमान को उस दिन परदेस में नहीं जाना चाहिए किन्तु यज्ञ के लिए प्रवास से गृह को चला आना चाहिए। अपनी किसी वस्तु की बिक्री न करे। बहुत व्यवहार की बातें न करे। सत्यभाषण करे। दोपहर के बाद पुनः स्नान करे। दर्श में पिण्डपितृयज्ञ को लिखेंगे। उसी मध्यान्ह के समय स्त्री और पुरुष दोनों को भोजन करना चाहिए। रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए। मधु, मांस, क्षारलवण, माष कोद्रवादि निषिद्ध अन्न का भोजन निषेध है। घी दही दूध फल आदि जितना अच्छा पदार्थ हो भोजन करना चाहिए।

विहितपदार्थभोजनस्येश्वरत्वाद्द्योधुकत्व-सर्वकाम्यत्व प्रजापश्वादिप्राप्तिः फलम्। भोजनत्यागे उक्तविपरीत-फलं इति मानतन्तव्येनर्षिणोक्तम्। दम्पत्योरधश्शयनं जागरणञ्च। तदर्थं पुण्यकथाश्रवणं कथनं वा। स्मरण-कीर्त्तन-केलि-प्रेक्षण-गुह्यभाषण-सङ्कल्पाध्यवसाय-शुक्रोत्स-र्जनात्मकाष्टविधमैथुननिषेधः। एतदेव ब्रह्मचर्यं गृहस्थस्य। "गृहे पत्न्या स्थालीपाकेऽनुष्ठीयमाने ग्रामान्तरस्थस्य यज-मानस्य नोपवास" इति केषाञ्चिन्मतम्। एते नियमा आहिताग्निनाऽप्यनुष्ठेयाः। अन्येऽपि नियमविशेषा अध्वर्यु-शाखाप्रदिपादिताग्राह्याः। तदुक्तं गोभिलेन। "यञ्चाम्नायो-विदध्यात्" इति। अस्य भाष्यम्। अध्वर्युप्रत्ययत्वादग्नि होत्रस्य तदाम्नायं विहितं स्यादिति समुच्चयार्थमिदमुक्त-मिति। अक्षरार्थस्तु यं च पदार्थजातमाम्नायोऽध्वर्य्युशाखा विदध्याद्विधानं कुर्य्यात्तमपि गृह्णीयादिति विशेषः। चकारः स्वशाखोदितकर्मसमुच्चयार्थः।

अर्थ—अमावास्या अथवा पूर्णमासी के दिन शास्त्र में जिन पदार्थों को खाने की विधि लिखी हो उन्हें अवश्य भोजन करना चाहिए। भोजन कर लेने से यजमान को यज्ञ कर्म करने में उत्साह रहता है। पुरुषार्थ के द्वारा प्रजा, पशु आदि की प्राप्ति होती है। यदि शास्त्रोक्त भोजन न करे तो क्षुधा पीड़ित उत्साह हीन हो जाता है। याग कर्म में चित्त नहीलगता और पुरुषार्थ रहित धन हीन दीन हो जाता है। मानसन्तव्य नाम से प्रसिद्ध महर्षि का सिद्धान्त है कि व्रत में शास्त्र विहित वस्तु का भोजन अवश्य करना चाहिए। अमा-

वास्या और पूर्णमासी के दिन यजमान और उसकी स्त्री को भी खाट पर नहीं सोना चाहिए, किन्तु भूमि पर कम्बल आदि बिछा बिछाकर सोना चाहिए। रात्रि में वेद, शास्त्र, इतिहास आदि सुन सुना कर जागरण करना चाहिए। व्रत के दिन स्त्री के भोग विलास का स्मरण, तद्विषयक वार्तालाप, क्रीड़ा, गुप्त वार्त्तालाप, भोग विलास की इच्छा होने पर उसकी पूर्त्ति का यत्न करना और वीर्य पतनात्मक कार्य्य निषिद्ध हैं। गृह्याश्रमी का दर्शपौर्णमास व्रत के दिन यही ब्रह्मचर्य्यव्रत है। किसी किसी ऋषि का मत है कि यजमान यदि कार्य्यवशात् ग्रामान्तर में चला गया हो और स्थालीपाक को स्त्री ही सम्पादन करे तो पुरुष को उस दर्श या पौर्णमास दिन में व्रत करने की आवश्यकता नहीं है। यही उपरोक्त नियम श्रौताधान करने वाले यजमान के लिए भी पालनीय हैं। इससे विशेष नियम जो यजुर्वेदीय शाखा में लिखा है वे भी पालनीय हैं। गोभिलगृह्यसूत्र में यही लिखा है कि जो नियम अध्वर्य्यु शाखा में उक्त हो वही अग्नि होत्री को ग्राह्य हैं।

अथ प्रयोगः। तत्रान्वाधानदिने प्रातः कृतनित्यक्रियः प्रातरौपासनं विधाय, कुशेष्वासीनो दक्षिणहस्तानामिकया ब्रह्मग्रन्थियुक्तं कुशपवित्रं कुशांश्च धारयमाणः पत्न्या सह प्राणानायम्य सङ्कल्पं करोति।

अर्थ—अब दर्शपौर्णमास की स्थालीपाकविधि को लिखते हैं। अग्नि अन्वाधान के दिन प्रातः काल की सब नित्य क्रियाओं को कर प्रातः होम करे। कुशा के आसन पर बैठकर दाहिने हाथ के अनामिका अँगुली में ब्रह्मग्रन्थी दिए हुए कुशपवित्र पहने और कुशों को हाथमें ले लेवे। स्त्री के सहित आचमन प्राणायाम कर सङ्कल्प करे।

देशकालौ संकीर्त्य ममोपात्तसमस्तदुरितक्षयद्वारा परमेश्वरप्रीत्यर्थं पौर्णमासस्थालीपाकं करिष्ये इति पौर्णमास्याम्। दर्शस्थालीपाकं करिष्ये इत्यामावास्यायाम्। तेन परमेश्वरं प्रीणयानि। पत्न्यर्थमप्येवमुक्त्वा दर्भानुत्तरतो निरस्याप उपस्पृशति। ततो ब्रह्मवरणम्।

अर्थ—दाहिने हाथ में जल लेकर देश, काल, मास, पक्ष, तिथि, वार, आदि को स्मरण कर "ममोपात्त समस्तदुरितक्षयद्वारा परमेश्वर प्रीत्यर्थं पौर्णमास स्थालीपाकं करिष्ये" ऐसा पढ़ कर जल को भूमि पर छोड़ दे। यदि अमावास्या का स्थाली पाक करना हो तो पौर्णमास स्थालीपाक के स्थान पर "दर्शस्थाली पाकं करिष्ये" ऐसा कहकर जलको छोड़े। सङ्कल्प कर लेने के पश्चात् अपने और अपनी स्त्री के लिए भी "तेन परमेश्वरं प्रीणयानि" ऐसा पढ़े। आसन पर रक्खे हुए कुशा को उत्तर दिशा में फेक कर जल स्पर्श करे। अग्नि कुण्ड के दक्षिण एक पश्चिम दो और उत्तर दो कुशासन रखकर उन पर तीन तीन कुशपत्रों को रख दे। अग्निकुण्ड के उत्तर पूर्व मुख ब्रह्मा और उत्तर मुख यजमान बैठे। दाहिने हाथ में कुशा ले कर ब्रह्मा से संबोधित कर यजमान यों कहे कि "एतत्स्थालीपाकहोम कर्मणि ब्रह्माणन्त्वामहं वृणे" यह कहकर कुशा को ब्रह्मा के हाथ में दे देवे। प्रत्युत्तर में ब्रह्मा "वृतोऽस्मि कर्म करिष्यामि" वाक्य यजमान से कहे।

अथाग्नेः स्थण्डिलं गोमयेन समन्तमुपलिम्पति। प्रादेशद्वयमात्रान् खादिरान् पालाशान् वा सत्वक्कानष्टादशेध्मान् बध्नीयात्। खादिर-पलाशाभवे, आश्वत्थानौदुम्बरान्सर्ववृक्षजान्वा गृह्णीयात्। विभीतक–तिल्वक–बाधक–

नीव-निम्ब-राजवृक्ष-शाल्मल्यरलु-दधित्थ-कोविदार-श्ले-ष्मान्तक--वर्जम् ।

अर्थ—सङ्कल्प आदि कार्य्य करने के पश्चात् अग्निकुण्ड और अग्निशाला को भी गोबर और जल से लिप डाले। खैर, पलाश अथवा वैकंकत इन उक्त वृक्षों में से जो सुगम से मिल सके उनका बाहु भर लम्बी तीन या चार परिधियाँ और दो बित्ता लम्बी अठारह इध्माओं को कुशा से बान्धकर अग्निशाला में रक्खे * । यदि खैर, पलाश तथा वैकंकत की शाखाएं न मिल सकें तो पिप्पलादि जो सुलभ हो उनकी परिधि इध्म और समिध बनानी चाहिए, परन्तु बहेडा, लोध, बाधक, नीव, निम्ब, अमलतास, सेमर, अरलू, कपित्थ, विहार और श्लेष्मान्तक इन ग्यारह वृक्ष की शाखाओं की परिधि, इध्म और समिध न बनावे ।

ततः स्कन्धस्थानादुपरिच्छिन्नान् साग्रानरत्निमात्रान् बाहुमात्रान्वा बर्हिष आनीय परिस्तरणार्थं सन्निधयात् । कुशालाभे विश्वामित्रादीन् सर्वतृणानि वा गृह्णीयात् । शूक-तृण-शरशीर्य-वल्वज-मुतव-नल-शुण्ठ वर्जम् । पिण्डपितृ यज्ञादौ मूलसमीपप्रदेशेछिन्नान्दर्भान् गृह्णीयात् ।

अर्थ—परिधि आदि समिधाओं के रखने के पश्चात् कुशाओं का संग्रह करे। कुशाओं को उस स्कन्ध स्थान से काटना चाहिये जहां से उनके पत्ते अलग अलग होते हैं। कुशा के अग्रभाग सम्पन्न

---

*यद्यपि यहाँ पर गोभिलीय गृह्यकर्मप्रकाशिका कार ने परिधि का उल्लेख नहीं किया है परन्तु गोभिलगृह्य सूत्रानुसार उल्लेख्य है।

(दुरुस्त) होना चाहिए। उनकी लम्बाई हाथ भर या बाहुभर की होनी चाहिए। इस प्रकार के कुशाओं को अग्नि परिस्तरण अर्थात् (अग्नि के चारो तरफ बिछाने के लिए) बाँधिकर रक्ख देवे। यदि कुशा न मिल सके तो सरपत, काश आदि जो सुलभ्य हों उन्हीं से यज्ञकार्य का सम्पादन करे परन्तु शूक अर्थात् तृण की पुष्प की मञ्जरी, सरपत, वेरहुट, मोथा आदि तृणों को अग्निपरिस्तरण कार्य में न लगावें। पिण्डपितृयज्ञ आदि श्राद्ध कार्य्यों के लिए कुशाओं को जड़ के समीप से काटकर लाना चाहिए।

अथाज्यं स्थालीपाकार्थं व्रिहीन् यवान्वाऽऽज्यस्थालीं मेक्षणं स्रुक्स्रुवौ निर्वापार्थं कांस्यपात्रं चरुस्थालीमुलूखलं मुसलं शूर्पमनुगुप्ता अपः पूर्णपात्रञ्चोपकल्पयेत्। सङ्कल्प-प्रभृत्येतदन्तं कर्मान्वाधानमौपवसथिकमित्याचक्षते। एत-त्कर्म यागस्य पूर्वदिने कर्त्तव्यम्।

अर्थ—कुशा रखने के पश्चात् यज्ञ शाला में-घृत, धान या जौ,* आज्यस्थाली, मेक्षण, स्रुची, स्रुवा, कांस की थाली, भात पकाने की बटुली, उलूखल, मूसल, सूप, कलशे में भरकर किसी अच्छे पवित्र जलाशय का जल और पूर्णपात्र क्रमशः रखे। गृह्याग्नि उपासकों के लिए यही उपरोक्त सङ्कल्प आदि कार्य अन्वाधान कहलाते हैं। इन कार्य्यों को यज्ञ दिन से पहले जिस दिन अमा-वास्या या पूर्णिमा में व्रत करना हो उसी दिन करना चाहिए।

ततः परेद्युः प्रतिपदि प्रातर्होमानन्तरं तूष्णीं समिध-माधाय भूमिजपपरिसमूहने कुर्य्यान्नवा कुर्य्यात्। यदि

---

* आधुनिक समय में धान का चावल या जौ की दरिया रक्खा जाता है कूटने और पछोरने की क्रिया तो केवल संस्कार मात्र ही होती हैं।

सङ्कल्पानन्तरं ब्रह्मवरणं न कृतं तदाऽस्मिन्नेवकाले कुर्य्यात्। अमुक–स्थालीपाकहोमकर्मणि ब्रह्माणं त्वामहं वृणे इति विप्र हस्ते दर्भान्दद्यात्। धृतोऽस्मि कर्मकरिष्यामीति ब्रह्मा प्रति वदेत्। ततो यजमानोऽग्रेणाग्निं गत्वाऽग्नेर्द्दक्षिणत आग्नेयमारभ्य दक्षिणाग्रामविच्छिन्नामुदकधारां दत्वा, पागग्रान्दर्भान् ब्रह्मासनार्थमास्तीर्य्य, यथेतमागत्य, पात्राण्यासादयति।

अर्थ—प्रतिपद् को प्रातःकाल के नित्य होने वाले होम कार्यों को समाप्त करे। वाम हाथ में दो समिध को लेकर "ओं इदम्भूमेर्भजामह इदम्भद्र सुमङ्गलम्। परासपत्नान् बाधस्वान्येषां विन्दतेवसु"॥ इस मन्त्र का जप करता हुआ अग्नि को भस्म रहित कर प्रज्वलित करने का यत्न करे। यदि इच्छा न हो तो अग्नि प्रज्वलनमें मन्त्र न भी पढ़े। यदि व्रत के दिन सङ्कल्प करने के पश्चात् ब्रह्मवरण न किया गया हो तो इसी समय परिसमूहन के पश्चात् अग्नि के उत्तर उत्तराग्र कुशाओं को रख कर पूर्व मुख ब्रह्मा बैठे। पूर्वाग्र कुशाओं को रख कर उत्तर मुख यजमान बैठे। दोनों तीन तीन आचमन करें। दाहिने हाथ में कुशा लेकर यजमान ब्रह्मा से यों कहे कि "पौर्णमासस्थाली पाक होम कर्मणि ब्रह्माणं त्वां अहं वृणे" यजमान ऐसा कहकर कुशाको ब्रह्माके दाहिने हाथ में दे देवे। यजमान के प्रत्युत्तर में ब्रह्मा "वृतोऽस्मि कर्म करिष्यामि" इस प्रकार कहे। तत्पश्चात् यजमान अग्नि के पूर्व से जाकर अग्नि के दक्षिण क्रमसः दक्षिण को जल की धारा देवे। अग्नि के दक्षिण ब्रह्मा के आसन पर पूर्वाग्र तीन कुशपत्रों को रखे। अग्नि के पश्चिमसे आकर अग्नि कुण्डल के उत्तर पात्रों का आसादन करे।

ततो ब्रह्माऽग्नेरुत्तरतः शिखाम्बध्वाऽप उपस्पृश्य यज्ञोपवीत्याऽऽचम्याग्रेणाग्निं गत्वाऽग्नेर्दक्षिणत आस्तीर्णदर्भाणां पुरतः प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठन्वामहस्ताङ्गुष्ठानामिकाभ्यामास्तीर्णदर्भाणामेकं दर्भं गृहीत्वा मन्त्रेण निरस्यति । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः परावसुर्देवता तृणनिरसने विनियोगः। निरस्तः परावसुः। इत्यनेन मन्त्रेण निर्ऋति देशे निरस्यापउपस्पृशेत् । तत आवसोरिति मन्त्रेणोपविशेत् । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः परावसुर्देवतोपवेशने विनियोगः। आवसोः सदने सीदामीत्युक्त्वाऽऽसने उपविशति। अग्निमभिमुखीकृत्य कर्म्मसमाप्तिपर्यन्तं प्राञ्जलिर्मौनी प्रयोगं पश्येत् ।

अर्थ—ब्रह्मा शिखा को बाँधे हुए, यज्ञोपवीती आचमन कर अग्नि के पूर्व से अग्नि के दक्षिण जाकर आसन के पूर्व पश्चिम मुख खड़ा होवे। "निरस्तः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः परावसुः देवता तृणनिरसने विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर "ओम् निरस्तः परावसुः" मन्त्र को पढ़ता हुआ वाम हाथ के अगुठे और अनामिका से आसन पर पूर्वाग्र रक्खे हुए कुशपत्र से एक कुशा उठाकर पश्चिम और दक्षिणके कोन में फेंक कर जल स्पर्श कर ले। "आवसोः इति मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः परावसुः देवता उपवेशने विनियोगः" हाथ जोड़े हुए इस प्रकार ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग का स्मरण कर "ओम् आवसोः सदने सीदामि" मन्त्र को पढ़ता हुआ उत्तर

मुख आसन पर बैठ जावे। हाथ जोड़े हुए यज्ञ समाप्ति-पर्यन्त सब कार्यों का निरीक्षण करता रहे।

यदि होमकर्त्ता प्रयोगमन्यथा करोति तं देववाण्या बोधयेत्, एवं कुर्वेवं मा कुर्विति। यदि देववाणीं न जानाति देशभाषया वदेत्। देशभाषोच्चारणप्रायश्चित्तार्थमिदंविष्णुर्विचक्रम इति वैष्णव्या ऋचो, विष्णोरराटमसीति यजुषो वा, नमो विष्णव इत्यस्य वा, जपं कुर्यात्। इदंविष्णुरिति काण्वोमेधातिथिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दो विष्णुर्देवता जपे विनियोगः। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं। समूढमस्य पाँसुले। नमो विष्णवे। इति सौत्रो मन्त्रः। मूत्रपुरिषाद्युत्सर्गे कृते यथाविधि स्नानाचमनादि विधायोक्तप्रायश्चित्तजपं कुर्यात्।

यदि यज्ञकर्त्ताओं से कोई त्रुटि होने लगे, तो उसे संस्कृत-भाषामें समझा दिया करे। यदि संस्कृत-भाषा में पूर्ण विज्ञ न हो, तो उसकी मातृ-भाषा में समझावे। यदि मातृ-भाषा में ही समझाना पड़े, तो यज्ञ में देव-वाणी से भिन्न भाषा-प्रयोग के निमित्त "इदंविष्णु० विष्णोरराट०" इत्यादि मन्त्रों को प्रायश्चित्तार्थ जप करे। यदि कार्यके समय यज्ञकर्त्ता को दिशा पेसाब आदि की आवश्यकता उपस्थित हो जावे तो शौच से निवृत्त हो स्नान आचमन कर "इदंविष्णु० विष्णोरराट०" इत्यादि वैष्णव मन्त्रों का जप करे, अथवा "नमोविष्णवे" इतनाही जप करे। "नमोविष्णवे" इस नाम मन्त्र को जप करने की विधि गोभिलगृह्य-सूत्र में लिखी है।

ब्राह्मणाभावे ब्रह्मासने छत्रमुदककमण्डलुमुत्तरीयवस्त्रं कुशचटुं वा स्थापयेत्। स्वयमेव मन्त्रेण दर्भनिरसनमपामुपस्पर्शनञ्च कृत्वा मन्त्रेण छत्राद्यन्यतमं संस्थाप्य स्वकीय कर्मान्तरं कुर्यात्। कुशचटुनिर्माणे दर्भसंख्यात्वैच्छिकी।

अर्थ—यदि ब्रह्मा के कार्य-सम्पादन-कर्त्ता का अभाव हो तो यजमान ही विनियोग स्मरण के सहित ब्रह्मासन के कुशपत्रको नैऋत्य में फेक देवे। "आवसोः सदने सीदामि" मन्त्र से ब्रह्मासनपर छाता, जलपूर्ण कमण्डलु, डुपट्टा अथवा वीच में गाठि देकर कुशा रख देवे। कितने कुशको रक्खे-यह यजमान की इच्छा पर निर्भर है। यजमान इस प्रकार ब्रह्मासन पर उस के प्रतिनिधि को स्थापन कर और कार्य्यों का सम्पादन करे।

उपविष्टे ब्रह्मणि यजमानोऽग्नेरुत्तरतः प्रागग्रानुदगग्रान्वा दर्भानास्तीर्य्य तेषु पात्राण्यधोमुखान्यासादयति पश्चिममारभ्य प्राक्संस्थम्। शुद्धजलपूर्णपात्रं बर्हिर्मुष्टिं चरुस्थाली-मुलूखलं मुसलं कांस्यापात्रं सहविःशूर्पं मेक्षण-मष्टादशेध्मानाज्य-माज्यस्थाली स्रुक्स्रुवावुष्णोदकं सम्मार्गकुशान्पुर्णपात्रञ्चासादयति। तानि च पात्राणि सर्वाण्योत्तानानि कृत्वाऽनुगुप्ताभिरद्भिरभ्युक्षेत्।

अर्थ—ब्रह्मा के आसन पर बैठ जाने के पश्चात् यजमान अग्नि के उत्तर भाग में पूर्वाग्र अथवा उत्तराग्र कुशा विछावे। उन विछाई हुई कुशाओं पर क्रमशः पूर्व—पूर्व को यज्ञ सामग्रियों को रक्खे-यथा, कलश या लोटा मे शुद्ध जल, चार मुष्टी कुशा, हवि पकाने की

घटुली, ओखली, मूसल, कांसकी थाली, जिसकी हवि पकाई जाय गी, उस चावल या जौ की दलिया के साथ सूप, मेक्षण, चार या तीन परिधि, अठारह इध्मा, घी, आज्यस्थाली (घी रखकर होम करने का कसोरा) स्रुची, स्रुवा, गर्मजल, सम्मार्जन के लिये कुशायें और पूर्ण पात्र इन्हें कर्मशः पूर्व-पूर्व को रखे। आसादित सामग्रियों को भलीभांति निरीक्षण कर स्रुची आदि पात्रों को सीधा रखकर जल में कुशा डुबोकर सबका प्रोक्षण कर दे।

ततो हविर्निर्वापं कुर्यात् ॥ अथोलूखलमुसले शूर्पञ्च प्रक्षाल्याग्नेः पश्चात्प्राङ्मुख उपविश्य प्रागग्रेषु दर्भेषूलूखलं दृढं संस्थाप्य व्रीहीन् यवान्वा चरुस्थाल्या कांस्यपात्रेण वा अग्नयेत्वाजुष्टं निर्वपामीति सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णी-मुलूखले यथादैवतं निर्वपति । विकृतौ तत्तद्देवतानाम्नश्च-तुर्थ्यन्तस्योच्चारणम् ॥

अर्थ—ओखरी मुसल और सूप को जल से धोकर अग्नि पर तपा दे। अग्नि के पश्चिम पूर्व मुख बैठकर पूर्वाग्र कुशा रखे। उसी पर ओखरी को स्थिरता पूर्वक रखकर "अग्नये त्वा जुष्टम् निर्व-पामि" वाक्य से एक मुष्टी हवि लेकर उस में छोड़े और तीन मुष्टी बिला मन्त्र छोड़े। इसी रीति से जहाँ—कहीं स्थाली—पाक करना हो, प्रधान देवता के नाम को चतुर्थ्यान्त पढ़कर हवि का ग्रहण करे।

अथोलूखलस्य पश्चात्प्राङ्मुखो दक्षिणोत्तराभ्यां पाणिभ्यां मुसलेन व्रीहीन् त्रिरवहन्ति। शूर्पेण तुषानपनीय प्रक्षा-लयेत्। देवहविषस्त्रिः प्रक्षालनम्, मानुषस्य द्विः, पैतृकस्य सकृत् ।

अर्थ—ओखरि के पश्चिम पूर्वमुख बैठकर दोनों हाथसे मूसल लेकर धान या जौ को तीन वार कूटे। सूप से भूसी को पछोरकर तीन बार जल से धो देवे। देवताओं के लिए स्थाली-पाक में तीन वार, मनुष्यों के भोजनार्थ हो तो दो बार और पिण्डपितृयज्ञादि श्राद्ध के लिए हो, तो केवल एक बार धो लेना चाहिए॥

अथासादितबर्हिषस्समावप्रच्छिन्नाग्रावनन्तर्गर्भौ दर्भौ प्रादेशमात्रे पवित्रे भवतः। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः पवित्रे देवते पवित्रछेदने विनियोगः। पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ। इति मन्त्रेणोषधिव्रीह्यादिकमन्तर्धाय छिनत्ति न नखेन। अप उपस्पृश्य, वामहस्तेन पवित्रमूलं धृत्वा, प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः पवित्रे देवतेऽनुमार्ज्जने विनियोगः। विष्णोर्मनसा पूते स्थः॥ इतिमन्त्रेण दक्षिणहस्तेनाद्भिः प्रक्षालयति। ततश्चरुस्थाल्यामुदगग्रे पवित्रे निधाय तण्डुलान्प्रक्षिप्य पवित्रेऽन्यत्र संस्थाप्योदकं निनीयाग्नावधिश्रित्य सुश्रृतं करोति।

अर्थ—पहले से आसादित, (रखे हुए) कुशा में से ऐसे दो पत्रों को लेवे जिनका अग्रभाग टूटा न हो और मध्य के पत्तों से भिन्न अगल-बगल के हों। उक्त कुशपत्रों से एक बित्ते का पवित्र बनाया जायगा। प्रथम धान के पुआल अथवा जौ की डंटी में कुश पत्रों को लपेटकर "पवित्रेस्थः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः यजुः छन्दः पवित्रे देवते पवित्रछेदने विनियोगः" ऋषि, देवता छन्द और विनियोग का स्मरण कर ले। "पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ" मन्त्र को

रखा गया हो, तो प्रोक्षण और आदि पर्युक्षण के लिए स्रुवमें जल भर कर रख देवें । यदि प्रणीता रखा गया हो, तो स्रुव रखने की आवश्यकता नहीं है । (पहले से रखी हुई पात्रस्थाली को अग्नि के पश्चिम बिछाई हुई कुशाओं पर रख देवे *) पश्चात् १८ समिधाओं को बिना मंत्र एकही साथ अग्नि में छोड़ देवें ।

अथाज्यसंस्कारः । आज्यं गव्यं माहिषमाजं वा तदभावे तैलं दधि क्षीरं यवागूं वा, पूर्वपूर्वाभावे उत्तरोत्तरं गृह्णीयात् । आज्यवदेव तत्प्रतिनिधीनां संस्कारः । दध्नो नाधिश्रयणं, यवाग्वास्तु विकल्पः । पूर्वकृते पवित्रे गृहीत्वा, आज्यस्थाल्यामुदगग्रे निधाय, तस्यामाज्यमवनीय, हस्तयोरङ्गुष्ठानामिकाभ्यां धृताभ्यामुदगग्राभ्यां पवित्राभ्यामाज्यं त्रिवारमुत्पुनाति प्राक्शः सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम् । मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुराज्यं देवताऽऽज्योत्पवने विनियोगः । देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ अविमुञ्चन्पवित्रेऽद्भिरभ्युक्ष्याग्नौ प्रहरेत् ।

अर्थ—पहले के बनाए हुए पवित्र को उत्तराग्र आज्यस्थाली पर रख देवे । उसी आज्यस्थाली में घृत छोड़ देवे । दोनों हाथों के अनामिका और अङ्गुठे से पवित्र के दोनों ओर पकड़कर "देवस्त्वा अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः आज्यं देवता उत्पवने विनियोगः, स्मरण कर "ओं देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्य्यस्य रश्मिभिः" एक बार मन्त्र से और दो बार बिना

---

* बर्हिषि स्थालीपाकमासाद्येध्ममभ्याधायाज्य- [illegible] गो० गृ० प्र० १ ख० ७ सू० १९-२० ।

मन्त्र घृत का उत्पवन संस्कार करे। घृत गाय का, यदि गाय का न हो तो भैंस का होना चाहिए। यदि गाय और भैंस इन दोनों के घृत का अभाव हो तो बकरी का घृत लेना चाहिए; यदि घृत मात्र का अभाव होतो, तिल का तेल, दही, दूध और जौ के भात का माड़ इनमें से क्रमशः एक के अभाव में दूसरे का लेना चाहिए। इन तेल आदि पदार्थों का भी उत्पवन आदि संस्कार वैसे ही करना होगा जिस प्रकार घृत का बताया गया है। उनमें से केवल दही को अग्नि पर नहीं पकाया जायगा। यवागू के पकाने का कार्य यजमान की रुचि पर निर्भर है। उसे पका ले अथवा न पकावे। पवित्र कुशा से घृत का उत्पवन संस्कार कर लेने के पश्चात् उसकी ग्रन्थि खोल देवे। जल से धोकर उसे अग्नि पर रख देवे।

उत्पूतमाज्यमग्नौ संस्थाप्याग्नेरुत्तरत उद्वासयेत्। अदृष्टार्थं पुनरग्नेः पश्चाद्बर्हिषि चरुं तत्पूर्वदेशे आज्यस्थालीं चासादयति।

अर्थ—उत्पवन संस्कार किये हुए घृत को पकने के लिये अग्नि पर रख देवे। जब भली भाँति पक जावे तो अग्नि से उतार कर पहले उत्तर तद् पश्चात् आहुति प्रदान के लिए अग्नि के पश्चिम चरुस्थाली के पूर्व परिस्तरण कुशा पर रख देवे।

ततः स्रुक्-स्रुवावादयोष्णोनवारिणा प्रक्षाल्य प्राक्संस्थं सम्मार्गकुशैर्मूलादारभ्य तदग्रदेशाभिमुखं सम्मृज्याग्नौ प्रतितप्य जलेनाभ्युक्ष्य, पुनः प्रतितप्याज्यचरोरुत्तरतो निदध्यात्। सम्मार्गस्तु पृथक्पृथक् प्रतपनं तु सहैव।

अर्थ—स्रुवा, स्रुची आदि को गर्म जल से धो देवे । पूर्व को अग्र-भाग करके सम्मार्गकुशा के मूल से पात्रों के मूल मध्य से मध्य और अग्रभाग से अग्रभाग को झार देवे । अग्नि पर तपाकर पुनः उनपर जल छिड़क देवे । फिर से अग्नि पर तपाकर आज्य और चरुस्थाली के उत्तर भाग में रख देवे । सब पात्रों को एक साथ तपा लेवे परन्तु उनका सम्मार्जन (कुशा से झारने का कार्य्य) अलग अलग करे ।

सायम्प्रातर्होमप्रकरणे वक्ष्यमाणप्रकारेण त्रिरुदकाञ्जलिसेचनं त्रिः पर्य्युक्षणञ्च कुर्यात् । अत्र प्रपदविरूपाक्षजपस्य नित्येषु विकल्पः । तूष्णीं समिधमाधायोपघातविधिनोपस्तिर्णोऽभिघारितविधिना वा होमं कुर्यात् ॥ साहसनामानमग्निमावाह्यार्च्चयेत् ॥

अर्थ—सायम्प्रातः आहुतियों के समय करने के अनुसार हाथ में जल लेकर "अदिते अनुमन्यस्व" से अग्नि के दक्षिण नैॠत्य कोण से "आग्नेय तक जल की धारा देवे । पुनः" अनुमते अनुमन्यस्व, मन्त्र से नैॠत्य कोण से वायव्य तक दूसरी जलधारा प्रदान करे । "सरस्वत्यनुमन्यस्व" मन्त्र से वायव्य कोण से इशान तक जलधारा दे कर "देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय । दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु" मन्त्र से इशान से आग्नेय तक जल धारा देते हुए अग्नि के चारो तरफ प्रदक्षिण क्रम से एक अथवा तीन * जल धारो से अग्नि का परियुक्षण करे । हाथ जोड़कर—विरूपाक्षोऽसि दन्ताञ्जिस्तस्य ते शय्यापर्णे गृहा अन्तरिक्षे विमितᳫँ हिरण्यं तद्देवानाᳫँ हृदयान्ययसमये कुम्भे अन्तः सन्निहितानि

---

* देवसवितः प्रसुवेति प्रदक्षिणमग्निम्पर्य्युक्षेत् सकृद्वा त्रिर्वा गो० गृ० सू० प्र० १ ख० ३ सू० ४ ।

तानि बलभृच्च बलसाच्च रक्षतोऽप्रमनी अनिमिषतः सत्यं यत्ते द्वादश पुत्रास्ते त्वा सम्वत्सरे सम्वतसरे कामप्रेण यज्ञेन याजयित्वा पुनर्ब्रह्मचर्य्यमुपयन्ति त्वं देवेषु ब्राह्मणोऽस्यहं मनुष्येषु ब्राह्मणो वै ब्राह्मणमुपधावत्युप त्वा धावामि जपन्तं मामा प्रतिजापीर्जुह्वन्तं मामा प्रतिहौषीः कुर्वन्तं मामाप्रति कार्षीस्त्वां प्रपद्ये त्वया प्रसूत इदं कर्म्म करिष्यामि तन्मे राध्यतां तन्मे समृध्यतां तन्म उपपद्यतां समुद्रो मा विश्वव्यचा ब्रह्मानुजानातु तुथो मा विश्ववेदा ब्रह्मणः पुत्रोऽनुजानातु श्वात्रो मा प्रचेता मैत्रावरुणोऽनुजानातु तस्मै विरूपाक्षाय दन्ताञ्जये समुद्राय विश्वव्यचसे तुथाय विश्ववेदसे श्वात्राय प्रचेतसे सहस्राक्षाय ब्राह्मणः पुत्राय नमः (ये वैरुपाक्षमन्त्र हैं) ओम् तपश्च तेजश्च श्रद्धाच ह्रीश्च सत्यञ्चाक्रोधश्च त्यागश्च धृतिश्च धर्म्मश्च सत्वञ्च वाक् मनश्चात्मा च ब्रह्म च तानि प्रपद्ये तानि मामवन्तु भूर्भुवः स्वरोम्महान्तमात्मानं प्रपद्ये" मन्त्रों को पढ़े । इन मन्त्रों का जप आवश्यक नहीं किन्तु यजमान की इच्छापर विकल्प है । साहस नाम अग्नि की पूजा करे॥ । विला मन्त्र अग्नि में समिध छोड़कर उपघात विधि से अथवा उपस्तीर्णा भिघारित विधि से होम करे॥ । (अग्नि पर्युक्षण के पश्चात् दाहिने घुठने को भूमि में टेकिकर स्रुवा से घी ले कर मन में "प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये न मम । इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय न मम" । इन दो आहुतियों को प्रदान करे । *)

---

* यह अवाहन और पूजनविधि गृह्योक्त न होने के कारण अनावश्यक है।

॥ जो केवल एक ही हवि लेकर होम किया जाता है उसे उपघात और जब स्रुची में प्रथम स्रुवा से घी छोड़कर पश्चात् नेक्षण से चरु लिया जाता है और पुनः उसपर स्रुवा से घी छोड़कर हवन किया जाता है उसे उपस्तीर्णाभिघारित कहा जाता है।

*—यद्यपि गोभिलगृह्य सूत्र में "प्रजापतये" और "इन्द्राय' इन आहुतियों का उल्लेख स्पष्ट नहीं है और न तो गोभिलगृह्यकर्मप्रकाशिका में ही है परन्तु "इध्ममाधायाघारावाघारयति" इत्यादि मानव गृह्यसूत्रमें स्पष्ट है। शतपथ ब्राह्मण, पारस्कर

अथाऽऽज्यभागौ जुहोति ॥ त्र्यार्षेयाणां चतुर्गृहीतमाज्यं स्रुवेण स्रुचि गृहीत्वोत्तरार्द्धे पूर्वार्द्धे जुहोति । अनयोः प्रजापतिर्ऋषिरग्निः सोमश्च क्रमेण देवताऽऽज्यभागहोमे विनियोगः । अग्नये स्वाहा । अग्नय इदं न मम । पुनश्चतुर्गृहीतमाज्यं स्रुच्यादाय, सोमाय स्वाहा । इति दक्षिणार्द्ध-पूर्वार्द्धे जुहोति । सोमायेदं न मम ।

अर्थ—जिनके तीन प्रवर हैं उनको चाहिये कि चार स्रुवा घृत आज्यस्थाली से स्रुची में भर लेवे । "अनयोः प्रजापतिर्ऋषिरग्निः सोमश्च क्रमेण देवताऽऽज्यभागहोमे विनियोगः" इत्यादि का स्मरण करे । अग्नि के उत्तरार्द्ध और पूर्वार्द्ध के मध्य में "ओम् अग्नये स्वाहा । अग्नय इदन्न मम" इस मन्त्र से आहुति प्रदान करे । पुनः चार स्रुवा घृत स्रुची में लेकर अग्नि के पूर्वार्द्ध और दक्षिणार्द्ध अर्थात् अग्नि कोण के मध्य में "ओम् सोमाय स्वाहा । सोमायेदं न मम" इस मन्त्र से आहुति प्रदान करे ।

पञ्चार्षेयाणां भृगूणां पञ्चवारमाज्यं स्रुचि गृहीत्वोक्तहोमद्वयं कार्यम् । अथ चरुहोमः ॥ स्रुच्युपस्तीर्य्य, त्र्यार्षेयाणाञ्चेद्धविषोमध्यादङ्गुष्ठपर्वमात्रं तिरश्चीनं प्रथमं मेक्षणेनावदाय पूर्वार्द्धाच्च द्वितीयमवद्यति । पञ्चार्षेयाणां भृगूणां चेत्पश्चार्द्धाच्च तृतीयमवद्यति । अथावदानान्येकीकृत्य सकृत्स्रुवेणाभिघार्य्य हविष्यव-

---

गृह्य सूत्र इत्यादि अनेकों ग्रन्थों में इसका उल्लेख पाया जाता है अतः "यन्नाम्नातं स्व शाखायां परोक्तमविरोधि च । विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादि कर्मवत्" इस वचन के अनुसार ग्राह्य है ॥

दानप्रदेशान् सकृत्प्रत्यभ्यज्य स्रुङ्मुखेनाज्यमग्नौ प्रचाव्य, अग्नये स्वाहा । इति मध्ये जुहोति । अग्नय इदं न मम । एवं सकृत्त्रिवारं वा जुहुयात् । पुनः स्रुचि सकृदुपस्तीर्य्य पूर्वाहुत्यपेक्षया किञ्चीदधिकमुत्तरार्द्धपूर्वार्द्धात्सकृदेव चरुमवदाय द्विरभिघारयति त्र्यार्षेयाणामेवं । पञ्चार्षेयाणां तु द्विरुपस्तीर्य्य सकृदवदाय द्विरभिघारयति, नात्र प्रत्यभ्यञ्जनम् । एवं गृहीत्वा अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इत्युत्तरार्द्धपूर्वार्द्धे जुहोति । अग्नये स्विष्ठकृत इदं न मम ॥

अर्थ—यदि यजमान पाच प्रवरवाला भृगु गोत्र का हो तो उसे चार स्रुवा के स्थान में पाच स्रुवा घृत स्रुची में ले कर आहुति प्रदान करना चाहिए। चरु होम के लिये प्रथम आज्यस्थाली से एक स्रुवा घृत स्रुची में छोड़े। मेक्षण से चरुस्थाली के मध्य और पूर्व भाग से अंगुष्ट पर्व के बराबर चरु लेकर स्रुची में रखे। उसपर एक स्रुवा घृत छोड़ देवे। आज्यस्थाली से एक स्रुवा घृत लेकर चरुस्थाली में उन स्थानों पर छोड़े कि जहाँ जहाँ से चरु लिया हो। यदि भृगु गोत्र पाँच प्रवरवाला यजमान हो तो उसे चरुस्थाली के मध्य, पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध एवं तीन अस्थान से चरु लेना चाहिए। पूर्वोक्त रूप से स्रुची में उपस्तीरणाभिघारित चरु लेकर "ओम् अग्नये स्वाहा। अग्नय इदं न मम" मन्त्र से अग्नि के बीच में आहुति प्रदान करे। इसी रीति से चरु ले ले कर दो आहुति और प्रदान करे। यह यजमान की इच्छा पर निर्भर कि चरु से तीन आहुतियों को प्रदान करे अथवा केवल एक ही आहुति प्रदान करे। पहले के समान स्रुची में एक स्रुवा घृत छोड़े। पहले से कुछ

अधिक मेक्षण से चरुस्थाली के उत्तर और पूर्व भाग से चरु लेकर स्रुची में छोड़ देवे। फिर ऊपर से एक स्रुवा घृत छोड़े। यदि पञ्च प्रवर भृगु गोत्र का यजमान हो तो उसे चरु लेने के पहले दो स्रुवा और उसके पश्चात् भी दो स्रुवा स्रुची में घृत छोड़ना चाहिये। इस वार चरुस्थाली में घृत नहीं छोड़ना होगा। इस प्रकार स्रुची में हवि लेकर प्रथम दी हुई आहुति से ईशान भागमें—"ओम् अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। अग्नये स्विष्टकृत इदन्न मम" इस मन्त्र से आहुति प्रदान करे। .

अथ व्याहृतिहोमः ॥ व्याहृतीनां विश्वामित्र-जमदग्निभरद्वाजाऋषयो, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि, अग्निवायुसूर्य्यादेवता, आज्यहोमे विनियोगः । भूः स्वाहा । अग्नय इदं न मम ॥ भुवः स्वाहा । वायव इदं न मम ॥ स्वः स्वाहा । सूर्य्यायेदं न मम ॥ इत्याज्येनाहुतित्रयं स्रुवेण कुर्यात् ।

अर्थ—चरु होम के पश्चात् स्रुक् को रख देवे। हाथ जोड़कर—"महाव्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजाः ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि, अग्निवायुसूर्य्यादेवता, आज्यहोमे विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर आज्यस्थाली से स्रुवा द्वारा घृत ले लेकर "ओम् भूः स्वाहा। अग्नय इदं न मम। ओम् भुवः स्वाहा वायव इदं न मम। ओम् स्वः स्वाहा। सूर्य्याय इदं न मम" इन मन्त्रों से तीन आहुतियों को प्रदान करे।

नवयज्ञे वक्ष्यमाणानां शतायुधाय शतवीर्य्याये-त्यादीनामावापहोमानां स्विष्टकृतः प्रागनुष्ठानम् ।

स्विष्टकृदभावे प्रधानाहुत्यनन्तरं। प्रधानदेवतानां बहुत्वेऽपि परिसमूहनेध्माधानपर्य्युक्षणाज्यभागानां सकृदेवानुष्ठानम्। प्रधानहविषां बहुत्वे सर्वेभ्यो हविर्भ्यः सकृत्सकृत्स्विष्टकृतेऽवदायावदानान्येकीकृत्य सकृदेवजुहुयात्। मेक्षणमग्नौ प्रहरेत्प्रक्षाल्य वा स्थापयेत्।

अर्थ—नवयज्ञ अर्थात् नये अन्न के निमित्त स्थाली पाक करने में स्विष्टकृत् आहुति से पहले ही "शतायुधाय०" इन मन्त्रों से घृत की आहुतियाँ दी जाती हैं। जिन होम कर्म्मों में स्विष्टकृत् आहुति नहीं दी जाती है वहाँपर प्रधान होम के पश्चात् व्याहृतियों से आहुतियाँ दी जाती हैं। यदि प्रधान आहुतियों को अनेक देवताओं के नाम से देना हो तो भी अग्निपरिसमूहन, इध्मा का अग्नि में छोड़ना, अग्नि का पर्युक्षण और आज्य भाग आहुतियाँ एक ही बार होगी, बार बार नहीं की जावेंगी। यदि अनेक देवताओं के लिये पृथक् २ हवि बनाई गई हों तो उनमें से थोरे थोरे लेकर एक ही बार स्विष्टकृत आहुति प्रदान करना होगा। होम हो जाने के पश्चात् मेक्षण को अग्नि में छोड़ देवे। अथवा धोकर दूसरी बार होम करने के लिए रख लेवे।

दर्शे पौर्णमासे चानाहिताग्नेराहिताग्नेश्चाग्निर्देवता। आहिताग्नेःपौर्णमासेऽग्निरग्नीषोमौ वा। दर्शेऽसोमयाजिन इन्द्राग्नी। सोमयाजिनस्त्विन्द्रो महेन्द्रो वा।

अर्थ—दर्श और पौर्ण मास दोनों पर्वों में आहिताग्नि हो अथवा अनाहिताग्नि हो सब के लिये अग्नि प्रधान देवता है। आहिताग्नि के लिये पौर्णमास पर्व में "अग्नये स्वाहा" और अग्निषोमाभ्यां स्वाहा" एवं जो यजमान सोम यज्ञ न किया हो उसे दर्श में "इन्द्रा-

ग्निभ्यां स्वाहा" इन मन्त्रों से चरु की आहुतियां प्रदान करे । यदि सोम यज्ञ कर चुका हो तो पाद दर्श में "इन्द्राय स्वाहा" और महेन्द्राय स्वाहा, मन्त्रोंसे चरु की आहुतियां प्रदान करे ।

अथ तूष्णीमग्नौ समिधमाधायानु पर्य्युक्ष्य त्रिरुद-काञ्जलिसेचनं कुर्य्यात् ॥ तत आस्तृतबर्हिर्मुष्टिमादा-याज्ये वा हविषि वाऽग्राणि मध्यानि मूलान्यवदध्यात् अक्तुमिति मन्त्रेण । अस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्विश्वेदेवा देवता बर्हिरभ्यञ्जने विनियोगः । अक्तुꣳ रिहाणा व्यन्तु वयः । एवं त्रिः । अथाक्तं बर्हिरद्भिरभ्युक्ष्य यः पशूनामितिमन्त्रेणाग्नौ क्षिपेत् । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टप्छन्दो रुद्रो देवता बर्हिर्होमे विनि-योगः । यः पशूनामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो वृषा पशू-नस्माकं माहिꣳसीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा ॥ पशूनाम-धिपतये रुद्राय तन्तिचरायेदं न मम । अप उपस्पृशेत् । बर्हिरानाद्येतदन्तं कर्म यज्ञवास्त्वित्याचक्षते ॥

अग्नि में दो समिध को विना मन्त्र छोड देवे । "अदिते अन्व-मंस्था" मन्त्र से नैर्ऋत्य से आग्नेय तक जल की धारा देवे । "अनु-मते अन्वमंस्था" इस मन्त्र से नैर्ऋत्य से वायव्य तक और "सरस्वते अन्वमंस्था" से वायव्य से ईशान तक जल की धारा देवे । "देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । केतपूः केतन्नः वाचस्पति-र्वाचन्नः स्वदतुः" मन्त्र से ईशान से आग्नेय तक जल धारा देते हुए अग्नि के चारो तरफ एक वार अथवा तीन वार जल की धारा देवे । बिछाए हुए कुशोंको एकत्रित कर लेवे । उन कुशों के अग्र मध्य

और मूल भाग को "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिऋ षिर्युजः छन्दः विश्वे देवादेवता बर्हिरभ्यञ्जने विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर अक्तु ꣳ रिहाणा व्यन्तु वयः" इस मन्त्र से घृत अथवा चरु में डुवो देवे। जल से प्रोक्षण कर देवे। "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिऋ षिरनुष्टुप् छन्दो रुद्रो देवता बर्हिर्होमे विनियोगः। "ओम् य. पशूनामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो वृषा। पशूनस्माकं माहि ꣳ सीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा" पशूनामधिपतये रुद्राय तन्तिचरायेदं न मम।" मन्त्रसे अग्नि में होम कर देवे। जल स्पर्श कर लेवे। परिस्तरण कुशों को एकत्रित करने से लेकर आहुति प्रयन्त कर्म का नाम यज्ञ वास्तु कर्म है।

अथ गृह्यासङ्ग्रहोक्तामाज्यधारामविच्छिन्नां स्रुचा जुहुयात्। प्रजापतिर्यजुर्वसवो देवता होमे विनियोगः। वसुभ्यः स्वाहा। वसुभ्य इदं न मम॥ ततो हविरुच्छि-ष्टमुदगुद्वास्य मेक्षणेनोद्घृत्य पात्रान्तरे निधाय ब्रह्मणे दद्यात्। ब्रह्मा तदादाय तूष्णीं प्राश्य द्विराचामेत्॥

अर्थ--गृह्य संग्रह में लिखा है कि स्रुची में घृत भर कर "प्रजा-पतिऋ षिर्यजुर्वसवो देवता होमे विनियोगः" ऋषि आदि का स्मरण कर "वसुभ्यः स्वाहा। वसुभ्यः इदं न मम" इस मन्त्र से अवीछन्न घृत धारा अग्नि में प्रदान करे। होम से बचे हुए चरु को स्थाली से मेक्षण द्वारा निकाल कर कसोरे आदि पात्र में रखकर भोजनार्थ ब्रह्म को दे देवे। ब्रह्मा चरु को चुपचाप खाकर दो आचमन करे।

यजमानो ब्रह्मन्पुर्णपात्रं ते ददामीति दक्षिणां दद्यात्। पूर्णपात्रस्य लक्षणं गोभिलोक्तं यथा। "भोजनपर्य्याप्तेनौदनेन

तण्डुलेन भोज्यफलैर्वा कांस्यपात्रं चमसं वा पूरयित्वा दद्यादेतत्पूर्णपात्रमित्या चक्षते" ॥ गृह्यासंग्रहे तु । "अष्टमुष्टिर्भवेत्किञ्चित्पुष्कलं तच्चतुर्गुणम् । पुष्कलानि च चत्वारि पूर्णपात्रं विधीयते" ॥ एवं दातुमशक्तौ कर्मप्रदीपः ॥ "यावता बहुभोक्तुश्च तृप्तिः पूर्णेन जायते । नावराध्यं ततः कुर्यात्पूर्णपात्रमितिस्थितिः" ॥

अर्थ—ब्रह्मा जितने में भोजन करके तृप्त हो सके उतने भात, या चावल या फल "ब्रह्मन् पूर्णं मार्गं ते ददामि" वाक्य से दक्षिणा प्रदान कर देवे । इस दक्षिणा के विषय को गोभिलाचार्य्यने यों लिखा है कि दर्श पूर्णमासास्थालीपाकादि यज्ञों में एक व्यक्ति के पर्याप्त भोजन योग्य अथवा थाली या प्रणीता भर भात या चावल अथवा खाने योग्य स्वादिष्ट. फल ब्रह्मा को दक्षिणा देनी चाहिए । इस दक्षिणा को पूर्ण पात्र कहते हैं । गृह्य संग्रह में लिखा है कि आठ मुष्टि की किञ्चित सज्ञा होती है, किञ्चित के चौगुने को पुष्कल कहते हैं और चार पुष्कल की ब्रह्मा की पूर्ण पात्र दक्षिणा होनी है* । कर्मप्रदीप में लिखा है कि—अधिक से अधिक भोजन करनेवाले मनुष्य जितने में तृप्त हो सके उतना भात या फलादि पूर्ण पात्र दक्षिणा में देनी चाहिए । भोजन से कम नहीं देनी चाहिए।

ततोऽग्निमपरिक्रम्य, नमस्कृत्य, चमसं निनीय, पूरयित्वा, वामदेव्यसामगानमीश्वरार्पणञ्च कुर्यात् ।

अर्थ—अग्नि की परिक्रमा और नमस्कार करे । प्रणीता के जल

---

* दक्षिणा के विषय में गोभिलाचार्य्य और कर्मप्रदीप के ही वचन आदरणीय हैं । "दातुमशक्तौ" वाक्य युक्त का समर्थक कोई वचन नहीं है ।

को गिरा कर दूसरा जल भर देवे। वामदेव्य साम का गान करे। कर्म को ईश्वरार्पण कर देवे।

अस्य वामदेव्यस्य वामदेवऋषिर्गायत्रीछन्दइन्द्रोदेवता शान्तिकर्मणि जपे विनियोगः॥ का ऽ ५ या। नश्चा२इत्रा३ आभु- वात्। ऊ। तीसदावृधः स। खा। औ३होहाइ। कया२३ शचाइ। ष्ठयौहो३। हुम्मा२। वा२र्त्तो३ऽ५ हाइ॥ १॥ का ऽ ५ स्त्वा। सत्यो३मा२दानाम। मा। हिष्ठोमात्सादन्ध। सा। औ३होहाइ। दृढा२३चिदा। रुजौहो३। हुम्मा२। वा ऽ २ सो३ ऽ ५ हायि॥ २॥ आ ऽ ५ भी। षुणा२ःसा३खी- नाम्। आ। विताजरायितॄ। णाम्। औ२३होहायि। शता२३म्भवा। सियौ हो३। हुम्मा२। ता ऽ २ यो३ ऽ ५ हायि॥ ३॥ इति दर्शपौर्णमासस्थालीपाक प्रयोगः॥

अर्थ—यही दर्श पौर्णमास आदि सब हवन कार्य्यों में गान करने के लिए वामदेव्य सामगान और गृहाश्रमी की करणीय यज्ञ पद्धति है।

अथोक्तस्थालीपाकप्रयोगे तत्र तत्र विशेषः कथ्यते॥ अत्र केचित् इमᳪस्तोममित्यृचा परिसमूहनं भूमिजपं वैरूपाक्षजपं प्रपदजपं च कुर्वन्ति, तत्तु न गोभिलमतम्।

तथाहि–चतुर्थप्रपाठके पञ्चमखण्डिकायां "काम्येष्वत ऊर्द्धं" इतिसूत्रेऽतऊर्द्धं काम्येषु विधय उच्यन्ते इत्युपक्रम्य भूमिजपस्त्र्यृचा परिसमूहनं वैरूपाक्षप्रपदमन्त्रजपश्चोक्तः । वेदे मन्त्रपाठक्रमे ऽपि काम्यप्रकरण एव तेषां मन्त्राणां पाठः । अतः सूत्रकारस्य नित्येषु पाकयज्ञेषु, गर्भाधानादिषु च, तेषामनुष्ठानमनभिमतमेव । मन्त्रपाठानुगुण्येन सूत्रप्रणयनात् । मन्त्रे पर्य्युक्षणमन्त्रस्यादौ पाठात्तस्य मन्त्रस्य सायम्प्रातर्होमप्रयोगे ऽग्निपर्य्युक्षणे विनियोगमुक्त्वा स्थालीपाकप्रकरणे पर्य्युक्षणमुक्तं, नतु भूमिजपादिकम् ।

अर्थ—अब उन विषयों पर विचार करते हैं। जो उक्त शर्द-पौर्णमास स्थालीपाक प्रयोग में स्थल स्थल पर विशेष क्रियायें लिखी हैं। यहाँ पर कुछ लोगों का यह कहना है कि शर्द-पौर्णमास स्थालीपाक प्रयोग में "इम ँ स्तोमम्०" मन्त्र से अग्नि परिसमूहन, "इदं भूमेः०, तपश्चय०, और विरूपाक्षोसि०" इन मन्त्रों का जप भी गोभिलाचार्य्य के मत के प्रतिकूल है। कारण कि गोभिलगृह्य सूत्र के चतुर्थ प्रपाठक के पंचम खण्ड में सूत्र है कि "काम्येष्वतऊर्द्ध्वम्" अर्थात् अग्निपरि समूहन और "इदंभूमेः" इत्यादि मन्त्रों का जप दर्श-पौर्णमास नित्य कर्म से भिन्न काम्य क्रियाओं में करना चाहिए। वेद में इन मन्त्रों का पाठ्य क्रम काम्य कर्म में ही पाया जाता है। अतः वेद मन्त्र और गोभिलगृह्यसूत्र के पाठ्य कर्म से यही स्पष्ट होता है कि दर्श-पौर्णमासस्थालीपाक यज्ञों में और गर्भाधानादि संस्कारों में अग्नि परिसमूहन और भूमि जपादि क्रियायें गोभिलाचार्य्य के मत के प्रतिकूल हैं। उपरोक्त विचारों से मन्त्रों में अग्नि पर्य्युक्षण मन्त्रों का पाठ पहले सायम्प्रातः नित्य होम में कहने के कारण स्थालीपाक

में भी उन मंत्रों से अग्नि पर्य्युक्षण करना युक्त है परन्तु अग्नि परिसमूहन और भूमि जप आदि कर्त्तव्य नहीं है।

नच 'काम्येष्वत ऊर्द्ध्वं इत्युक्त्वा, 'पूर्वेषु चैक' इत्युत्तरसूत्रेण पूर्वेषु नित्यनैमित्तिककर्मसु वक्ष्यमाणभूमिजपादयोभवन्तीत्यर्थकेन स्थालीपाकेऽपि भूमिजपादिकमनुष्ठेयमिति वाच्यम् । एक इतिपदेन शाखान्तरमतप्रतिपादनात्स्वमते काम्यभिन्नेषु कर्म्मस्वननुष्ठेयत्वस्य मुख्यत्वप्रतीतेस्तस्मादस्माभिः काम्यप्रयोगकथनसमये भूमिजपादिप्रयोगो वक्ष्यते ॥

अर्थ—परन्तु जैसा की उपरोक्त याज्ञिक का विचार है वैसा सिद्धान्त नहीं है। गोभिलगृह्यसूत्र में केवल इतना ही नहीं लिखा है कि अग्नि परिसमूहनादि कार्य्य काम्य कर्म में ही होंगे। यह भी लिखा है कि "पूर्वेषु चैके" अर्थात् भूमि जप आदि कर्म पूर्वोक्त नित्य नैमित्तिक कर्मों में भी होना चाहिए। यह प्रधान ऋषियों का मत है। इस सूत्रानुसार दर्शपौर्णमास स्थालीपाकादि यज्ञों में और गर्भाधानादि संस्कारों में भी "इमॅं स्तोमम्०" मन्त्र से अग्नि परिसमूहन, "इदं भूमेः तपश्च० विरुपाक्षोऽसि० इत्यादि मन्त्रों का जप करना चाहिए। इस विषय की सत्यता यों समझना चाहिए कि अन्य शाखाओं में उपरोक्त कर्म काम्य कर्मों में लिखा है। कौथुमी शाखा में दर्श पौर्णमास स्थालीपाकादि नित्य, नैमित्य तथा गर्भाधानादि सब कर्मों में कर्त्तव्य है। गोभिलाचार्य्य ने दर्शपौर्णमास स्थालीपाक के प्रसंग पर लिख देने से केवल दर्शपौर्णमासादि नित्य कर्मों ही में कर्त्तव्याभास हो जाने की संभावना को दूर कर नित्य, नैमित्य और काम्य प्रत्येक कर्मों में कर्त्तव्य स्पष्ट कर देने के लिए इस विषय को काम्य कर्मों के प्रकरण में लिखा है।

अथ द्वितीयविचारः । "ब्रह्मासनस्थाने उदकधारा ब्रह्मकर्म" इति केचित् तत्पक्षेगृह्यासङ्ग्रहे । "उदग्धारामविच्छिन्नामाग्न्यमारभ्य दक्षिणाम् । दद्याद्ब्रह्मासनस्थाने सर्वकर्मसु नित्यशः" इत्यस्मिन्वचने ब्रह्माऽऽसनस्थाने स्वासनस्थाने उदकधारां दद्यादित्यर्थः ॥ यजमानकर्तृकत्वपक्षे, यजमानो ब्रह्मासनस्थाने उदकधारां दद्यादिति योजनीयम् ॥

अर्थ—अब दूसरा विचार ब्रह्मासन पर जलधारा देने के विषय में लिखा जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि ब्रह्मासन पर जल की धारा ब्रह्मा को ही देनी चाहिए। अपने पक्ष में गृह्यासंग्रह के पद्य का उदाहरण उधृत करते हैं कि सब कर्मों में अग्नि कुण्ड से दक्षिण ब्रह्मासन तक अविछिन्न जलधारा प्रदान करे। इस पद्य में 'ब्रह्मासन" पद के स्थान पर "स्वासन" ऐसा जानना चाहिए। यदि यजमान ही केवल सब कार्य करे तो वेही ब्रह्मासन पर जल धारा देवे, ऐसा समझना चाहिए। (उपरोक्त विषय पर ग्रन्थकार ने कुछ प्रतिवाद नहीं किया है अतः उन्हे अवमान्य नहीं है)

अथ तृतीयविचारः ॥ नन्वाज्यसंस्कारे पवित्रकरणं सूत्रकृदुक्तं तच्चात्र स्थाल्यां तण्डुलावापात्पूर्वं कथमभिहितमिति चेन्न, "पवित्रान्तर्हितान्तण्डुलानावपेत्" इति पवित्रविधानप्रतीतेः, अत्र पवित्रकरणप्रयोगानुक्तावपि वक्ष्यमाणप्रयोगस्यात्रापकर्षात् । नचात्र भिन्नपवित्रं विधीयते इति वाच्यम्, पवित्रद्वयविधाने गौर-

वादुभयार्थं पूर्वकृतस्याज्यसंस्कारार्थं स्थापनसम्भवात्, तस्माद्गुणभूतपाठक्रमममनादृत्यतण्डुलावपात्पूर्वं पवित्रकरणं युक्तम् । चरुरहितेषु केवलाज्यहोमेष्वाज्यसंस्कारार्थमिध्माधानात्परमेव पवित्रकरणमिति विवेकः ॥

अर्थ—दर्शपौर्णमास स्थालीपाक कर्म में पवित्र किस समय पर बनाना चाहिए उस विषय का विचार लिखा जाता है । यदि कोई यह कहे कि गोभिलाचार्य्य ने आज्य संस्कार के प्रकरण में पवित्र बनाने की विधि लिखी है । उसे चरुस्थाली में चावल छोड़ने के पहले कैसे विधान कर सकते हैं ? परन्तु वह विषय इस प्रकार नहीं हैं । "पवित्र रखे हुए स्थाली में चावल छोड़े" इस बचन से यहां पर पवित्र की आवश्यकता प्रतीत होती है । अतः यहां पर पवित्र बनाने की विधि नहीं है तथापि आज्यसंस्कार प्रकरण में विहित पवित्र को यही पर विधान कर लेना चाहिए । ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यहाँ दूसरा पवित्र है । दो पवित्र बनाने में क्रिया बढ़ जाएगी । चावल और आज्य दोनों सस्कारों के लिए पहले का बनाया हुआ एकही पवित्र रक्खा जा सकता है । अतः प्रयोजन के अनुसार सूत्र के पाठ क्रम से प्रतिकूल भी चरुस्थाली में चावल छोड़ने से पहले ही पवित्र का बनाना अनुचित नहीं किन्तु युक्ति युक्त है । सूत्रकार ने चरु रहित आज्य होम मात्र के लिए केवल आज्य संस्कारार्थ इध्माधान के पश्चात् पवित्र बनाने की विधि लिखी है ।

अथ चतुर्थविचारः ॥ आज्यप्रतिनिधित्वेन यवागूपरिग्रहे, यवाग्वानाधिश्रयणम्, "न तस्य करणम्भवेत्" इति गृह्यासङ्ग्रहोक्तेः । "अनधिश्रयणं दध्नः शेषाणां श्रपणं

स्मृतं" इत्यत्र दधिपदं यवाग्वा उपलक्षकम् । 'यवाग्वास्तु विकल्प' इति भट्टभाष्ये ॥

अर्थ —चौथा विचार- आज्य के प्रतिनिधि रूप में यवागू को ग्रहण करते हैं, परन्तु यवागू का अभिश्रयण नहीं किया जाता है। गृह्यासंग्रह के वचनानुसार केवल दही को पकाने की विधि नहीं है शेष सब को पकाना चाहिए, परन्तु दही के साथ यवागू समझा गया है। भट्ट भाष्य में यवागू का पकाना विकल्प है अर्थात् पकाया भी जा सकता है और नहीं भी पकाया जा सकता है।

अथ पञ्चमविचारः ॥ अग्निपर्युक्षणानन्तरमुपघातविधिमाह सूत्रकारः । सूत्रम् । "पर्युक्ष्य स्थालीपाक आज्यमानीय मेक्षणेनोपघातं होतुमेवोपक्रमते" ॥ अस्यार्थः ॥ अग्निं पर्युक्ष्य, स्थालीपाके आज्यमानीयासिच्य, मेक्षणेन चरुमुपहत्यावदाय, होतुमेवोपक्रमते आरभते होममेव कुर्यादित्यर्थः । एतत्सूत्रेणाज्यभागयोरुपस्तरणाभिघारणप्रत्यभ्यञ्जनानां स्विष्टकृतश्च प्रतिषेधः ॥ "उक्तं गृह्यासङ्ग्रहे" ॥ 'पाणिना मेक्षणेनापि स्रुवेणैव च यद्धविः । हूयते चानुपस्तीर्ण उपघातस्स उच्यते ॥ उपघातञ्च जुहुयात्तत्रैवाज्यं समापयेत् । मेक्षणेन तु होतव्यन्नाज्यभागौ न स्विष्टकृत्' । स्पष्टञ्चेतन्नारायणीये भाष्ये ॥ उपस्तीर्णाभिघारितस्य लक्षणमाह गोभिलः । सूत्रम् । "यत्तुवोपस्तीर्णाभिघारितं जुहुयात्" ॥ अस्यार्थः । उपस्तीर्णाभिघारितं,

स्रुच्याज्यमुपस्तीर्य्य यथोक्तं हविरादाय पुनराज्येनाभिघार्य्य यद्धूयते तदुपस्तीर्णाभिघारितसंज्ञकं, तथा वा जुहुयात् । उपघातोपस्तीर्णाभिघारितहोमयोर्विकल्प ऐच्छिक उत व्यवस्थित इत्यत्रैच्छिक इति केचित् । कर्म्मभेदाद्व्यवस्थित इत्यन्ये ॥

अर्थ—पचवाँ विचार—गोभिलाचार्य ने अग्नि पर्य्युक्षण के पश्चात् उपघात विधि से होम करने को लिखा है। "पर्य्युक्ष्य स्थालीपाकं आज्यमानीय मेक्षणेनोपघातं होतुमेवोपक्रमते" गोभिल का सूत्र है। इस सूत्र का अर्थ यह है कि—अग्नि का पर्य्युक्षण कर चरु स्थालीपाक में आज्य छोडकर चरु को अवसीचन करे। मेक्षण द्वारा चरु लेकर आहुति देना आरम्भ करे। परन्तु ऐसा करने से आज्य भाग आहुतियों का, उपस्तरण, अभिधारण, प्रत्यभ्यञ्जन कार्यों का और स्विष्टकृत आहुति का निषेध हो जाता है। गृह्यासंग्रह में लिखा है कि जिस हवि को बिना उपस्तरण हाथ मे अथवा स्रुवा या मेक्षण द्वारा होम किया जाता है उसे उपघात होम कहते हैं। जिन स्थलों पर उपघात होम करना हो वहाँ घृत को समाप्त कर दे। आज्य भाग और स्विष्टकृत आहुतियोंको मेक्षण से न प्रदान करे। "यद्युवोपस्तीर्णाभिघारितं जुहुयात्" गोभिल का सूत्र है। गोभिलाचार्य्यने इसके द्वारा उपस्तीर्णाभिघारित का लक्षण बताया है। नारायणभाष्य में अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है कि प्रथम स्रुची में घृत लेवे। पश्चात् जितनी हवि लेनी हो उसे लेकर पुन उसके ऊपर से घृत छोड़े। इस प्रकार घृत, हवि एवं पुनः घृत, लेकर जो आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं उन्हें उस्तीर्णाभिघारित संज्ञक आहुति कहते हैं। उपरोक्त उभय विधि में से जहाँ पर जैसा हो सकता हो उसका व्यवहार करे। उपघात और

उपस्तीर्णाभिघारित विधियाँ विकल्प होने से कर्त्ता की इच्छा पर अवलम्बित हैं। वह जिस विधि को चाहे उसका अवलम्बन करे। कुछ लोगों का विश्वास है कि आहुति भेद के कारण दोनों विधियाँ व्यवस्थित हैं। जहाँ जिस विधि की आवश्यकता हो वहाँ वैसाही करे।

अथ षष्ठोविचारः॥ "केचित्तु 'स्विष्टकृतः प्राक् व्यस्त-समस्तव्याहृतिभिराज्येन चतस्रो होतव्या' इति वदन्ति" तदसङ्गतम्, तासामप्रधानत्वात्, आवापत्वाभावाच्च। प्रायश्चित्तार्थत्वे, "आगन्तुकानामन्ते संनिवेश" इति न्यायेन कर्मसमाप्तिविहितसमिदाधानात्परं प्रायश्चित्ताहुतीनां कर्त्तव्यत्वावगमाच्च कर्मान्तेऽपि तासां विकल्प एवेत्यन्ये॥

अर्थ—छठवाँ विचार—कुछ लोगों का कहना है कि स्विष्टकृत आहुति के पहले ही भूरादि व्याहृतियों से पृथक् पथक् और तीनों को एक साथ भी पढ़ते हुए एवं घृत की चार आहुतियाँ प्रदान करना चाहिए। परन्तु यह कथन प्रसंग विरुद्ध है। हरेक यज्ञ में कुछ आहुतियाँ प्रधान होती हैं। उनको "आवाप" कहते हैं। व्याहृतियों से प्रधान होम नहीं किया जाता किन्तु प्रायश्चित्तार्थ किया जाता है। न्यायतः सहायक आहुतियों को कर्म समाप्त सूचक समिध प्रदान के पश्चात् करना चाहिए। कारण कि व्याहृतियों से प्रदान होने वाली आहुतियाँ कर्म के यथा विधि में न्यूनाधिक वैगुण्य के प्रायश्चित्त के उपलक्षण में दी जाती हैं। कुछ लोग स्विष्टकृत के अन्त में अथवा कर्म समाप्ति के अन्त में विकल्प से स्वीकार करते हैं।

अथ सप्तमविचारः॥ यज्ञवास्तुकर्मणि, आस्तृतबर्हिर्मुष्टि-

मादाय यज्ञावास्तु कुर्वन्ति। परे तु, स्तरणकाले यज्ञवास्त्वर्थं कुशान् शेषयित्वा, पश्चाद्यज्ञवास्तुकाले आस्तृतशेषाद्बर्हिषः कुशमुष्टिं गृहीत्वा, यज्ञवास्तु कुर्वन्ति। अत्राद्यपक्षो ज्यायान्। तदुक्तंगोभिलाचार्य्यैः॥ "तत एव बर्हिषः कुशमुष्टिमादायाज्ये वा हविषि वा त्रिरवदध्यादि"त्यादि अस्यार्थः॥ तत एवास्तृतादेव बर्हिष इति, एवकारात् आस्तरणकालशेषकुशादिकं व्यावर्त्यते। आस्तृतदर्भाणां प्रतिपत्तेर्विवक्षितत्वादस्य प्रतिपत्तिकर्मरूपत्वाच्च। "श्रौते" दर्शपूर्णमास प्रकरणे प्रस्तरसमभ्यञ्जन प्रस्तरप्रहारवत्। ननु, "स्तृतेभ्यो न प्रचिनुयाद्यातयामं स्तृतं स्मृतम्। स्तृतशेषात्ततो गृह्ययज्ञवास्तुक्रिया तथेति" गृह्यासंग्रहवचनात्तत एवं बर्हिष इत्यस्यास्तृतशेषादिति व्याख्यातुमुचितत्वेन न प्रतिपत्तिरूपमिदं कर्म्मेति चेन्न, सूत्रे "तत एवेति" नियमवैयर्थ्यापत्तेः। प्रतिपत्तिप्राप्यवचनविरोधादुदाहृतगृह्यासंग्रहवचनस्यान्यथा-नयनस्यापि सुवचत्वात् कथ? मन्यथानयनमिति चेदित्थम्, स्तृतेभ्यो न प्रचिनुयात्तेषां यातयामत्वात्, अन्यत्र वर्ज्जितत्वावगतेश्च, निषेधोऽयं सार्वत्रिकः। प्रकृते तु, प्रतिपत्तिरूपत्वात्स्तृतदर्भाणां शेषमेकदेशं गृहीत्वा, नतु स्तरणशेषम्॥

अर्थ—सतवाँ विचार—यज्ञ वास्तु कर्म में दो पक्ष है। १—अग्नि के आस्तरण कुशाओं को लेकर यज्ञावस्तु कर्म सम्पन्न करे।

२—अग्नि परिस्तरण के समय कुछ कुशा आस्तरण से बचा लेवे । उसी को लेकर यज्ञवास्तु कर्म सम्पन्न करे । इन दोनों में से पहला पक्ष श्रेष्ठ है । गोभिलाचार्य ने लिखा है कि उन आस्तरण कुशाओं में से एक मुट्ठी लेकर यज्ञवास्तु कर्म करे । गोभिल गृह्यसूत्र में "एव" शब्द से आस्तरण कुशा को ही लेने का भाव व्यक्त होता है । आस्तरण समय में कुछ कुशाओं को बचाकर रख ले और उसी से यज्ञवास्तु क्रिया करे इस भाव की निवृत्ति हो जाती है । श्रौत सूत्र के दर्श पूर्णमास प्रकरण में प्रस्तर के मूल में अभ्यञ्जन और अग्नि में प्रहार के समान यहाँ पर भी आस्तृत कुशाओं की प्राप्ति की इच्छा से इस यज्ञ वास्तु स्वरूप क्रिया की भी प्राप्ति होती है । यदि यह कहें कि गृह्यासंग्रह का वचन है कि आस्तृत कुशाओं में से न लेवे, इन्हें अरक्षित कहा गया है, आस्तृत से शेष कुशाओं को लेकर यज्ञ वस्तु क्रिया को सम्पन्न करे तो इस वचन के अनुसार गोभिल सूत्र में लिखा हुआ "एव" शब्दका अर्थ हम इस प्रकार करना उचित समझते हैं कि उन आस्तृत कुशाओं से शेष (बचाए हुए) कुशाओं से यज्ञवस्तु कर्म को करे । इस प्रकार अर्थ करने से आस्तृत कुशाओं को लेकर यज्ञवास्तु कर्म करे इसकी प्राप्ति नहीं होती। परन्तु ऐसा नहीं हो सकता । यदि ऐसा किया जाय तो गोभिल-गृह्यसूत्र का "तत एव" शब्द ही व्यर्थ हो जायेगा । गृह्यसूत्र और गृह्यासंग्रह के समन्वय के लिए गृह्यासंग्रह के वचन का यों अर्थ करना अच्छा होगा कि यात मान (अरक्षित) होने के कारण उन आस्तृत सम्पूर्ण कुशाओं को न बटोरे इससे आस्तृत कुशाओं से अन्यत्र का और आस्तृत में सम्पूर्ण का निषेध हो गया। आस्तृत समय में शेष न रखकर और आस्तृत किए हुए संपूर्ण को न लेकर आस्तृत कुशाओं से केवल एक मुट्ठी लेकर यज्ञवास्तु कर्म सम्पन्न करे यही सिद्धान्त हुआ ।

अथ सूत्रोक्तमृत्विक्संख्या दक्षिणादानादिकमुच्यते ॥ पार्वणस्थालीपाक-श्रवणाकर्माऽश्वयुजि--कर्म--नवयज्ञा--ग्रहायणीकर्माष्टकाचतुष्टयेषु पाकयज्ञनामकेष्वेको ब्रह्मैवर्त्विक्, यजमानो होमकर्त्ता। यजमानस्य प्रवासेऽन्योपि होमकर्त्ता। पाकयज्ञेषु पूर्णपात्रमधमदक्षिणा । अपरिमित मापरार्द्ध्यं गाव उत्तमदक्षिणा। अत्रेतिहासोऽपि प्रमाणम्। "नामतः सुदाः पिजवनपुत्रः। पैजवन ऋषर्नवयज्ञे लक्षं गादत्तवानिति"। ब्रह्मा श्रोत्रियो वशिष्ठगोत्रजो वेदत्रयप्रयोगज्ञानवान्। वशिष्ठाभावेऽन्य गोत्रजो, यजमानशाखाध्यायी वा परिग्राह्यः। सायंप्रातर्होम-वैश्वदेव-दर्शपौर्णमासस्थालीपाकादीनां मुख्यकाले उक्तद्रव्यालाभेऽननुष्ठानप्रसक्तौ, व्रीहि-शालि गोधूम-मुद्ग-सर्षपतिल यवाद्यन्यतमेन यज्ञवृक्षफलैः पत्रैर्वा, पायनालैः, प्रियंगुतण्डुलैर्वाऽनुष्ठानं कर्त्तव्यम् ॥ सायं होमस्य प्रातर्होमपर्यन्तं गौणकालः। प्रातर्होमस्य सायंहोमपर्य्यन्तं गौणकालः। गौणकाले, सर्व प्रायश्चित्तानुष्ठानपूर्वकं तात्कालिकहोमानुष्ठानम् ॥ "यत्तु नारायणीये सायंप्रातर्होमद्वयातिपत्तौ पुनराधानम्। तदुक्तम्। होमद्वयात्यये दर्शपूर्णमासात्यये। तथा पुनरेवाग्निमादध्यादिति भार्गवशासनमिति कर्मप्रदीपवचनात् तस्मादेतत्प्रायश्चित्तम्। एवमन्यान्यपि च ग्रन्थान्तरोक्तानि पुनराधाननिमित्तान्युपलब्धव्यानीति" तदसाधु। "अहुतस्य प्राय

श्चित्तं भवतीति" गोभिलसूत्रेण तादृशार्थाप्रतीतेः। प्राय-श्चित्तसामान्यस्य प्रतीतेः॥

अर्थ—अब सूत्रोक्त ऋत्विजों की संख्या और दक्षिणा दानादि विषयों को लिखते हैं। दर्शपूर्णमास पर्व के स्थालीपाक में, श्रवणा कर्म, आश्वयुजि, नवयज्ञ, आग्रहायणी, और चारों अष्टका इन पाकयज्ञ नाम से प्रसिद्ध कर्मों में केवल ब्रह्मा ही ऋत्विक् रहता है। हवन कार्य को यजमान ही करता है। यदि यजमान गृह पर न हो तो उसके प्रति निधि होकर दूसरा भी उसके हवन कार्य का सम्पादन कर सकता है। उक्त पाकयज्ञों में पूर्णपत्र छोटी दक्षिणा है। असंख्य गायें उत्तम दक्षिणा हैं। इस विषय में प्रमाण स्वरूप इतिहास है कि सुदाः पिजवन के पुत्र पैजवन ऋषि लक्ष गायें दक्षिणा में दिए थे। ब्रह्मा ऋग् यजुः और साम वेदों के यज्ञ-कर्म का ज्ञाता वेद पाठी वसिष्ठगोत्र का होना चाहिए। यदि वसिष्ठ गोत्र का श्रोत्रिय न उपस्थित हो तो यजमान की शाखा का अध्ययन करने-वाला दूसरे गोत्र का भी हो सकता है। यज्ञव्रती सायम्प्रातर होम, वैश्वदेव बलि दर्शपूर्णमास स्थालीपाक आदि यज्ञों के समय उपस्थित होने पर जिन जिन द्रव्यों से सम्पन्न करने को कहा गया है, उसे यदि न प्राप्त करसके तो, धान, साठी, गेहूँ, मूंग, सरसों, तिल अथवा पिपल आदि यज्ञीय वृक्षों के पवित्र फल फूल और पत्र अथवा पवित्र सावाँ टांगुन आदि के चावल इनमें से जो सुलभ्य हो, उसे होम कार्य अनुष्ठान को पुरा करे। परन्तु किसी प्रकार यज्ञ के उत्तम समय हाथ से न जाने देवे।

अथ गोभिलोक्तप्रायश्चित्तमुच्यते॥ कालद्वयातिपत्तावु-पवासश्च दम्पत्योः। अथवा यावत्कालपर्यन्तं होमो न

क्रियते तावद्दिनपर्यन्तमुपवासः, पश्चादतीतानां सायमाहुतीनां दिनगणनपूर्वकं पात्रे हस्ते वा यथा संभवं गृहीत्वाऽग्नये स्वाहेति सकृदेव जुहुयात्। एवं द्वितीयाहुतिं सकृदेव किञ्चिदधिकेनावशिष्टेन जुहुयात्। एवमतीतप्रातराहुतीनां प्रातः सकृदेव होमः। "तदुक्तं कर्मप्रदीपे। अहूयमानेऽनश्नन्नश्नीयात्कालं समाहितः। संपन्ने तु यथा तत्र हूयते तदिहोच्यते॥ अहुताः परिसंख्याय पात्रे कृत्वाऽऽहुतीः सकृत्। मन्त्रेण विधिवद्धुत्वाऽधिकमेवापरा अपि"॥ एवमुपवासाकरणे पुनराधानं कर्त्तव्यम्।

अर्थ—प्रात. काल-सूर्य उदय से थोड़ा पहले या सूर्य उदय होना ही चाहता हो या सूर्य उदय हो जाने से थोड़ा बाद तक नित्य होम का उत्तम समय है। पुर्वोक्त ही व्यवस्थानुसार सूर्यास्त के समय सायकाल नित्य होम करने का उत्तम समय है। उक्त समयों में ही गृह्याग्नि में सायं प्रातः आहुतियों को - प्रदान करता रहे। उक्त प्रातः काल से सायंकाल तक और सायंकाल से प्रातः काल तक नित्य होम का गौण (मध्यम) काल है। इनमें जब अवसर मिले कर ले परन्तु प्रायश्चित्तार्थ पहले महाव्याहृतियों से तीन आहुति प्रदान कर लेवे। जो नारायण भाष्य में लिखा है कि—सायं और प्रातःकाल के होम समय के व्यतीत हो जाने पर पुनराधान करना चाहिए, युक्त नहीं है। गोभिलाचार्य ने इस विषय में केवल प्रायश्चित्त ही लिखा है और उनका उपदेश समान्य प्रायश्चित्तार्थ किया है। उनके प्रायश्चित्त निम्नाङ्कित हैं। जब तक होम न कर सके तब तक स्त्री और पुरुष भोजन न करें। जब उन्हें होम करने की सामग्रियाँ और दूसरा

समय उपस्थित हो जावे तभी जितनी आहुतियाँ छुट गई हों उन्हें एक पात्र में लेकर एकही वार मन्त्र से प्रदान कर देवे। सायंकाल की आहुतियों में कुछ अधिक भी होमीय पदार्थ रख लेवे और "अग्नये स्वाहा। अग्नये इदं न मम" मन्त्र से होम कर देवे।

अथ परिशिष्टोक्तप्रायश्चित्तान्युच्यन्ते। दर्शस्थालीपाके स्वकालेऽननुष्ठिते, प्रायश्चित्तपूर्वकमनुष्ठानं पौर्णमासीपर्य्यन्तम्। पौर्णमास्थालीपाके स्वकालेऽननुष्ठिते प्रायश्चित्तपूर्वकमनुष्ठानं दर्शपर्य्यन्तम्। तृतीया-पञ्चमी-दशमी त्रयोदशीष्वथवा, सर्वासुतिथिष्वतीतस्य स्थालीपाकस्यानुष्ठानम्। गौणकालेप्यतीते, वैश्वानरस्थालीपाकः प्रकृतिस्थालीपाकेन समानतन्त्रेण, भिन्नतन्त्रेण वा, कर्त्तव्यः।

अर्थ—अब उन प्रायश्चित्तों को लिखा जाता है जो यथोक्त समय पर दर्शपूर्णमास स्थालीपाक के न करने पर परिशिष्ट में लिखा है। यदि किसी कारण वसात् यथोक्त समय पर दर्श या पूर्णमास स्थालीपाक को न कर सके तो दर्श के कृत्य को पूर्णमास से पहले और पूर्णमास के कृत्य को दर्श से पहले भूरादि महाव्याहृतियों से प्रायश्चित्तात्मक आज्याहुतियों को प्रदान कर सम्पन्न करे। प्रतिपद् दर्श या पूर्णमास स्थालीपाक का प्रधान समय है। प्रधान समय में स्थालीपाक न कर सके तो उसके लिए शुक्ल या कृष्ण पक्ष की तृतीया, पञ्चमी, दशमी, त्रयोदशी अथवा भविष्य स्थालीपाक से पूर्व जिन तिथियों में सुविधा हो करले। शास्त्रकारों ने इन समयों को गौड़ काल माना है। यदि गौड़काल में भी दर्शपौर्णमास न कर-

सके तो वैश्वानरस्थालीपाक करना चाहिए । यह प्रायश्चित्तात्मक वैश्वानरस्थालीपाक भविष्य दर्श या पूर्णमास स्थालीपाक के साथ करे, अथवा अलग करे, यह यजमानकी रुचि पर निर्भर है ।

द्वयोः स्थालीपाकयोर्लोपे, एकस्योक्तप्रायश्चित्तस्थालीपाकः । द्वितीयस्य प्रायश्चित्तपूर्वकं गौणकालेऽनुष्ठानम् । द्वितीय-स्थालीपाके गौणकालेऽप्यननुष्ठिते, तृतीयस्थालीपाके संप्राप्ते, पुनराधानम् ॥

अर्थ—यदि किसी मास के दर्श और पूर्णमास दोनों स्थालीपाक न हुए हों तो पहले के लिए वैश्वानरस्थालीपाक प्रायश्चित्त पूर्वक समाप्त कर ले । पश्चात् दूसरे यज्ञ को गौणकाल में उक्त महाव्या-हृतियों से घृताहुति रूप प्रायश्चित्त के साथ पुरा कर देवे । यदि मास के दोनों ही दर्शपूर्णमास यज्ञों को न कर सके और दूसरे मास के तीसरे यज्ञ का समय उपस्थित हो जावे तो फिर से अग्नि के आधान कार्य कर्त्तव्य होंगे ।

अन्वाधानदिने पत्न्यां रजस्वलायां स्नातायां पञ्चमेऽहनि स्थालीपाकानुष्ठानम् । श्रौते कर्मणि, चतुर्थदिनेऽपि ॥ "परे तु 'अन्वाधानदिने औपवसथिकान्न-भोजनानन्तरं पत्न्यां रजस्वलायान्तामपरुध्य यागः कर्त्तव्य" इति । "केचित्संकल्पप्रभृतिपात्रासादनान्ते कर्मणि कृते, भोजनात्पूर्वं पत्न्यां रजस्वलायामपितामपरुध्य यागं कुर्वन्ति" ॥

अर्थ—यदि अग्नि अन्वाधान के दिन यजमान की स्त्री को

मासिक धर्म हो जावे तो अविष्य स्थालीपाक को उस दिन से पांचवें दिन करना चाहिए । और कार्य को तो चौथे दिन भी कर सकते हैं । कुछ लोगों की सम्मति है कि आग्रयणस्थालिपाक को ऐसा नहीं करना चाहिए कि अन्वाधान के दिन भोजन से पहले स्त्री के मासिक धर्म हो जाने पर स्त्री न सम्मिलित हो और केवल यजमान ही यज्ञ कर ले । परन्तु, कुछ लोगों की सम्मति है कि संकल्प से पात्रासादनादि तक कार्य हो जाने के पश्चात् भोजन से पहले यदि स्त्री को मासिक धर्म हो जावे तो उसे सम्मिलित न करें । केवल यजमान ही स्थालीपाक यज्ञ कर लेवे ।

अथ वैश्वानरस्थालीपाकप्रयोगः ॥ दर्शस्थालीपाकस्य पौर्णमासस्थालीपाकस्य वाऽनिपत्तिप्रायश्चित्तार्थं अथवा, मुख्यकालातिपत्तिप्रायश्चित्तार्थं, वैश्वानरस्थालीपाकं करिष्ये, इति संकल्पः । अग्नये वैश्वानराय त्वा जुष्टन्निर्वपामीति निर्वापः। अग्नये वैश्वानराय स्वाहेति चर्वाहुतिः । अन्यत्सर्वं प्रकृतिस्थालीपाकवत् । नवयज्ञ-श्रवणाकर्म-श्वयुजि-वैश्वदेवद्वय-पिण्डपितृयज्ञकर्मणां लोपे, पतितान्नभोजने च वैश्वानरस्थालीपाकप्रायश्चित्तम् । स्वगृह्याग्नेरन्याग्निसंपर्के विविचिस्थालीपाकः । मदीयगृह्याग्नेरन्याग्निसंसर्गप्रायश्चित्तार्थं विविचिस्थालीपाकं करिष्ये । अग्नये विविचये त्वा जुष्टन्निर्वपामीति चरुनिर्वापः । अग्नये विविचये स्वाहेति चरुहोमः । अन्यत्सर्वं प्रकृतिवत् ॥

अर्थ—वैश्वानरस्थालीपाक की विधि वही है जो दर्शपूर्णमास की है । विशेष केवल इतना ही है जो नीचे लिखा जाता है । संकल्प

में देशकाल आदि स्मरण के पश्चात् "दर्श अथवा पूर्णमासस्थाली पाकस्यातिपत्ति प्रायश्चित्तार्थं वैश्वानर स्थालीपाकं करिष्ये" यह विशेष योजना करे। उलूखल में हवि छोड़ने के समय "वैश्वानराय-त्वा जुष्टन्निर्वपामि" ऐसा पढ़े। आज्यभाग आहुतियों के पश्चात् "ओं वैश्वानराय स्वाहा । वैश्वानरायेदं न मम" इस मन्त्र से आहुति प्रदान करे। शेष कृत्य दर्श पूर्णमास के अनुसार समाप्त करे। नव यज्ञ, श्रवणाकर्म, आश्वयुजि, सायं प्रातः के बलि वैश्वदेव और पिण्डपितृ यज्ञों को यथोचित समय पर न कर सके या पतितान्न भोजन कर ले तो उसे यही वैश्वानर स्थालीपाक को प्रायश्चित्तार्थ करना चाहिए। यदि आवसथ्याग्नि से अन्य अग्नि का सम्पर्क हो जावे तो उस के प्रायश्चित्तार्थ भी विविचाग्नि देवता के लिए स्थालीपाक करना चाहिए। संकल्प में "मदीय गृह्याग्निसंसर्ग प्रायश्चित्तार्थं विविचिस्थालीपाकं करिष्ये" वाक्य का योजना करे। "अग्नये विविचये स्वाहा। अग्नये विविचय इदन्न मम" से प्रधान आहुति को प्रदान करे। शेष कर्म्मको दर्श पूर्णमासवत् सम्पन्न करे।

समानतन्त्रपक्षे, वैकृतन्निरूप्य प्राकृतस्य निर्वापः । प्रायश्चित्तस्थालीपाककरणेऽशक्तौ, चतुर्गृहीतेनाज्येन स्रुचं पूरयित्वाऽमुकस्थालीपाकस्य स्थाने पूर्णाहुतिं होष्यामीति संकल्प्याग्नये वैश्वानराय स्वाहेति चतुर्गृहीतमाज्यं जुहुयात् । तत्तत्स्थालीपाके तत्तद्देवतानाम्नि चतुर्थ्यन्ते स्वाहाकारं संयोज्य, पूर्णाहुतिं जुहुयात् । अथवा, चतुर्गृहीता-ज्यासंभवे स्रुवेणैकामाज्याहुतिं तत्तद्देवतायै जुहुयात् । अमुक-स्थालीपाकस्य स्थाने स्रुवाहुतिं होष्यामीति संकल्पः ॥ अन्यद-प्यनुक्तप्रायश्चित्तं सूत्रान्तरोक्तं ग्राह्यं छन्दोगैः ॥

अर्थ—यदि दर्श अथवा पूर्णमास स्थालीपाक के साथ वैश्वानर या विविचाग्निस्थलीपाक करना हो तो हवि के निर्वाप में प्रथम प्रायश्चित्तार्थ हवि का निर्वपन करे। प्रधान आहुति प्रदान के समय भी प्रथम प्रायश्चित्त संज्ञक आहुति को प्रदान कर पश्चात् दर्श या पूर्णमास की आहुतियों को प्रदान करे। यदि किसी कारण वसात् वैश्वानर स्थाली पाक न कर सके तो "वैश्वानरस्थालीपाकस्थाने पूर्णहुतिं होष्यामि" संकल्प करे। चार स्रुवा घी स्रुची में लेकर "वैश्वानराय स्वाहा। वैश्वानराय इदं न मम" से पूर्णहुति रूप एक आहुति प्रदान कर देवे। पूर्वोक्त विधिके अनुसार जब किसी स्थाली पाक को न कर सके तो उस स्थालीपाक के प्रधान देवता के नाम से पूर्णाहुति प्रदान कर देवे। यदि अधिक घी न हो तो स्रुवा से ही पूर्णहुति प्रदान करे। परन्तु संकल्प में "अमुक स्थालीपाकस्य स्थाने स्रुवाहुतिं होष्यामि" इस प्रकार के वाक्य का योजना करना चाहिए। कौथुमी सामगों को चाहिए कि जो प्रायश्चित्त इस स्थान पर न लिखे गए हों और दूसरे गृह्य अथवा श्रौत सूत्रों में लिखे हों उन्हे कार्य में लावें ।

प्रासङ्गिकमुक्त्वाऽथ गोभिलोक्तमुच्यते॥ यजमानस्य यदि प्रवासस्तदा, पत्न्या ऋत्विङ्मुखेन सायंप्रातर्होम-वैश्वदेव-पार्वणस्थालीपाकश्रवणाकर्म-नवयज्ञादीनि नित्यकर्माणि,यथाकालं कर्त्तव्यान्येव। संकल्प ऋत्विग्वरणञ्च, पत्न्या कार्य्यम्। बर्हिरिध्मादिसाधनयुक्ततन्त्रहोमेषु स्थालीपाकवत्सर्वमङ्गजातं कर्त्तव्यं, प्रधानाहुतयस्तत्र तत्रोक्ता ग्राह्याः। यत्र मन्त्रान्ते स्वाहेति पदन्नास्ति, तत्र स्वाहेति योजनीयम्। सर्वत्र स्वाहाकारे होमः। यत्र मन्त्रादौ स्वाहाकार आम्नातस्तत्र स्वाहापदोच्चा-

रणे हुत्वा, शेषं मन्त्रं समापयेत्। चरुरहितेष्वाज्यहोमेषु चतुर्थीहोमादिषूपघातं जुहुयात्। तत्रायं क्रमः। आज्यं संस्कृत्य स्रुवेणाज्यमादाय प्रधानदेवताभ्यो जुहोति, नाज्यभागौ, न च स्विष्टकृद्धोमः। आज्यहोमेषु प्रधानदेवतानामनुक्तौ, प्रधानकर्मणः प्रधानहोमोक्तौ, तस्य च पुरस्तादुपरिष्टाच्च व्यस्ताभिर्व्याहृतिभिस्तिस्र आज्याहुतीर्जुहुयात्। अन्यत्सर्वं। पार्वणस्थालीपाकवत्॥ यत्र सूत्रकृद्वक्ष्यति "अग्निरुपसमाहितो भवतीति" तत्र पुंसवन-शुङ्गाकर्म-सीमन्तोन्नयन चूड़ाकर्मादिषु तेषां कर्मणां पुरस्तादुपरिष्टाच्च महाव्याहृतिहोमत्रयं कर्त्तव्यम्॥

अर्थ—इस प्रायश्चित्त के प्रकरण में अनेक बचनों को लिखा है। अब गोभिलाचार्य्योक्त प्रायश्चित्त लिखते हैं। यदि यजमान किसी कार्य वस परदेश चला गया हो तो उसकी स्त्री सायं प्रातः होम, बलिवैश्वदेव, दर्शपूर्णमास स्थालीपाक, श्रवणा, नवयज्ञ इत्यादि कृत्योंको यथोचित समयों पर ऋत्विग् द्वारा सम्पादन करे*। संकल्प और ऋत्विग् वरण स्त्री का कर्त्तव्य है। शेष कार्य्य को ऋत्विग् सम्पादन करे। जिन होम कार्य्यों में बर्हिका परिस्तरण और इध्माएँ अग्नि में चढ़ाई जावें उन होम कार्य्यों में स्थाली पाक की सब विधियाँ कर्त्तव्य हैं। इतना ही विशेष होगा कि जिस यज्ञ

* कामं गृह्येऽग्नौ पत्नी जुहुयात् सायम्प्रातर्होमौ गृहाः पत्नी गृह्यएषोऽग्निर्भवतीति। गो० प्र० १ ख० ३ सू० १५। स्त्री ह सायं प्रातः पुमानिति। गो० गृ० प्र० १ खं० ४ सू० १९। इन सूत्रों से स्पष्ट है कि सायं प्रातः होम और बलि वैश्वदेव स्त्री स्वयं करने की अधिकारिणी है।

में जो प्रधान देवता होगा उस के नाम से प्रधान आहुतियाँ प्रदान की जायेंगी। जिस मन्त्र के अन्त में स्वाहा शब्द न लिखा हो वहाँ स्वाहा शब्द को जोड़ कर पढ़ना चाहिए। जिस मन्त्र के आरम्भ ही में स्वाहा शब्द लिखा हो वहाँ स्वाहा शब्द पढ़ मन्त्रारम्भ ही में आहुति प्रदान कर शेष मन्त्र को समाप्त करे। चरु रहित चतुर्थी कर्म आदि होमों में उपघात विधि से ही आहुतियों को प्रदान करे, जिसकी विधि यह है कि आज्य का संस्कार कर उसे स्रुवा में ले ले कर प्रधान देवताओं के लिए आहुति प्रदान करे। ऐसे होम कार्य में आज्यभाग और स्विष्टकृत् आहुतियों को न प्रदान करे। केवल घृत से होने वाली आहुतियों में जहाँ कहीं प्रधान देवता के नाम का उल्लेख न हो वरन्तु प्रधान कर्म तथा प्रधान होम लिखा हो, वहाँ "प्रजापतये स्वाहा" से आहुति प्रदान करे प्रधान आहुति के पश्चात भी महाव्याहृतियों से घृत की तीन आहुति प्रदान करे। आहुतियों के अतिरिक्त बाकी दर्श पूर्णमास के सब कर्म्म हरेक होम कार्य्यों में किया जावेगा। गोभिलाचार्य्य ने जिन जिन पुंसवन, सिमन्तोन्नयन, चूडाकरण इत्यादि कार्य्यों में लिखा है कि अग्नि स्थापन कार्य होंगे। परन्तु यह नहीं लिखा है कि उक्त कर्मों में प्रधान आहुति किस देवता के नाम से दी जायगी उन सब कार्यों में प्रजापति (प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये नमम) के नाम से आहुति प्रदान होगी और इस प्रधान आहुति के हपले एवं पश्चात भी केवल व्याहृतियों से घृत की आहुति प्रदान करनी चाहिये ❀।

अस्मिन्स्थालीपाके सर्वस्याप्यङ्गस्य गोभिलेनोपदिष्टत्वात्पार्वणस्थालीपाकस्सर्वेषां वक्ष्यमाणानां चरुहोमानामाज्यहो-

---

❀ आज्यं हव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते। मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरितिस्थितिः॥ कर्म प्रदीप ख० ८ श्लोक १६॥

मानाञ्च प्रकृतिभूतोऽतः पार्वणस्थालीपाकस्य सुबोधाय पदार्थ-क्रमो लिख्यते ॥ प्रथमं संकल्पः । विधिवदग्निस्थापनम् । प्रज्वल-नम् । इध्माबर्हिषोश्च यज्ञीयपात्राणामुपकल्पनम् । ब्रह्मवरणम् । ब्रह्माऽऽसनदर्भास्तरणम् । ब्रह्मोपवेशनम् । उपविष्टे ब्रह्मण्यु-त्तरतः पात्रासादनम् । पात्राणां वीक्षणम् । प्रोक्षणम् । परि-समूहनं । पश्चिमत उलूखलाद्यासादनम् । हविर्निर्वापः । अव-हननम् । तुषविमोचनम् । तण्डुलप्रक्षालनम् । पवित्रकरणम् । तण्डुलावापः । हविश्श्रपणम् । श्रृतेऽभिघारणम् । उदगुद्वा-सनम् । प्रतिष्ठिताभिघारणम् । अग्निप्रज्वलनम् परिस्तर-णम् । बर्हिषि स्थालिपाकासादनम् । इध्माधानम् । चर्वभा-वेऽत्रैवपवित्रकरणम् । पवित्रानुमार्ज्जनम् । आज्यस्थाल्यां पवित्रासादनम् । तत्राज्यावनयनम् । आज्योत्पवनम् । अग्ने-रुपर्य्याज्यस्थाल्यधिश्रयणम् । उत्तरत आज्योद्वासनम् । स्रुक्सम्मार्गः । बर्हिष्याज्यासादनम् । त्रिरुदकाञ्जलिसेचनम् । पर्य्युक्षणम् । आज्यभागहोमः । प्रधानचरुहोमः । स्विष्टकृ-द्धोमः । व्याहृतित्रयहोमः । तूष्णीं समिदाधानम् । अनुप-र्य्युक्षणम् । उदकाञ्जलिसेचनम् । यज्ञवास्तुकरणम् । वस्वा-हुतिः । हविरुच्छिष्टोद्वासनम् । ब्रह्मणे हविश्शेषदानम् । हविश्शेषभोजनम् । पूर्णपात्रदानम् । गोनिष्क्रयद्रव्यदानम् । चमसनिनयनम् । चमसपूरणम् । वामदेव्यसामगानम् ॥ इति चरुतन्त्रपदार्थक्रमः ॥ अथाज्यतन्त्रपदार्थक्रम उच्यते । हविर्निर्वापादिहविरुद्वासनान्तं कर्म विहायाग्निस्थापनप्रभृ-

त्याज्यभागादनान्तपदार्थक्रमः पूर्ववत् । ततस्त्रिरुदकाञ्जलिसेचनम् । अनुपर्युक्षणम् । व्याहृतित्रयहोमः । प्रधानाज्याहुतयः । प्रधानाज्याहुत्यनुपदेशे, प्रधानकर्मानुष्ठानम् । आज्येन व्याहृतित्रयहोमः । तूष्णीं समिदाधानम् । कर्मवैगुण्ये, पुनर्व्याहृतिचतुष्टयहोमः । पर्युक्षणादि वामदेव्यगानान्तं पदार्थक्रमः पूर्ववत् । इत्याज्यतन्त्रपदार्थक्रमः ॥

इति गोभिलगृह्यसूत्रे प्रथम प्रपाठकः ॥



अर्थ—गोभिलाचार्य्य ने इस दर्शपूर्णमास स्थालीपाक के प्रकरण में चरुस्थालीपाक और आज्य संस्कारादि विधि को पूर्ण रूप से लिखा है। अतः यही दर्शपूर्णमास विधि सम्पूर्ण भविष्य चरु और आज्य होमों की मूल विधि स्वरूप है। आवश्यकीय होने के कारण इसका पदार्थ क्रम पूर्ण रूप से एकत्र लिख दिया जाता है कि सर्व साधारण के समझने में सुगमता हो।



पूर्णमासी या अमावास्या अथवा प्रतिपद् को प्रातःकाल के नित्य होम कार्यों को समाप्त कर देशकाल स्मरण के पश्चात् "ममोपात्त समस्त दुरितक्षय द्वारा परमेश्वर प्रीत्यर्थं पौर्णमास स्थालीपाकं करिष्ये" संकल्प करे। यदि दर्शस्थालीपाक करना हो तो "दर्शस्थालीपाकं करिष्ये" योजना करे। अङ्गुलियों के बल दोनों हाथों को भूमिपर रखकर "ओं इदम्भूमेर्भजामह इदम्भद्र ꣳ सुमङ्गलम्। परासपत्नान् बाधस्वान्येषां विन्दते वसु" मन्त्र का जप करे ओम् इम ꣳ स्तोममर्हते जात वेदसे रथमिव सम्महेमा मनीषया। भद्राहि नः प्रमतिरस्य स ꣳ सद्यग्ने सख्ये मारिषामा वयं तव॥ भरामेध्मं कृणवामा हवी ꣳ षि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम्। जीवातवे प्रतरा ꣳ साधयाधियोऽग्ने सख्ये मारिषामा वयं तव॥ शकेमत्वा समिध ꣳ साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्। त्वमादित्या ꣳ आवह तान् ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव" मन्त्रों को पढ़ता हुआ अग्नि को भस्म रहित कर प्रज्वलित करने का यत्न करे। यदि व्रत के दिन सङ्कल्प करने के पश्चात् ब्रह्म वरण न किया गया हो तो इसी समय परिसमूहन के पश्चात् अग्नि के उत्तर उत्तराग्र कुशाओं को रखकर पूर्व मुख ब्रह्मा और पूर्वाग्र कुशाओं को रखकर उत्तर मुख यजमान बैठे। दोनों तीन तीन आचमन करें। दाहिने हाथ में कुशा लेकर यजमान ब्रह्मा से "पौर्णमासे स्थालीपाक होम कर्मणि ब्रह्माणं त्वां अहं वृणे" ऐसा कहकर कुशाको ब्रह्माके दाहिने हाथ में दे देवे। यजमान के प्रत्युत्तर में ब्रह्मा "वृतोऽस्मि कर्म करिष्यामि" इस प्रकार कहे। तत्पश्चात् यजमान अग्नि के पूर्व से जाकर कुण्ड के दक्षिण क्रमशः दक्षिण को जल की धारा देवे। अग्नि के दक्षिण ब्रह्मा के आसन पर पूर्वाग्र तीन कुशपत्रों को रखे। अग्नि के पश्चिमसे आ कर अग्नि कुण्ड के उत्तर पात्रों का आसादन करें।

ब्रह्मा शिखा को बाँधे हुए, यज्ञोपवीती आचमन कर अग्नि के पूर्व से दक्षिण जाकर आसन के पूर्व पश्चिम मुख खड़ा होवे । "निरस्तः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषि. यजुः छन्दः परावसुः देवता त्रिण निरसने विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर "ओम् निरस्तः परावसुः" मन्त्र को पढ़ता हुआ वाम हाथ के अंगूठे और अनामिका से आसन पर पूर्वाग्र रक्खे हुए कुशपत्रों से एक कुशा उठाकर पश्चिम और दक्षिण के कोन में फेंक कर जल स्पर्श कर ले । "आवसो. इति मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः परावसुः देवता उपवेशने विनियोगः" हाथ जोड़े हुए इस प्रकार ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग का स्मरण कर "ओम् आवसोः सदनेसीदामि" मन्त्र को पढ़ता हुआ उत्तर मुख आसन पर बैठ जावे । हाथ जोड़े हुए यज्ञ समाप्ति-पर्यन्त सब कार्यों का निरीक्षण करता रहे ।

यदि ब्रह्मा के कार्य-सम्पादन-कर्त्ता का अभाव हो तो यजमान ही विनियोग स्मरण के सहित ब्रह्मासन के कुशपत्र को नैऋत्य में फेंक देवे । आवसोः सदने सीदामि" मन्त्र से ब्रह्मासनपर छाता, जलपूर्ण कमण्डलु, डुपटा, अथवा बीच में गाँठि देकर कुशा इन में किसी एक को रख देवे । कितने कुशा को रक्खे-यह यजमान की इच्छा पर निर्भर है । यजमान इस प्रकार ब्रह्मा-सन पर उसके प्रतिनिधि को स्थापन कर शेष सब कार्य्यों का सम्पादन करे ।

ब्रह्मा के आसन पर बैठ जाने के पश्चात् यजमान अग्नि के उत्तर भाग में पूर्वाग्रकुशा बिछा कर जलसे भरी प्रणीता रक्खे । पुनः कुशा बिछा कर उन पर क्रमशः पूर्व—पूर्व को यज्ञ सामग्रियों को रक्खे—यथा कलश या लोटा में शुद्ध जल, चार मुष्टी कुशा, हवि पकने की बटुली, ओखली, मूसल, काँस की थाली, जिसकी हवि पकाई जाएगी, उस चावल या जौ की दलिया के साथ सूप, मेक्षण, चार या तीन परिधि, अठारह इध्मा, घी, आज्यस्थाली

स्रुची, स्रुवा, गर्मजल, सम्मार्जन के लिये कुशायें और पूर्ण पात्र इन्हें क्रमशः पूर्व—पूर्व को रखे। आसादित सामग्रियों को भली भाँति निरीक्षण कर स्रुचि आदि पात्रों को सीधा रखकर जल में कुशा डुबोकर सब का प्रोक्षण कर दे।

ओखरी मूसल और सूप को जल से धोकर अग्नि पर तपा दे। अग्नि के पश्चिम पूर्व मुख बैठ कर पूर्वाग्र कुशा रखे। उसी पर ओखरी को स्थिरता पूर्वक रखकर "अग्नये त्वा जुष्टम् निर्वपामि" वाक्य से एक मुष्टी हवि ले कर उसमें छोड़े। और तीन मुष्टी बिना मन्त्र छोड़े ओखरि के पश्चिम पूर्वमुख बैठकर दोनों हाथ से मूसल लेकर धान या जौ को तीन बार कूटे। सूप से भूसी को पछोरकर तीन बार जल से धो देवे।

पहले से आसादित, (रखे हुए) कुशा में से ऐसे दो पत्रों को लेवे जिनका अग्रभाग टूटा न हो और मध्य के पत्तों से भिन्न अगल-बगल के हों। उस कुशपत्रों से एक बित्ते का पवित्र बनाया जायगा। प्रथम धान के पुआल अथवा जौ की डंटी में कुश पत्रों को लपेट कर "पवित्रेस्थ. अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिऋंषिः यजुः छन्दः पवित्रे देवते पवित्रछेदने विनियोगः" ऋषि देवता छन्द और विनियोग का स्मरण कर ले। "पवित्रेस्थो वैष्णोव्यौ" मन्त्रको पढ़ता हुआ पुआल या जौ की डंटी के सहारे से कुशपत्रों के अग्र भाग का एक वितस्त तोड़ लेवें। नखों से न तोड़े। पवित्र छेदन और कुशपत्रों के मूल को इशान कोण में फेक देवे। जल को स्पर्श कर ले। वाम हाथ से पवित्रों के मूल को पकड़े हुए "विष्णोः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषि. पवित्रे देवते यजु: छन्दः अनुमार्जने विनियोगः" पढ़कर "विष्णोर्म्मनसा पूतेस्थः" मन्त्र को पढ़ता हुआ उन पवित्रों को दाहिने हाथ से जल लेकर धो देवे। धोए हुए पवित्रों को चरुस्थाली में उत्तराग्र रखकर उसमें चावल छोड़े।

समान छोड़ देवे के पश्चात परिधियों को चरुस्थाली से अलग रख देवे। चरुस्थाली में इतना जल छोड़ देवे कि जिससे चरु अच्छी तरह पक जा सके। अग्नि पर रख कर अच्छी तरह पकावे।

पकती हुई हवि को मेक्षण से प्रदक्षिणावर्त चलाता रहे। परिधियों को चरुस्थाली के ऊपर हाथ से पकड़े हुए उसी पर से स्रुवा से घृत छोड़े। स्रुवा और परिधि को अपने २ स्थान पर रख देवे। चरुस्थाली को अग्नि पर से उतार कर उसके उत्तर कुशा पर रखे। पहले के समान पुनः चरुस्थाली में स्रुवा से घी छोड़े॥

अग्नि को ईंधन से प्रज्वलित करके। आस्तरित (पहले से रखे हुए) चार मुट्ठी कुशाओं को लेकर अग्नि के पूर्व, दक्षिण उत्तर और पश्चिम बिछा देवे। सब कुशाओं के अग्रभाग पूर्व रखे। एक तीन तह अथवा पाँच तह बिछाना चाहिए और उन्हें इस रीति से बिछाना चाहिए कि पहले की बिछाई कुशाओं के मूल भाग को पीछे की बिछाई हुई कुशा के अग्रभाग ढकते जावें। अथवा सबसे पहले पश्चिम बिछावे, तत्पश्चात दक्षिण और उत्तर बिछाकर उनका अग्रभाग पूर्व की ओर इस रीति से मिला देवे कि त्रिकोण सा बन जावे। सब प्रकार के हवन में परिस्तरण की यही विधि है; परन्तु यह परिस्तरण-कार्य क्षिप्र होम में नहीं किया जाता है। (किसी-किसी ऋषि का मत है कि परिस्तरण के पश्चात् अग्नि के पूर्व, दक्षिण, उत्तर और पश्चिम इस प्रकार चार अथवा दक्षिण, उत्तर और पश्चिम इस प्रकार तीन परिधि रक्खे। उन परिधियों के अग्रभाग पूर्व और उत्तर को होने चाहिए।)

अग्निकुण्ड के उत्तर भाग में यदि प्रथम से प्रणीता न रख गया हो तो, प्रोक्षण और अग्नि पर्युक्षण के लिए स्रुक् में जल भर कर रख देवे। यदि प्रणीता रख गया हो, तो स्रुक रखने की आवश्यकता नहीं है। पहिले से रखी हुई चरुस्थाली को अग्नि

के पश्चिम बिछाई हुई कुशाओं पर रख देवें। पश्चात् १८ इध्माओं को बिना मन्त्र एक ही साथ अग्नि में छोड़ देवे। यदि चरु पाक न हो, केवल घी सेही होम करना होतो ओखरि आदि के प्रक्षालन कार्य से अभिधारण तक न होंगे। पात्रों के प्रोक्षण के पश्चात इध्मओं को अग्नी में चढ़ा देवे। पूर्वोक्त विधि से पवित्र को बनावे। प्रक्षालन कर आज्यस्थाली में रक्खे। चरु होने पर पहले के बनाए हुए, पवित्र को उत्तराग्र आज्यस्थाली पर रख देवे। उसी आज्यस्थाली में घृत छोड देवे। दोनों हाथों के अनामिका और अंगुठे से पवित्र के दोनों ओर पकड़कर "देवस्त्वा अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः आज्यं देवता उत्पवने विनियोगः, ऋष्यादि स्मरण कर "ओं देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्य्यस्य रश्मिभिः" एकबार मन्त्रसे और दो बार बिना मन्त्र घृत का उत्पवन संस्कार करे। घृत गाय का, यदि गाय का न हो तो भैंस का होना चाहिए। यदि गाय और भैंस इन दोनों के घृत का अभाव हो तो बकरी का घृत लेना चाहिए; यदि घृत मात्र का अभाव हो तो, तिल का तेल, दही, दूध और जौ के भात का माड़ इनमें से क्रमशः एक के अभाव में दूसरे को लेना चाहिये। इन तेल आदि पदार्थों का भी उत्पवन आदि संस्कार वैसे ही करना होगा जिस प्रकार घृत का बताया गया है। उनमें से केवल दही को अग्नि पर नहीं पकाया जायगा। यवागू के पकाने का कार्य यजमान की रुचि पर निर्भर है। उसे पका ले अथवा न पकावे। पवित्र कुशा से घृत का उत्पवन संस्कार कर लेने के पश्चात् उसकी ग्रन्थि खोल देवे। जल से धोकर उसे अग्नि पर रख देवे।

उत्पवन संस्कार किए हुए घृत को पकने के लिए अग्नि पर रख देवे। जब भली भाँति पक जावे तो अग्नि से उतार कर पहले उत्तर तद्पश्चात आहुति प्रदान के लिए अग्नि के पश्चिम चरु-

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] सामा प्रति-

हौषीः कुर्वन्तं मा माप्रति कार्षीस्त्वां प्रपद्ये त्वया प्रसूत इदं कर्म्म करिष्यामि तन्मे राध्यतां तन्मे समृध्यतां तन्म उपपद्यतां समुद्रो मा विश्वव्यचा ब्रह्मानुजानातु तुथो मा विश्ववेदा ब्रह्मणः पुत्रोऽनुजानातु श्वात्रो मा प्रचेता मैत्रावरुणोऽनुजानातु तस्मै विरूपाक्षाय दत्ताञ्जये समुद्राय विश्वव्यचसे तुथाय विश्ववेदसे श्वात्राय प्रचेतसे सहस्राक्षाय ब्राह्मणः पुत्राय नमः (ये वैरुपाक्षमन्त्र हैं) इन मन्त्रों का जप करे*।

जिनके तीन प्रवर हैं उन्हें चाहिए कि चार स्रुवा घृत आज्यस्थाली से स्रुचो में भर लेवें। "अनयोः प्रजापतिर्ऋषि. अग्नि सोमश्च क्रमेण देवताऽऽज्यभागहोमे विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर अग्नि के उत्तरार्द्ध और पूर्वार्द्ध के मध्य में "ओम् अग्नये स्वाहा। अग्नय इदन्न मम" इस मन्त्र से आहुति प्रदान करे। पुनः चार स्रुवा घृत स्रुची में लेकर अग्नि के पूर्वार्द्ध और दक्षिणार्द्ध अर्थात् अग्नि कोण के मध्य में "ओम् सोमाय स्वाहा। सोमायेदं न मम" इस मन्त्र से आहुति प्रदान करे। यदि यजमान पाच प्रवर वाला भृगु गोत्र का हो तो उसे चार स्रुवा के स्थान में पाच स्रुवा घृत स्रुची में लेकर आहुति प्रदान करना चाहिये। चरु होम के लिये प्रथम आज्यस्थाली से एक स्रुवा घृत स्रुची में छोड़े। मेक्षण से चरुस्थाली के मध्य और पूर्व भाग से अंगुष्ठ पर्व के वरावर चरु लेकर स्रुची में रखे। उसपर एक स्रुवा घृत छोड़ देवें। आजस्थाली से एक स्रुवा घृत लेकर चरुस्थाली में उन स्थानों पर छोड़े कि जहां जहां से चरु लिया हो।

---

* दाहिने घुटने को भूमि में टेकि कर स्रुवा से घी ले कर मन में "प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय न मम"। इन दो आहुतियों को प्रदान करे। इस पर शास्त्रीय विधि को अविरोधी होने से ग्रहण कर सकते हैं।

यदि भृगु गोत्र पांच प्रवर वाला यजमान हो तो उसे चरुस्थाली के मध्य, पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध एवं तीन अस्थान से चरु लेना चाहिये। पूर्वोक्त रूप से स्रुची में उपस्तीरणाभिघारित चरु लेकर "ओम् अग्नये स्वाहा। अग्नय इदं न मम" मन्त्र से अग्नि के बीच में आहुति प्रदान करे। इसी रीति से चरु ले ले कर दो आहुति और प्रदान करे। इस मन्त्र से केवल एक अथवा तीन आहुति प्रदान करे। पुनः स्रुची में एक स्रुवा घृत छोड़े। पहले से कुछ अधिक मेक्षण से चरुस्थाली के उत्तर और पूर्व भाग से चरु लेकर स्रुची में छोड़ देवे। फिर उपर से एक स्रुवा घृत छोड़े। यदि पञ्च प्रवर भृगु गोत्र का यजमान हो तो उसे चरु लेने के पहले दो स्रुवा और उसके पश्चात् भी दो स्रुवा घृत छोड़ना चाहिये। इस वार चरुस्थाली में घृत नहीं छोड़ना होगा। इस प्रकार स्रुची में हवि लेकर प्रथम दी हुई आहुति से इशान भाग में—"ओम् अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। अग्नये स्विष्टकृत इदन्न मम" इस मन्त्र से आहुति प्रदान करे। चरु होम के पश्चात् स्रुक् को रख देवे। हाथ जोड़ कर-"महाव्याहृतीनां विश्वामित्र जमदग्निभरद्वाजाः ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि; अग्निवायुसूर्य्यादेवताः, आज्यहोमे विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर आज्यस्थाली से स्रुवा द्वारा घृत ले ले कर "ओम् भूः स्वाहा। अग्नय इदं न मम। ओम् भुवः स्वाहा वायव इदं न मम। ओम् स्वः स्वाहा। सूर्य्याय इदं न मम" इन मन्त्रों से तीन आहुतियों को प्रदान करे।

नवयज्ञ अर्थात् नये अन्न के निमित्त स्थालीपाक करने में स्विष्टकृत् आहुति से पहले ही "शतायुधाय०" इन मन्त्रों से घृत की आहुतियाँ दी जाती हैं। जिन होम कर्मों में स्विष्टकृत् आहुति नहीं दी जाती है वहाँपर प्रधान होम के पश्चात् व्याहृतियों से आहुतियाँ दी जाती हैं।

अग्नि में दो समिध को विना मन्त्र छोड़ देवे। "अदिते अन्व-मंस्था" मन्त्र से अग्नि के दक्षिण नैर्ऋत्य से आग्नये तक जलकी धारा देवे। "अनुमते अन्वमंस्था" मन्त्र से अग्नि के पश्चिम नैऋत्य से वायव्य तक और "सरस्वते अन्वमंस्था" से अग्नि के उत्तर वायव्य से इशान तक जल की धारा देवे। "देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। केतपू. केतन्नः वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतुः" मन्त्र से इशान से आग्नेय तक जल धारा देते हुए अग्नि के चारो तरफ एक वार अथवा तीन वार जल की धारा देवे। विछाए हुए परिस्तरण कुशाओंमें से एकमुष्ठी लेकर उन के अग्रमध्य और मूल भाग को "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः विश्वे देवादेवता वर्हिरभ्यञ्जने विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर "अक्तुꣳ रिहाणा व्यन्तु वयः" मन्त्र से घृत अथवा चरु में डुबो देवे। जल से प्रोक्षण कर देवे। "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप् छन्दो रुद्रो देवता बर्हिर्होमे विनियोगः। "ओम् यः पशूनामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो वृषा। पशूनस्माकं माहिꣳसीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा" पशूनामधिपतये रुद्राय तन्तिचरायेदं न मम"। मन्त्र से अग्नि में होम कर देवे। जल स्पर्श कर लेवे। स्रुची में घृत भर कर "प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्वसवो देवता होमे विनियोगः" ऋषि आदि का स्मरण कर "वसुभ्यः स्वाहा। वसुभ्य इदं न मम" इस मन्त्र से अविछिन्न घृत धारा अग्नि में प्रदान करे। होम से बचे हुए चरु को स्थाली से मेक्षण द्वारा निकाल कर कसोरे आदि पात्र में रखकर भोजनार्थ ब्रह्मा को दे देवे। ब्रह्मा चरु को विना मन्त्र खाकर दो आचमन करे।

ब्रह्मा जितने में भोजन करके तृप्त होसके उतने भात, या चावल या फल "ब्रह्मन् पूर्णं पात्रं ते ददामि" वाक्य से दक्षिणा प्रदान कर देवे।

अस्य वामदेव्यस्य वामदेवऋषिर्गायत्रीछन्दइन्द्रोदेवता शान्तिकर्मणि जपे विनियोगः ॥ काऽ५या । नश्चाऽ३इत्राऽ३ आभुवात् । ऊ । तीसदावृधः स । खा । औऽ३होहाइ । कयाऽ२३ शचाइ । ष्ठयौहोऽ३ । हुम्माऽ२ । वाऽ२सोऽ३ऽ५ हाइ ॥ १ ॥ काऽ५स्त्वा । सत्योऽ३माऽ३दानाम् । मा । हिष्ठोमा-त्सादन्धः । सा । औऽ३होहाइ । दृढाऽ२३चिदा । रुजोहोऽ३ । हुम्माऽ२ । वाऽ२सोऽ३ऽ५ हायि ॥ २ ॥ आऽ५भी । षुणाऽ३ः-ऽ३स्खीनाम् । आ । विताजरायितॄ । णाम् । औऽ२३होहा-यि । शताऽ२३म्भवा । सियौहोऽ३ । हुम्माऽ२ । वाऽ२सोऽ३ऽ५ हायि ॥ ३ ॥

इन वामदेव्य साम का गान कर यज्ञ कर्म को ईश्वरार्पण कर देवे ।

अथाधानमुच्यते ॥ आधानं द्विविधम् ॥ अग्न्याधानं, विच्छिन्नाधानं चेति । तत्राद्यस्य कालमाह सूत्रकारः । सूत्रम् । "ब्रह्मचारी वेदमधीत्यान्त्यां समिधमभ्याधास्यन् । जायाया वा पाणिं जिघृक्षन्" ॥ अत्रेदं तात्पर्य्यम् । विवाहात्पूर्वं ब्रह्मचारी अन्त्यसमिदाधानं करिष्यन् यदाऽग्निं प्रणयति, स एकः कालः । अथवा, विवाह होमार्थं यदाऽग्निं प्रणयति, स चापरः कालः । अत्राद्यपक्षस्वीकारे, आद्यमेवाग्निं यावज्जीवं धारयेत् । तत्रैव विवाहाहुतीः कुर्य्यात् ॥

अर्थ—अब अग्नि के आधान विधि को लिखा जाता है। आधान का समय और विधि दो प्रकार की हैं। पहले को अपूर्वाधान और दूसरे को विच्छिन्नाधान कहते हैं। अपूर्वाधान के विषय में गोभिलाचार्य के "ब्रह्मचारी वेदमधीत्यान्त्या समिधमभ्याधास्यन्" और "जायाया वा पाणि जिघृक्षन्" ये सूत्र हैं इन सूत्रों का भावार्थ निम्नांकित है—ब्रह्मचारी उपनयन दिन से आरम्भ कर जब तक ब्रह्मचर्याश्रम में रहता है नित्य सायं प्रातः दोनों समय "अग्नये समिधमहार्षम्" मन्त्र से तीन समिधाओं की आहुति प्रदान करता रहता है। समावर्त्तन संस्कार के समय भी उपरोक्त मन्त्र से समिध की अन्तिम आहुति देकर व्रत को समाप्त करता है। समावर्त्त के पश्चात् सायं प्रातः "अग्नये समिध"० मन्त्र से समिध की आहुति नहीं करता किन्तु अब से होम के मन्त्र और विधि दूसरे हीहैं जिन्हे आगे लिखेंगे। इसी समावर्त्तन संस्कार कृत्य में स्थापित अग्नि को समिधाहुति हो जाने के पश्चात् गृह्याग्नि नीयत कर लेवे। यह गृह्याग्निस्थापन का प्रथम समय और विधि है। स्व विवाह संस्कार के समय जिस अग्नि में स्त्री के पाणि ग्रहण के समय लाजाहुति प्रदान हो उसी को गृह्याग्नि नियत कर लेवें, यह दूसरा समय और विधि है। यदि समावर्त्तन संस्कार की अग्नि को गृह्याग्नि नियत कर ले तो उसी अग्नि में पाणि ग्रहण समय में लाजाहुति भी प्रदान करे। गोभिलगृह्यसूत्र में लिखा है कि समावर्त्तनकाल में हो अथवा विवाह के समय हो जिसे गृह्याग्नि नियत करे उसे अपने जीवन पर्यन्त सुरक्षित रक्खे। उसी अग्नि में सायं प्रातः नित्य होम, दर्श पूर्णमास स्थालीपाक, बलि वैश्वदेव आदि यज्ञों को करता रहे।

द्वितीयपक्षस्वीकारे, द्वितीयमेव यावज्जीवं धारयेत् ॥ तदुक्तं सूत्रकृता। सूत्रम्। "यदेवान्त्यां समिधमभ्यादधाति,

जायाया वा पाणिं जिघृक्षन् जुहोति, तमभिसंयच्छेत्" ॥ भाष्येऽस्त्ययं: ॥ "अत्र केचित् । 'अत्र समिदाधानाग्निं वा विवाहाग्निं वा, पूर्णाहुत्या संस्कृत्य धारयेदिति' वदन्ति" तन्न सम्यक्, अस्यार्थे प्रमाणाभावात्, उत्तर-सूत्रद्वयविरोधाच्च । तथाहि सूत्रम् । "स एवास्य गृह्योऽग्निर्भवति" । अस्यार्थः । अस्यान्त्यसमिदाधानाग्निर्विवाहाग्निर्वा, गृह्योऽग्निः, गृह्याग्निसंज्ञको भवति, एवकारेण पूर्णाहुत्यादिव्यावर्त्यते । सूत्रम् । "तेन चैवास्य प्रातराहुतिर्हुता भवतीति" ॥ अस्यार्थः, तेनैवाग्न्यपत्तेऽन्त्यसमिदाधानेनैव, कृतोद्वहपक्षे, लाजादिहोमेनैव वा, अस्याग्नेर्गृह्याग्नेः प्रातराहुतिः, प्रातरौपासनाहुतिर्हुता भवति । अत ऊर्ध्वं सायमाहुत्युपक्रमं वक्ष्यति, तस्माद्गृह्याग्नित्वसिद्धये पूर्णाहुतिसंस्कारकरणे विरोधः स्पष्ट एव । कल्पतरुकारादयोऽप्येवमाहुः । अत्र पक्षद्वये आधानाङ्गं नान्दीश्राद्धं न पृथक्, समावर्त्तनविवाहाङ्गमेव नान्दीश्राद्धम् ।

अर्थ—कुछ लोगों का मत है कि जिस अग्नि को गृह्याग्नि नियत कर आजीवन रखना हो, उसे समावर्त्तन-संस्कारार्थ अथवा विवाह संस्कारार्थ स्थापित की गई हो पूर्णाहुति देकर नियत करे । परन्तु यह कल्पना प्रमाण शून्य है । गोभिलगृह्यसूत्र के प्रतिकूल भी है। गोभिलगृह्य सूत्र के प्रथम प्रपाठक के प्रथम खण्डमें २०-२१ के सूत्र हैं । उनका भाव यह है कि समावर्त्तन या विवाह जिस समय की अग्नि को गृह्याग्नि नियत करे वही उसकी गृह्याग्नि होती है । उसी अग्निमें

सायं और प्रातः समय की आहुतियाँ प्रदान होती हैं। अतः समिध होम से अथवा लाजाहुति मात्र से ही गृह्याग्नि का होना सिद्ध हो जाता है। पूर्णाहुति की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यही कल्पतरुकार आदि ग्रन्थकारों का भी मत है। इस वचन से स्पष्ट हो जाता है कि "समावर्त्तन और विवाह संबन्धी अग्नि के गृह्याग्नि नियत करने में आधान के निमित्त नान्दी श्राद्ध न होगा किन्तु उक्त संस्कार के ही निमित्त किया जायगा।

पुनस्तृतीयाधानकालमाह। सूत्रम्। "प्रेते वा गृहपतौ परमेष्ठिकरणम्"॥ अस्यार्थः। केनापि निमित्तेनोक्तकालद्वयेऽप्यकृताधानस्य, पितरि मृते, एकादशेऽन्हि परमेष्टिकरणमग्न्याधानं कुर्वीत। पितरि मृते यदग्न्याधानं, तज्ज्येष्ठस्य। कनिष्ठस्य तु, विभागानन्तरम्।

अर्थ—फिर गोभिलाचार्य्य ने गोभिलगृह्य सूत्र में अग्न्याधान के तीसरे समय के निमित्त सूत्राङ्कित किया है जिसका भावार्थ यह है कि यदि किसी कारण वस समावर्त्तन या विवाह संस्कार विधि में स्थापित अग्नि को गृह्याग्नि नहीं नियत कर सका हो तो उसे चाहिए कि जब उसके गृह्य के स्वामी (मालिक) पिता आदि का देहान्त होवे उस समय सपिण्डनादि अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त कर अग्नि का आधान करे। यह आधान यदि एक से अधिक पुत्र हों तो ज्येष्ट पुत्र को करना उचित है। छोटे तो जब आपस में अलग अलग हों उस समय करें।

उभयसाधारण्येनापरमाधानकालमाह। सूत्रम्। "तथा तिथिनक्षत्रपर्वसमवाये"। सुत्रम्। "दर्शे वा पौर्ण-

मासे वाऽग्निसमाधानं कुर्वीत्" । अनयोस्तात्पर्य्यम् । शुभनक्षत्रयुक्तशुभतिथौ, शुभनक्षत्रयुक्त पर्वणि, वा, शुभनक्षत्रयोगाभावेऽपि, दर्शे पौर्णमास्यां वाग्निमादध्यात् ।

अर्थ—गोभिलाचार्य अग्नि-स्थापन के साधारण समय को बताकर अब विशेष समयों को लिखते हैं। शुभ तिथि वार, नक्षत्र और योग आदि युक्त समय में अथवा अमावास्या या पूर्णमासी को ही प्रधान मानकर इन्हीं किसी एक पर्वों में आधान करे। पूर्वोक्त आधान काल के लिखने का सिद्धान्त यह हुआ कि एक सम्मिलित परिवार में जो सर्व श्रेष्ठ गृहस्वामी (मालिक) हो उसी को पंचमहायज्ञों का करना आवश्यक है। कारण कि एक पाक में भोजन करनेवाले कुटुम्ब का प्रतिनिधि स्वरूप है। यदि ब्रह्मचारी के समावर्त्तन काल में उसके गृह्य में पंचमहायज्ञ कर्त्ता गृह्य-स्वामी उसके पिता आदि विद्यमान न हो तो उसे समावर्त्तन या विवाह से ही गृह्याग्नि नियत कर पंचमहायज्ञ का आरम्भ कर देना चाहिए। यदि पिता आदि गृह्य स्वामी विद्यमान हों तो उसके मरण के पश्चात् अन्त्यष्टि क्रिया समाप्त कर किसी शुभ तिथि, वार नक्षत्र आदि श्रेष्ट मुहूर्त्त में अग्नि का आधान (स्थापन) कर पंच महायज्ञ का आरम्भ करे।

आधानप्रयोगो गोभिलानुक्तत्वात्कर्मप्रदीपोक्तो ग्राह्यः। पूर्वोक्तकालचतुष्टये प्रमादादिनाऽकृताधानश्चेदाधानदिने, तत्पूर्वदिने वा, श्रोत्रियांश्चतुरस्त्रीन्ब्रह्मणानात्मनिष्ठमेकं वा, परिषदे नमः इत्यभ्यर्च्य प्रदक्षिणीकृत्य, तेभ्यो दक्षिणां दत्वा, स्वकर्म निवेदयेत् ।

अर्थ—आधान का प्रयोग गोभिलाचार्य्य ने सांगोपांग नहीं सूत्रित किया है। कर्म प्रदीप में पूर्ण रूप से लिखा गया है। अतः इस आधान विधि को कर्म प्रदीप से ही संकलन करना चाहिए।

पूर्वोक्त समावर्त्तन आदि चारो समयों में से जो समय अग्नि आधान के लिए आवश्यक उपस्थित हुआ हो और उसमें आलस्य आदि प्रमाद से आधान न कर सका हो तो उसे चाहिए कि जिस दिन आधान करे उसी दिन या उसके एक दिन पहले ही चार या तीन अथवा आत्मज्ञानी एक भी हो ब्राह्मण को "परिषदे नमः" वाक्य से पूजाकर उसकी प्रदक्षिणा करे। उसे कुछ द्रव्य दक्षिणा देकर नीचे लिखे अनुसार प्रार्थना करे।

यथा। मम गृह्याग्न्याधानस्य सूत्रोक्तमुख्यकालातिक्रमान्मुख्यकालप्रभृत्येतावन्तं कालममुकसंख्याकसंवत्सरनिरग्निकत्वसंजातसमस्तपापनिवर्त्तकं देशकालवयोवस्थाशक्त्यनुसारेण कृच्छ्रादिप्रत्याम्नायभूतं प्रायश्चित्तं मदुद्देशेन यथाशास्त्रं विचार्य, मामुपदिश्य, कर्मण्यं पूतं कुर्वन्तु भवन्त इति पृच्छेत्।

अर्थ—ब्राह्मण लोग यजमान के मुख से उपरोक्त वाक्यों में वर्ष की संख्या को सुनकर

ततस्ते ब्राह्मणायजमानाद्वर्षसङ्ख्यां श्रुत्वैकैकस्य संवत्सरस्य(प्रत्येकैकं प्राजापत्यकृच्छ्रमनापदि, संवत्सरात्पूर्वमुपपातकसामान्यप्रायश्चित्तम्, संवत्सरादूर्ध्वं,मनूक्तत्तन्त्रमासिकम्, आलस्यादिना चेत्सवत्सरादूर्ध्वं मासोपवासः,

एवं संख्या पर्यालोच्य, संकल्पगणनया प्राजापत्यकृच्छ्राणि तद्गणनया, कृच्छ्रप्रत्याम्नायगोदानादिकं वा कुर्युः। उपवासदिनसंख्यया कृच्छ्रादिदिनेषु संकल्पितव्रतान्ते नित्यं हविष्याशनं कुर्यात्।

अर्थ—यदि एक से ले के जितने वर्ष विहित व्रत हों उतने प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करने की आज्ञा देवें। यदि किसी प्रकार से एक में न हो सका तो वर्ष पूरा होने के पश्चात् उपवास के अनुसार प्रायश्चित्त करने की आज्ञा देवें। यदि एक वर्ष से अधिक हो गया हो तो मनुस्मृति के वचनानुसार तीन मास का व्रत करें। आलस्य से आधान न किया हो और एक वर्ष से अधिक हो गया हो तो उसे एक मास उपवास करने की आज्ञा देवें। इस प्रकार विचार कर जितने वर्ष बीत गए हों उतने प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करने की आज्ञा देवें। यदि व्रत न कर सके तो प्रति कृच्छ्र एक गौ दान देने की आज्ञा देवें। उपवास करना हो तो जितने दिन का उपवास करना हो उतने दिन का किसी दिन संकल्प करके केवल एक समय हविष्यान्न का भोजन करें।

गोनिष्क्रयद्रव्यदानपक्षे, देशकालौ संकीर्त्य—

अर्थ—यदि गो दान के प्रति बदले में निष्क्रय द्रव्य ही देना हो तो आचमन प्राणायाम कर, देश, काल आदि स्मरण के पश्चात्—

मम मुख्यकाले गृह्याग्न्याधानानिष्पत्त्या मुख्यकालप्रभृत्येतावन्तं कालमेतावद्वर्षनिरग्निकत्वसंजातपापनिवृत्तये, परिपन्निर्णीतामुकसंख्याकप्राजापत्यकृच्छ्रप्रत्याम्नायभूतं गोनिष्क्रयद्रव्यं ब्राह्मणेभ्यः संप्रददे।

इस वाक्य को पढ़कर ब्राह्मण को देवे।

इदं प्रायश्चित्तमपूर्वाधाने। विच्छिन्नाधाने तु, अतीत-दिनपरिगणनया—

अर्थ—ये सब प्रायश्चित्त अपूर्वाधान के विषय में हैं। यदि समावर्त्तन संस्कार आदिके समय पर गृह्याग्नि का स्थापन करना आवश्यक हो और न किया हो तो उसे यही पूर्वोक्त प्रायश्चित करने के पश्चात् अग्निका आधान करना चाहिए। यदि समावर्त्तन या विवाह अथवा गृह्यस्वामी के मरण काल में अथवा बान्धओं के विभाग काल में आधान के आवश्यक समय उपस्थित होने पर अग्नि का आधान कर लिया हो और फिर छोड़ दिया हो तो सायं प्रातः होम, दर्श पूर्णमास, बलि वैश्वदेव आदि यज्ञों में उस दिन तक जितना द्रव्य व्यय करना होता उन्हें।

अतीतसायंप्रातर्होम-वैश्वदेव-बलिहरण-पिण्डपितृयज्ञ-दर्शपूर्णमासस्थालीपाक-नवयज्ञ-श्रवणा-कर्माश्वयुजिकर्म्मा-ग्रहायणीकर्म्माष्टकानामकरणजनितदोषनिवृत्तये, तत्तद्धोमद्रव्यं व्रीह्याज्यादिकमेतावत्परिमितं ब्राह्मणेभ्यः संप्रददे, इति संकल्पपूर्वकं दद्यात्।

इस वाक्य से संकल्प कर ब्राह्मण को दे देवे।

एवं कृतप्रायश्चित्त आधानाधिकारी भवेत्।

अर्थः—इस प्रकार प्रायश्चित कर लेने पर आधान का अधिकारी होता है।

अथाधानप्रयोगः। अन्त्यसमिदाधानकाले, विवाह-

काले च, प्रमादादिनाऽकृताधानः पूर्वोक्तशुभदिवसे पर्वणि वा, गृह्याग्निं समाधास्यन् तत्पूर्वदिवसे पत्न्या सह कृतप्रायश्चित्तो गृह्याग्निं समाधास्ये इति संकल्प्य, प्राचीनप्रवणमुदीचीनप्रवणं समं वा भूप्रदेशमुपलिप्यारत्निमात्रं समं चतुरस्रं द्वादशाङ्गुलोच्छ्रितं चतुरङ्गुलविस्तृतमेखलात्रययुक्तं कुण्डं कृत्वा केशान्वापयित्वा, स्नात्वा, नान्दीश्राद्धं विधाय, ब्रह्माणं वृत्वा, ब्राह्मण-राजन्य-वैश्यानामन्यतमगृहादग्निमानीय शरावे कांस्यपात्रे वा निधाय, कुण्डाग्रतः परिसमूहनादिकं कृत्वा, तमग्निं स्थापयेत् ।

अर्थ—अब आधान का प्रयोग लिखा जाता है। यदि प्रमाद या आलस्य आदि कारण से समावर्त्तन अथवा विवाहादि यथोचित समय पर आधान न कर सका हो तो पूर्वोक्त प्रायश्चित्तों के करने के पश्चात् गृह्याग्नि का आधान करे। जिस दिन आधान करना हो उसके पहले दिन में प्रायश्चित्त करने के पश्चात् आचमन प्राणायाम कर देश काल आदि का स्मरण कर "गृह्याग्निं समाधास्ये" वाक्य को संकल्प में योजना करे। पूर्व या उत्तर को ढालू या समथल भूमि को गोवर और जल से लीप देवे। उस लीपी हुई भूमि पर एक हाथ लम्बा और उतनाही चौड़ा चौकोर गर्भ छोड़कर उसके चारो ओर चार अङ्गुल की मोटी तीन मेखलाएँ बनावे। मेखलाओं की उचाई क्रमशः गर्भसे बाहर तक बारह आठ एवं चार, अङ्गुल की होनी चाहिए। तीन मेखला युक्त कुण्ड को बनाकर क्षौर कराने के पश्चात् स्नान करे। पुण्याहवाचनादि नान्दी श्राद्धान्त पंचाङ्ग कृत्य संपन्न करे। ब्रह्मा का वरण कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा भड़भूजे के घर से आग लाकर मिट्टी अथवा काँस के पात्र में

रखे। कुण्ड के पूर्व भाग में परिसमुहनादि संस्कार कर अग्नि स्थापन करे।

तस्मिन्नग्नौ पक्त्वा, मधुमांसादिवर्जितं घृतक्षीरादियुक्तमन्नं पत्न्या सह भुक्त्वा, नवीने क्षौमे वाससी, अहते वाससी वा, परीधायाग्नेः पश्चाद्यजमानस्तद्दक्षिणतः पत्नी-चोपविशेत्। अहतवासोलक्षणमाह "शातातपः। ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितं। अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम्"॥

अर्थ—इस अग्नि में मांस आदि निषिद्ध पदार्थ न पकावे, किन्तु घी दूध के साथ खीर, पुड़ी, हलुआ आदि पकाकर यजमान अपनी स्त्री के साथ भोजन करे। नया रेसमी अथवा किनारीदार सूतके अहत वस्त्र को पहनें। अग्निके पश्चिम आसन रखकर यजमान और यजमानके दाहिने उसकी स्त्री दोनों बैठें। अहत वस्त्र का लक्षण महर्षि शातातप ने यों लिखा है कि "जो वस्त्र केवल एक बार धोया गया हो,नया सफेद हो किनारदारहो, जिसे कोई पहना न हो उसे "अहत" कहते हैं।" अहत ही वस्त्र सब यज्ञादि शुभ कर्मों में पहन कर कार्य करना पवित्र माना गया है।

अथारण्योर्लक्षणम्। शमीगर्भोऽशमीगर्भो वा योऽश्वत्थस्तस्य या प्राच्युदीच्यूर्ध्वगा वा शाखा तस्या एकस्या एवारणिद्वयं कुर्यात्। दक्षिणभागादधरा। उत्तरभागादुत्तरा। ऊर्द्ध्वगायाः स्थूलत्वेऽधोभागादधरा, उत्तरेणोत्तरा। पूर्वस्याः पश्चिमभागादधरा, पूर्वेणोत्तरा। चतुरङ्गुलोच्छ्रिता, चतुर्विंशत्यङ्गुलदीर्घा, षडङ्गुलविस्तारा, मूलाग्रभागविभिन्नचिन्हयु

क्ताधरारणिः कार्या । एवं विधैवोत्तरा। उत्तरारण्येकदेशनि-
र्मितमष्टाङ्गुलमितं मन्थनकाष्ठं, तदेव प्रमन्थ इति चोच्यते।
चात्रं द्वादशाङ्गुलं मन्थनदण्ड इति यावत् । ओविली च द्वाद
शाङ्गुला । ओविलीनाम,मन्थनदण्डस्योपरि भागे यो लोहशंकु
स्तदुपरि स्थापनकाष्ठम् । शणमिश्रगोवालनिर्म्मितं त्रिवृतं
व्यामप्रमाणं नेत्रं, मन्थनरज्जुरिति यावत् । पात्राणां लक्षण-
मुक्तं स्थालीपाके ।

अर्थ—जिन काष्ठो को घिसिकर अग्नि निकाली जाती है उन्हें अरणी कहते हैं। वे काष्ठ मई अरणियाँ कैसी और किन काष्ठों की होनी चाहिए सब लक्षण लिखा जाता है। अरणि उस पिपल वृक्ष की बनानी चाहिए जो शमी वृक्षके समीप में जमा हो । समी वृक्ष से अलग पैदा हुए पिपल की भी हो सकती हैं। वृक्ष से पूर्व, पश्चिम अथवा सीध ऊपर जाने वाली डाली में से मोटा भाग लेकर बीचो बीच से दो भाग कर देवे। दहने भाग के काष्ठ की अधरारणी और उत्तर भाग की उत्तरारणी बनावे। जो डाली सीधे ऊपर गई हो उसके मोटाई में दो भाग न कर लम्बाई में ही दो भाग करे। नीचे के भाग में अधरारणी और ऊपर के भाग को उत्तरारणी बनावे। उत्तर गामिनी शाखा की पश्चिम भाग की अधरारणी और पूर्व भागकी उत्तरारणी बनावे * इन अरणियों की उचाई चार अंगुल, लम्बाई चौबिस अंगुल, और चौड़ाई छः अंगुल का मूल के

---

* यहाँ उत्तर शब्द के स्थान पर भूल से "पूर्वस्याः" अंकित हो गया है कारण कि पूर्व गामिनी शाखा में पश्चिम भाग नहीं हो सकता ।

तरफ मन्थन चिन्ह युक्त होना चाहिए। उत्तरारणी में आठ २ अंगुल के तीन भाग कर देवे। प्रति भाग में अग्नि मन्थन के लिये छः छः शंकू बनाकर उसी से रगड़ कर अग्नि प्रकट करे। बारह अंगुल का चात्र और ओवली होती हैं। चात्र के ऊपर दवाने के काठ को ओविली कहा जाता है। सन मिलाकर गौ के वाल की ४ हाथ लम्बी रस्सी बनानी चाहिए। इस रस्सी को चात्र में लपेट कर अग्नि प्रकट करने के लिए खिचा जाता है। स्थाली पाक के प्रकरण में पात्रोंका लक्षण लिखा जा चुका है।

ततो ब्रह्मा, सूर्यास्तमयसमीपे यजमानायोत्तराम-रणिं प्रयच्छेदधरारणिं पत्न्यै। ततो निशायामग्नि-धारणं, दम्पत्योर्जागरणमग्न्यगारे शयनं वा। ततोतीतायां रात्रावग्निमुपशमय्योषः काले नद्यादौ स्नात्वा,वस्त्रादिभिरा-च्छाद्य शुद्धा अपः प्रोक्षणाद्यर्थमाहरेत्ता अनुगुप्ता भवन्ति। अथ ताभिरद्भिरग्न्यगारं कुण्डं चोपलिप्याग्नेः पश्चिमतः पूर्णाहुत्यनन्तरं क्रियमाणसायंप्रातर्होमसमाप्तिपर्य्यन्तं वाग्यतावुपविशेयाताम्।

अर्थ—ब्रह्मा सूर्य्यास्त के समय यजमान को उत्तरारणी और उसकी स्त्री को अधरारणी दे देवे। रात्रि में यजमान और उसकी स्त्री अग्निशाला में धार्मिक कथा-वार्त्ता कहते सुनते जागरण करें अथवा सोवें। रात्रि के चौथे पहर में लाई हुई अग्नि को बुताकर नदी आदि जलाशय में स्नान करें। अग्नि प्रोक्षण के लिए वहीं से वस्त्र से ढाँक कर शुद्ध जल लावे। इस जल को "अनु गुप्ताः" कहते हैं। उस लाये हुए जल से कुण्ड के सहित अग्निशाला लीप देवे। पूर्णा-

हुति के पश्चात् सायं प्रातः होम समाप्त कर स्त्री पुरुष दोनो मौन व्रत धारण किये रहैं ।

तत्रैवोदितेऽनुदिते वा मन्थनम् । ततो ब्रह्माऽधरारणिमादायाग्नेः पश्चादुदगग्रां निधाय, तत्र देवयोनिं कल्पयेत् । "गृह्यासंग्रहे" । मूलादष्टाङ्गुलं त्यक्त्वा अग्राच्च द्वादशाङ्गुलम् । देवयोनिः स विज्ञेयस्तत्र मन्थ्यो हुताशनः"॥ देवयोनावेव मन्थननियमः प्रथमाधाने, न पुनराधाने । मन्थनरज्ज्वालम्भः पत्न्याः । पत्नीबहुत्वे जन्मतो विवाहतः क्रमेण सर्वासामालम्भः ।

अर्थ—इसी समय यजमान अपना व्रत निश्चय कर लेवे कि हम सूर्य्य रहते हुए सायं प्रातः होम करेंगे अथवा सूर्य्यास्त होने पर। यदि पहले पक्षका जिज्ञासु होतो सुर्य्योदय हो जानेपर और यदि दूसरे पक्ष का जिज्ञासु हो तो सूर्य्योदय से पहले अरणी मन्थन कर अग्नि प्रकट कर लेवे। ब्रह्मा अधरारणी ले कर कुण्ड के पश्चिम उत्तराग्र रखे। उसमें मंथन करने का स्थान बनावे। गृह्य संग्रह में लिखा है कि मूल के तरफ़ आठ अंगुल और आगे की तरफ़ बारह अंगुल छोड़ कर दोनो के मध्य चार अंगुल में अग्नि मन्थन का स्थान होना चाहिए उसी जगह पर अग्नि मन्थन करे। अरणी के नियत स्थान में ही अग्नि मन्थन करने का नियम पहले ही आधान में है। पुनरा धान में नहीं। स्त्री को अग्नि मन्थन के समय रज्जू का स्पर्श करना चाहिए। यदि बहुत स्त्री हों तो उन्हें जन्म या विवाह के क्रम से स्पर्श करना चाहिए।

मन्थनप्रकारः "कर्मप्रदीपे । यजमानः प्राङ्मुख उप-

विश्य, मन्थनदण्डमूले उत्तरारणिनिर्मितशङ्कु दृढं कृत्वा देवयोनौ निधाय, मन्थनदण्डस्थलोहकीलोपर्य्युदगग्रामोविलीं निधाय निष्कंपं स्तम्भयित्वा, पत्नीमन्थनदण्डं रज्ज्वा, त्रिरावेष्ट्य, प्राच्यां यथाग्नेर्निस्सरणं भवति तथा मन्थेत्। जातेऽग्नौ, ब्रह्मन् वरं ते ददामि। "वरश्चतुर्वर्षा गौरिति" गृह्य संग्रहः। जातमग्निं कांस्यपात्रे शरावे वा निधाय, कुण्डसंस्कारं कुर्यात्।

अर्थ—कर्म प्रदीप में अग्नि मन्थन की विधि यों लिखी है कि यजमान पूर्व मुख बैठ कर चात्र (मन्थ) में उत्तरारणी के शंकु को लगावे। मन्थ के ऊपर ओविली को रख कर दबावे और स्त्री मन्थ में तेहरा रस्सी लगा कर अग्नि प्रकट होने तक मन्थन करे। जब अग्नि प्रकट हो जावे तो "ब्रह्मन् वरं ददामि" कह कर ब्रह्मा को वर दक्षिणा प्रदान करे। गृह्यासंग्रह में लिखा है कि वर दक्षिणा में चार वर्ष की गौ देवे। अरणी से उत्पन्न अग्नि को मिट्टी या काँस के पात्र में रख देवे। कुण्ड का निम्नांकित संस्कार करे।

यथा। त्रिभिर्दर्भैः प्राञ्चामुदञ्चं वा त्रिः परिसमूह्य त्रिर्गोमयजलेन प्रागपवर्गमुपलिप्य, सव्यहस्तं भूमौ निधाय, पुष्प-फल-कुशान्यतमेन कुण्डस्य दक्षिणतो मध्यात्प्रागायतां द्वादशांगुलां पार्थिवीं पीतवर्णां रेखां ध्यात्वोल्लिखेत्। अथ तत्पश्चिमसंलग्नामुदगायतामेकविंशत्यंगुलामाग्नेयीं लोहितवर्णां रेखामुल्लिखेत्।

पूर्वा

अङ्गुल्यः २४

५ सौम्या १२ अ०

४ ऐन्द्रीप्रागायता अ० १०

३ प्राजापत्यप्रागायता अ० १०

पार्थिवीरेखोदगायता १२

उत्तरा

२ आग्नेयीरेखा अङ्गुल्यः २१

दक्षिणा

अङ्गुल्यः २४

पश्चिमाग्नेर्म निधाय अ० १२

अङ्गुल्यः २४

पश्चिमा अङ्गुल्यः २४

प्रागायतरेखाया उत्तरतः, प्रागायते प्रादेशमात्रे उदगायतरेखासंलग्ने सप्तसप्तांगुलान्तरिते उत्तरोत्तरे क्रमेण प्रजापतीन्द्रदेवनाके कृष्णनीलवर्णेद्वे रेखे उल्लिखेत् । पुनः सप्तांगुलान्तरितामाग्नेयीसंलग्नां प्रागायतां द्वादशाङ्गुलमितां सोमदेवनाकां शुक्लवर्णां रेखामुल्लिखेत् । उल्लेखनाद्यग्निस्थापनान्तं सव्यहस्तस्य भूमौ निधानम् । ततो रेखाभ्यो मृदमुद्धृत्य, कुण्डस्यैशानेऽरत्निमात्रे देशे

प्रक्षिप्यावाचीनहस्तस्थेन जलेन कुण्डं प्रोक्षयत्। एवं पञ्चभू-संस्काराः सर्वत्राग्निप्रतिष्ठापने।

अर्थ—तीन कुशाओं से अग्नि कुण्ड को पूर्व या उत्तर को झार देवे। क्रमशः पश्चिम से पूर्व को गोबर और जल से लीप देवे। स्पय पुष्प, फल अथवा कुशा से अग्नि कुण्ड के दक्षिण डेढ़ अंगुल और पश्चिम बारह अंगुल छोड़ कर पूर्व को बारह अंगुल की लम्बी पार्थिवी पीतवर्ण का ध्यान करते हुये रेखा करे। इसी रेखा के पश्चिम सिरा से लगी हुई आग्नेय लाल वर्ण की होने का ध्यान करता हुआ उत्तर को लम्बी इकीस अंगुल की रेखा करे। प्रथम रेखा से उत्तर क्रमश. सात सात अंगुल छोड़कर १२ अंगुल पूर्व को लम्बी दूसरी रेखा से मिली हुई प्रजापति, ऐन्द्री, सौम्या एवं काला, हरा, तथा सफेद वर्ण का ध्यान करता हुआ। तीन रेखायें कर देवे। रेखा करने से अग्नि स्थापन तक वाम हाथ को भूमि पर रक्खे। रेखाओं की उभड़ी मिट्टी को उठाकर अग्निकुण्ड के इशान्य कोन में फेक देवे। दाहिने हाथ से जल लेकर कुण्ड पर छिड़िक देवे। यह पंचभू संस्कार हरेक अग्नि-स्थापन कार्य में करना चाहिए।

ततो जातमग्निम्, भूर्भुवः स्वरिति प्रतिष्ठापयति। ततस्तूष्णीं समिधमादधाति। तत आज्यतन्त्रेण व्याहृतिहोमान्ते पूर्णाहुतिं जुहुयात्॥ अथ, भवनामानमग्निं पूजयेत्। स्रुवेण स्रुचि त्रिराज्यं गृहीत्वा, चतुर्थ-स्रुवेणोपायेन स्रुचं पूरयित्वा, प्रजापतिं मनसा ध्यायन्स्रुचा जुहोति। प्रजापतय इदन्न मम। अथवा, प्रजापतये स्वाहेति मनसोक्त्वा जुहोति। ततो व्याहृतिहोमाद्युपरिष्टात्तन्त्रं समा-

पयेत् । यज्ञवास्त्वन्ते, ब्रह्मन् गां ते ददामि । वासोयुगलन्ते ददामि । स्वधृतं पत्नीधृतञ्च वासोयुगलन्तत्वन्यत् । त्रयस्त्रिंशत्ततोऽधिकं वा ब्राह्मणान् भोजयेत् । ततस्तन्त्रेण सायंप्रातर्होमं कुर्य्यात् । प्रथमं सायं होमः । ततः प्रातर्होमः ॥

अर्थ—अरणी से प्रकट की हुई अग्निको "भूर्भुवः स्वः" इन व्याहृतियोंको पढ़ते हुये कुण्ड में स्थापित कर देवे । विना मन्त्र अग्नि में एक समिधा छोड़ देवे । आज्य संस्कृत कर व्याहृतियों से घृताहुति प्रदान कर तद् पश्चात् पूर्णाहुति प्रदान करे । भव नाम अग्नि की पूजा करे । स्रुवा से चार बार स्रुची में घृत लेकर "ओं प्रजापतये स्वाहा । प्रजापतय इदं न मम" मन्त्रसे पूर्णाहुति प्रदान कर देवे । पुनः भूरादि व्याहृतियों से आहुति प्रदान करे । यज्ञवास्तु करने के पश्चात् "ब्रह्मन् गांते ददामि" वाक्य को पढ़ कर ब्रह्मा को गौ दक्षिणा प्रदान करे । "वासो युगलन्ते ददामि" वाक्य से यजमान और उसकी स्त्री के पहने हुए ही वस्त्रों को प्रदान करे । ३३ अथवा इससे अधिक ब्राह्मणों को भोजन करावे । तद्नुपश्चात् एकही समय में प्रथम सायं काल की और उसके बाद प्रातः काल की आहुतियाँ प्रदान करे ।

ततो नान्दीश्राद्धपूर्वकं वैश्वदेवं बलिहरणञ्च । अत ऊर्द्ध्वं सायमाहुत्युपक्रमः । तत्प्रयोगमनुपदमेव वक्ष्यामि ॥

अर्थ—नान्दी श्राद्ध कर बलि वैश्वदेव का आरम्भ करे । इन उपरोक्त कार्यों के पश्चात् सायं आहुति से नित्य होम का आरम्भ करे । नित्य सायं प्रातः होम की विधि इस आधान प्रयोग के पश्चात् लिखेंगे ।

आहरणपक्षे, अरणिप्रदानमन्थनानि वर्ज्जयित्वा,

अन्यत्सर्वं पूर्ववत्कुर्य्यात् ॥ ब्राह्मणराजन्यवैश्यबहुयाज्यम्बरीषाणामन्यतमगृहात्प्रातरग्निमाहृत्य स्थापयेदिति विशेषः । पितरि मृते, एकादशेऽन्हि नान्दीश्राद्धं विनोक्तविधिना भोजनं विहाय प्रातस्सद्य एवाधानं कुर्य्यात् ॥

यदि ब्राह्मण आदि के गृह से अग्नि लाकर उसी को गृह्याग्नि नियत करना हो तो अरणि मन्थन न करे। शेष सब विधियों को करके प्रातः काल पुनः वहु यज्ञ करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा भड़भूज के गृह से अग्नि लाकर अग्नि-कुण्ड में स्थापित करे । यदि पिता आदि गृह-स्वामी के मरण पश्चात् आधान करना हो तो एकादशाह के ही दिन करे । एकादशाह के दिन आधान कर्त्ता यजमान को आधन के निमित्त नान्दी श्राद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती । रात के जागरण और लाई हुई अग्नि में हवि पकाकर भोजन की विधियों को भी न करे । प्रातः समय तत्काल ही अग्नि लाकर स्थापन कर लेवे ।

तस्मिन्नेव दिने सायमाहुत्युपक्रमः। द्वादशेऽन्हि सपिण्डीकरणम् । "तदुक्तं 'कात्यायनेन' । एतद्गृहपतौ प्रेते कुर्यादेकादशेऽहनि । प्रागेवैकादशश्राद्धं सद्यो जागरणादिकम्"॥

अर्थ—यदि पिता आदि गृह स्वामी के मरण समय से ग्यारहवे दिन प्रातः समय आधान करे तो उसी दिन के सायंकाल ही से आहुति देना आरम्भ कर देवे। कात्यायन का वचन है कि गृह स्वामी के मरण पश्चात् ग्यारहवे दिन प्रातः काल ही जागरण आदि

कृत्यों के विना किए ही ब्राह्मणादि के गृह से अग्नि लाकर अथवा अरणि मन्थन कर स्थापन कर देवे । आधान कार्य के पश्चात् एकादशाह आदि श्राद्ध कृत्य सम्पन्न करे । सपिण्डन कार्य को बारहवें दिन करे ।

अन्त्यसमिदाधानकालिकाधाने विशेषः । यत्रान्त्यसमिदाधानं स एव गृह्योऽग्निः । नान्दीश्राद्धं कृत्वाऽस्याग्नेर्गृह्याग्नित्वसिद्धयेऽन्त्यसमिदाधानं करिष्य इति विशेषः । तत्कृत्वा समावर्त्तनं चानुष्ठाय सायमाहुत्युपक्रमं कुर्यात् । विवाहकालिकाधाने विशेषः । यस्मिन्नग्नौ विवाहः स एव गृह्योऽग्निः । नात्र कश्चन पूर्णाहुतिसंस्कारस्तथापि किञ्चित्संकल्पे विशेषः । भार्य्यात्वसिद्धये अस्याग्नेर्गृह्याग्नित्वसिद्धये च, विवाहहोमं करिष्ये । एवं विवाह-होमं कृत्वा सायमाहुत्युपक्रमः ॥

अर्थ—यदि समावर्त्तन संस्कार संबन्धी अग्नि को ही गृह्याग्नि नियत करना हो तो नान्दी श्राद्ध के पश्चात् संकल्प में "अस्याग्नेर्गृह्याग्नित्व सिद्धये अन्त्य समिदाधानं करिष्ये" वाक्य का विशेष योजना करे । समावर्त्तन कृत्य समाप्त कर अग्नि को सुरक्षित रक्खे और उसी में सायंकाल से आहुति प्रदान करना आरम्भ कर देवे । विवाह संस्कार संबन्धी अग्नि को गृह्याग्नि नियत करने में भी पूर्णाहुति आदि कोई विशेष कृत्य न होंगे । केवल संकल्प में "भार्य्यात्व सिद्धये अस्याग्नेर्गृह्याग्नित्व सिद्धये च, विवाह होमं करिष्ये" इस वाक्य का योजना करे । विवाह कृत्य समाप्त कर उसी में सायंकाल की आहुति से होम करना आरम्भ कर देवे ।

अथ विच्छिन्नाधानप्रयोगः ॥ "अग्न्यगारं तथा श्राद्धं क्षौमाणाञ्चैव धारणम्। अवृत्तौ नैव युञ्जीत श्वोभूते मन्थनं तथेति" परिशिष्टोक्तेः। अग्न्यगारकरणनान्द्यहतवस्त्रधारणारणिप्रदानजागरणाग्निधारणाग्निप्रशमनानि वर्ज्जयेत्। अतिक्रान्तदिनपरिगणनया होम-द्रव्यं दत्वा, विच्छिन्नसन्धानार्थं गृह्याग्निमाधास्ये, अथवा, पुनराधानं करिष्ये इति संकल्प्य सद्यः पूर्वारणिं मथित्वा, पूर्वायतने स्थापयतीति मथिताग्न्याधाने। आहृताग्न्याधाने तु, पूर्वोक्तगृहादग्निमाहृत्य पूर्वायतने स्थापयेत्।

अर्थ—अब विच्छिन्नाधान का प्रयोग लिखा जाता है। गृह्य पारिशिष्ट का वचन है कि इस आधानमें नूतन अग्निशाला निर्माणकी आवश्यकता नहीं होती। नान्दी श्राद्ध, नवीन वस्त्रों का धारण, ब्रह्मा का अरणि प्रदान, रात्रि में जागरण, जागरणाग्नि का धारण और उसे प्रात. काल प्रसमन इत्यादि कृत्य विच्छिन्नाधान में अनावश्यक हैं। स्नान सन्ध्योपासन के पश्चात् आचमन प्राणायाम करे। देश काल का स्मरण कर "अतिक्रान्तदिनपरिगणनया होम द्रव्यं ब्राह्मणाय अहं संप्रददे, दत्वा च, विच्छिन्न सन्धानार्थं गृह्याग्नि माधास्ये" या "पुनराधानं करिष्ये" संकल्पकर होमीय द्रव्य ब्राह्मण को प्रदान कर देवे। उसी समय अरणि मन्थन करे। कुण्ड का परिसमूहनादि संस्कार कर अग्नि का स्थापन करे। यदि प्रथम ब्राह्मणादि के गृह से लाकर अग्नि स्थापन किया हो तो उसी कुल से अग्नि लाकर स्थापन करे।

तत्राज्यतन्त्रेण व्याहृतित्रयहोमान्ते, कस्तेजामि

रित्यध्यायेनाग्निमुपस्थायाग्निमीड अग्न आयाह्यग्नि भिः ३ अग्न आयाहि वीतयेतिस्त्रोऽग्निर्ज्योतिः पुनरूर्जा अग्निं दूतं अग्नेमृड इत्येतैर्मन्त्रैरष्टाज्याहुतीर्हुत्वा, पूर्णाहुत्यादिकं सर्वं पूर्ववत्समापयेत् ॥

अर्थ—दर्श पूर्णमास विधि में लिखे हुए अनुसार आज्य संस्कार कर भूरादि व्याहृतियों से घृत की तीन आहुति प्रदान करे। आहुति प्रदान के पश्चात् "कस्तेजाम्" इत्यादि एक अध्याय के सम्पूर्ण मन्त्रों को पढ़कर अग्नि का उपस्थान (स्तुति) करे। उपस्थान के पश्चात् "अग्निमीडे" इत्यादि आठ मन्त्रों से घृताहुति और प्रजापतये स्वाहा। प्रजापतय इदं न मम" से पूर्णाहुति। प्रदान की जायेंगी।

अथोपस्थानमन्त्रप्रकाशस्तस्य ऋष्यादयः।

अर्थ—उपस्थान और आहुतियों के मन्त्रों को विधि के साथ नीचे लिखा जाता है। व्याहृतियों से घृताहुति प्रदान करने के पश्चात् हाथ जोड़कर—

कस्तेजामिरिति गोतमो गायत्र्यग्निः। ईडेभ्यो विश्वामित्रो गायत्र्यग्निः। उत्तेबृहन्तो इत्यस्य विरूपो गायत्र्यग्निः। पाहि नो अग्न इत्यस्य भर्गो गायत्र्यग्निः। इनो राजन्निति त्रितस्त्रिष्टुबग्निरुद्रसूर्याः। कयान इत्युशना गायत्र्यग्निः। अग्न आयाहीत्यस्य भर्गो बृहत्यग्निः। अच्छानः सुदीतिर्बृहत्यग्निः। अदाभ्यो विश्वामित्रो गायत्र्यग्निः। भद्रो न इति सोम उष्णिगग्निः। अग्ने

वाजस्येति गोतम ऋषिरग्निः । विशोविशो व इति गोपवनः प्रथमाया अनुष्टुप् गायत्र्युत्तरयोरग्निः । समिद्धमिति भारद्वाजो जगत्यग्निः । उप त्वाऽग्निरिति गात्र्यग्निः अग्न्युपस्थाने विनियोगः ।

इत्यादि मन्त्रों के ऋषि देवता छन्द और विनियोग का स्मरण करे। तद् पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से उपस्थान करे।

कस्ते जामिर्जनानामग्ने कोदाश्वध्वरः । कोह कस्मिन्नसि श्रितः। त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्यईड्यः । यजानो मित्रावरुणा यजादेवाꣳऋतं बृहत् । आग्नेयद्धिस्वंदम॥१॥ ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमाꣳसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा । वृषो अग्निः समिध्यतेश्वोन देववाहनः । तꣳहविष्मंत ईडते। वृषणन्त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ २ ॥ उत्ते बृहन्ता अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥ उप त्वा जुव्हो कंप ३३ मम घृताची यंतु हर्यत ॥ अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ मंद्रꣳहोतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । अग्निमीडे स उश्रवत् ॥ ३ ॥ पाहि नो अग्नएकया

पाह्यु३ऽ३त द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्ज्जांपते
पाहि चतसृभिर्वसो । पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्रस्म
वाजेषु नोऽव । त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं न क्षामहे
वृधे ॥४॥ इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अ-
दर्शि । चिकिद्विभाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपा-
जन् । कृष्णां यदेनीमभिवर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितु-
र्जाम् ऊर्द्ध्वं भानुँ सूर्यस्य स्तभायं दिवो वसुभिररतिर्वि-
भाति । भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति
पश्चात् । सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्था
त् ॥५॥ कयाते अग्ने अंगिर ऊर्ज्जोनपादुपस्तुतिं वराय देव
मन्यवे । दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसोयहो कदु वोच
इदं नमः । अधात्वँ हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यँ सुक्षितीः ।
वाजद्रविणसो गिरः ॥ ६ ॥ अग्न आयाह्यग्निभिर्होतारं
त्वा वृणीमहे । आ त्वामनुक्त प्रयता हविष्मती यजिष्ठं
बर्हिरासदे । अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अंगिरः स्रुचश्च-
रन्त्यध्वरे । ऊर्ज्जोनपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पू-

र्य्यं ॥ ७ ॥ अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यंतु दर्शतं । अच्छा
यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये । अग्निꣳसूनुꣳस-
हसो जातवेदसं दानाय वार्याणां । द्विता यो भूदमृतो मर्त्ये-
ष्वाहोता मंद्रतमो विशि ॥ ८ ॥ अदाभ्यः पुर एता विशा-
मग्निर्मानुषीणां तूर्णी रथः सदानवः । अभि प्रयाꣳसि
वाहसा दाश्वाꣳअश्नोतिमर्त्यः । क्षयं पावक शोचिषः ।
साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुवि-
श्रवस्तमः । भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रारातिः सुभग भद्रो
अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः । भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्य्ये
येनासमत्सु सासहिः । अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्द्धतां वने
मा ते अभिष्टये ॥ १० ॥ अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः
सहसो यह्वो । अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः । स इधानो
वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ।
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजंभ
रक्षसो दह प्रति । विशोविशो वो अतिथिं वाजयंतः पुरु-
प्रियं । अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः । यं जनासो

हविष्मंतो मित्रं न सर्पिरासुतिं । प्रशꣳसंति प्रशस्तिभिः ।
पन्याꣳसंजानवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि
॥ १२ ॥ समिद्धमग्निꣳसमिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो
अध्वरे ध्रुवं । विप्रꣳहोतारं पुरुवारमद्रुहं कविꣳसुम्नैरीमहे
जातवेदसं । त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे
पायुमीड्यम् । देवासश्च मर्त्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं
नमसा निषेदिरे । विभूषन्नग्न उभयाꣳअनुव्रता दूतो देवाना-
ꣳरजसी समीयसे । यत्ते धीतिꣳसुमतिमावृणीमहे ऽधस्मा-
नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ १३ ॥ उप त्वा जामयो गिरो
देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् । यस्य त्रिधात्व-
वृतं बर्हिस्तस्थावसंदिनं । आपश्चिन्निदधा पदं । पदं देवस्य
मीढुषोनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ १४ ॥

इत्यर्द्धः प्रपाठकः ॥

अर्थ—इन आधे प्रपाठक के चौदह मन्त्रों से अग्नि का उपस्थान (स्तुति) करे ।

ततोऽष्टावाज्याहुतयस्तत्र मन्त्राः ।

अर्थ—नीचे लिखे हुए होमीय मन्त्रों के ऋषि, देवता, छन्द और

विनियोग का स्मरण करे। स्रुची मे चार चार स्रुवा घी लेकर इन निम्नाङ्कित मन्त्रों से आठ आहुतियों को प्रदान करे।

अग्निमीड इति मधुच्छन्दा अग्न आयाह्यग्निरिति भर्गः। अग्न आयाहि वीतय इत्यस्य भारद्वाजः। अग्निर्ज्योतिस्त्रयाणां प्रजापतिः। अग्निंदूतमित्यस्य मेधातिथिः। अग्ने मृड इत्यस्य वामदेवः सप्तानां गायत्री। अग्न आयाह्यग्निर्बृहती सर्वेषामग्निर्देवताऽऽज्यहोमे विनियोगः॥

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं । होतारꣳरत्नधातमम् ॥ १ ॥ अग्न आयाह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे। आ त्वामनुक्त प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २ ॥ अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। निहोता सत्सि बर्हिषि॥ ३ ॥ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः। सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः॥ ४ ॥ पुनरूर्ज्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा। पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥ ५ ॥ सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ६ ॥ अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ॥ ७ ॥ अग्ने मृड महाꣳअस्यय आ देवयुंजनं। इयेथ बर्हिरासदं ॥ ८ ॥

अग्नय इदं न ममेतित्यागः। एभिर्मन्त्रैराज्याहुत्यष्टकं हुत्वा ततः पूर्णाहुत्यादिकं पूर्ववत्सायं प्रातर्होमौ तन्त्रेणाधानांगभूतौ तदैव ॥ इत्याधानप्रयोगः ॥

घृताहुतियों को प्रदान कर पूर्णाहुति प्रदान करें इसी समय सायं और प्रातःकाल की आहुतियों को प्रदान करें। इस समय की सायं और प्रात.काल की आहुतियों को आधान का अङ्ग कहते हैं। यही पूर्वोक्त आधान अर्थात् अग्निस्थापन की विधि है।

अथ सायमारभ्यौपासनहोमः। तदुक्तं गोभिलेन। सूत्रम्। ‘सायमाहुत्युपक्रम एवात ऊर्द्ध्वं गृह्येऽग्नौ होमो विधीयते”। अत ऊर्द्ध्वमाधानादूर्द्ध्वं। स्पष्टमन्यत्। तस्य प्रयोगः। सायं येन हविषा हूयते तेनैव हविषा प्रातर्होमो निर्वर्त्तनीयः ॥

अर्थ—सायंकाल से आरम्भ कर प्रात. काल तक औपासन होम की विधिः—गोभिलाचार्य्य ने आधान के पश्चात् सायंकाल की आहुति से आरम्भ कर गृह्याग्नि में नित्य होम करने की विधि को गोभिलगृह्य सूत्र में अङ्कित किया है। इस सायं और प्रातःकाल के नित्य होम में यव, चावल, दही, दूध यवागू इत्यादि होमीय हवि हैं। इन हवियों में से जिस हवि से सायंकाल की आहुति प्रदान करे उसी हवि से प्रातःकाल की आहुति प्रदान करना चाहिए।

अथ यजमानश्शुचिः प्रक्षालितपाणिपाद आचान्तः पत्न्या सह सूर्य्यास्तमयात्पूर्वमधिवृक्षसूर्य्ये सूर्योदयात्पूर्वमाविस्सूर्य्ये सायमौपासनहोमं होष्यामीति सायम्, प्रातरौपासनहोमं होष्यामीति प्रातस्संकल्प्य, होमसमाप्तिपर्य-

न्तमाचमनपर्युक्षणाद्यग्निपरिचर्योपयुक्ता अपः परिकल्पयेत् । समिद्द्वयं होमद्रव्यं जलपूर्णं चमसं चाग्नेः पश्चादासादयेत् । अथवा, सायमेवापः परि गृह्य ताभिरेव प्रातरग्निपरिचर्या कर्त्तव्या । अथवा, महतोजलभाण्डादेवाग्निपरिचर्य्यार्थं ग्राह्यम् ।

अर्थ—जब कुछ समय सूर्य्यास्त होने में शेष रहे तभी सायंकाल और सूर्य्योदय से पहले ही प्रातःकाल यजमान पत्नीके हाथ पाँव धो आचमन कर पवित्र हो लेवे। देश काल स्मरण करने के पश्चात् " सायमौपासन होमं होष्यामि " सायं काल में और "प्रातरौपासन-होमं होष्यामि" प्रातकालमें योजना कर संकल्प करे। अग्नि कुण्ड के पश्चिम क्रमशः पूर्व पूर्व को अग्नि पर्युक्षण आदि कार्य के लिए पर्याप्त और पवित्र जल, दो समिधा, आहुति के लिये जौ, या चावल आदि में से कोई एक द्रव्य और जल पूर्ण प्रणीता रक्खे। यह भी हो सक्ता है कि साय काल में किसी नदी अथवा कूआँ से पवित्र जल ला कर प्रणीता मे भर देवे। उसी जल से साय काल के अग्निहोत्र कार्य को सम्पन्न कर रहने देवे और पुनः उसी जल से प्रात काल के होम कृत्य को सम्पन्न करे। अथवा किसी बड़े घडा में जल ला कर रख देवे। उसी में से प्रयोजन के अनुसार ले ले कर सायं और प्रातः होम कार्य्यों को सम्पन्न करे।

तमस्सूर्यास्तमयात्पूर्वमग्निप्रज्वलनंकृत्वाऽस्तमिस्ने सायमाहुतिम्, उदयात्पूर्वं प्रज्वलनङ्कृत्वा सूर्योदयात्पूर्वं सूर्योदये जाते वा प्रातराहुतिञ्जुहुयात् ।व्यवस्थितोऽयं विकल्पो यथारम्भङ्गोभिलसूत्रिणाम् । ततस्तूष्णीमग्नौ समिधं प्रक्षि-

ध्याग्निं प्रज्वाल्य तत्र तत्र विक्षिप्ताग्निकणान्तृणाणि कुशैर-
ग्नौ कुर्यात्। तदेव परिसमूहनम्। दक्षिणजानु भूमौ संस्था-
प्य चमसोदकमादायाग्नेर्दक्षिणतो निर्ऋतिमारभ्याग्निदिक-
पर्य्यन्तं सन्ततामुदकधारामञ्जलिना कुर्यादिदितेऽनुमन्यस्वेति
मन्त्रेण। एवमग्नेः पश्चान्निर्ऋतिमारभ्य वायुदिकपर्य्यन्तम-
ञ्जलिना सिञ्चेदनुमतेऽनुमन्यस्वेति मन्त्रेण। अग्नेरुत्त-
रतो वायुदिशमारभ्यैशानपर्य्यन्तमञ्जलिनोदकधारां कुर्या-
त्सरस्वत्यनुमन्यस्वेति मन्त्रेण। एषां मंत्राणां प्रजाप-
तिर्ऋषिरेकपदागायत्रीछन्दोऽदित्यनुमतिसरस्वत्यो देवता
उदकाञ्जलिसेचने विनियोगः। ततोऽञ्जलिनोदक-
मादाय देवसवितरित्यनेन मन्त्रेण सकृत्त्रिर्वाऽग्निं प्रद-
क्षिणं परिषिञ्चति। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजु-
स्सवितादेवताऽनुपर्य्युक्षणे विनियोगः। देव सवितः प्रसुव
यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः
पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु।

अर्थ—सायंकाल सूर्य्यास्त से और प्रातः काल उदय से पहले अग्नि को प्रज्वलित कर देवे। सायं काल में सूर्य्यास्त हो जाने पर और प्रात. काल सूर्य्योदय से पहले, अथवा सायं काल में सूर्य्यास्त से पहले और प्रातः काल उदय हो जाने के पश्चात् आहुति प्रदान करना चाहिए। यह अग्नि होत्र का समय गोभिल गृह्य सूत्र वालों के लिए विकल्प होते हुए निश्चित भी है कि यदि सायं काल की आहुति रात में प्रदान करे तो प्रात. काल की आहुति को भी रात ही में होना चाहिये। यदि सूर्य्यास्त से पहले दी गई हो तो प्रातः

काल भी सूर्योदय हो जाने पर देना चाहिए। विला मन्त्र अग्नि में एक समिध छोड उसे प्रज्वलित कर देवे। इतः ततः विखरे हुए अंगारों को विला मन्त्र कुशा से एकत्रित कर देवे। इसी अग्नि विस फुलिंगों को एकत्रित करने को परिसमूहन कहते हैं। दाहिने घुटने को भूमि पर टेक कर ऋष्यादि का स्मरण करे। प्रणीता से चिल्लू में जल ले ले कर—"अदिते अनुमन्यस्व" से अग्नि के दक्षिण नैऋत्य से आग्नेय तक, "अनुमते अनुमन्यस्व" से पश्चिम निऋ त्य से वायव्य तक, "सरस्वत्य अनुमन्यस्व" से अग्नि के उत्तर वायव्य से इशान्य तक जलांजलि प्रदान करे। 'देवसवितः०" मन्त्र को ऋष्यादि स्मरण पूर्वक पढ़ता हुआ इशान्य से आरम्भ कर अग्नि कुण्ड के चारो तरफ एक अथवा तीन जल धारा देवे।

पर्युक्षणे विशेषः। पर्युक्षणारम्भकोटिमभ्यन्तरतो-ऽवसानकोटिञ्च बहिः कुर्वन् होमीयद्रव्यं पर्युक्षणधारया अभ्यन्तरतः कुर्वन्परिषिञ्चेत्। एवं सर्वत्र स्थालीपाका-दिषूदकाञ्जलित्रयं पर्युक्षणञ्च कार्यम्। भवनामानमग्निं ध्यायेत्। "तदुक्तं" गृह्यासङ्ग्रहे। आवसथ्ये भवो ज्ञेयो वैश्वदेवे तु पावकः"। आवसथ्यस्यैव गृह्याग्निरौपासनाग्नि-रिति च नामान्तरमिति व्याख्यातारः॥

अर्थ—पर्य्युक्षण कार्य्य में इस विषय पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि होमीय द्रव्यों से आरम्भिक जल धाराएँ अन्तर और अन्तिम को बाहर पड़ें। इसी प्रकार स्थालीपाकादि प्रत्येक होम कार्य्यों में पर्यु क्षण करना चाहिए। भव नाम अग्नि का ध्यान करे। गृह्यासंग्रह में लिखा है कि "आवसथ्याग्नि में भव, वैश्वदेव

के समय में पावक जान कर ध्यान करना चाहिए । गृह्याग्नि और औपासनाग्नि आवसथ्याग्निकाही नामान्तर है" ।

अथ तूष्णीं समिधमाधाय, त्रिःप्रक्षालितान् प्रगतोदकान् पात्रस्थान्तण्डुलान्यवान् व्रीहीन्वा गृहीत्वाऽग्नये स्वाहेति दक्षिणहस्तेन मध्येऽग्नौ जुहोति । अग्नय इदं न मम । पुनरवशिष्टं हविरादाय प्रजापतये स्वाहेति मनसोक्त्वोत्तरार्द्धपूर्वार्द्धे जुहोति । प्रजापतय इदं न ममेति सायम । प्रातःकाले । सूर्याय स्वाहा । सूर्यायेदं न मम । प्रजापतये स्वाहा । प्रजापतय इदं न ममेति विशेषः । अथवा, दध्ना पयसा यवाग्वाऽन्नेन वा जुहुयात् । यवाग्वा अन्नस्य पयसश्च गृह्याग्नावेव श्रपणम् ।

अर्थ—पर्युक्षण के पश्चात् अग्नि में एक समिधि छोड़ देवे। चावल अथवा यवादि जो द्रव्य होम के लिये आसादित की गई हो उसे तीन बार धो लेवे । द्वादश पर्व पूरित द्रव्य दाहिने हाथ से उठा कर "अग्नये स्वाहा । अग्नय इदं न मम" अग्नि के मध्य आहुति प्रदान कर देवे । पुनः पूर्वोक्त रित्यानुसार होमीय द्रव्य को ले कर "प्रजापतये स्वाहा । प्रजापतय इदं न मम" मन्त्र को मन में ही स्मरण करता हुआ ईशान्य में आहुति प्रदान करे । यही सायं काल का होम कार्य है । प्रातः काल में "सूर्य्याय स्वाहा । सूर्य्यायेदं न मम । प्रजापतये स्वाहा । प्रजापतय इदं न मम" इन मन्त्रों से आहुति प्रदान करे । सायं और प्रात. काल के अग्निहोत्र में केवल इतनाहीं विशेष है कि साय काल की प्रथम आहुति "अग्नये स्वाहा" एवं प्रातः काल की प्रथम आहुति "सूर्य्याय स्वाहा" मन्त्र से प्रदान की जाती हैं । शेष सब कृत्य समान्य होता । है यदि दही दूध अथवा

उपरोक्त सायं प्रातः आहुतियाँ यव के भात के माड़, दही अथवा दूध से भी दी जा सकती हैं। उपरोक्त होमीय द्रव्यों में यवागू और दूध को पकाने की आवश्यकता होती है और उन्हें इसी गृह्याग्नि में ही पकाना चाहिए।

द्रवद्रव्ये स्रुवापूरितेन जुहुयात्। तदभावे, कांस्यपात्रेण चरुस्थाल्या वा। कठिनद्रव्यं तु, दक्षिणपाणिना जुहुयात्। व्रीह्यादिप्रमाणं द्वादशपर्वपूरणमात्रम्॥

अर्थ—चावल आदि द्रव्यों की आहुतियाँ तो हाथही से प्रदान की जाती हैं परन्तु दही आदि द्रव द्रव्यों को स्रुवा अथवा काँस के कसोरे आदि से होम करना चाहिये। चावल आदि कठिन द्रव्यों का मान द्वादशपर्व पूरित और द्रव द्रव्यों का स्रुवाभर होना चाहिए।

अथ तूष्णीं समिधमाधाय, देवसवितरिति पूर्ववत्पर्य्युक्षणमुदकाञ्जलिसेचनञ्च कुर्यात्। तत्र मन्त्रविशेषः। अदितेऽन्वमꣳस्थाः। अनुमतेऽन्वमꣳस्थाः। सरस्वत्यन्वमꣳस्थाः। अन्यत्पूर्ववत्॥ अथ प्रदक्षिणमग्निं परिक्रम्याग्निपरिचर्यार्थं यस्मिंश्चमसे पात्रे वा जलं स्थापितं, तदगाराद्बहिरवनीयान्येनोदकेन चमसं प्रक्षाल्य पूरयित्वा स्वस्थाने निधाय, नमस्कारान्विधाय वामदेव्यं गीत्वाऽऽचम्य ब्रह्मार्पणं कुर्य्यात्। एवं सायंप्रातर्होमो यावज्जीवं कर्त्तव्यः। प्रवासे पत्न्या ऋत्विगादिभिर्वा कार्य इत्यधस्तान्निरूपितम्। इत्यौपासनप्रयोगः॥

अर्थ—आहुतिओं को प्रदान करने के पश्चात् बिना मन्त्र एक समिध अग्नि में चढ़ा देवे "अदितेऽन्वमꣳस्थाः । अनुमतेऽन्वमꣳस्थाः । सरस्वत्यन्वमꣳस्थाः" इन मन्त्रों में विशेष पद के साथ और "देव सवितः०" मन्त्र को पूर्ववत पढ़ कर पूर्व रित्यानुसार अग्नि कुण्ड के चारों ओर जल धारा प्रदान करे। अग्नि की परिक्रमा करे। अग्नि परिचरण के लिए। प्रणीता के जल को फेंक कर उसे धो देवे। प्रणीता में जल भर कर सुरक्षित रख देवे। नमस्कार कर पृष्ठ ४३ में लिखे हुए वामदेव्य साम का गान करे। आचमन कर स्व कर्म को ब्रह्मार्पण कर देवे। इस प्रकार जीवन पर्यन्त होम करता रहे। यदि गृहस्वामी किसी कार्य वस गृह से बाहर चला गया हो तो उसकी स्त्री स्वयं अथवा किसी ऋत्विक आदि के द्वारा सायं प्रातः होम, दर्श पूर्णमास आदि यज्ञों का सम्पादन करे। प्रवास विधि को आगे चल कर स्पष्ट निरूपण करेंगे। यही पूर्वोक्त साय प्रातः उपासन होम का विधि है।

अथोक्तप्रयोग क्रमः सुबोधाय लिख्यते ॥ तत्रादौ संकल्पः। प्रादुष्करणम्। परिचर्य्याऽर्थोदकाहरणम्। तण्डुलादिहोमद्रव्यक्षालनं। अग्नौ बहुकाष्ठप्रक्षेपणम्। परिसमूहनम्। उदकाञ्जलिसेचनम्। पर्य्युक्षणम्। एकसमित्प्रक्षेपणम्। प्रधानहोमः। पुनरेकसमित्प्रक्षेपणम्। अनुपर्य्युक्षणम्। उदकाञ्जलिसेचनम्। प्रदक्षिणादि। शेषजलनिनयनं। चमसपूरणम्। चमसस्थापनम्। वामदेव्यगानम्। ब्रह्मार्पणम् इति प्रयोगक्रमः। गृह्योऽग्निर्नित्यो धार्यश्च।

अर्थ—सुगम से समझ में आजाने के लिए पहले लिखी हुई होम

को पद्धति लिखते हैं। प्रथम स्नान, सन्ध्योपासन कर अग्नि को प्रज्वलित कर देवे। अग्नि-कुण्ड के उत्तर क्रमशः पूर्व २ को जल पूर्ण प्रणीता, दो समिध, होम करने के लिए चावल आदि जो होमीय द्रव्य हों उसे आसादन करे। यदि आहुति के लिए चावल आदि सूखी द्रव्य हो तो उसे तीन बार धो देवे। यदि दही हो तो उसे केवल प्रोक्षण कर देवे। यदि दूध या यवागू हो तो उन्हे इसी अग्नि कुण्ड से अग्नि अलग करके पका लेना चाहिए। अग्नि में इन्धन छोड़कर "इमँ स्तोममिति तिसृणां प्रजापतिः ऋषिः जगती छन्दोऽग्निर्देवता-परि समूहने विनियोगः। ओ३म् इमँ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सम्महेमा मनीषया। भद्राहिनः प्रमतिरस्यसँ सद्यग्ने सख्ये मारिषामा वयंतव। भरामेध्मं कृणवामा हवीँषि ते चितयन्तः प्रवर्णा प्रवर्णा वयम्। जीवातवे प्रतराँ साधया धियोऽग्ने सख्ये मारिषामा वयन्तव। शकेमत्वा समिध ँ साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्या हुतम्। त्वामादित्या ँ आवह तान् ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मारिषामा वयन्तव"। मन्त्रों से अग्निके बिखरे हुए अंगारों को कुशा से एकत्रित कर देवे। चिल्लू से जल ले ले कर "अदिते अनुमन्यस्व अनुते अनुमन्यस्व सरस्वत्यऽनुमन्यस्व देव सवितः प्रसुव यज्ञ प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। केतपूः केतन्नः वाचस्पति वाचन्नः स्वदतु" मन्त्र से अग्नि कुण्ड के चारो तरफ एक अथवा तीन जल धारा देवे। एक समिध अग्नि में छोड़ देवे। यदि चावल आदि सूखो द्रव्य हों तो दाहिने हाथ के द्वादश पर्व पूरित, यदि दूध आदि द्रव द्रव्य हो तो स्रुवा भर ले कर "ओ३म् अग्नये स्वाहा। अग्नय इदन्न मम। ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। प्रजापतय इदन्न मम" इन दो आहुतियों को सायं काल में एवं "ओ३म् सूर्य्याय स्वाहा। सूर्य्याय इदं न मम। ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। प्रजापतय इद न मम" इन दो मन्त्रों से आहुतियों को प्रातः काल प्रदान करे। एक समिध अग्नि में छोडे देवे। पहले के समान

"अदितेऽनुमᳫँस्व । अनुमतेऽनुमᳫँस्व । सरस्वतेऽनुमᳫँस्व । देव सवितः" इन मन्त्रों से अग्नि पर्य्युक्षण करें । अग्नि की परिक्रमा करे । चमस के शेष जल को गिराकर अग्निदेव के लिए इसमें जल भरकर रख देवें । वामदेव्य साम का गान करें । कर्म का समापन करे । यही नित्य सायं प्रातः करने की होम पद्धति है । इस होमाधार गृह्याग्नि को अविच्छिन्न सुरक्षित रखना चाहिए ।

अनुगतश्चेन्मथ्यः स्यात् आहार्यो वा यथाऽऽरम्भम् । तत्र कात्यायनोक्तमत्रैव प्रायश्चित्तहोमः । तत्प्रयोगः । विधिवदग्निं प्रतिष्ठाप्य तूष्णीं परिसमूह्याज्यं संस्कृत्य स्रुवं संमृज्य पर्य्युक्ष्य तूष्णीं समिधमाधायाज्येन, भूः स्वाहा । अग्नय इदं न मम । भुवः स्वाहा । वायव इदं न मम । स्वः स्वाहा । सूर्यायेदं न मम । भूर्भुवः स्वः स्वाहा । प्रजापतय इदं न ममेतिहुत्वा समिदाधानादिशेषं समापयेत् । इदमेव प्रायश्चित्तं प्रादुष्करणकालातिक्रमेऽपि कर्त्तव्यम् ।

अर्थ—इस गृह्याग्नि को कभी बुझने न देवें । यदि दैवात् बुझि जावे तो तत्काल ब्राह्मणादि के गृह से लाकर सुरक्षित रक्खे । यदि आधान के समय अरणी मन्थन करके अग्नि रक्खी गई हो तो उसी अरणी को मन्थन कर प्रकट की हुई अग्नि को स्थापित करे । उसे सर्वथा सुरक्षित रक्खे । ऐसी दशा में कात्यायन ऋषि ने प्रायश्चित्तात्मक होम करने को लिखा है । उसकी विधि निम्नांकित है । गोमय से लीप और रेखाङ्कन आदि से कुण्ड को संस्कृत कर अग्नि स्थापन करें । विना मन्त्रों के अग्नि का परिसमूहन करे । घृत का उत्पवन आदि संस्कार कर स्रुवा को अग्नि पर तपावे और समार्जन कर लेवे । अग्नि का

पर्य्युक्षण कर विना मन्त्र अग्नि में एक समिध चढ़ा देवे। स्रुवा से घृत ले लेकर "ओं भूः स्वाहा। अग्नय इदं न मम। भुवः स्वाहा। वायव इदं न मम। ओं स्वः स्वाहा। सूर्य्याय इदं न मम। ओ भूर्भुवः स्वः स्वाहा प्रजापतय इदं नमम" इन चार आहुतियों को प्रदान करे। एक समिध को अग्नि में चढ़ाकर अग्नि का अनु पर्युक्षण करे। यही प्रायश्चित्त होम है। यदि सायं प्रातः होम, दर्शपौर्णमास, वैश्वदेव आदि यज्ञों को यथोक्त समय पर न कर सके तो उक्त यज्ञों के दूसरे समय उपस्थित होने से पहले इन्हीं प्रायश्चित्तात्मक आहुतियों को प्रदान कर यज्ञ आरम्भ करे।

अस्तमये सूर्योदये वाऽग्न्यनुगमने पुनराधानम्। पुनराधाने "निमित्तान्तरमप्युक्तं 'कर्मप्रदीपे। अरण्योः क्षयनाशाग्निदाहेष्वग्निं समाहितः। पालयेदुपशान्तेऽस्मिन् पुनराधानमिष्यते॥ ज्येष्ठाचेद्बहुभार्य्यस्य अतिचारेण गच्छति। पुनराधानमत्रैक इच्छति। न तु गौतमः॥ अरण्योरल्पमप्यङ्गं यावत्तिष्ठति पूर्वयोः। न तावत् पुनराधानमन्यारण्योर्विधीयते" इति॥

अर्थ—सूर्य्यास्त अथवा सूर्य्योदय के समय अग्नि बूझ जावे तो पुनराधान करना चाहिए। कौन कौन से कारण उपस्थित होने पर पुनराधात कर्त्तव्य है कर्मप्रदीप में लिखा है। यदि स्त्री को साथ ले कर ग्राम सीवाँ से बाहर चला जावे, और होम समय से पहले ही वापस न आ जावे, और होम समय व्यतीत हो जावें, १ अरणियों का

१—विहायाग्निं सभार्य्यश्चेत्सीमामुल्लंघ्य-गच्छति। होम कालात्यये-तस्य पुनराधान मिष्यते॥ क० ख० २०

नाश हो जावे, अग्नि संरक्षण में तत्पर रहते हुए भी असावधान सूर्यास्त अथवा उदय के समय बुझ जावे, तो ऐसी दशा में पुनराधान करना चाहिए। जिस पुरुष की बहुत स्त्रियाँ विद्यमान हों और अग्नि होत्रादि कार्य में उनमें से अपनी स्त्री का निरादर करता हो तो उसे भी पुनराधान करना चाहिए, परन्तु इस विषय में गौतम ऋषि की सम्मति नहीं है। अरणियों का कुछ भी भाग अग्नि प्रकट करने के योग्य शेष रहे तब तक दूसरी अरणी से अग्नि नहीं प्रकट करना चाहिए।

अथ समारोपणप्रकारः ॥ अयन्ते योनिरित्यस्य विश्वामित्रोऽग्निरनुष्टुबग्निसमारोपेविनियोगः । अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आरोहाथानो वर्द्धया रयिम् । इति मन्त्रेण होमात्तरमरणि प्रताप्याग्निसमारोह्य तत्र भावयेत् । समित्समारोपे । एषा ते अग्ने समिदिति मन्त्रेण समिधं प्रताप्याग्निसमारोह्य तत्र भावयेत् । अस्य प्रजापतिरनुष्टबग्निस्समारोपे विनियोगः । एषा ते अग्ने समित्तया वर्द्धस्व चाचप्यायस्व वर्द्धिषीमहि च वयमाचप्यासिषीमहि ॥ अथ प्रत्यवरोहणम् ॥ मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरग्निर्देवता प्रत्यवरोहणे विनियोगः उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहित्वमिष्टापूर्त्ते सᳪसृजेथामयञ्च । अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वदेवा यजमानश्च सीदत । अनेनारणि निर्मथ्यायतने यथाविधि स्थापयेत् । समित्समारोपे, अनेनैव समिधमभिमन्त्र्याहृताग्नावादध्यात् ॥

अर्थ--जब कभी एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना पड़े अथवा किसी कारण वस अग्निहोत्र कार्य को स्थगित करना हो तो ऐसी अवस्था में अरणी अथवा समिध को अग्नि पर तपा कर रख लेते हैं। उन्हीं में अग्नि के प्रविष्ट होकर स्थिर रहने की भावना करते हैं। इस विधि का नाम समारोप है जिसे नीचे लिखा जाता है। होम के पश्चात् "अयन्ते०" इस मन्त्र को ऋष्यादि स्मरण के साथ पढ़ता हुआ अरणी को अग्नि पर तपाता हुआ अनुभव करे कि वह अरणी में प्रविष्ट हो गई। यदि समिध तपाना हो तो "एषाते०" मन्त्र से तपावें। जब अग्नि को प्रकट करने की आवश्यकता हो तो "उद्बुध्यस्वाग्ने०" मन्त्र से अरणी मन्थन कर अग्नि स्थापन करे। यदि ब्राह्मणादिक के गृह से अग्नि लाकर उसी को गृह्याग्नि नियत किया हो तो तपाई हुई समिध के साथ ब्राह्मणादि के गृह से अग्नि लाकर स्थापन करे।

अथ द्वितीयखण्डिकार्थ उच्यते॥ "यज्ञोपवीतं कुरुते"। सूत्रन्नवतन्त्वात्मकं त्रिवृतं ब्रह्मग्रन्थियुक्तं सर्वदाधार्यम्। तत्र विशेषः। शुचौ देशे प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा स्वाध्याय-दिवसे पूर्वाह्णे सूत्रं निर्माय, संहतदक्षिणहस्ताङ्गुलिचतुष्टय-मध्यपर्वदेशो षण्णवतिसंख्ययाऽऽवेष्ट्य पुनस्त्रिगुणीकृत्यापो-हिष्ठेत्यादिभिरब्लिङ्गैर्मन्त्रैः प्रक्षाल्य, त्रिगुणीकृतं तत्सूत्रं वामकरतले संस्थाप्य, दक्षिणकरतलेनोर्ध्वं नयेदेतदूर्ध्ववृतं भवति। पुनस्तत्त्रिगुणीकृत्य दक्षिणकरतलेनाधोनयेदित्यधो-वृत्तं भवति। ततः प्रवरानुसारेण ग्रन्थित्रययुतं पञ्चग्रन्थि-युतं वा कुर्यात्। सूत्रोत्पादनादिकाले "ध्यातव्यदेवता आह,

'गृह्यासंग्रहकार:' । ब्रह्मणोत्पादितं सूत्रं विष्णुनात्रिगुणीकृतम् । रुद्रेण च कृतो ग्रन्थिस्सावित्र्या चाभिमन्त्रितम्" ॥

अर्थ—अब गोभिलगृह्य सूत्र के द्वितीय परिशिष्टार्थ को लिखते हैं । सूत के नव ताग से बना हुआ त्रिवृत्त ब्रह्मग्रन्थि युक्त सर्वदा रहने के योग्य यज्ञोपवीत को बनाना चाहिए । उसके बनाने में जो विशेषता है उसे नीचे लिखा जाता है । किसी पवित्र स्थान में पूर्व अथवा उत्तर मुख बैठकर सूत्र बनावे । सन स्वाध्याय दिवस में दोपहर से पहले बनाना चाहिए । दाहिने हाथ की मिली हुई चारो अङ्गुलियों के बीच के पोरों पर लपेट देवे । पुनः त्रिवृत्त लपेट कर "आपो हिष्ठा" मन्त्रों को पढ़ता हुआ धो देवे । तेहरा किया हुआ सूत को वाम हाथ के हथेली से दाहिने हथेली से ऊपर ले जाना "ऊर्ध्व वृत्त" और दक्षिण से वाम कर में नीचे को ले जाना "अधोवृत" होता है । पूर्वोक्त रीति से ऊर्ध्ववृत्त और अधोवृत करने के पश्चात् जिनके जितने प्रवर हों उसी अनुसार तीन अथवा पाच गाँठि देवे । सूत बनाने से ग्रन्थि देने तक इस प्रकार ध्यान करता जावे कि गायत्री से अभिमन्त्रित कर ब्रह्मा ने सूत को बनाया, विष्णु त्रिवृत्त किया और रुद्र ग्रन्थि दिए । इस प्रकार का भाव गृह्य संग्रह में लिखा है ।

अयम्भाव: । सूत्रोत्पादनादिकर्मसु तत्तद्देवता प्रतिपादकमन्त्रान् जपेद्ध्यायेद्वा तत्तद्देवता: । ताश्च, ओंकारोऽग्निर्नागस्सोम: पितर: प्रजापतिर्वसव इति । धारणात्पूर्वं गायत्र्या दशकृत्वोऽभिमन्त्रयेत् । धारणप्रकार: । दक्षिणं बाहुमूर्द्ध्वमुत्तानं कृत्वा तत्र यज्ञोपवीतग्रन्थिप्रदेशं संस्थाप्याध: प्रदेशे वामहस्तमवाञ्चन्निधाय, वक्ष्यमाण-

मन्त्रेण शिरोद्वारा वामांसे प्रतिष्ठापयति। दक्षिणकक्षम-न्ववलम्बनं भवति। न नाभेरूर्ध्वं नाधः। यज्ञोपवीतधारणमन्त्र उपनयने वक्ष्यते।

अर्थ—सूत आदि बनाने के समय पृथक् पृथक् मन्त्रों का जप करे अथवा ध्यान करे। अग्नि, सोम, पितर प्रजापति, और वसु ये देवता हैं। यज्ञोपवीत को पहनने से पहले दश वार गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित कर लेवे। दाहिने बाहु को ऊपर उठाकर पहने और उसकी ग्रन्थि को ऊपर ही रक्खे। मन्त्र को पढ़ता हुआ शिर के तरफ से वाम कन्धे और दाहिने पाश्व में रक्खे। उक्त रूप से रखने पर यज्ञोपवीत की लम्बाई कटिभाग तक होना चाहिए। न इससे अधिक हो न कम हो। यज्ञोपवीत धारण करने का मन्त्रः—"यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः यज्ञोपवीत देवता यज्ञोपवीत धारणे विनियोगः।" ऋषि आदि का स्मरण कर "ओं यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि" ग्रन्थकार ने लिखा है कि इस मन्त्र को उपनयन के प्रकरण में लिखेंगे।

चोरादिभिरपहृते विनष्टे वा, जलादौ शीघ्रमेव वस्त्रकुशरज्जुं वा यज्ञोपवीतवद्धृत्वा, शीघ्रमेव कार्पा-सतन्तुं यथोक्तलक्षणयज्ञोपवीतं विधिवद्धारयेत्। सदैव यज्ञोपवीतिना भवितव्यम्। प्राचीनावीती पितृ-कार्ये। तस्य लक्षणम्। सव्यं बाहुमुद्धृत्य शिरोऽव-धाय दक्षिणेंऽसे प्रतिष्ठापयति, सव्यं कक्षमन्ववलम्बमेवं प्राचीनावीती भवति॥

अर्थ—यदि यज्ञोपवीत को धारण किए हुए मनुष्य [illegible] या स्नानादि कार्य करने के समय जल में गिर जावे अथवा टूट कर नष्ट हो जावे तो ऐसी दशा में वस्त्र अथवा कुशा की रस्सी को यज्ञोपवीतवत् धारण कर लेवे। पश्चात् शीघ्र ही सूत का यज्ञोपवीत बनाकर उपरोक्त मन्त्र से धारण कर लेवे। सदा यज्ञोपवीती रहना चाहिए। पितृ कार्य में प्राचीनावीती रहना चाहिए। इन विधियों को पृष्ठ २ में लिखा जा चुका है।

अथाचमनविधिः ॥ तत्रादौ पादौ हस्तौ प्रक्षाल्य, त्रिवारमुदकं ब्रह्मतीर्थेन पीत्वा, द्विरोष्ठौ परिमृज्य पादौ शिरश्चाभ्युक्ष्याक्षिद्वयं नासापुटद्वयं कर्णद्वयं च स्पृशेत्। कर्मप्रदीपे विशेषः। संहताभिस्त्र्यङ्गुलीभिर्मुखमङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां नासापुटद्वयमङ्गुष्ठानामिकाभ्यां चक्षुषी, पुनस्ताभ्यां श्रोत्रे कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां नाभिं, पाणितलेन हृदयं, सर्वाभिरङ्गुलीभिः शिरोऽङ्गुल्यग्रैर्बाहू संस्पृशेत्। सर्वत्र दक्षिणं स्पृष्ट्वा वामं स्पृशेत्।

अर्थ—आचमन की विधि -पहले पैर और हाथ धो लेवे। ब्रह्म तीर्थ से तीन बार जल पीवे। दो बार ओष्ठों को पोंछ देवे। पैर और शिर पर जल की छिटा देवे। नेत्र, नासिका, और कानों का स्पर्श करे। नेत्रादि के स्पर्श में कर्मप्रदीप में लिखा है कि तीन अंगुलियों से मुख, अंगुठे और तर्जनी अंगुलियों से नासिका, अंगुठे और अनामिका से नेत्र, इन्हीं दोनों अंगुलियों से दोनों कानों को, कनिष्ठिका और अंगुठे से नाभी, हथेली से हृदय और सब अंगुलियों के अग्रभाग से शिर और दोनों बाहुओं को स्पर्श करे। अंग स्पर्श करने

में इसका ध्यान रखना चाहिए कि प्रथम दाहिने अङ्ग को स्पर्श कर पश्चात् वाम अंग का स्पर्श करे ।

अत्र "केचित्स्मृत्यन्तरसूत्रान्तरप्रतिपादिताङ्गान्तरस्पर्शनं कुर्वन्ति" तदयुक्तं। तेषु परस्परविरुद्धन्यूनाधिकाङ्गस्पर्शनस्य दर्शनात्सर्वत्र सर्वोपसंहारस्याशक्यत्वात्स्वसूत्रोक्ताङ्गस्पर्शनमेव न्याय्यम्।

किसी किसी स्मृतियों और सूत्रों में उपरोक्त स्पृश्य अङ्गों के अतिरिक्त और अंगों का भी कुछ न्यूनाधिक के साथ स्पर्श करना लिखा है । परन्तु उन उपदेशों में परस्पर विरोध और न्यूनाधिक होने के कारण कौथुमी शाखीय सामगों के लिए उचित यही प्रतीत होता है कि उनके लिए जो गोभिलगृह्य सूत्र में लिखा है वही कर्त्तव्य है।

गच्छन्तिष्ठन्हसन्दिशोविलोकयन्नप्रणतो, नाङ्गुलीभिरुद्धृत्य, नातीर्थेन, न शब्दङ्कुर्वन्नापूतमदृष्टञ्च, नैकवस्त्रो, न जानुभ्यां बहिर्हस्तौ कृत्वा, न प्राचीनावीती, न निवीती, नोष्णजलेन फेनजलेन वा, नोपानहौ धृत्वा, न वस्त्रेण शिरो वेष्टयित्वा, न गले बद्धवस्त्रो, न पादौ प्रसार्य्य चाचामेत् । आचमनानन्तरमशुचिज्ञाने पुनराचमनं कुर्यात् । ब्राह्मणो हृदयं गताः, क्षत्रियः कण्ठगता, वैश्यस्तालुगता, अप आचामेत् । यथोक्तविधिनाऽऽचमनेऽकृत उच्छिष्ठो भवति । विधिवदाचमने शुद्धो भवति । सुप्त्वा भुक्त्वा, क्षुत्वा, स्नात्वा, पीत्वा, वस्त्रं धृत्वा, पण्यविथीकाङ्गत्वा, स्मशानङ्गत्वा, पुनराचामेत् ।

अन्यान्यपि निमित्तानि सूत्रान्तराद्ग्राह्याणि। इति द्वितीया खण्डिका । तृतीयखण्डिकार्थो सायम्प्रातर्होमप्रयोगः सच पूर्वमुक्तः ॥

अर्थ—चलते हुए खड़ाहोकर हँसते हुए, जल और हाथ से दूसरे तरफ देखते हुए, उग्रता से, जल को अंगुलियों से उठाकर, हथेली के मूल भाग से भिन्न स्थानों से, बात चित करते हुए, अपवित्र और विना देखे हुए जल से, एक वस्त्र पहने हुए, जांघोसे बाहर हाथ किए हुए, प्रावीना वीती अथवा निवीती होकर, गर्म अथवा बुलबुलेदार जल से, जूता पहन कर, शिर पर साफा आदि वस्त्र बान्धकर, गले में वस्त्र बान्धे हुए, पैर पसार कर आचमन नही करना चाहिए । आचमन के पश्चात् किसी प्रकार की अपवित्रता ज्ञात हो तो पुनः आचमन करना चाहिए । आचमन में जल की मात्रा ब्राह्मण के हृदय तक, क्षत्रिय के कण्ठ तक और वैश्य के तालु तक पहुँचने के योग्य होना चाहिए । द्विज उपरोक्त विधि से आचमन न करने से अपवित्र और करलेने से पवित्र हो जाता है। सोकर उठने पर, भोजन कर, छींक आने पर, स्नान के पश्चात्, जल पीकर वस्त्र धारण करने के पश्चात्, बाजार, गली अथवा स्मशान भूमि पर जाना हो तो आकर आचमन करे। उपरोक्त रीत्यानुसार यदि दूसरा भी अपवित्र होने का कारण उपस्थित हो जावे तो भी आचमन करे । यह गोभिलगृह्यसूत्र का दूसरा खण्डिकार्थ पुरा हो गया । तीसरी खण्डिका में सायं प्रातः की नित्य होम की विधि है, जिसका अर्थ इस कण्डिका के पहले ही लिखा जा चुका है ।

अथ चतुर्थखंडिकयोक्त वैश्वदेवप्रयोग उच्यते॥ पत्न्या-

ऽथवाऽन्यथा पाके कृते, गृहपतिः सायम्प्रातर्वैश्वदेवं कुर्यात्। ततो गृहाधिपो देशकालौ संकीर्त्य ममोपात्तसमस्तदुरितक्षयद्वारा परमेश्वरप्रीत्यर्थं पञ्चसूनाघनिर्हरणद्वाराऽऽत्मसंस्कारार्थं च प्रातर्वैश्वदेवं करिष्य इति प्रातः। सायं वैश्वदेवं करिष्य इति सायम्। पचनाग्निं स्थण्डिले विधिवत्प्रतिष्ठापयेत्। गृह्याग्निश्चेन्न पञ्च भूसंस्काराः। सर्वपाके निर्वृत्ते शुचिभूतां पत्नीमन्यां वा भूतमिति ब्रूहीत्युक्त्वा तां भूतमिति वाचयित्वा, तदन्नमग्निसमीपमानीय गृहपतिरोमित्युच्चैः प्रतिजपित्वा तस्मै नमस्तन्माख्या इत्युपांशु प्रतिजपति। ततोऽग्निं प्रज्वाल्य तूष्णीं परिसमूह्य समिधमाधायोदकाञ्जलिसेचनं पर्य्युक्षणञ्च पूर्ववत्कृत्वाऽग्नेः पश्चादासादितमन्नं प्रोक्ष्य हविष्यैर्व्यञ्जनैरुपसिच्य तूष्णीं समिधमाधाय हस्तेन जुहुयात्। प्रजापतये स्वाहेति मनसोच्चार्य मध्ये जुहोति। प्रजापतय इदं न मम। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेत्युत्तरार्द्धपूर्वार्द्धे जुहोति। अग्नये स्विष्टकृत इदं न मम। ततः समिदाधानादि।

अर्थ—अब चतुर्थ खण्डकार्थ में वैश्वदेव की विधि लिखते हैं। पाक कार्य यजमान की स्त्री या दूसरी व्यक्ति करे परन्तु सायं प्रातः के वैश्वदेव कार्य को यजमान सम्पन्न करे। यजमान पाचक (रसोया) से पाक तैयार हुआ या नही पूछ लेवे। यदि पाक तैयार हो तो पाचक पाकाग्नि और वैश्वदेव के लिए भात रोटी आदि पक्वान्न को ले जाकर, अग्नि को गृह्याग्नि कुण्ड में छोड़ देवे और भात- या,

रोटियों को अग्नि-कुण्ड के समीप रख देवे(१)। यजमान पावँ हाथ धोकर अग्नि कुण्ड के पश्चिम पूर्व मुख बैठे। आचमन कर, इन्द्रिय स्पर्श और प्राणायाम कर लेवे। हाथ में जल लेकर देश काल स्मरण के पश्चात् "ममोपात समस्त दुरितक्षय द्वारा परमेश्वर प्रीत्यर्थं पञ्चसूनाघनिर्हरणद्वाराऽऽत्मसंस्कारार्थं च प्रातः वैश्वदेवं करिष्ये"। यदि सायं काल में करना हो तो संकल्प में प्रातः शब्द के स्थान पर "साय" शब्दको पढ़े ओम् शब्द का उच्च स्वर से जप करे। "नमः तन्मात्रया" को मनमें जप करे। अग्नि को प्रज्वलितकर विना मन्त्र परि समूहन करलेवें। एक समिध अग्निमें चड़ा देवे। पृष्ठ १०७ में लिखी हुई लिधिसे जलांजलि और जलधारादेवे। होमीय द्रव्यों का प्रोक्षण करे। विना मन्त्र अग्नि में एक समिध चढ़ादेवे। हाथसे उसभात या रोटी में से लेकर "प्रजापतये स्वाहा। प्रजापतय इदं न मम" अग्नि के मध्यमे और "अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। अग्नये स्विष्टकृत इदं न मम" से प्रथम दी हुई आहुति से इशान्य भाग में आहुति प्रदान करे। एक समिध अग्नि में चढ़ा देवे। पृष्ठ १०८ में लिखे अनुसार अग्नि का अनुपर्युक्षण करे।

अथ हुतशेषेणान्नेन बलीन् हरति। तत्तत्स्थाने बलिहरणस्यासम्भवेऽग्नेः पश्चादेकस्मिन्देशे सूत्रकृ-

---

१—पाक कर्त्ता गृह्याग्नि कुण्डसे अग्नि ले जा कर उस से भोजन तैय्यार करे। भोजन तैय्यार हो जानेपर कुछ अग्नि ला कर कुण्डमें छोड़ देवे। पाकको लाकर अग्नि कुण्ड के पश्चिम रखे। वैश्वदेवके लिए पाकशाला से ऐसे पादर्थ लेना चाहिए कि जिसमें नमक न परा हो।

तानुमतं बलिहरणं कुर्यात्। "तदुक्तं 'कर्मप्रदीपे'। अथ तद्विन्यासो वृद्धिपिण्डानिवोत्तरोत्तराञ्चतुरो बलीन्निदध्यादि"त्यादिना। तत्र चमसस्थं जलमादाय प्राक्संस्थां जलधाराम्भूमौ कृत्वा, बलिचतुष्टयपर्य्याप्तमन्नं हस्ते गृहीत्वा, पृथिव्यै नमः। वायवे नमः। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। प्रजापतये नम इति चतुरो बलीन् प्राक्संस्थान्निधाय तेषामुपरि पूर्ववज्जलं प्रक्षिपेत्। तेषामुत्तरतोऽद्भ्यो नमः। ओषधिवनस्पतिभ्यो नमः। आकाशाय नमः। कामाय नम इति प्राक्संस्थान् चतुरो बलीन्निदध्यात्। तेषामुत्तरतो मन्यवे नमः। इन्द्राय नमः। वासुकये नमः। ब्रह्मणे नम इति चतुरो बलीन्निदध्यात्। सर्वेषामुत्तरतो रक्षोजनेभ्यो नमः। अप उपस्पृश्य, बलिशेषमुदकेनाप्लाव्य प्राचीनावीती पितृतीर्थेन सर्वेषां दक्षिणतः पितृभ्यस्स्वधेति बलिन्निदध्यात्। सर्वेषाम्बलीनां पृथक् पृथक् पुरस्तादपान्निनयनमुपरिष्टाच्च सेचनम्। अप उपस्पृश्य कृताञ्जलिपुटोऽग्निं प्रार्थयेत्। आरोग्यमायुरैश्वर्यं धीर्धृतिश्शं बलं यशः। ओजो वर्च्चः पशून् वीर्यं ब्रह्म ब्राह्मण्यमेव च॥ सौभाग्यं कर्मसिद्धिं च कुलज्यैष्ठ्यं सुकर्तृताम्। सर्वमेतत्सर्वसाक्षिन्द्रविणोद रिरीहि नः।

अर्थ—होम से बची हुई हवि थोड़ा थोड़ा लेकर बलि रक्खे। बलि रखने का स्थान सयन-गृह. आंगण दूर इत्यादि। पृथक्

पथक् स्थान हैं परन्तु अग्नि कुण्ड के पश्चिम एकही जगह उक्त स्थानों का कल्पना कर बलि प्रदान की जा सकती हैं। ऐसा करना सूत्रकार के अनुमति के प्रतिकूल नही है। कर्मप्रदीप में लिखा है कि इसके उपरान्त बलि देने के क्रम को कहते हैं, नान्दीमुख के पिण्डों के समान चार बलि अग्नि के उत्तर दिशा में पृथ्वी, वायु, विश्वेदेवा, प्रजापति देवताओं के नाम से प्रदान करे। उनपर जल, देकर औषधि, वनस्पति, आकाश, काम और मन्य, इन्द्र, वासुकि, ब्रह्मा और रक्षोजन और सब से दक्षिण दिशा में पितरों के लिये बलि प्रदान करे। ये १४ बलि नित्य (आवश्यक) है (१)।

चुलू में प्रणीता से जल लेकर अग्नि कुण्डके पश्चिम पूर्व को लम्बी जलधारा देवे। उसी जल धारा पर क्रमशः पूर्वको "पथिव्यै नमः। वायवे नमः। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। प्रजापतये नमः" इन चार बलिको प्रदान करे। इन दी हुई बलियों पर जल सेचन करदेवे। इनसे उत्तर "अद्भ्यो नमः। औषधि वनस्पतिभ्यो नमः। आकाशाय नमः। कामाय नमः" इन चार बलियों को रक्खे। पुनः इनसे उत्तर "मन्यवे नमः। इन्द्रायनमः। वासुकये नमः। ब्रह्मणे नमः" इन चार बलियों को रखे और इन से उत्तर "रक्षो जनेभ्यो नमः" एक बलि रक्खे। इन दी हुई बारह बालियों के पश्चात् जल स्पर्श करलेवे। प्राचीना वीती होकर दा हुई सब बलियों से दक्षिण पितृ तीर्थ से "पितृभ्यः स्वधानमः" पित्रों के लिए एक बलि प्रदान करे। सब बलियोंके रखनेके पहले और पश्चात् पृथक् पृथक् जल सेचन करे। बलि हरण के पश्चात् जल स्पर्श करे। हाथ जोड़ कर "आरोग्यमायुरैश्वर्य०" इस से अग्नि की प्रार्थना करे।

ततो नित्यबलिहरणानन्तरं काम्यबलिहरणं कुर्य्यात्।

(१) कर्मप्रदीप खंड १४

सर्वेषामुत्तरतो यवेभ्यो नमः । इति यवाग्रयणोतरं यावद्व्रीह्याग्रयणम् । व्रिह्याग्रयणोत्तरं व्रिहिभ्यो नम इत्यायवाग्रयणं । तथैवत्यागः । अनेन दीर्घायुर्भवति । स्वकर्त्तृकोऽयम्बलिः । प्रवासादावेतस्य लोपः । दत्तेऽन्ने कणमण्डमिश्रितजलेन रुद्रेभ्यो नम इति बलिं दद्यात् । स रौद्रो भवति । अयं बलिस्तु रात्रौ देयः । वामदेव्यगानम् । एतावान्वैश्वदेवबलिहरणप्रयोगः कौथुमीयानान्नातोऽधिकसूत्रान्तरोक्तो ग्राह्यः । यजमानप्रवासे रोगादिना पीडिते च, ब्राह्मण द्वारा होमा बलयश्च कर्त्तव्याः ।

अर्थ–उपरोक्त १४ बलियाँ आवश्यक हैं । यदि यजमान को दीर्घायु होने की इच्छा हो तो यवके अग्रयण–स्थालीपाक से बृही अग्रयण तक दी हुई बलियों से उत्तर "यवेभ्यो नमः बृही अग्रयण से यव अग्र यण तक व्रीहीभ्यो नमः" बलि को रक्खे । इन बलियों को स्वयं करे । प्रतिनिधि द्वारा नहीं कराई जा सक्तीं । यदि यजमान प्रवास में जा तो उस समय ये दो बलियों को नहीं दिया जा सक्ता । बलिहरण से शेष अन्न, कन, और माँड़ मिला कर रात्रि में "रुद्रेभ्यो नमः" इस बलि को प्रदान करे। वामदेव्य साम का गान करे । यही वैश्वदेव बलि की विधि है और कौथुमी शाखीय द्विजों को यही विधि कर्त्तव्य है । अन्य शाखाओं में उक्त न्युनाधिक बिधियों से नहीं करना चाहिए। यदि यजमान प्रवास में चला जावे अथवा रुग्ण हो जावे तो इस वैश्वदेव बलिको किसी ब्राह्मण के द्वारा सम्पादित कराना चाहिए।

वैश्वदेवं विना दम्पत्योर्भोजनमयुक्तं भवति । यदि स्त्रीबालारोगिणी गर्भिणी वा स्यात्तस्या वैश्वदेवात्पूर्वं

भोजनं न दोषावहम् । एवम्बालवृद्धातुराणामपि पूर्वं भोजनम् । एवं सायंप्रातर्वैश्वदेवं यावज्जीवं कर्त्तव्यम् । उपवासदिनेऽपि पुरुषसंस्कारकत्वात् । अन्नसंस्कारस्त्वावान्तरफलम् । एककालं वैश्वदेवलोपेऽहोरात्रमुपवासः । कालद्वयात्यये वैश्वानरश्चरुः ।

अर्थ—जब तक वैश्वदेव कार्य सम्पन्न न हो तब तक यजमान और उसकी स्त्री को भोजन करना उचित नहीं है। यदि स्त्री कम अवस्था की हो, रुग्ण या गर्भवती हो तो उसका वैश्वदेव से पहले भोजन करलेना अधर्म नहीं हैं। ऐसेही गृहके बाल, वृद्ध और रुग्ण व्यक्तियों का भी वैश्वदेव कार्य से पहले भोजन करना अपराध नहीं है। पूर्वोक्त सांय प्रातः वैश्वदेव कार्य को जीवन पर्यन्त करते रहना चाहिए। यदि किसी दिन उपवास व्रत भी करना हो तो भी वैश्वदेव को पुरुष संस्कार होनेके कारण अवश्य करना चाहिए । अन्न संस्कार पुरुष संस्कार के अवान्तर फल है। यदि एक समय वैश्वदेव न कर सके तो एक दिन और रात्रि का उपवास व्रत करना चाहिए। यदि एक दिन सायं और प्रात: दोनों समय वैश्वदेव न कर सके तो उसे वैश्वानर स्थाली पाक करना चाहिए ।

विवाहौपासनारम्भानन्तरं वैश्वदेवारम्भः । कालान्तरे चेत्प्रायश्चित्तपूर्वकं वैश्वदेवारम्भः । तस्य प्रयोगः । ब्राह्मणाननुज्ञाप्य गणेशं संपूज्य नान्दीश्राद्धं कृत्वा, देशकालौ संकीर्त्य वैश्वदेवमारप्स्ये तच्च यावज्जीवं सायंप्रातः करिष्य इति संकल्प्य वैश्वदेवं कुर्यात् । स्त्रीह सायं बलीन्हरेत्प्रातः पुमान् । सर्वार्थं पक्वस्य पित्र्यर्थं ब्राह्मणभोजनार्थं वा

पक्वस्यान्नमादाय वैश्वदेवं कृत्वा ब्राह्मणान भोजयेत्। स्वयं-ञ्च भुञ्जीयात्। श्राद्धे चाग्नौकरणान्ते विकिरान्ते पिण्ड-दानान्ते वा वैश्वदेवः। अग्निष्टोमादियज्ञे यजमानस्य वैश्व-देवनिवृत्तिः। एकस्मिन्काले व्रीहियवादीनां धान्यानां पाके, एकस्माद्गृहीत्वा सकृदेव होमबलिहरणं कुर्यात्। वैश्वदेवा-नन्तरं बहुब्राह्मणानां भोजनार्थं पुनः पाके सति, न वैश्व-देवानुष्ठानम्। एकपाकोपजीविनां भ्रातृपुत्रादीनां भोजनार्थं बहुषु महानसेषु पाकेषु, गृहपति पाकादेव वैश्वदेवं कुर्य्यात्। इति वैश्वदेवप्रयोगः॥ इति चतुर्थीखण्डिका॥

अर्थ—विवाह के पश्चात् गृह्याग्नि स्थापन कर वैश्वदेव का आरम्भ करना चाहिए। यदि वैश्वदेव आरम्भ का समय व्यतीत होगया हो तो प्रायश्चित्त करने के पश्चात् वैश्वदेव का आरम्भ करना चाहिए। उस प्रायश्चित्त की विधि यह है कि—ब्राह्मण की आज्ञा लेकर गणेशकी पूजा करे। नान्दी श्राद्ध करे। देशकाल का स्मरण कर "वैश्व देवं०" पद के योजना के साथ संकल्प करे। पश्चात् वैश्व देव का आरम्भ करे। उभय समयों में से प्रातःकाल पुरुष और सायंकाल स्त्री वैश्वदेव किया करे। पितृ कार्य के लिये हो या ब्राह्मण भोजन के लिए पाक बनाना हो प्रथम उस पाक से वैश्वदेव करले तत्पश्चात् ब्राह्मण भोजन करावे। स्वयं भी भोजन करे। श्राद्ध कर्म में भी "अग्नये कव्य वाहनाय स्वाहा। सोमाय पितृमते स्वाहा" से अग्नि में आहुति प्रदान करने के पश्चात् अथवा विकरा के भाग देने के या पिण्डदान के पश्चात् वैश्वदेव करे। अग्निष्टोम आदि यज्ञों में यजमान के लिये वैश्व-देव कार्य वन्द रहता है। यदि एक ही समय पाकशाला में भात

अथ द्वितीयप्रपाठकः।



तत्रादौ विवाहप्रयोग उच्यते॥ सामवेदीयमन्त्रब्राह्मणे पर्य्युक्षणमन्त्रपाठानन्तरं विवाहमन्त्राणां पाठात्। "पुण्ये-नक्षत्रे दारान्कुर्वीत"। पुण्यनक्षत्राणि ज्योतिश्शास्त्रो-क्तानि। सूत्रकृन्मते, उत्तरायणे शुक्लपक्षे पुण्येऽहनि मध्या-न्हात् प्राग्विवाहः। शास्त्रान्तरोक्ततिथिवारलग्नादिकं यथा-सम्भवमविरोधादग्राह्यम्।

अर्थ—अब दूसरा प्रपाठक आरम्भ हुआ। सामवेदीय मन्त्र ब्राह्मण में अग्निपर्युक्ष मन्त्रों के पश्चात् वैवाहिक मन्त्रों का पाठ है। तदनुसार दूसरे प्रपाठक में प्रथम विवाह विधि लिखते हैं। गोभिलाचार्य के मतानुसार ज्योतिष शास्त्र में लिखित पुण्य नक्षत्र, उत्तरायण सूर्य, शुक्ल पक्ष पुण्य वार, दो पहर से पहले विवाह कार्य करना चाहिए। कौथुमी शाखा के अप्रति-कूल अन्य,शाखाओं में उक्त तिथि, वार लग्न आदि को भी ग्रहण करना चाहिए।

तत्रादौ सामुद्रिकशास्त्रविद्भिरुद्वाह्य कन्याया भावि-शुभाशुभं परीक्षितव्यम्। कन्यालक्षणविदामलाभेऽग्नि-ष्टोमवेदिलाङ्गलपद्धत्यगाधजलाशयगोष्ठचतुष्पथद्यूतस्थान-स्मशानोषरस्थानेभ्यः पृथक् पृथङ्मृदमादायैकैकमृदैकैकं पिण्डं कृत्वा सर्वाभ्यो मृद्भ्यः किञ्चिन्मृदमादाय नवमं पिण्डं कुर्यात्। नवपिण्डाः समानाः कर्त्तव्याः। नवसु

पिण्डेषु तत्तत्स्थानपरिज्ञानाय चिन्हं कार्य्यम् । ततो वरोऽन्यो वा स्वहस्ते नव पिण्डान्संस्थाप्य कन्यां स्वसमीपे स्थापयेत् । तत ऋतमेव प्रथमं ऋतन्नात्येति कश्चन ऋत इयं पृथिवी श्रिता सर्वमिदमसौ भूयादिति। इतिशब्दान्तम्मन्त्र-मुक्त्वा, हे लक्ष्मि, नवानामेषां पिण्डानामेकं गृहाणेति कन्यां प्रति वदेत् । अस्मिन्मन्त्रेऽसावितिपदस्थाने कन्यानामप्रयोग ऊह्यः । ततः कन्यैकं पिण्डं गृह्णाति ।

अर्थ—प्रथम सामुद्रिक शास्त्र के विद्वानों से कन्या के शुभ और अशुभ भविष्य का निश्चय करना चाहिए । सामुद्रिक शास्त्र के विद्वानों से निर्णय के अभाव में अग्निष्टोम आदि यज्ञ वेदी, हल से जोती हुई, बहुत गहरे जलाशय, गोशाला, चौराहे, पासा खेलने के स्थान, श्मशान, और ऊषर भूमि से अलग अलग मिट्टी लाकर आठ गोली बनावे । सब में से थोरे थोरे लेकर एक और गोली बना-कर तैयार करे । अब नव गोली हुई । नवो गोलियों को बराबर बनावे और उनमें कोई ऐसा चिन्ह बना देवे कि उनका पहचान होता रहे । वर अथवा कोई दूसरी व्यक्ति भी उन गोलियों को कन्या के आगे रखकर "ऋतमेव प्रथमम्०" मन्त्र को पढ़े। कन्या से कहे कि इन रक्खी हुई गोलियों में से एक गोली उठा लो । उपरोक्त मन्त्र में "असौ" शब्द के स्थान पर कन्या का नाम लेवे और कन्या उन नव गोलियों में से किसी एक को उठा लेवे।

वेदिमृदा वा, लाङ्गलपद्धतिमृदा वा, अगाधजलाशय-मृदा वा, गोष्ठमृदा वा, निर्मितं पिण्डं कन्यया गृहीतं चेत्त-स्याः कन्याया उद्वाहश्शुभकरः । अवशिष्टस्थानचतुष्टय-

मृन्निर्मितानां चतुर्णां पिण्डानामन्यतमपिण्डग्रहणे कन्या नोद्वाह्या। "सर्वस्थानमृन्निर्मितस्य ग्रहणे कन्योद्वाह्येति" केचिन्मन्यन्ते।

अर्थ—यदि कन्या यज्ञ वेदी, हल से जोती हुई, जलाशय, अथवा गोशाला के मिट्टी से बनी हुई गोलियों में से किसी को उठा लेवे तो उससे विवाह करना शुभ होगा। चौराहे, जूआ खेलने के स्थान, स्मशान और ऊषर की मिट्टियों से बनी हुई गोलियों में से किसी को उठावे तो उसके साथ विवाह नही करना चाहिए। कारण कि इसके भविष्य शुभ लक्षण युक्त नही है। यदि आठो मिट्टियों से मिश्रित कर बनाई हुई गोली को उठावे तो कन्या विवाह के योग्य है, यह कुछ ऋषियों की सम्मति है।

अत्र "केचित्कन्याप्रदाननिश्चयं श्रुत्वा स्नातव्यमित्युक्तेर्वाचा कन्यादानमावश्यकमिति" वदन्त्यतस्तत्प्रयोग उच्यते। विद्याकुलशीलव्रतसम्पन्नाय कन्यादेयेत्याश्वलायनोक्तेः। सर्वत्र दातुरेव प्रतिगृहीतृप्रार्थनस्य मुख्यत्वाच्च, कन्यापिता तत्पत्नीयो वा, वरगृहङ्गत्वा वैवाहिके शुभदिवसे गणेशं सम्पूज्य वरं तत्पित्रादींश्च सम्पूज्य तैः प्रतिपूजितो देशकालौ संकीर्त्य करिष्यमाणोद्वाहाङ्गं वाग्दानं करिष्य इति संकल्पः। ताम्बूलफलान्यादायामुकवेदान्तर्गताऽमुकशाखाध्यायिनेऽमुकगोत्रायाऽमुकशर्म्मणो नप्त्रेऽमुकशर्म्मणः पौत्रायाऽमुकशर्म्मणः पुत्रायाऽमुकशर्म्मणे वराय मदीयां कन्यां वाचा सम्प्रदद इति दद्यात्। अस-

इत्यन्ये पूर्व्ववत्कन्यापिता वाग्दानं स्वगृहे कृत्वा फलादिकं दृष्टं पूर्वाय वराय प्रेषयेत् ।

अर्थ—किसी किसी का मत है कि जब किसी के साथ कन्या का उद्वाह निश्चय कर ले तो स्नान कर मनके निश्चय को वचन के रूप में "कन्यादानमावश्यं करिष्यामि" ऐसा निश्चय कर दे । इसे वाग्दान कहा जाता है । इसकी विधि आगे लिखा जाता है ।

विद्वान् कुलीन और स्व नियम व्रत के पालक को कन्या दान देना चाहिए, यह आश्वलायन का वचन है । सर्वथा कन्या देनेवाले से लेनेवाला प्रार्थ्य है । अतः कन्या का पिता अथवा उसके तरफ से दूसरा ही कोई वर के गृह पर जाकर ज्योतिष शास्त्रानुसार विवाह संस्कार के योग्य तिथि वार और नक्षत्र में गणेश की पूजा करे । वर और उसके पिता आदि गुरुजनों की भी पूजा करे । हाथ में कुश और जल लेकर देश काल स्मरण करने के पश्चात् "करिष्यमाणो-द्वाहाङ्गं वाग्दानं करिष्ये" ऐसा पढ़कर वर के समक्ष प्रतिज्ञा करे । यदि वर के गृह पर जाकर वाग्दान करने में कठिनता हो तो अपने ही गृह पर सब कार्य करके संकल्प कर लेवे । ताम्बूल नारिअर सो-पारी आदि को पहले से निश्चित किए हुए वर के गृह पर भेजवा देवे ।

अथ कन्यापित्रोद्वाहस्य पूर्वदिने विवाहाङ्गमाभ्युदयिक-श्राद्धं कर्त्तव्यमन्नरूपेण हिरण्यरूपेण वा । तत्प्रयोगस्त्व-स्माभिरन्यत्र वक्ष्यते । वरपिताऽपि विवाहाङ्गमाभ्युदयिक-श्राद्धं कुर्य्यात् ॥

इस वाग्दान हो जाने के पश्चात् विवाह दिन से एक दिन पहले कन्या का पिता और वर का पिता भी अन्न दान के द्वारा अथवा

सुवर्णदान से आभ्युदयिक श्राद्ध करे। आभ्युदयिक श्राद्ध की विधि हम श्राद्ध के प्रसंग में अलग लिखेंगे।

अथ विवाहदिने प्रातः कन्यामाताऽन्या वा माषान्यवान्वा जलेन पेषयित्वा तेन कल्केन सर्वाङ्गोद्वर्त्तनपूर्वकं कन्यां स्नापयेत् । तथा स्नापितां कन्यां ज्ञातिः पिता वा, कामवेदतेनामेत्यादिमन्त्रैर्बहूदकेन शिरसि त्रिवारमभिषिञ्चेत् । उत्तराभ्यां मन्त्राभ्यां यथा गुह्यमाप्लावितम्भवेत् । प्रथममन्त्रेऽमुमित्यस्य स्थाने वरस्य द्वितीयान्तन्नाम वदेत् । कामवेदते इत्यादिमन्त्राणामादिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः प्रस्तारपंक्तिश्छन्दः कामो देवता द्वितीयमन्त्रस्य ज्योतिर्जगती छन्द उपस्थरूपः कामो देवता तृतीयमन्त्रस्य ज्योतिस्त्रिष्टुप्छन्द उपस्थरूपः कामो देवता कन्याऽभिषेचने विनियोगः। काम वेद ते नाम मदोनामासि समानयामुꣳसुरा ते अभवत् । परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥ १ ॥ इमन्त उपस्थं मधुना सꣳसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद्द्वितीयं । तेन पुꣳसोभिभवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञी स्वाहा ॥ २ ॥ अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानास्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः तेनाज्यमकृण्वꣳस्त्रैशृङ्गन्त्वाष्ट्रं तद्दधातु स्वाहा ॥ ३ ॥

अर्थ—विवाह के दिन प्रात. काल कन्या की माता अथवा दूसरी स्त्रियां माष अथवा यव आदि को जल में पीसकर उस कलक को कन्या

के सब शरीर में लेपन कर पुनः जल से भली भाँति स्नान करा देवें। स्नान कराने के पश्चात् कन्या का पिता अथवा उसके जाति के लोगों में से कोई व्यक्ति "काम वेद ते नाम०" मन्त्र से कन्या का अभिषेक करें। "इमन्त" और "अग्नि क्रव्याद०" मन्त्रों से गोप्य अङ्गों का भी अभिषेचन करना चाहिए। प्रथम मन्त्र में "अमुम्" शब्द के स्थान पर वरका द्वितीयान्त नाम उच्चारण करना चाहिए अर्थात् "इन्द्रदेवशर्माणम, महेन्द्र वर्माणम्" इत्यादि ।

अथ कन्यापिता वेदिकायां पत्न्या कन्यया च सह प्राङ्मुखो ब्राह्मणाननुज्ञाप्यासीनः कुशपवित्रपाणिः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य दशानां पूर्वेषां दशानामपरेषामात्मनश्च नित्यनिरतिशयानन्दशाश्वतब्रह्मलोकावाप्त्यर्थं कन्यादानाख्यमहादानं करिष्य इति संकल्प्य प्रत्यङ्मुखं वरं वक्ष्यमाणमधुपर्केणासनपुष्पादिभिर्वा सम्पूज्य, कन्यां वामकरे धृत्वा दक्षिणहस्तेन दक्षिणाताम्बूलादिकं गृहीत्वा गोत्रादिकमुक्त्वा वरहस्ते दद्यात्। प्रत्यङ्मुखस्थितश्च वरो दक्षिणमुत्तानं साङ्गुलिं कन्यायाः पाणिं देवस्यत्वेति प्रतिगृह्णीयात्। "प्राङ्मुखो दद्यादुदङ्मुखो गृह्णीयादिति" केचित्। गोत्रोच्चारणं यथा। अमुकगोत्रोद्भवायामुकशर्म्मणो नप्त्रेऽमुकशर्म्मणः पौत्रायामुकशर्मणः पुत्राय महाविष्णुस्वरूपिणेऽमुकशर्मणे वरायामुकगोत्रोद्भवाममुकशर्मणो नप्त्रीममुकशर्म्मणः पौत्रीममुकशर्मणः पुत्रीममुकनाम्नीमिमां कन्यां सवस्त्रां सालंकारां श्रौतस्मार्त्तकर्मस-

हायिनीं प्रजापतिदैवतां सम्प्रददे । न ममेत्युक्त्वा, कन्यां कनकसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् । दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया । इतिसहिरण्योदकं कन्यादक्षिणहस्ते-ञ्च दद्यात् । वरः प्रतिगृह्णीयात् । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि । वरुण स्त्वा नयतु देवि दक्षिणे प्रजापतये कन्यां तयामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे क इदं कस्मा अदात् कामः कामादात् कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामः समुद्रमाविशत्कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैत्तते । इति प्रतिग्रहमन्त्रः ।

अर्थ—अभिषेचन के पश्चात् कन्या का पिता स्वपत्नी और कन्या के साथ ब्राह्मण की आज्ञा लेकर पूर्व मुख वेदिका पर बैठें । कुश पवित्र धारण कर आचमन प्राणायाम करे । देश काल आदि का स्मरण कर " दशानांपूर्वेषां दशानामपरेषामात्मनश्च नित्य निरति शयानन्द शाश्वत ब्रह्म लोकावाप्त्यर्थं कन्यादानाख्यमहादानं करिष्ये" संकल्प करे। पश्चिम मुख बैठे हुए वर की मधुपर्क विधि से पूजा करे।

मधुपर्क विधि—स्व पत्नी, पुत्र पौत्रादि के साथ प्रथम दो विष्टर, पाद्य (किसी पात्र में पैर धोने के लिए जल) सुगन्धित द्रव्य मिले हुए हाथ धोने का जल, आचमन करनेका जल, कांसके कसोरेमें दही मधु और घी, धोती और डुपट्टा, यथा शक्ति भूषण आभरण गौ आदि वरके दाहिने रक्खे । आसादन लेकर "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप् छन्दोऽर्हणीयो देवता धेनूपस्थाने विनियोगः । ओम् अर्हणा पुत्रवाससा धेनुरभवद्यमे । सा नः पयस्वती दुहा उत्तरामुत्तरा ॐ समाम्" मन्त्रको पढ़ता हुआ गौ की स्तुति करें ।

घर पढ़ा हो कर—" अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिऋषिरनुष्टुप्छन्दो ... देवता जपे विनियोगः । ओम् इदमहमिमां पद्यां विराजमन्नाद्याया-धितिष्ठामि । इस मन्त्र का जप करे "

कन्या के पिता या भाई आदि जो वरको पूजा के लिए उपस्थित हों उनमें से कोई एक व्यक्ति विष्टर कुशाको लेकर "विष्टरो विष्टरो विष्टरो प्रति गृह्यतां" पढ़ कर वर के दाहिने हाथ में दे देवे ।

वर विष्टरों को लेकर "अनयोः प्रजापतिऋषिरनुष्टुप् छन्द ओषधयो देवताः पूर्वं विष्टरासादने, उत्तरस्य पादयोरधस्तादास्तरणे विनि योगः । ओम् या ओषधीस्सोम राज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः । ता मह्य मस्मिन्नासनेऽच्छिद्राः शर्म यच्छत " मन्त्र को पढ़ता हुआ अपने सामने उत्तराग्र भूमिपर रख कर पुनः "ओम् या ओषधीस्सोम राज्ञीविष्ठिताः पृथिवीमनु । ता मह्यमस्मिन् पादयोरच्छिद्राः शर्म यच्छत " मन्त्र को पढ़ता हुआ पहलेउत्तराग्र रक्खे हुए विष्टर पर दूसरा विष्टर उत्तराग्र रखकर उन्हीं पर दोनो पैरों को रक्खे।*

पूजक हाथ में पाद प्रक्षालन के लिए जल लेकर—"पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रति गृह्यताम्' वाक्य को पढ़ता हुआ वरके हाथ में उस जल को दे देवे ।

वर पूजकसे दिए हुए जल को "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिऋषिः विराट् छन्द आपो देवता. पाद्य प्रेक्षणे विनियोगः । ओम् यतो देवीः प्रतिपश्यास्यापस्ततो मा राद्धिरागच्छतु' मन्त्र से निरी· क्षण कर लेवे । तत् पश्चात् अपने हाथ में जल ले कर पहले "अनयो र्मन्त्रयोः प्रजापति ऋषिर्निगदोऽर्हणीय श्रीर्देवता सव्य दक्षिण पाद प्रक्षालने विनियोगः । ओम्—सव्यं पाद मवने निजेऽ स्मिन् राष्ट्रे श्रीयं दधे ।" इससे वाम पैर को धो कर पुनः

* पारस्करगृह्यसूत्रमें ऐक विष्टर देकर एक पाद प्रक्षालनकर लेनेके पश्चात् दूसरा विष्टर और दूसरा पाद प्रक्षालन करना लिखा है ।

"दक्षिणं पादमवनेनिजेऽस्मिन् राष्ट्रे श्रियमावेशयामि ।" मन्त्र से दाहिन पैर को धोवे पुनः "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्निगदोऽर्हणीयश्श्रीर्देवता पाद द्वय प्रक्षालने विनियोगः । ओम् पूर्वमन्यमपरमन्य मुभौ पादाववनेनिजे । राष्ट्रस्यद्ध्यां अभयस्याव-रुद्ध्यै ।" इस मन्त्रसे दोनो पैरों को धोवे ।

पूजक अपने हाथ में अर्घ लेकर "ओम् अर्घ्यं अर्घ्यं अर्घ्यं प्रति गृह्यताम् ।" उच्च स्वर से पढ़े और सुगन्ध द्रव्य और जल से पूर्ण अर्घ्य पात्र को वर के हाथ पर दे देवे ।

वर पूजक के हाथसे "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरर्घ्यं देवताऽर्घ्यप्रति ग्रहणे विनियोगः । ओम् अन्नस्य राष्ट्रिरसि राष्ट्रिस्ते भूयासम् ।" इक मन्त्र को पढ़ता हुआ अर्घ्य ले दोनो हाथ प्रक्षालन करलेवे ।

पूजक "ओम् आचमनीयं आचमनीयं आचमनीयं प्रति गृह्यताम्" वाक्य को पढ़ता हुआ आचमनीय जल को वरके हाथ पर दे देवे ।

वर पूजक के हाथ से जल लेकर "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुराचमनीयं देवता आचमने विनियोगः । ओम् यशोऽसि यशो मयि धेहि „ मन्त्र को पढ़ता हुआ एक बार आचमन करे । दो बार विना मन्त्र आचमन कर लेवे ।

पूजक कांस पात्रमें रखे हुए मधुपर्क को हाथ में ले कर "ओम् मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रति गृह्यताम्" वाक्य को उच्चस्वर से पढ़कर वर के हाथ पर देवे ।

वर "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्मधुपर्को देवता मधुपर्क प्रति ग्रहणे विनियोगः । ओम् यशसो यशोऽसि ।" मन्त्रको पढ़ता हुआ मधुपर्क ले लेवे । "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्मधुपर्को देवता मधुपर्क भक्षणे विनियोगः । ओम् यशसो भक्षोऽसि । महसो क्षोऽसि । श्रीर्भक्षोऽसि श्रियं मयि धेहि" मन्त्र से

तीन बार मधुपर्क को खा लेवे और चौथी बार बिना मन्त्र खा कर दो बार आचमन करे । यदि मधुपर्क अधिक हो तो उसमें से निकाल कर किसी ब्राह्मण को भोजनार्थ दे देवे, परन्तु ऐसा करना हो तो भोजन के पहले ही देना उचित प्रतीत होता है ।

पूजक वर के आचमन कर लेने के पश्चात् उसे जो वस्त्र भूषण देना हो प्रदान करे ।

कन्या के पक्ष का नाई " गौः गौः गौः " उच्च स्वर से बोले । वर नाई के वाक्य को सुनकर "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्बृहती छन्दो गौर्देवता गो मोक्षणे विनियोगः । ओम् मुञ्च गां वरुणपाशाद्द्विषन्तं मेऽभिधेहि । तं जह्यमुष्य चोभयोरुत्सृजगामत्तु तृणानि पिबतूदकम् " मन्त्र को पढ़ता हुआ गौ को बन्धन से खोल देने की आज्ञा देवे और छूट कर जाती हुई गौ को देख कर "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दो गौर्देवता गावानुमन्त्रणे विनियोगः । मात रुद्राणां दुहिता वसूनाᳩ स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट " मन्त्र का पाठ करे ।

कन्या का पिता कन्या के दाहिने हाथ को वाम हाथ से पकड़ कर अपने दाहिने हाथपर द्रव्य ताम्बूल आदि के साथ रख लेवे। "अमुक गोत्रोद्भवायामुक शर्म्मणो नप्त्रे० सम्प्रददे" इस प्रकार तीन पिढ़ी के पूर्वजों का परिचय देते हुए इस संकल्प को पढ़ता हुआ सुवर्ण, कुशा, जल आदि के साथ कन्या के दाहिने हाथ को वर के दाहिने हाथ पर रख देवे। "न मम" ऐसा पढ़कर पुनः 'कन्यां कनक सम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम्। दास्य विष्णवे तुभ्यं ब्रह्म लोकाभि जिगीषया" पद्य का पाठ करे। वर—" देवस्य त्वा० " मन्त्रों को पढ़ता हुआ कन्या दान स्वीकार करे।

अस्मिन्काले गोसुवर्णादिकं यथासंभवं वराय दद्यात् । ततो वेदिकायाः पश्चात्प्राङ्मुखो वरो वध्वा सह ब्राह्मणाननुज्ञाप्योपविश्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य प्रजाधर्म सम्पत्त्यर्थं स्त्रियमुद्वोक्ष्ये, इतिसङ्कल्प्य स्थण्डिलं परिसमूह्योपलिप्य विधिवदुल्लिख्याधनोक्तगृहाहृतमग्निं, मथिताग्निं वा, विधिवत्स्थापयत् । अत्राज्यतन्त्रम् । उपविष्टे ब्रह्मण्यग्नेरुत्तरतः पात्राण्यासादयति । पात्रासादनकाले, वरपक्षीयो ध्रुवानामपां कलशं पूरयित्वा सोदककुम्भः धृतोष्णीषोऽग्रेणाग्निं प्रादक्षिण्येन गत्वाऽग्नेर्ब्रह्मणश्च दक्षिणात उदङ्मुखो वाग्यतोभिषेकपर्यन्तं तिष्ठेत् । "ध्रुवानां लक्षणं 'गृह्यासंग्रहे' । महानदीषु या आपः कौप्यान्याश्च ह्रदेषु च गन्धवर्णरसैर्युक्ता ध्रुवास्ता इति निश्चयः" ॥

अर्थ—इस समय यथा शक्ति यौतुक (दायिजा) सुवर्ण, हाथी, अश्व, गौ, महिषि आदि धन वर को प्रदान करे। वर और वधू ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर अग्नि वेदिका के पश्चिम पूर्व मुख आसन पर बैठें । आचमन और प्राणायाम करें। वर दाहिने हाथ में कुशा और जल लेकर देश काल आदि स्मरण के पश्चात् "प्रजाधर्म्म सम्पत्त्यर्थं स्त्रियमुद्वोक्ष्ये" इस वाक्य को योजना कर संकल्प करे ।

तीन कुशाओं से अग्नि कुण्ड को पूर्व या उत्तर को झार देवे । क्रमशः पश्चिम से पूर्व को गोबर और जल से लीप देवे । स्फ्य पुष्प, फल अथवा कुशा से अग्नि कुण्ड के दक्षिण डेढ़ अंगुल और पश्चिम बारह अंगुल छोड कर पूर्व को बारह अंगुल की लम्बी पार्थिवी पीतवर्ण का ध्यान करते हुये रेखा करे। इसी रेखा के पश्चिम

सिरा से लगी हुई आग्नेय लाल वर्ण की होने का ध्यान करता हुआ उत्तर को लम्बी इक्कीस अंगुल की रेखा करे। प्रथम रेखा से उत्तर क्रमशः सात अंगुल छोड़कर दो १० अंगुल की और एक १२ अंगुल पूर्व को लम्बी दूसरी रेखा से मिली हुई प्रजापति, ऐन्द्री, सौम्या एवं काला, हरा, तथा सफेद वर्ण का ध्यान करता हुआ तीन रेखायें कर देवे। रेखा करने से अग्नि स्थापन तक वाम हाथ को भूमि पर रक्खे। रेखाओं की उभड़ी मिट्टी को उठाकर अग्निकुण्ड के ईशान्य कोन में फेंक देवे। दाहिने हाथ से जल ले कर कुण्ड पर छिड़िक देवे । ब्राह्मण आदि के गृह से लाकर अरणी मन्थन कर अथवा अग्नि स्थापन करे।

अङ्गुलियों के बल दोनों हाथों को भूमि पर रखकर "ओं इदम्भूमेर्भजामह इदम्भद्र ᳪ सुमङ्गलम् । परासपत्नान् बाधस्वान्येषां विन्दते वसु" मन्त्र का जप करे "ओम् इम ᳪ स्तोममर्हते जात वेदसे रथमिव सम्महेमा मनीषया। भद्राहि नः प्रमतिरस्य स ᳪ सद्यग्ने सख्ये मारिषामा वयं तव। भरामेध्मं कृणवामा हवी ᳪ षि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम्। जीवातवे प्रतरा ᳪ साधयाधियोऽग्ने सख्ये मारिषामा वयं तव॥ शकेमत्वा समिध ᳪ साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्। त्वमादित्या ᳪ आवह तान् ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मारिषामा वयं तव" मन्त्रों को पढ़ता हुआ अग्नि को भस्त रहित कर प्रज्वलित करने का यत्न करे। अग्नि के उत्तर उत्तराग्र कुशाओं को रखकर पूर्व मुख ब्रह्मा और पूर्वाग्र कुशाओं को रखकर उत्तर मुख वर बैठे। दोनों तीन तीन आचमन करें। दाहिने हाथ में कुशा लेकर वर ब्राह्मसे विवाह होम कर्मणि ब्रह्माणं त्वां अहं वृणे" ऐसा कहकर कुशाको ब्रह्मा के दाहिने हाथ में दे देवे। वर के प्रत्युत्तर में ब्रह्मा "वृतोऽस्मि कर्म करिष्यामि" इस प्रकार कहे । वर अग्नि के पूर्व से

जाकर कुण्ड के दक्षिण क्रमस. दक्षिण को जल की धारा देवे। अग्नि के दक्षिण ब्रह्मा के आसन पर पूर्वाग्र तीन कुशपत्रों को रखे।

ब्रह्मा शिखा को बाँधे हुए, यज्ञोपवीती आचमन कर अग्नि के पूर्व से दक्षिण जाकर आसन के पूर्व पश्चिम मुख खड़ा होवे। "निरस्तः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः परावसुः देवता तृण निरसने विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर "ओम् निरस्तः परावसुः" मन्त्र को पढ़ता हुआ वाम हाथ के अंगूठे और अनामिका से आसन पर पूर्वाग्र रक्खे हुए कुशपत्रों से एक कुशा उठाकर पश्चिम और दक्षिण के कोन में फेक कर जल स्पर्श कर लेवे। "आवसोः इति मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजु छन्दः परावसुः देवता उपवेशने विनियोगः" "ओम् आवसोः सदनेसीदामि" मन्त्र को पढ़ता हुआ उत्तर मुख आसन पर बैठ जावे। हाथ जोड़े हुए यज्ञ समाप्ति-पर्यन्त सब कार्यों का निरीक्षण करता रहे।

यदि ब्रह्मा के कार्य-सम्पादन-कर्त्ता का अभाव हो तो वर ही विनियोग स्मरण के सहित ब्रह्मासन के कुशपत्र को नैऋत्य में फेक देवे। आवसोः सदने सीदामि" मन्त्र से ब्रह्मासन पर छाता, जलपूर्ण कमण्डलु, डुपट्टा, अथवा बीच में गाँठि देकर कुशा इनमें किसी एक को रख देवे। इस प्रकार ब्रह्मा-सन पर उसके प्रति-निधि को स्थापन कर शेष सब कार्य्यों का स्वयं सम्पादन करे।

ब्रह्मा के आसन पर बैठ जाने के पश्चात् वर अग्नि के उत्तर भाग में पूर्वाग्र कुशा बिछाकर जल से भरी प्रणीता रक्खे। इसी समय वर के पक्ष का कोई व्यक्ति कलश के जल को लेकर शिर पर पगड़ी बाँधे हुए ब्रह्मा के सहित अग्नि की प्रदक्षिणा करे। ब्रह्मा के दक्षिण उत्तर मुख मौन हो कर अभिषेक पर्यन्त कलश के जल को लिए हुए खड़ा रहे। गृह्यासंग्रह में लिखा है कि—गङ्गा आदि महा-नदियों का अथवा कुँए या तालाब का जल हो, जिसे सर्वगन्ध,

आदि युक्त कलश में लेकर अभिषेकार्थ खड़ा होता है उस कलश के जल को ध्रुवा कहते हैं ।

अन्योऽपिवरपक्षीय एवं प्रतोदहस्तस्तिष्ठेत् । अग्नेरुत्तरतो दर्भानास्तीर्य्य स्रुवमाज्यस्थालीमाज्यं बर्हिर्मुष्टित्रयं त्रिशतां-श्मान्पवित्रदर्भावनुगुप्ता अपश्चासादयति। अग्नेः पश्चाद्दर्भा-नास्तीर्य्य शमीपत्रमिश्रांश्चतुरञ्जलिमात्रान्नवीनशूर्पस्थिता-ल्लाजान्दृषदुपलञ्चासादयेत् । ततश्चरुनिर्वापं विहायाज्य-संस्कारपर्य्यन्तं स्थालीपाकतन्त्रवत् कुर्य्यात् ॥

वर के पक्ष के एक और दूसरी व्यक्ति भी प्रतोद पर हाथ रखे हुए उसी प्रकार खड़ा रहे। अग्नि के उत्तर कुशा बिछा कर उन पर क्रमशः पूर्व—पूर्व को यज्ञ सामग्रियाँ को रक्खे यथा—कलश या लोटा में शुद्ध जल, तीन मुट्ठी कुशा, यव या धान का डंठल चार या तीन परिधि, बीस इध्मा, घी, आज्यस्थाली स्रुची, स्रुवा, गर्म जल, सम्मार्जन के लिये कुशायें, अग्नि के पश्चिम कुशा रख कर उसी पर शमी वृक्ष की पत्ती मिली हुई सूप में ४ अंजलि धान को लावा, सील, लोढ़ा और पूर्ण पात्र इन्हें रखे। आसादित सामग्रियों को भली भाँति निरीक्षण कर स्रुचि आदि पात्रों को सीधा रखकर जल में कुशा डुबोकर सब का प्रोक्षण कर दे।

अग्नि को इन्धन से प्रज्वलित कर दे। आसादित (पहले से रखी हुई) तीनों मुट्ठी कुशाओं को लेकर अग्नि के पूर्व, दक्षिण उत्तर और पश्चिम बिछा देवे। सब कुशाओं के अग्रभाग पूर्व रक्खे। एवं तीन परत अथवा पाँच परत बिछाना चाहिए और उन्हें इस रीति से बिछाना चाहिए कि पहले की बिछाई कुशाओं के मूल भाग को पीछे की बिछाई हुई कुशा के अग्रभाग ढकते जावें । अथवा पहले

पश्चिम बिछावे, तत्पश्चात् दक्षिण और उत्तर बिछाकर उनका अग्र भाग पूर्व की ओर इस रीति से मिला देवे कि त्रिकोणसा बन जावे। सब प्रकार के हवन में परिस्तरण की यही विधि है; अग्नि के पूर्व, दक्षिण, उत्तर और पश्चिम इन चार अथवा दक्षिण, उत्तर और पश्चिम इस प्रकार तीन परिधि रक्खे। उन परिधियों के अग्रभाग पूर्व और उत्तर को होने चाहिए।

बीसों इध्माओं को बिना मंत्र एक ही साथ अग्नि में छोड़ देवे। पहलेसे आसादित, कुशामें से ऐसे दो पत्रों को लेवे जिनका अग्र-भाग टूटा न हो और मध्य के पत्तों से भिन्न अगल-बगल के हों। प्रथम धान के पुआल अथवा जौ की डंटो में उन कुश पत्रों को लपेट कर "पवित्रेस्थः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः यजुः छन्दः पवित्रे देवते पवित्रछेदने विनियोगः" ऋषि देवता छन्द और विनियोग का स्मरण कर ले। "पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ" मन्त्र को पढ़ता हुआ पुआल या जौ की डंटी के सहारे से कुशपत्रों के अग्र भाग का एक वितस्त तोड़ लेवें। नखों से न तोड़े। पवित्र छेदन और कुशपत्रों के मूल को इशान कोण में फेक देवे। जल स्पर्श कर ले। वाम हाथ से पवित्रों के मूल को पकड़े हुए "विष्णोः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः पवित्रे देवते यजुः छन्दः अनुमार्जने विनियोगः" पढ़कर "विष्णोर्म्मनसा पूतेस्थः" मन्त्र को पढ़ता हुआ उन पवित्रों को दाहिने हाथ से जल लेकर धो लेवे और उन्हें उत्तराग्र आज्यस्थाली में रख देवे। उसी आज्यस्थाली में घृत छोड़ देवे। दोनों हाथों के अनामिका और अंगुठे से पवित्र के दोनों ओर पकड़कर "देवस्त्वा अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः आज्यं देवता उत्पवने विनियोगः, ऋष्यादि स्मरण कर "ओं देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वछिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्य्यस्य रश्मिभिः" एक वार मन्त्र से और दो वार बिना मन्त्र घृत का उत्पवन संस्कार करे। घृत का उत्पवन संस्कार कर

लेने के पश्चात् पवित्र कुशा की ग्रन्थि खोल देवे । जल से धोकर उसे अग्नि पर रख देवे ।

उत्पवन संस्कार किए हुए घृत को पकने के लिए अग्नि पर रख देवे । जब भली भाँति पक जावे तो अग्नि से उतार कर पहले उत्तर तद्पश्चात् आहुति प्रदान के लिए अग्नि के पश्चिम बिछाए हुए कुशा के ऊपर रख देवे ।

स्रुवा, स्रुची आदि को गर्म जल से धो देवे । पूर्व को अग्रभाग करके सम्मार्गकुशा के मूल से पात्रों के मूल मध्य से मध्य और अग्र से अग्र भाग को झार देवे । पुनः अग्नि पर तपाकर उनपर जल छिड़क देवे । फिर से अग्नि पर तपाकर आज्य के उत्तर भाग में रख दे ।

अथ यस्याः पाणिं गृहीष्यन् भवति सशिरस्का साऽऽप्लुता भवति । ततो वरोऽहतं वस्त्रमादाय वधूं परिधापयति । याऽकृन्तन्निति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्जगती-छन्दो वस्त्रकारा देवताऽधोवस्त्रपरिधापने विनियोगः । याऽकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देव्यो अन्तानभितो ततन्थ । तास्त्वा देव्यो जरसा संव्ययंत्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः । पुनरन्येनाहतेन वस्त्रेण यज्ञोपवीत-वत्परिधत्तेति वधूं परिधापयेत् । परिधत्त वाससेति मन्त्र-स्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः परिधापयितारो देवता उत्त-रीयवस्त्रपरिधापने विनियोगः। परिधत्त धत्त वाससैनाꣳशतायुषीं कृणुत दीर्घमायुः । शतञ्च जीव शरदः सुवर्च्चा वसूनिचार्यै विभूजासि जीवन् । ततोऽग्न्यगाराद्बहिर्वस्त्र-धारणं कृतवतीं वधूमग्न्यभिमुखीमानयन् वरस्सोमो ददद्गन्ध-

वीयेति जपेत् । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दस्सोमादयो देवता जपे विनियोगः । सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये। रयिञ्च पुत्रा ँ॒श्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ।

अर्थ—वधू को शिर के सहित भली भाँति स्नान करा देवे। वर "याऽकृन्तं०" और "परिधत्त" इन मन्त्रों से धारीदार नई धोती और चादर को प्रदान करे और वधू धोती पहन कर यज्ञोपवीतवत् चादर को धारण करे। वधू वस्त्रों को अग्नि शाला से अन्यत्र धारण करे और जब वस्त्र धारण कर लेवे तब उसे अग्नि वेदिका के समीप लावे। अग्नि के समीप आई हुई वधू को देखता हुआ वर "सोमोददद्० " मन्त्र का जप करे।

ततोऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्याग्नेः पश्चात्संवेष्टितकटासनसमीपमानयति । यदा दक्षिणेन पादा वधूः कटस्य पूर्वान्तं प्रवर्त्तयति तदा तां वरो वाचयति प्र मे पतियान इति । प्र मे पतियान इति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्द्विपाज्जगतीछन्दः पतिर्देवता पदप्रवर्त्तने विनियोगः । प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पतां शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् । वध्वाः पठनसामर्थ्याभावे वरस्स्वयं पठेत्। वरपठने तु प्र मे इत्यस्य स्थाने प्रास्या इति पाठः । अग्नेः पश्चाद्बर्हिषोन्ते कटे प्राङ्मुख उपविश्य स्वदक्षिणाकटप्रान्ते वधूं प्राङ्मुखीमुपवेशयेत् ।

अर्थ—वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करे। अग्नि के पश्चिम दाहिने पैर को प्रथम आसन पर रखती और "प्र मे०" मन्त्र को पढ़ती हुई पूर्व मुख बैठे। यदि वर वधू को आसन पर पैर रखते हुए देखकर

उक्त मन्त्र का पाठ करे-तो कर सकता है परन्तु मन्त्र में "प्र मे" शब्द के स्थान में " प्रास्या " ऐसा पाठ पढ़ना चाहिए। वर वधू को अपने दाहिने बैठाकर स्वयं भी अग्नि के पश्चिम परिस्तरण कुशा के समीप आसन पर पूर्व मुख बैठे ।

स्रुवं सम्मृज्य तूष्णीं समिधमाधाय पूर्ववददितेऽनुमन्य-स्वेत्यादिभिस्त्रिभिर्मन्त्रैरुदकाञ्जलीन्दत्वा देव सवितः प्रसुवेति पूर्ववत्त्रिः पर्य्युक्ष्य योजकनामानमग्निमाहूय, स्रुवे-णाज्यं जुहुयात् । भूः स्वाहा । भुवः स्वाहा । स्वः स्वाहा । भूर्भुवस्स्वस्स्वाहेति हुत्वाऽग्निरेत्विति षड्भिर्मन्त्रैस्स्रुवेण षडाज्याहुतीर्जुहोति । होमकाले वधूर्दक्षिणेन हस्तेन वरस्य दक्षिणांसमन्वारभते । अग्निरेत्विवित्यादीनां षणाम्मन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिराद्ययोरतिजगतीछन्दोऽग्निर्देवता तृतीयस्य शक्वरीछन्दो विश्वेदेवा देवता चतुर्थस्यातिजगतीछन्दोऽ ग्निर्देवता पञ्चमस्य बृहतीछन्दो यमादयो देवता षष्ठस्या-त्युष्णिक्छन्दो वैवस्वतो देवताऽऽज्यहोमे विनियोगः । अग्निरेतु प्रथमो देवताभ्यस्सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपा-शात् । तदयꣳराजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयꣳस्त्री पौत्रम-घन्नरोदात्स्वाहा । अग्नय इदं न मम । इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोतु । अशून्योपस्था जी-वतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभि विबुध्यतामियꣳस्वाहा । अग्नय इदं न मम । द्यौस्ते पृष्ठꣳरक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च स्तनन्धयस्ते पुत्रान् सविताऽभिरक्षत्वावाससः परिधा-

नाद्बृहस्पतिर्विश्वेदेवा अभिरक्षन्तु पश्चात् स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं न मम । मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः संविशन्तु । मा त्वꣳरुदत्युर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराजपश्यन्ती प्रजाꣳसुमनस्यमानाꣳस्वाहा । अग्नय इदं न मम । अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यं पाप्मानमुत वा अघम् । शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशꣳस्वाहा । वैवस्वतायेदं न मम । परैतु मृत्युरमृतं म आगाद्वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु । परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यत्र नो अन्य इतरो देवयानात् चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाꣳरीरिषो मोत वीरान् स्वाहा । वैवस्वतायेदं न मम । ततो व्यस्ताभिः समस्ताभिर्व्याहृतिभिराज्येन चतस्र आहुतीर्हुत्वा संहतहस्तौ वधूवरौ सहैवोत्तिष्ठतः ।

बिना मन्त्र एक समिध अग्नि में छोड़ देवे । हाथ में जल लेकर "अदिते अनुमन्यस्व" से अग्नि के दक्षिण नैऋत्यकोण से आग्नेय तक जल की धारा देवे । पुनः "अनुमते अनुमन्यस्व" मन्त्र से अग्नि के पश्चिम नैऋत्य कोण से वायव्य तक दूसरी जलधारा प्रदान करे । "सरस्वत्यनुमन्यस्व" मन्त्र से अग्नि के उत्तर वायव्य कोण से इशान तक जलधारा देकर "ओम् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय । दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु" मन्त्र से इशान से आग्नेय तक जलधारा देते हुए अग्नि के चारो तरफ प्रदक्षिण क्रम से एक अथवा तीन जलधाराओं से अग्नि

का पर्य्युक्षण करे। हाथ जोड़ कर "ओम् तपश्च तेजश्च श्रद्धा च ह्रीश्च सत्यञ्चाक्रोधश्च त्यागश्च धृतिश्च धर्मश्च सत्त्वञ्च वाक् मनश्चात्मा च ब्रह्म च तानि प्रपद्ये तानि मामवन्तु भूर्भुवः स्वरोम्महान्तमात्मानं प्रपद्ये"। विरूपाक्षोऽसि दन्ताञ्जिस्तस्य ते शय्या पर्णे गृहा अन्तरिक्षे विमितं हिरण्मयं तद्देवानां हृदयान्ययस्मये कुम्भे अन्तः सन्निहितानि तानि बलभृच्च बलसाच्च रक्षतोऽप्रमत्तौ अनिमिषतः सत्यं यत्ते द्वादश पुत्रास्ते त्वा संवत्सरे संवत्सरे कामप्रेण यज्ञेन याजयित्वा पुनर्ब्रह्मचर्य्यमुपयन्ति त्वं देवेषु ब्राह्मणोऽस्यहं मनुष्येषु ब्राह्मणो वै ब्राह्मणमुपधावत्युपत्वा धावामि जपन्तं मा माप्रतिजापीर्जुह्वन्तं मा मा प्रति हौषीः कुर्वन्तं मा माप्रति कार्षीस्त्वां प्रपद्ये त्वया प्रसूत इदं कर्म्म करिष्यामि तन्मे राध्यतां तन्मे समृध्यतां तन्म उपपद्यतां समुद्रो मा विश्वव्यचा ब्रह्मानुजानातु तुथो मा विश्ववेदा ब्राह्मणः पुत्रोऽनुजानातु श्वात्रो मा प्रचेता मैत्रावरुणोऽनुजानातु तस्मै। विरूपाक्षाय दन्ताञ्जये समुद्राय विश्वव्यचसे तुथाय विश्ववेदसे श्वात्राय प्रचेतसे सहस्राक्षाय ब्राह्मणः पुत्राय नमः ।

अग्नि में एक समिध चढ़ा देवे। स्रुवा से घी ले लेकर-ओम् भूः स्वाहा। अग्नय इदं न मम। ओम् भुवः स्वाहा। वायव इदं न मम। ओम् स्वः स्वाहा। सूर्याय इदं न मम। ओम् भूर्भुवः स्व स्वाहा। प्रजापतय इदं न मम। इन ४ आहुतियों को प्रदान करने के पश्चात् "अग्निरेतु०" इन छः मन्त्रों से घृताहुति प्रदान करे। आहुति प्रदान के समय वधू वर के दाहिने कन्धे को अपने दाहिने हाथ से स्पर्श किए रहे।

पुनः "भूः स्वाहा। अग्नय इदं नमम। भुवः स्वाहा वायव इदं न मम। स्वः स्वाहा। सूर्य्याय इदं न मम। भूर्भुव. स्वः स्वाहा। प्रजापतय इदं न मम।" इन चार आहुतियों को प्रदान करे। हाथ मिलाए हुए वर और वधू उठ कर खड़े होवें।

ततः पतिः पत्न्याः पृष्ठतो गत्वा पत्न्या दक्षिणात उदङ्मुखो वध्वञ्जलिङ्गृहीत्वाऽवतिष्ठते । तदा पूर्वदिशि स्थिता वधूमाताऽथवा, वध्वा भ्राता वाऽग्नेः पश्चादा सादितलाजशूर्पं सव्यहस्तेन गृहीत्वा, वध्वा दक्षिणपादाग्रं दक्षिणहस्तेन पूर्वमासादितेऽश्मनि स्थापयति। अश्माक्रमणकाले वर इममश्मानमारोहेति मन्त्रं जपेत् । इममश्मानमिति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्-छन्दोऽश्मादेवता अश्माक्रमणे विनियोगः । इममश्मानमारोहाश्मेव त्वꣳस्थिरा भव । द्विषन्तमपबाधस्व मा च त्वं द्विषतामधः ।

वर वधू के पीछे से उसके दक्षिण पार्श्व में जाकर उसकी बँधी हुई अञ्जलि के नीचे अपनी अञ्जलि किए हुए उत्तर मुख खड़ा हो जावें। अग्नि के पूर्व दिशा में पहले से उपस्थित वधू की माता अथवा भाई अग्नि के पश्चिम पहले से आसादित लाजा युक्त सूप को वाम हाथ में ले लेवे। दाहिने हाथ से वधू के दक्षिण पैर के अग्र भाग को पहले से आसादित लोढ़े पर रख देवे। वर वधू को पत्थर पर पैर रखते हुए देखकर "इममश्मान०" इस मन्त्र को पढ़े।

ततो माता भ्राता वा, स्रुवेणाज्यमादाय वराञ्जलौ स्थापिते वध्वञ्जलौ सकृदुपस्तीर्य, शूर्पमन्यस्मै दत्वाऽञ्जलिना लाजान् सकृदवदाय तस्मिन्नञ्जलौ निक्षिप्य पुनः स्रुवेणाज्यमादायाञ्जलिस्थाल्लाजान् द्विरभिघारयेद्वरश्चतुरवत्ती चेत् । पञ्चावत्ती चेद्द्विरुपस्तीर्य लाजान् सकृदवदायाञ्जलावोप्य द्विरभिघारयेत् । ततो वधूर्वराञ्जलिमविसृ-

ञ्चती लाजान् जुहोति। होमसमये वरो मन्त्रं पठेदियन्ना- र्युपब्रूत इति। स्वाहाकारे लाजहोमः। अस्य मन्त्रस्य प्रजा- पतिर्ऋषिर्जगतीछन्दो ऽग्निर्देवता लाजहोमे विनियोगः। इयं नार्य्युपब्रूतेऽग्नौ लाजानावपन्ती। दीर्घायुरस्तु मे पतिश्शतं वर्षाणि जीवत्वेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा। अग्नय इदं न मम ।

अर्थ—वधू की माता अथवा भाई लाजा सहित सूप किसी दूसरी व्यक्ति के हाथ पर रख देवे। वर की अञ्जलि से मिली हुई वधू के अंजलि में स्रुवा से एक बार घृत छोड़े। सूप में से अंजलि से लावा लेकर वधू के अंजलि में छोड़ देवे। पुनः उसपर स्रुवा से दो वार घृत छोड़ देवे। यदि ४ अथवा ५ वार हवि ग्रहण करनेवाला वर भलेही हो परन्तु दो बार भिघारण करे एक बार लावा देवे और दो स्रुवा ऊपर से घृत छोड़े। वधू वर के अंजलि से अपनी अंजलि को मिलाये हुए "इयं नार्य्यु पब्रूते०" मन्त्र से लावा की आहुति प्रदान कर देवे उक्त मन्त्र को वर पढ़े।

एवं प्रथमलाजहोमं कृत्वा, वध्वञ्जलिमविमुञ्चन् पृष्ठतो वध्वा उत्तरतो गत्वा, ब्रह्मादीन्याह्यतः कृत्वाऽग्निं यज्ञाङ्गपात्राणि च प्रदक्षिणीकुर्वन् वरो वधूमग्निं परिणयति। मन्त्रवान् ब्राह्मणः परिणयेत्। ततोऽग्नेः पश्चात्पत्नी प्राङ्मु- ख्यवतिष्ठते, प्राङ्मुखो वरोऽग्निपरिणायनकाले कन्यलापि- तृभ्य इति मन्त्रं जपेत्। अस्य मन्त्रस्य प्राजापतिर्ऋषिरनुष्टु- प्छन्दः कन्या देवता कन्याया अग्निपरिणायने विनियोगः।

कन्यलापितृभ्यः पतिलोकं पतीयमपदीक्षामयष्ट । कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः ।

अर्थ—वर अञ्जलि को बिना छोड़े हुए वधू के पीछे उत्तर मुख हो लेवे। आगे वधू और पीछे वर दोनो ब्रह्मा और यज्ञ पात्रों के बाहर से अग्नि की प्रदक्षिणा करें । वेदज्ञ पति "कन्यला" मन्त्र को पढ़ता हुआ अग्नि की प्रदक्षिणा कर अग्नि के पश्चिम दोनो पूर्व मुख खड़ा होवें ।

ततः पत्न्या दक्षिणतो गत्वोदङ्मुखो वध्वञ्जलिमादायावतिष्ठते पतिः प्राङ्मुखी पत्नी । पूर्ववद्वध्वा माता भ्राता वा वध्वा दक्षिणेन पदाग्रेण दृषदमाक्रामयति, पूर्ववद्रोजपति । ततो माता भ्राता वाऽञ्जलौ पूर्ववदुपस्तीर्य लाजान् प्रक्षिप्याभिघारयति । ततो वधूर्वरपठितमन्त्रान्ते लाजान् जुहुयात् । अर्यमणं नु देवमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिर्बृहतीछन्दोऽर्यमा देवता द्वितीयलाजहोमे विनियोगः । अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत । स इमां देवो अर्यमा प्रेतो मुञ्चातु मामुत स्वाहा । अर्य्यमण इदं न मम । ततः पूर्ववदुत्तरतो गत्वा पूर्ववत्कन्यामग्निं परिणायति । कन्यला पितृभ्य इति मन्त्रं जपेत् । अग्निं परिणीयाग्नेः पश्चद्वध्वा उत्तरतोऽवस्थानम् । ततोऽपृष्ठगमनाद्यञ्जलिग्रहणान्तं वरः कुर्यात् ।

अर्थ—पुन: पूर्ववत् वर वधू के पीछे से जाकर दाहिने पार्श्व में उत्तर मुख खड़ा होवे। पैर को पत्थर पर रखे । वर "इम मश्मान०" मन्त्र का पाठ करे। कन्या का भाई उपस्तिरणाभिधारित युत लाजा प्रदान करे। वधू "ओम् अर्य्यमणं नु देवं०" मन्त्र से आहुति प्रदान करे। पूर्ववत् "ओम् कन्यलापितृभ्य.०" मन्त्र को पढ़ता हुआ अग्नि की प्रदक्षिणा करे। अग्नि के पश्चिम पूर्व मुख दोनों खड़ा होवें। पत्थर पर वधू के दक्षिण पैर को रखे । वर "इम मश्मान" मन्त्र का पाठ करे । वधू का भाई पहले के अनुसार लाजा प्रदान करे।

लाजग्रहणाश्माक्रमणलाजाक्षेपहोमादिकं पूर्ववत् । वरस्तृतीयलाजहोममन्त्रं पठेत् । पूषणन्विति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्बृहतीछन्दः पूषा देवता तृतीयलाजहोमे विनियोगः । पूषणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत । स इमां देवः पूषा प्रेतो मुञ्चातु मामुत स्वाहा । पूषण इदं न मम । ततः पूर्ववन्मन्त्रजपपूर्वकं कन्यामग्निं परिणीयाग्नेः पश्चात्प्राङ्मुखोवतिष्ठते वरः स्वदक्षिणतः प्राङ्मुखीं वधूं स्थापयति । ततो वधूर्भ्रात्रा दत्तं लाजशूर्पमादाय लाजशेषं शूर्पेण तूष्णीं जुहोति । वरस्य न मन्त्रपाठः । किन्तु प्रजापतेर्मनसा ध्यानम् ।

अर्थ—वधू "ओम् पूषणं नु देवं०" मन्त्र से लाजाहुति प्रदान करे। प्रथम और दूसरे बार के अनुसार अग्नि प्रदक्षिणादि कार्य सम्पन्न करे। वर वधू दोनो अग्नि के पश्चिम पूर्व मुख खड़ा होवें। कन्या का भाई सूप के सहित सब लाजा को वधू के हाथ में दे

देवे। वधू अंज पति को मन में स्मरण कर बिना मन्त्र सब लाजा को एकही वार होम कर देवे।

ततो गृहीताञ्जलिकां वराभिमुखीमैशानीं दिशं दक्षिणपादाङ्गुष्ठमुत्क्रामय्य गमयत्यन्यः कश्चित् । सप्तभिर्मन्त्रैर्वधूदक्षिणपादं पुरतः संस्थाप्य सव्यं पादं तस्य पश्चात्संस्थाप्य सप्तपदानि गच्छेत् । वर एकमिष इत्यादीन्सप्तमन्त्रान् सप्तपदाक्रमणे जपति । तदा पतिः पत्नीं ब्रूयात् मा सव्येन दक्षिणमतिक्रामेति । एकमिष इत्यादीनां मन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिर्विराट्छन्दो विष्णुर्देवता पादाक्रमणे विनियोगः । एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु । द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु । त्रीणि व्रताय विष्णुस्त्वा नयतु । चत्वारि मायो भवाय विष्णुस्त्वा नयतु । पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु । षड्रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु । सप्त सप्तभ्यो होत्राभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु । ततस्तत्रैव सखा सप्तपदीति जपेत् । सखा सप्तपदीति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्भामकीपङ्क्तिश्छन्द आशास्यमाना देवताऽऽशासने विनियोगः । सखा सप्तपदी भव सख्यन्ते गमेयꣳ सख्यन्ते मायोषाः सख्यन्ते मायोष्ठ्याः । ततो विवाहप्रेक्षकान्सभ्यान्वरः प्रतिमन्त्रयेत सुमङ्गलीरियमिति । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द आशास्यमाना देवता प्रेक्षकप्रतिमन्त्रणे विनियोगः । सुमङ्गलीरियं वधूरिमाꣳसमेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं विपरेत न ।

वर के संमुख खड़ा होती हुई वधू को दाईं ओर करके अग्नि से ईशान दिशा में दाहिने पैर के अंगूठे से आरम्भ कर सात पग पूर्व को चलने का आदेश करे। प्रथम दाहिने पैर को आगे बढ़ाकर पश्चात् बाम पैर को उठाती जावे। पूर्वोक्त विधानुसार वधू सात पग पूर्व को चले और वर "एक मिषे०" मन्त्रों को पढ़ता जावे। सातवें पद पर जब वधू पैर रक्खे तो "सखा सप्तपदी भव" मन्त्र का पाठ करे। इस प्रकार जब सातों कृत्य समाप्त हो जावें पर वर विवाह दर्शकों को देखता हुआ "सुमङ्गलीरियं वधूः०" मन्त्र का पाठ करे।

ततोऽग्नेर्दक्षिणतो गृहीतोदककुम्भो यो द्विजः स्थितस्सोऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य सप्तमे पदे वरस्य शिरः कलशोदकेनाभिषिञ्चेत्। पुनर्वधूशिरस्यभिषिञ्चेत्। अभिषेककाले समञ्जन्त्विति मन्त्रं वरः पठेत्। समापो हृदयानि नाविति मन्त्रलिङ्गात्। "अभिषेककर्त्ता मन्त्रं पठेत् मूर्द्धदेशेऽवसिञ्चति तथेतरां समञ्जन्त्वित्येतयर्चेति गोभिलोक्तेरित्यन्ये"। वधूशिरस्यभिषेकेऽपि तथा मन्त्रपाठः। समञ्जन्त्विति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो विश्वेदेवा देवता मूर्द्धाभिषेचने विनियोगः। समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ।

अर्थ—जो पुरुष कलश में जल लेकर अग्नि के दक्षिण खड़ा था वह सप्त पदी के सातवें पद पर प्रथम वर के पश्चात् वधू के शिर पर कलश में कुशा डुबो कर अभिषेक करे और वर "समञ्जन्तु०" मन्त्र

का पाठ करे। यद्यपि मन्त्र के भाव से उक्त मन्त्र को अभिषेक कर्त्ता को ही पढ़ना चाहिए परन्तु गोभिल सूत्रानुसार अभिषेक कर्त्ता से भिन्नही पुरुष का पढ़ना स्पष्ट है।

प्रतोदहस्तो ब्राह्मणस्ससाहन्यहं वा रक्षार्थं वरमनुगच्छेत् । ततो वरोऽभिषिक्तायास्ससमपदस्थाया वध्वा दक्षिणहस्तमणिबन्धप्रदेशं सव्यहस्तेन गृहीत्वा, दक्षिणपाणिना वधूदक्षिणपाणिं साङ्गुष्ठमुत्तानङ्गृहीत्वा गृभ्णामि त इत्यादीन्षट् पाणिग्रहणीयान्मन्त्राञ्जपति। षणाम्मन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुबनुष्टुप्त्रिष्टुप्छन्दांसि भगादयो देवताः पाणिग्रहणे जपे विनियोगः। गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथा सः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ १ ॥ अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनास्सुवर्चाः। वीरसूर्जीवसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे चतुष्पदे ॥ २ ॥ आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा। अदुर्म्मंगलीः पतिलोकमाविश शन्नो भव द्विपदे शञ्चतुष्पदे ॥ ३ ॥ इमां त्वमिन्द्र मीढ्वस्सुपुत्रा᳭ँसुभगां कृधि दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कुरु ॥ ४ ॥ सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥५॥ मम व्रते ते हृदयं दधातु

मम चित्तमनुचित्तन्ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व वृहस्पतिस्त्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ ६ ॥ ततो वरो व्याहृतिचतुष्टयं हुत्वा तूष्णीं समिधमाधाय, पर्य्युक्षणाद्यु परिष्टात्तन्त्रं समापयेत् । ततो ब्रह्मणे पूर्णपात्रदक्षिणां दद्यात् ।

अर्थ—पहले से भाले को लिए हुए वर के रक्षार्थ खड़ा हुआ व्यक्ति उसके समीप चला जावे । वर सातवें पद पर पहुँची हुई अभिषेक्ता वधू के कलाई को वाम हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ से सहित अंगुष्टे के हाथ पकड़ कर "गृभ्णामि०" मन्त्रों का पाठ करे । वर "भूः स्वाहा । अग्नय इदं न मम । भुवः स्वाहा । वायव इदं न मम । स्व: स्वाहा । सूर्याय इदं न मम । भूर्भुवः स्व. स्वाहा । प्रजापतय इदं न मम । इन व्याहृतियों से चार आहुति प्रदान करे । अग्नि में दो समिध को विना मन्त्र छोड़ देवे । 'अदिते अन्वमंस्था' मन्त्र से अग्नि के दक्षिण नैर्ऋत्य से आग्नये तक जल की धारा देवे । "अनुमते अन्वमंस्था" मन्त्र से अग्नि के पश्चिम नैऋत्य से वायव्य तक और "सरस्वते अन्वमंस्था" से अग्नि के उत्तर वायव्य से इशान तक जल की धारा देवे । "देव सवित. प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । केतपूः केतन्नः वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु:" मन्त्र से इशान से आग्नेय तक जलधारा देते हुए अग्नि के चारो तरफ एक बार अथवा तीन बार जल की धारा देवे । बिछाये हुए परिस्तरण कुशाओं में से एक मुष्टी लेकर उनके अग्र मध्य और मूल भाग को "अस्य मन्त्रस्य प्रजापति ऋषिः यजुः छन्द. विश्वे देवा देवता बर्हिरभ्यञ्जने विनियोग:" ऋष्यादि का स्मरण कर "अक्तु**१४**रिहाणा व्यन्तु वयः" मन्त्र से घृत अथवा चरु में डुबो देवे । जल से प्रोक्षण कर देवे । "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप् छन्दो रुद्रो देवता बर्हिर्होमे विनियोगः । "ओम् यः पशूनामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो वृषा ।

पशूनस्माकं माहिꣳसीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा" पशूनामधिपतये रुद्राय तन्तिचरायेदं न मम । मन्त्र से अग्नि में होम कर देवे । जल स्पर्श कर लेवे । स्रुची में घृत भर कर "प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्वसवो देवता होमे विनियोगः" ऋषि आदि का स्मरण कर "वसुभ्यः स्वाहा । वसुभ्य इदं न मम" इस मन्त्र से अविछिन्न घृत धारा अग्नि में प्रदान करे । ब्रह्मा जितने में भोजन करके तृप्त हो सके उतने भात, या चावल या फल "ब्रह्मन् पूर्णं पात्रं ते ददामि" वाक्य से दक्षिणा प्रदान कर देवे ।

तत्रादौ कन्याप्लवने भवदेवभट्टाचार्यः । "क्लीतकैर्यवैर्माषैर्वा प्लुतामित्येतत्सूत्रे क्लीतकपदेन मसूरपरिग्रहान्मसूरयवमाषचूर्णयुक्तोदकेनाप्लवनमिति" । अन्येतु "क्लीतकैः क्लिन्नकैश्चूर्णीकृत्योदकेन द्रवीकृतैरित्येतत् । कैर्यवैर्माषैर्वेति व्याचख्युः" ।

अर्थ—विचार्य-विषय—भव देव भट्टाचार्य का मत है कि "क्लीतकै०" गोभिल गृह्यसूत्र में क्लीतक शब्द मसूर का बोधक है । अतः मसूर, यव और ऊरद के चूर्ण को जलमें मिलाकर स्नान कराना युक्त है । कुछ लोगों का मत है कि जल में मसूर के चूर्ण को छोड कर उस द्रवी भूत जल से स्नान कराना चाहिए । दोनों में प्रथम पक्ष युक्ति युक्त है ।

वधूं वस्त्रेण परिधाप्य बर्हिषोन्तं कटान्तं स्थापयेदित्यत्र रघुनन्दनभट्टाचार्य्यः । "अन्तपदं समीपबोधकम्, तथा च कटबर्हिषोरन्तं समीपमन्तरालदेशं वधूं प्रापये-

दिति"-"अन्ये तु 'सूत्रोपात्तमन्तमिति कर्मद्वयं विहाया-
नुषङ्गेन वध्वाः कर्मकल्पनायोगादेकस्यान्तशब्दस्य वैय्य-
र्थ्याच्च, तस्माद्बर्हिषोन्तं कटान्त मिति बर्हिषामग्नेः प-
श्चादास्तीर्णकुशानामन्तभागस्थं कटान्तं भागंप्रापयेत्'।
तथाचास्तृतबर्हिषां किञ्चिदुपरिकटान्तभागोऽस्तीति गम्य-
ते। युक्तश्चैतत्। अग्नेः पश्चाद्बर्हिरास्तीर्य्य तन्मूले कट-
मास्तृणुयादित्याहुः"। पूर्वा माता लाजानादाय भ्राता
वा वधूमाकामयेदश्मानं दक्षिणेन प्रपदेनेत्यत्र "केचित्
'पूर्वामाते' त्येकं पदम्। अस्यार्थः। पूर्वदिशि स्थिता या
वध्वा एव मातेति" तदपेशलं, सम्भवति समानाधिकरणे
वैयधिकरण्येनान्वय,योगात्। तर्हि कथं! वर्ण्यतइति
चेदित्थम्। बह्वीनां मातॄणां या प्रथमा सा पूर्वेति॥
इति विवाहप्रयोगः॥

अर्थ—रघुनन्दन भट्टाचार्य का मत है कि "वधू को वस्त्र परिधान कराकर बर्हि और चटाई के अन्त में बैठावे" अन्तपद समीप का बोधक है। भाव यह है कि परिस्तरण कुशा और उसके समीप रखे हुए आसन के मध्य से वधूको ले जावे। कुछ लोगों का मत है कि सूत्र के अन्त में "अन्त" शब्द वार वार लाना व्यर्थ है। अतः अग्नि के पश्चिम आस्तरण कुशा के किंचित अंश के ऊपर ही आसन रखे। युक्ति युक्त यही प्रतीत होता है कि अग्नि के पश्चात् बर्हि आस्तरण कर उसी के ऊपर से आसन रखे। वधू आस्तरण कुशा और आसन के मध्य से जाकर अङ्गूठे से आसन को हिलाकर वर के दक्षिण उसी आसन पर बैठे। "वधू की माता या भाई लाजा लेकर दाहिने पैर के अङ्गु-

लियों से अश्मारोहण करावे" इस विषय में कुछ लोग सन्देह करते हैं। उनके मत से इस पद में माता शब्द वधू का ही विशेषण है। वैयधिकरण अन्वय के योग से इसका अर्थ ही दूसरा क्या होगा? हाँ यह हो सकता है कि अनेक माताओं में जो पहली माता हो वही अश्मारोहण करावे। ये सब अर्थाभाश हैं। स्पष्टार्थ यही है कि अग्नि के पूर्व पहले से उपस्थित वधू की माता अथवा भ्राता सूप के सहित लाजा को वाम हाथ से उठा लेवे। दाहिने हाथ से वधू को अश्मारोहण करावे। यही पूर्वोक्त विवाह संस्कार विधि है।

तत उत्तरविवाहार्थं वधूं वरं भाण्डे स्थापितमथवा समिदादौ समारोपितं विवाहाग्निश्च शकटादिवाहने संस्थाप्य वरपत्नीया विवाहगृहस्यैशान्यां दिशि नित्य-नैमित्तिककर्मतपस्स्वाध्याययुक्तं ब्राह्मणगृहं, तदभावे यथासम्भवं यत्र क्वापि दिशि स्थितं ब्राह्मणगृहं नयेयुः। तत्र वर उल्लेखनादिपूर्वकमग्निं प्रतिष्ठाप्याज्यतन्त्रेण व्याहृतित्रयहोमान्तं कुर्यात्। वधूवरयोर्विवाहाग्निमन्वारभ्य गमनम्। ब्राह्मणगृहाभावे विवाहवेद्यामेव। अस्मिन्पक्षे न परिसमूहनादिपूर्वकमग्निस्थापनमग्नेः प्रतिष्ठितत्वान्नात्र पृथगाज्यतन्त्रम्। गणेष्वेकं परिसमूहनमिति" सूत्रात्। किन्तु प्रधानमेव कुर्यात्।

अर्थ—वर के सजातीय लोग विवाह की उपाङ्गविधि को सम्पन्न करने के लिए अग्नि को किसी भाण्ड में लेकर अथवा समिध में समारोप कर वर और वधू को गाड़ी आदि किसी सवारी पर सवार कराकर विवाह गृह से ऐशान्य दिशा में किसी

ऐसे ब्राह्मण के गृह में ले जावें जो पंचमहायज्ञ का करनेवाला धार्मिक हो। यदि ऐशान्य दिशा में ब्राह्मण का गृह न हो तो जिसी दिशा में ब्राह्मण गृह हो उसी में अग्नि, वर और वधू को ले जावें। वहाँ उल्लेखनादि संस्कार पूर्वक विवाहाग्नि की स्थापन करें। घृत संस्कार कर व्याहृतियों से आहुति प्रदान करें। विवाहाग्नि को साथ लिए हुए वर और वधू स्व गृह को प्रस्थान करें। यदि ब्राह्मण के गृह का अभाव हो अर्थात् समीप में ब्राह्मण का गृह न हो तो जिस वेदिका पर विवाह संस्कार की आहुतियाँ प्रदान की गई हों उसी पर इन आहुतियों को भी प्रदान करें। परन्तु ऐसी दशा में अग्नि स्थापनादि कोई कृत्य अलग न होगा। विवाह की प्रधान आहुतियों के पश्चात् इन्हें भी प्रदान करें।

ततोऽग्नेः पश्चाल्लोहितन्तदभावेऽन्यवर्णं वा वृषभचर्म्म पूर्वशिरस्कमुत्तरलोमास्तीर्य तत्र वधूं कृतमौनामुपवेशयति । आनक्षत्रदर्शनान्मूत्रपुरीषोत्सर्गादेरन्यत्र नोत्तिष्ठेत् । दिवा वध्वा भोजननिवृत्तिर्वरस्य च । "तेन चैवास्य प्रातराहुतिर्हुता भवतीति" सूत्रेण विवाहाग्नौ विवाहहोमैरेव प्रातर्होमस्य निवृत्तित्वात्सायमौपासनारम्भस्यावश्यकत्वेन तदर्थं वरस्य भोजन निवृत्तिर्युक्तैव ।

अर्थ—अग्नि के पश्चिम लाल वरण का यदि लाल वरण का न हो तो जैसा ही सुलभ्य हो बैल के चर्म्म को ऊपर लोम और पूर्व को शिर करके बिछा देवे। उसी पर मौन धारण की हुई वधू को बैठावे। यदि मूत्रपुरिषोत्सर्ग की आवश्यकता हो तो उठे। अन्यथा जब तक ताराएँ न दिखाई देवें तब तक बैठी रहे। उस दिन वर

और वधू दिन में भोजन न करें। "विवाहाहुति ही उस दिन की प्रातरौपासन आहुति हैं" उस दिन पूर्वोक्त वचनानुसार वर की प्रातः होम की आवश्यकता निवृत्त हो जाती है। सायंकाल से उपासनाग्नि का होम आरम्भ होगा। अतः उस दिन वर और वधू को व्रतही करना उचित है।

ततो नक्षत्रोदयं श्रुत्वा षडाज्याहुतीर्जुहोति लेखेत्यादिभिः षडभिर्मन्त्रैः।प्रत्याहुतिं हुतशेषाज्यबिन्दून्वधूशिरसि पातयेत्। लेखेत्यादीनां षणाम्मन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽभिधीयमाना देवता पाणिग्रहणस्याज्यहोमे विनियोगः। लेखा संधिषु पक्ष्मस्वावर्त्तेषु च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥ १ ॥ केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रुदिते च यत्। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥ २ ॥ शीले यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत्। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥ ३ ॥ आरोकेषु च दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत्। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥ ४ ॥ ऊर्वोरुपस्थे जंघयोः सन्धानेषु च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥ ५ ॥ यानि कानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तवाभवन्। पूर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा ॥ ६ ॥ सर्वत्राग्नय इदं न मम। कन्याया इदं न ममेति केचित्। रात्रिविवाहपक्षे। आनक्षत्रोदयं

वध्वा उपवेशनासम्भवात् । पूर्वविवाहे उत्तरतन्त्राङ्गव्याहृतिहोमं कृत्वा, चर्मोपवेशनं कृत्वा, सद्य एव नक्षत्रोदयमन्यमुखात्श्रुत्वा, षडाज्याहुतीर्जुहोति ।

अर्थ—जब तारायें उदय हो जावें तो "लेखा संधिषु०" मन्त्रों से छः घृताहुति प्रदान करे । प्रत्येक आहुतियों का "अग्नय इदं न मम" त्याग करे । कुछ लोगों का मत है कि "कन्याया इदं न मम" त्याग करे । यदि किसी कारण वश रात्रि में विवाह संस्कार करना हो तो वधू को नक्षत्र दर्शन तक बैठे रहना असम्भव है । ऐसी दशा में अग्निरेतु प्रथमो" से आरम्भ कर लेखा होमादि सब कृत्यों को क्रमशः एक ही समय सम्पन्न करे ।

ततो वधूं ध्रुवं प्रदर्शयति । हेलच्मि, ध्रुवं पश्येत्येव मुक्ते वधूर्ध्रुवं पश्यति । ततस्तां ध्रुवं पश्यन्तीं वरो ध्रुवमसीति मन्त्रं वाचयेत् ॥ ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासममुष्यासौ । सौत्रमन्त्रः । अमुष्येत्यत्र षष्ठ्यन्तम्भर्तृ नाम गृह्णीयात् । असावित्यत्र प्रथमान्तं वधूनाम गृह्णीयात् । ततो हेलच्मि, अरुन्धतीं पश्येति वरेणोक्ते वधूररुन्धतीं पश्यति । पश्यन्तीं तां वरो वाचयेत् । अरुन्धत्यसि रुद्धाहमस्मिविष्णुशर्मणो लक्ष्मीरिति । अत्र तृतीयान्तं भर्त्तृ नाम गृह्णीयात् ।

पद के स्थान पर षष्ठ्यन्त पति का और असौ पद के स्थान पर प्रथमान्त वधू का नाम उच्चारण करे । ध्रुव दर्शन के पश्चात् वर 'हे लक्ष्मि अरुन्धतिम् पश्य" आज्ञा देवे। वर वध के अरुन्धती तारा के देखने के समय "अरुन्धत्यसि" मन्त्र का पाठ करे । इस मन्त्र में वर का तृतियांत नाम उच्चारण करे ।

ततो वरो वधूमनुमन्त्रयते ध्रुवाद्यौरित्येतयर्चा । तच्च दक्षिणहस्तानामिकाग्रेण वधूं संस्पृशन्नवलोकयन्मन्त्रं पठेत् । अस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽभिधीयमाना देवताऽनुमन्त्रणे विनियोगः । ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुव विश्वमिदञ्जगत् । ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् । ततो वधूर्भर्त्तार नमस्करोति भर्त्तृगोत्रेण । श्रीवत्सगोत्रा लक्ष्मीरहम्भोः अभिवादयामि । आयुष्मती भव लक्ष्मीति प्रत्युक्तिः ।

अर्थ—अरुन्धती तारा अवलोकन के पश्चात् वर अपने दाहिने हाथ की अनामिका अङ्गुली के अग्रभाग से वधू को स्पर्श किए हुए एवं देखता हुआ "ध्रुवा द्यौ०" मन्त्र को पढ़े । वर से अभिमन्त्रित वधू वर के गोत्रके साथ अपने को सम्बोधित करती हुई वर का अभिवादन (प्रणाम) करे । यथा—"श्रीवत्सगोत्रा लक्ष्मी देवीरहम्भो अभिवादयामि" कह कर पति का चरण स्पर्श करे । वर "आयुष्मतीभव लक्ष्मि" कह कर आशीर्वाद देवे ।

ततो वध्वा सह वरोऽग्नेः पश्चादुपविश्य व्याहृतिचतुष्टयं पुनर्व्याहृतित्रयञ्च हुत्वा, तूष्णीं समिदा-

सप्तभूतिपर्णपात्रदक्षिणादानान्तं तन्त्रं समापयेत । "तेन केवलस्य प्रातराहुतिर्निवृत्ता भवति । सायमाद्युपक्रमं प्रचारं ऊर्ध्वं गृह्येऽग्नौ होमो विधीयते" इति सूत्रैर्विवाहहोमेनैव प्रातराहुतिनिवृत्तेस्सायं होमारम्भस्य चोक्तत्वात् । विवाहदिने रात्रौ लाजाहोमानन्तरं सायमौपासनारम्भः कर्त्तव्य एव कौथुमीयानाम् ।

अर्थ—वधू के साथ वर अग्निके पश्चिम बैठकर "भू स्वाहा । अग्नये इदं न मम । भुवः स्वाहा । वायव इदं न मम । स्वः स्वाहा । सूर्याय इदं न मम । भूर्भुवः स्वः स्वाहा । प्रजापतये इदं न मम । भूः स्वाहा । अग्नय० । भुवः स्वाहा । वायव० । स्वः स्वाहा सूर्याय० । इन सात आहुतियों को घृत से सम्पन्न करें । फिर तन्त्र अग्नि में एक समिध चढ़ा देवें । अग्नि के अनुपर्युक्षण से ब्रह्मा को पूर्णपात्र दान तक कृत्य समाप्त करें । इन्हीं उपरोक्त आहुतियों से उस दिन का प्रातः औपासन होम कृत्य सम्पन्न हो जाता है । गोभिलाचार्य ने अपने गृह्यसूत्र में लिखा है कि सायंकाल की आहुति से आरम्भ कर सायं प्रातः उपासन होम का विधान है । उपरोक्त वचनानुसार प्रथम प्रातःकाल की आहुति की निवृत्ति हो जाती है । क्यों कि सायंकाल की आहुति से औपासन होम का आरम्भ करना लिखा है । कौथुमी शाखाध्यायी को विवाह के दिन लाजा होम के पश्चात् साय होम से औपासन होम का आरम्भ करना विधि है ।

"तदुक्तं 'गृह्यपरिभाषाकृद्भिः' । यदाऽह्नि विवाहहोमस्तदा सायङ्काले होमारम्भः । यदा रात्रौ विवाहहोमस्तदा परेद्युस्सायङ्काले होमारम्भ" इति । शौनकोऽपि ।

"यस्मिन्नन्हि विवाहस्स्यात्सायमारभ्य तस्य तु। परिचर्य्या विवाहाग्नेर्विदधीत स्वयं द्विजः॥ १॥ यदि रात्रौ विवाहाग्निरुत्पन्नस्स्यात्तथा सति। उत्पन्नस्योत्तरस्यान्हः सायं परिचरेदमुम्" ॥ २॥ केचिच्चतुर्थीकर्म्मानन्तरं सायमौपासनारम्भं मन्यन्ते। "तदुक्तं 'कर्मप्रदीपे'। वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत सायं प्रातस्त्वतन्द्रितः। चतुर्थीकर्म्म कृत्वा तु ह्येतच्छाट्यायनेर्मतम्" ॥ १॥

अर्थ—प्रातः औपासन होम के विषय में गृह्यपरिभाषाकार ने लिखा है कि जिस दिन विवाह का होम हो उसी दिन के सायं काल से औपासन होम का आरम्भ करे। यदि रात्रि में विवाह संस्कार करना परे तो दूसरे दिन के सायं काल से नित्यौपासन होम का आरम्भ करना चाहिए। शौनक ऋषिका भी यही मत है। कुछ लोग चतुर्थी कर्म्म के पश्चात् से औपासन होम का आरम्भ करना मानते हैं। कर्म प्रदीप में लिखा है कि चतुर्थी कर्म के पश्चात् आलस्य रहित हो विवाहाग्नि में सायं प्रातः होम करता रहे यह च्छाट्यायन ऋषिका मत है।

सायंप्रातर्होमार्थं विद्वदनुज्ञा। आवयोः सायंप्रातर्होमारम्भं कर्त्तुं योग्यतासिद्धिरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु। तैरनुज्ञातः पत्न्या सह प्राणानायम्य सङ्कल्पं करोति। गृह्याग्नावौपासनहोमसमारप्स्ये। तेन यावज्जीवन्तण्डुलैर्व्रीहिभिर्यवैर्वा सायंप्रातर्होष्यामि। पत्न्यर्थं पुनरेवं वदेत्। पुनर्देशकालौ सङ्कीर्त्त्य सायमौपासनहोमं

होष्यामिति सङ्कल्प्योपासनहोमं कुर्य्यात् । तत्प्रयोग-स्तूक्तः ॥

अर्थ—प्रथम सायं प्रातः नित्योपासन होम की योग्यता के लिए किसी विद्वान के समक्ष "आवयोः सायम्प्रातर्होमारम्भं कर्त्तुं योग्यता सिद्धिरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु" ऐसी प्रार्थना करे। विद्वानों की आज्ञा प्राप्त कर सपत्निक आचमन प्राणायाम करे। "गृह्याग्नि में नित्योपासन होम का आरम्भ करते हैं, जीवन पर्यन्त चावल, धान अथवा यव इन मेसे किसी एक से साय प्रातः होम करते रहेंगे" स्वयं और स्त्री के लिए ऐसी प्रतिज्ञा करे। प्रतिज्ञा करने के पश्चात् पुनः देश, काल, तिथि, वार आदि स्मरण पूर्वक संकल्प कर नित्योपासन होम कार्य को सम्पन्न करे। इस नित्योपासन होम की विधि लिख चुके हैं।

अथ दम्पती त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ मैथुनरहितौ भूमौसह शयीयाताम् । "अत्राघ्र्यमित्याहुः । आगतेष्विन्त्येके" । अनयोस्तात्पर्य्यम् । अस्मिन्नवसरे वा, विवाहार्थमागमनसमये वा, वराय मधुपर्क्कं दद्यात् । यदा दिवा विवाहस्तदा रात्रावेव समशनीयस्थालीपाकं कृत्वा भोजनं कुर्य्यात् । यदि रात्रौ दम्पत्योर्भोजनासम्भवो रात्रिविवाहवशात्तदा विवाहोत्तरदिने प्रातर्होमानन्तरं समशनीयस्थालीपाकं कुर्य्यात् ।

अर्थ—पूर्वोक्त कृत्यों को समाप्त कर वर वधू तीन दिन क्षार लवण न खावें। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें। भूमि पर सयन

करें। कुछ ऋषियों का मत है कि इस समय मधूपर्क विधि से वर की पूजा करनी चाहिए। कुछ लोगों का मत है कि विवाहार्थ आने के ही समय पूजा करनी चाहिए। तातपर्य यह है कि इस अवशर पर हो या विवाह के लिए पहले आने के समय हो मधुपर्क विधि से वर की पूजा अवश्य करनी चाहिए। जिस दिनमें विवाह संस्कार हो उसी दिन की रात्रिमें समशनीय स्थालीपाक कर आहुति प्रदान करे। आहुति से वची हुई हविका वर और वधू भोजन करें। यदि रात्रिमें विवाह हो, जिससे दम्पती को भोजन का अवसर न हो तो विबाह रात्रि के पश्चात् प्रातः काल नित्यौपासन होम कर पुनः समशनीय स्थालीपाक कृत्य सम्पन्न करे।

तस्य प्रयोगः। यदि गृह्याग्निस्स्थण्डिले तिष्ठति तदा नोल्लेखनादिकम्। यदा भाण्डे समारोपितस्तदा स्थण्डिले उल्लेखनादिपूर्वकं भाण्डस्थोऽग्निः प्रतिष्ठापनीयः। परमेश्वरप्रीत्यर्थमनया पत्न्या सह समशनीयस्थालीपाकं करिष्ये। तेन परमेश्वरं प्रीणयानि। पार्वणस्थालीपाकवत्पर्य्युक्षणान्तं कुर्य्यात्। चरुनिर्वापकाले अग्नये त्वा जुष्टन्निर्वपामि। प्रजापतये त्वा जुष्टन्निर्वपामि। विश्वेभ्यो देवेभ्यस्त्वा जुष्टन्निर्वपामि। अनुमतये त्वा जुष्टन्निर्वपामि।

अर्थ—समशनीय स्थालीपाक का प्रयोग—यदि वेदिका पर विवाह संस्कारार्थ स्थापित अग्नि विद्यमान हो तो परिसमूहन, उपलेपन, उल्लेखन आदि कार्य करने की आवश्यकता नही होती। यदि वेदिका से किसी पात्र में रख कर दूसरे स्थान मे अग्नि लाई गई हो

अथवा अरणी या समिद् में समारोप किया गया हो तो पृष्ठ ८६ में लिखी हुई विधि से वेदिका का संस्कार कर अग्नि स्थापन करे। देश काल आदि का स्मरण कर "परमेश्वर०" योजनाके साथ संकल्प करे।

अङ्गुलियों के बल दोनों हाथों को भूमि पर रखकर "ओं इदम्भूमेर्भ जामह इदम्भद्रꣳसुमङ्गलम्। परासपत्नान् बाधस्वान्येषां विन्दते वसु" मन्त्र का जप करे। ओ३म् इमꣳस्तोममर्हते जात वेदसे रथ-मिव सम्महेमा मनीषया। भद्राहि नः प्रमतिरस्य सꣳसद्यग्ने सख्ये मारिषामा वयं तव॥ भरामेध्मं कृण्वामा हवीꣳषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम्। जीवातवे प्रतराꣳसाधयाधियोऽग्ने सख्ये मारिषामा वयं तव॥ शकेम त्वा समिधꣳसाधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्। त्वमादित्याꣳआवह तान् ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव" मन्त्रों को पढ़ता हुआ अग्नि को भस्म रहित कर प्रज्वलित करने का यत्न करे।

अग्नि के उत्तर उत्तराग्र कुशाओं को रखकर पूर्व मुख ब्रह्मा और पूर्वाग्र कुशाओं को रखकर उत्तर मुख यजमान बैठे। दोनों तीन तीन आचमन करें। दाहिने हाथ में कुशा लेकर यजमान ब्रह्मा से "सम-शनीय स्थालीपाक होम कर्मणि ब्राह्मणं त्वां अहं वृणे" ऐसा कहकर कुशाको ब्रह्मा के दाहिने हाथ में दे देवे। यजमान के प्रत्युत्तर में ब्रह्मा "वृतोऽस्मि कर्म करिष्यामि" इस प्रकार कहे। तत्पश्चात् यजमान अग्नि के पूर्व से जाकर कुण्ड के दक्षिण क्रमशः दक्षिण को जल की धारा देवे। अग्नि के दक्षिण ब्रह्मा के आसन पर पूर्वाग्र तीन कुशपत्रों को रखे। अग्नि के पश्चिम से आकर अग्नि कुण्ड के उत्तर पात्रों का आसादन करे। ब्रह्मा शिखा को बाँधे हुए, यज्ञोपवीती आचमन कर अग्नि के पूर्व से दक्षिण जाकर आसन के पूर्व पश्चिम मुख खड़ा

होवे। "निरस्तः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः परावसुः देवता त्रिण निरसने विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर "ओम् निरस्तः परावसु" मन्त्र को पढ़ता हुआ वाम हाथ के अंगूठे और अनामिका से आसन पर पूर्वाग्र रक्खे हुए कुशपत्रों से एक कुशा उठाकर पश्चिम और दक्षिण के कोन में फेक कर जल स्पर्श कर ले। "आवसोः इति मन्त्रस्य प्रजापति ऋषिः यजु छन्दः परावसुः देवता उपवेशने विनियोग." हाथ जोड़े हुए इस प्रकार ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग का स्मरण कर "ओम् आवसोः सदनेसादामि" मन्त्र को पढ़ता हुआ उत्तर मुख आसन पर बैठ जावे। हाथ जोड़े हुए यज्ञ समाप्ति-पर्यन्त सब कार्यों का निरीक्षण करता रहे।

यदि ब्रह्मा के कार्य-सम्पादन-कर्त्ता का अभाव हो तो यजमान ही विनियोग स्मरण के सहित ब्रह्मासन के कुशपत्र को नैऋत्य में फेक देवे। आवसोः सदने सीदामि" मन्त्र से ब्रह्मासन पर छाता, जल पूर्ण कमण्डलु, डुपटा, अथवा बीच में गाँठि देकर कुशा इनमें किसी एक को रख देवे। यजमान इस प्रकार ब्रह्मासन पर उसके प्रतिनिधि को स्थापन कर शेष सब कार्यों का सम्पादन करे।

ब्रह्मा के आसन पर बैठ जाने के पश्चात् यजमान अग्नि के उत्तर भाग में पूर्वाग्रकुशा बिछाकर जल से भरी प्रणीता रक्खे। पुनः कुशा बिछा कर उन पर क्रमशः पूर्व—पूर्व को यज्ञ सामग्रियों को रक्खे—यथा कलश या लोटा में शुद्ध जल, चार मुष्टी कुशा, हवि पकने की बटुली, ओखली, मूसल, काँस की थाली, चावल के साथ सूप, मेक्षण, चार या तीन परिधि, २० इध्मा, घी, आज्यस्थाली स्रुची, स्रुवा, गर्मजल, सम्मार्जन के लिये कुशायें और पूर्ण पात्र इन्हें क्रमशः पूर्व—पूर्व को रखे। आसादित सामग्रियों को भली भाँति निरीक्षण कर स्रुचि आदि पात्रों को सीधा रखकर जल में कुशा डुबोकर प्रोक्षण करदे। ओखरी मूसल और सूप को जल से धोकर अग्नि पर

तपा दे । अग्नि के पश्चिम पूर्व मुख बैठकर पूर्वाग्र कुशा रखे । उसी पर ओखरी को स्थिरता पूर्वक रखकर "अग्नये त्वा जुष्टन्निर्वपामि" प्रजापतये त्वा जुष्टन्निर्वपामि । विश्वेभ्यो देवेभ्यस्त्वा जुष्टन्निर्वपामि अनुमतये त्वा जुष्टन्निर्वपामि । वाक्य से एक मुट्ठी हवि लेकर ओखरी में छोड़े और तीन मुट्ठी विना मन्त्र छोड़े । उन्हीं मन्त्रों को चरुस्थाली में चावल छोड़ने के समय भी पढ़े । ओखरि के पश्चिम पूर्वमुख बैठकर दोनों हाथों से मूसल लेकर धान या (चावल) तीन वार कूटे । सूप से भूसी को पछोर कर तीन वार जल से धो देवे ।

पहले से आसादित, कुशा में से ऐसे दो पत्रों को लेवे जिनका अग्रभाग टूटा न हो और मध्य के पत्तों से भिन्न अगल-बगल के हों । उस कुशपत्रों से एक बित्ते का पवित्र बनाया जायेगा । प्रथम धान के पुआल अथवा जौ की डंटी में कुश पत्रों को लपेट कर "पवित्रेस्थः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः यजुः छन्दः पवित्रे देवते पवित्रछेदने विनियोगः" ऋषि देवता छन्द और विनियोग का स्मरण कर ले । "पवित्रेस्थो वैष्णोव्यौ" मन्त्रको पढ़ता हुआ पुआल-या जौ की डंटी के सहारे से कुशपत्रों के अग्र भाग का एक वितस्त तोड़ लेवें । नखों से न तोड़े । पवित्र छेदन और कुशपत्रों के मूल को ईशान कोण में फेक देवे । जल को स्पर्श कर ले । वाम हाथ से पवित्रों के मूल को पकड़े हुए "विष्णो. अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः पवित्रे देवते यजुः छन्दः अनुमार्जने विनियोगः" पढ़कर "विष्णोर्म्मनसा पूतेस्थः" मन्त्र को पढ़ता हुआ उन पवित्रों को दाहिने हाथ से जल लेकर धो देवे । धोए हुए पवित्रों को चरुस्थाली में उत्तराग्र रखकर उसमें चावल छोड़े चावल छोड़ देने के पश्चात् पवित्रों को चरुस्थाली से अन्यत्र रख देवे । चरुस्थाली मे इतना जल छोड़ देवे जिससे चरु अच्छी तरह पक जा सके । अग्नि पर रखकर अच्छी तरह पकावे ।

पकती हुई हवि को मेक्षण से दक्षिणावर्त्त चला देवे पवित्रों को चरुस्थाली के ऊपर हाथ से पकड़े हुए उसी पर से स्रुवा से घृत छोड़े। पवित्र को अपने स्थान पर रख देवे। चरुस्थाली को अग्नि पर से उतार कर उसके उत्तर कुशा पर रखे। पहले के समान पुनः चरुस्थालीमें स्रुवा से घी छोड़े।

अग्नि को इन्धन से प्रज्वलित कर दे। आसादित चारो मुट्ठी कुशाओं को लेकर अग्नि के पूर्व, दक्षिण उत्तर और पश्चिम बिछा देवे। सब कुशाओं के अग्रभाग पूर्व रक्खे। एवं तीन परत अथवा पाँच परत बिछाना चाहिए और उन्हें इस रीति से बिछाना चाहिए कि पहले की बिछाई कुशाओं के मूल भाग को पीछे की बिछाई हुई कुशा के अग्रभाग ढकते जावें। अथवा सबसे पहले पश्चिम बिछावे, तत्पश्चात् दक्षिण और उत्तर बिछाकर उनका अग्रभाग पूर्व की ओर इस रीति से मिला देवे कि त्रिकोण सा बन जावे। सब प्रकार के हवन में परिस्तरण की यही विधि है; परन्तु यह परिस्तरण-कार्य्य क्षिप्र होम में नहीं किया जाता है। अग्नि के पूर्व, दक्षिण, उत्तर और पश्चिम अथवा दक्षिण, उत्तर और पश्चिम तीन परिधि रक्खे। उन परिधियों के अग्रभाग पूर्व और उत्तर को होने चाहिए।

पहिले से रखी हुई चरुस्थाली को अग्नि के पश्चिम बिछाई हुई कुशाओं पर रख देवें। पश्चात् २० इध्माओं को बिना मंत्र एकही साथ अग्नि में छोड़ देवे। पवित्र को उत्तराग्र आज्यस्थाली पर रख देवे। उसी आज्यस्थाली में घृत छोड़ देवे। दोनों हाथों के अनामिका और अंगूठे से पवित्र के दोनों ओर पकड़ कर "देवस्त्वा अस्य मन्त्रस्य प्रजापति ऋषिः यजुः छन्दः आज्यं देवता उत्पवने विनियोगः, ऋष्यादि स्मरण कर "ओं देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्य्यस्य रश्मिभिः" एकबार

मन्त्र से और दो बार विना मन्त्र घृत का उत्पवन संस्कार करे।

पवित्र कुशा से घृत का उत्पवन संस्कार कर लेने के पश्चात् उसकी ग्रन्थि खोल देवे। जल से धोकर उसे अग्नि पर रख देवे।

उत्पवन संस्कार किए हुए घृत को पकने के लिए अग्नि पर रख देवे। जब भली भाँति पक जावे तो अग्नि से उतार कर पहले उत्तर तदुपश्चात् आहुति प्रदान के लिए अग्नि के पश्चिम चरु स्थाली से पूर्व परिस्तरण कुशा पर रख देवे।

स्रुवा, स्रुची आदि को गर्म जल से धो देवे। पूर्व को अग्रभाग करके सम्मार्गकुशा के मूल से पात्रों के मूल मध्य से मध्य और अग्रभाग से अग्रभाग को झार देवे। पुनः अग्नि पर तपाकर उनपर जल छिड़क देवे। फिर से अग्नि पर तपाकर आज्य और चरुस्थाली के उत्तर भाग में रख देवे। सब पात्रों को एक साथ तपा लेवे परन्तु उनका सम्मार्जन अलग अलग करे।

हाथ में जल लेकर "अदिते अनुमन्यस्व" से अग्नि के दक्षिण नैऋत्य कोण से"आग्नेय तक जल की धारा देवे। पुनः" अनुमते अनुमन्यस्व, मन्त्र से अग्नि के पश्चिम नैऋत्य कोण से वायव्य तक दूसरी जलधारा प्रदान करे। "सरस्वत्यनुयन्यस्व" मन्त्र से अग्नि के उत्तर वायव्य कोण से इशान तक जलधारा देकर "देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय। दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु" मन्त्र से इशान से आग्नेय तक जलधारा देते हुए अग्नि के चारो तरफ प्रदक्षिण क्रम से एक अथवा तीन जलधारों से अग्नि का पर्य्युक्षण करे। हाथ जोड़कर ओम् तपश्च तेजश्च श्रद्धा च ह्रीश्च सत्यञ्चाक्रोधश्च त्यागश्च धृतिश्च धर्मश्च सत्वञ्च वाक् च मनश्चात्मा च ब्रह्म च तानि प्रपद्ये-तानि मामवन्तु भूर्भुवः स्वरोम्महान्तमात्मानं प्रपद्ये" विरूपाक्षोऽसि दन्ताञ्जिस्तस्य ते शय्यापर्णे गृहा अन्तरिक्षे विमित

ꣳहिरण्ययं तद्देवानाꣳहृदयाश्मयस्मये कुम्भे अन्तः सन्निहितानि तानि बलभृच्च बलसाच्च रक्षतोऽप्रमनी अनिमिषतः सत्यं यत्ते द्वादश पुत्रास्ते त्वा सम्वत्सरे सम्वत्सरे कामप्रेण यज्ञेन याजयित्वा पुनर्ब्रह्म चर्य्यमुपयन्ति त्वां देवेषु ब्राह्मणोऽस्याहं मनुष्येषु ब्राह्मणो वै ब्राह्मण-मुपधावत्युपत्वा धावामि जपन्तं मा माप्रतिजापीर्जुह्वन्त मा माप्रति हौषीः कुर्वन्तं मा माप्रति काषीस्त्वां प्रपद्ये त्वया प्रसूत इदं कर्म्म करिष्यामि तन्मे राध्यतां तन्मे समृध्यतां तन्म उपपद्यतां समुद्रो मा विश्वव्यचा ब्रह्मानुजानातु तुथो मा विश्ववेदा ब्रह्मणः पुत्रोऽनुजानातु श्वात्रो मा प्रचेता मैत्रावरुणोऽनुजानातु तस्मै विरूपाक्षाय दन्ताञ्जये समुद्राय विश्वव्यचसे तुथाय विश्ववेदसे श्वात्राय प्रचेतसे सहस्रा-क्षाय ब्राह्मणः पुत्राय नमः (ये वैरूपाक्षमन्त्र हैं) इन मन्त्रों को पढ़े।

अथोपघातहोमो नाज्यभागौ न स्विष्टकृत् । चरा-वाज्यमानीय मेक्षणेन सकृच्चरुमवदाय जुहुयात्।

अर्थ—इस होम कार्य्य में आज्य भाग और स्विष्टकृत आहुतियां न दी जाएँगी। केवल मेक्षण से एक ही साथ घी चरु लेकर—

अग्नये स्वाहा। अग्नय इदं न मम । प्रजापतये स्वाहा । प्रजापतय इदं न मम । विश्वेभ्यो देवे भ्यस्स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं न मम। अनुमतये स्वाहा। अनुमतय इदं न मम।

इन मन्त्रों से चार आहुतियों को प्रदान करे ।

ततो महाव्याहृतिभिराज्याहुतित्रयं स्त्रुवेण कृत्वा समिदाधानादियज्ञवास्त्वन्तङ्कर्म्म कुर्य्यात्।

अग्नि में एक समिध को विना मन्त्र छोड़ देवे। "अदिते अन्वमंस्था" मन्त्र से अग्नि के दक्षिण नैर्ऋत्य से आग्नये तक जल की धारा देवे। "अनुमते अन्वमंस्था" मन्त्र से अग्नि के पश्चिम नैऋत्य से वायव्य तक और "सरस्वते अन्वमंस्था" से अग्नि के उत्तर वायव्य से इशान तक जल की धारा देवे। "देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। के तपूः केतन्नः वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु" मन्त्र से इशान से आग्नेय तक जल धारा देते हुए अग्नि के चारो तरफ एक वार अथवा तीन वार जल की धारा देवे। बिछाए हुए परिस्तरण कुशाओंमें से एकमुष्टी लेकर उन के अग्र मध्य और मूलभाग को "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः विश्वे देवादेवता बर्हिरभ्यञ्जने विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर "अक्तुँरिहाणा व्यन्तु वयः" मन्त्र से घृत अथवा चरु में डुबो देवे। जल से प्रोक्षण कर देवे। "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप् छन्दो रुद्रो देवता वर्हिर्होमे विनियोगः। "ओम् यः पशूनामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो वृषा। पशूनस्माकं माहिँसीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा" पशूनामधिपतये रुद्राय नन्तिचरायेदं न मम"। मन्त्र से अग्नि में होम कर देवें। जल स्पर्श कर लेवे। स्रुची में घृत भर कर "प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्वसवो देवता होमे विनियोगः" ऋषि आदि का स्मरण कर "वसुभ्यः स्वाहा। वसुभ्य इदं न मम" इस मन्त्र से अविछिन्न घृत धारा अग्नि में प्रदान करे।

होमशेषं चरुं मेक्षणेन पात्रान्तरे गृहीत्वा दक्षिण हस्तेनाभिमृश्यान्नपाशेनेति मन्त्रत्रयं पठेत्। मन्त्रत्रयस्य प्रजापतिर्ऋषिराद्ययोरनुष्टुबन्त्यस्य द्विपाद्गायत्र्यन्नं देवताऽन्नाभिमर्शने विनियोगः। अन्नपाशेन मणिना प्राणसू-

त्रेण पृश्निना। बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयञ्च ते। यदेतद्धृदयन्तव तदस्तु हृदयं मम। यदिदꣳ हृदयं मम तदस्तु हृदयन्तव। अन्नं प्राणस्य पड्विꣳशस्तेन बध्नामि त्वाऽसौ। अत्रासावित्येतस्य स्थाने सम्बोधनान्तं भार्यानाम गृह्णीयात्। ततोऽभिमन्त्रितस्याऽन्नस्यैकदेशं स्वयं भुक्त्वोच्छिष्टं पत्न्यै प्रयच्छेत्। अन्यदन्नं स्वयं पत्नी च तृप्तिपर्यन्तं भुक्त्वा हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्याचम्य गोदक्षिणां ब्रह्मणे दत्वा वामदेव्यगानं कुर्यात्॥ इति समशनीयस्थालीपाकप्रयोगः॥

अर्थ—होम से बचे हुए चरु को चरुस्थाली से मेक्षण द्वारा निकाल कर दूसरे थाली या कटोरे में रख लेवे।" अन्न पासेन मणिना,, मन्त्रों को पढ़ता हुआ दाहिने हाथ से स्पर्श करे। मन्त्र के अन्त में "असौ" पद के स्थान पर संबोधनान्त वधू का नाम उच्चरण करे। उस अभिमन्त्रित हवि मे से कुछ खाकर शेष वधू को भोजन करने के लिए दे देवे। वधू तृप्ति पर्यन्त भोजन करे। दोनो हाथ पैर प्रक्षालन कर आचमन करें। ब्रह्मा को गौ दक्षीणा देकर वाम देव्य साम का गान करे। यही समशनीय स्थालीपाक की बिधि है।

विवाहोत्तरदिने समशनीयपक्षे, विवाहदिने रात्रावुपवासासमर्थ अन्नपाशेनेति परिजपितहविष्यमन्नं प्रथमं भुञ्जीत। यथेष्टं भुक्त्वा शेषमन्नं पत्न्यै प्रयच्छेत्। अस्मिन्पक्षे द्वितीयदिने होमशेषभक्षणं भवत्येव। विवा-

ह्यानन्तरं वधूर्भर्तृगृहगमनार्थं रथादिवाहनं यदाऽऽरोहति, तदा वरस्सुकिंशुकमित्यृचं पठेत् । अस्याः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्-छन्दः कन्या देवता रथारोहणे विनियोगः । सुकिंशुकंशल्मलिं विश्वरूपंसुवर्णवर्णंसुकृतंसुचक्रम् । आरोह सूर्य्ये अमृतस्य नाभिंस्योनं पत्ये वहतु कृणुष्व ।

अर्थ—यदि विवाह दिन से दूसरे दिन समशनीय स्थालीपाक करना हो और रात्रि में दम्पति उपवास न कर सकें तो "अन्नपाशेन०" मन्त्रों से हविष्य अन्न तभिमन्त्रित कर वर भोजन करे और जितने में वधू भोजन कर तृप्त हो सके उतने शेष अन्न वधू को दे देवे और वह भी हवि को भोजन करे । ऐसा करने पर दूसरे दिन समशनीय स्थालीपाक कृत्य सम्पन्न होगा । विवाह के पश्चात् वधू पति के गृह जाने के लिए किसी रथ सिविका आदि पर बैठे और वर वधू को सवारी पर बैठते हुए देखकर "सुकिँशुकम्" मन्त्र का पाठ करे ।

ततो वरो वध्वा सह मार्गगमनसमये मार्गस्थ चतुष्पथनदीसिंहव्याघ्रचोरादिभययुक्तस्थानानि, महावृक्षान्, श्मशानञ्च दृष्ट्वा माविदन्नित्येतन्मन्त्रं जपेत् । माविदन्निति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टूप्-छन्द आशास्यमाना देवता चतुष्पथाद्यनुमन्त्रणे विनियोगः । माविदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती । सुगेभिर्दुर्गमतीतामपद्रान्त्वरातयः । ततो मार्गे रथचक्रस्य भङ्गे, योक्त्वा-

दिबन्धस्याश्वादेर्वा विमोक्ते, यानस्य विपर्य्यासे वा, चोरव्याघ्रादिनिमित्तवशात्संप्राप्तास्वापत्सु वौपासनाग्निं समिद्भिः प्रज्वाल्याज्यसंस्कारं कृत्वा पर्य्युक्ष्य व्याहृतिचतुष्टयं हुत्वा पुनस्तूष्णीं समिदाधानं कृत्वा पर्य्युक्षणमुदकाञ्जलिसेचनञ्च कृत्वा हुतशेषाज्येनान्यरथचक्रादिद्रव्यमानीयाभ्यञ्जेत् य ऋतेचिदिति मन्त्रेण । य ऋतेति मन्त्रस्य मेधातिथिर्ऋषिर्बृहतीछन्द इन्द्रो देवताऽभ्यञ्जने विनियोगः ।

२ ३१ २ ३ १२ ३ २ ३१ २ ३ १ २ १ २
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः । सन्धाता

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सन्धिं मघवा पुरुवसुर्निष्कर्त्ता विहृतं पुनः । अभ्यक्तं संयोजयेत् । ततो वामदेव्यगानम् । अयं प्रायश्चित्तहोमो रथादिवाहनादवरुह्य भूमावेव कर्त्तव्यः । ततो वध्वा सह वरो यानमारुह्य गच्छेत् । ततो गृहसमीपे आगतं यानं ज्ञात्वा वरो वामदेव्यङ्गायेत् ।

अर्थ—वर वधू के साथ मार्ग में जाते समय मार्ग के चौराहे 'नदी' सिंह व्याघ्र, चोर पिप्पल आदि महावृक्ष, श्मशान आदि भय दायक प्राणी और स्थान देखकर "माविदन्न०" मन्त्र का जप करे । यदि रास्ते में जिस बग्गी या गाडी पर आते हों उसकी पहिया टूट जावे, अथवा काई बन्धन टूट जावे, अथवा सवारी उलट जावे या चोर व्याघ्रादि के कारण कोई आपत्ति आ पड़े तो ऐसी दशा में औपासन अग्नि मे समधि छोड़कर प्रज्वलित करे । आज्य संस्कार कर अग्नि वर्युक्षण करे व्याहृति मन्त्रों से चारि घृताहुति प्रदान करे । बिना मन्त्र एक समिध अग्नि में चढ़ा देवे । अग्नि का अनुपर्युक्षण कर उदकाञ्जलि

सेचन कर होम से बचे हुए घृत को दूसरे स्थाली में "यञ्जते०" मन्त्र को पढ़ते हुए लगा देवे और उसी को तैयार करे। वामदेव्य गान करे। यह-प्रायश्चित्तस्वरूप होम है। इसे उपरोक्त समय उपस्थित होने पर रथ रोक कर सम्पन्न करें। तद् पश्चात दूसरे रथ पर चढ़कर प्रस्थान करे। जब ग्राम के समीप पहुँचे तो वाम देव्य का गान करे।

ततोऽन्याः पतिपुत्रशीलसम्पन्ना ब्राह्मण्यो यानाद्वधूमवतार्य्य गृहं वृषभचर्म्मण्युपवेशयेयुः। उपवेशनसमये वर इह गावः प्रजायध्वमिति मन्त्रं पठेत्। मन्त्रान्ते उपवेशनम्। इह गाव इति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द आशास्यमाना देवतोपवेशने विनियोगः। इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणोपि पूषा निषीदतु॥ १॥ ततस्ता एव ब्राह्मण्य उपविष्टाया वध्वा उत्सङ्गे चूडाकर्मरहितं कुमारं स्थापयेयुः। ततः कुमाराञ्जलौ कमलबीजान्यन्यानि फलानि वा क्षिपेयुः। ततः कुमारमुत्थाप्य संनिधावुपवेशयेत्। ततो वरो वध्वा सह धृतिहोमं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य विवाहाग्निं प्रतिष्ठाप्याज्यतन्त्रेण व्याहृतित्रयहोमान्तं कृत्वा, इहधृतिरित्यादिभिरष्टावाज्याहुतीर्जुहोति। धृतिनाम्नेऽग्नेराह्वानम्। एषां मन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिर्बृहतीछन्दः कन्या देवता होमे विनियोगः। इह धृतिस्स्वाहा। इह स्वधृतिस्स्वाहा। इह रन्तिस्स्वाहा। इह रमस्व स्वाहा। मयि धृतिस्स्वाहा। मयि स्व धृतिस्स्वाहा।

मयि रमस्वाहा । मयि रमस्व स्वाहा । सर्वत्र कन्याया इदं न मम । पुनर्व्याहृतित्रयं हुत्वा तूष्णीं समिदाधानादियज्ञवास्त्वन्तं कर्म कृत्वा ब्रह्मणे दक्षिणां दत्वा गुर्वादीनभिवाद्य वामदेव्यगानं कुर्य्यात् । "केचित्तु तूष्णीं समिधमाधाय गुरुमातृपित्रादीनभिवाद्यानुपर्य्युक्षणादितन्त्रशेषं परिसमाप्य वामदेव्यगानमिति मन्यन्ते" ॥ इति धृतिहोमप्रयोगः ॥

अर्थ—गृह पहुँच जाने पर पति पुत्र शील स्वभाव सम्पन्ना ब्राह्मणी सवारी से वधू को उतार कर गृह में ले जाकर बैल के चर्म पर बैठावें । वधू को चर्म पर बैठने हुए देखकर वर "इह गाव" मन्त्र का पाठ करे । वे ब्राह्मणी गो चर्म पर बैठी हुई वधू के गोद में जिसका चूड़ाकरण संस्कार न हुआ हो ऐसे बालक को बैठा देवे । बालक के हाथ में कमलगट्टा नारियल आदि किसी फल को दे देवे । बालक को वधू के गोद से लेकर उसके समीप में बैठावे । वर वधू के साथ आचमन कर "धृति होम करिष्ये" वाक्य योजना कर संकल्प करे । विवाह अग्नि को स्थापन करे । आज्य का संस्कार कर भूः स्वाहा । अग्न० । भुवः स्वाहा । वायव० । स्वः स्वाहा । सूर्याय० । व्याहृतियों से तीन आहुति प्रदान करे । यहां पर धृति नाम से अग्नि का अवाहन करे । व्याहृति होम के पश्चात् "इह धृतिस्वाहा" इत्यादि मन्त्रों से आठ आहुति प्रदान करे । पुनः भूरादि व्याहृतियों से दो दो एवं छः आहुति प्रदान कर समिध प्रदान से यज्ञवास्तु तक कार्य सम्पन्न करे । ब्रह्मा को दक्षिणा प्रदान कर गुरुजनों का नमस्कार करे । वामदेव्य साम का गान करे । कुछ लोगों की सम्मति है कि समिध होक कर माता पिता आदि गुरु जनों के अभिवादन के

पश्चात् भद्रसूक्त, महाव्याहृति और वामदेव्य साम का गान करें। यही पुनि होम का प्रयोग है।

अथ चतुर्थीकर्मप्रयोग उच्यते। अत्र शिखिनामाग्निमादध्येत्। विवाहदिवसाच्चतुर्थी या तिथिस्सा चतुर्थी, चतुर्थदिनमिति यावत्। तस्मिन्दिने प्रातः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्यास्याः पत्न्या अलक्ष्म्यादिदोषापनुत्त्यर्थं प्रायश्चित्ताज्याहुतीर्होष्यामीति संकल्प्य, गृह्याग्नावाज्यतन्त्रेण व्याहृतित्रयहोमान्तेऽग्ने प्रायश्चित्त इत्यादिभिर्विंशतिमन्त्रैराज्याहुतीर्हुत्वाऽग्नेरुत्तरतः संस्थापिते जलपात्रे प्रत्याहुतिशेषं घृतबिन्दुमवनयेत्। सर्वेषां मन्त्राणां प्रजापतिऋषिर्यजुरग्निर्वायुश्चन्द्रमास्सूर्यस्तत्समष्टिश्च देवता प्रायश्चित्ताज्यहोमे विनियोगः ॥ अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तामस्या अपजहि स्वाहा। अग्नय इदं न मम। एवं वायो प्रायश्चित्ते, सर्वोऽप्यवशिष्टमन्त्रः पूर्ववत्। वायव इदं न मम। चन्द्र प्रायश्चित्ते० अपजहि स्वाहा। चन्द्रायेदं न मम। सूर्य प्रायश्चित्ते०। अपजहि स्वाहा। सूर्यायेदं न मम। अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयस्स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा। अग्नि-

वायुचन्द्रसूर्य्येभ्य इदं न मम। इति प्रथमपञ्चकम्। द्वितीये पञ्चके पूर्वोक्तेषु पञ्चसु मन्त्रेषु, पापी लक्ष्मीरिति पदद्वयस्थाने पतिघ्नीति पदं पठित्वा, पञ्च होमाः कर्त्तव्याः। एवं तृतीयपञ्चके। अपुत्र्या इति पठित्वा पञ्च होमाः। एव चतुर्थे पञ्चके अपसव्येति पदं पठित्वा पञ्चहोमाः।

अर्थ—अब चतुर्थी कर्म के प्रयोग को लिखते हैं। इस कर्म में शिखि नाम की अग्निका आवाहन करना चाहिए। विवाह के दिन से जो चतुर्थ दिवस परे वही इस कृत्य के करने का दिन है। उसी दिन प्रातः काल नित्य कृत्यों को समाप्त कर आचमन प्राणायाम करे। देश, काल, तिथि, वार आदि के स्मरण करने के पश्चात् "पत्न्या अलक्ष्म्यादि दोषापनुत्यर्थं प्रायश्चित्ताज्याहुतिर्होष्यामि" संकल्प करे। विवाहाग्नि में ब्रह्मवरण से आज्यसंस्कार तक कृत्य संम्पन्न करे। पर्युक्षण कर भूरादि व्याहृति से घृत की तीन आहुतियों को प्रदान करे। स्रुवा से घी ले ले कर "अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्रह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तामस्या अपजहि स्वाहा। अग्नय इदं न मम।

वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तामस्या अपजहि स्वाहा। वायव इदं न मम।

चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तामस्या अपजहि स्वाहा। चन्द्राय इदं न मम।

सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम

उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तामस्या अपजहि स्वाहा। सूर्याय इदं न मम।

अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयस्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा। अग्निवायुचन्द्रसूर्य्येभ्यः इदं न मम।

इति प्रथम पञ्चकः।

अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नीस्तामस्या अपजहि स्वाहा। अग्नय इदं न मम।

वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नीस्तामस्या अपजहि स्वाहा। वायव इदं न मम।

चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नीस्तामस्या अपजहि स्वाहा। चन्द्राय इदं न मम।

सूर्य्य प्रायश्चित्ते त्व देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नीस्तामस्या अपजहि स्वाहा। सूर्य्याय इदं न मम।

अग्निवायुचन्द्रसूर्या. प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयस्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नीस्तामस्या अपहत स्वाहा। अग्निवायुचन्द्रसूर्य्येभ्यः इदं न मम।

इति द्वितीय पञ्चकः।

अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः अपुत्र्यास्तामस्या अपजहि स्वाहा। अग्नय इदं न मम।

वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः अपुत्र्यास्तामस्या अपजहि स्वाहा । वायव इदं न मम ।

चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः अपुत्र्यास्तामस्या अपजहि स्वाहा । चन्द्राय इदं न मम ।

सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः अपुत्र्यास्तामस्या अपजहि स्वाहा । सूर्य्याय इदं न मम ।

अग्निवायुचन्द्रसूर्य्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयस्स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नीस्तामस्या अपहत स्वाहा । अग्निवायुचन्द्रसूर्य्येभ्यः इदं न मम ।

इति तृतीय पञ्चकः ।

अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः अपसव्यास्तामस्या अपजहि स्वाहा । अग्नय इदं न मम ।

वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः अपसव्यास्तामस्या अपजहि स्वाहा । वायवे इदं न मम ।

चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः अपसव्यास्तामस्या अपजहि स्वाहा । चन्द्राय इदं न मम ।

सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवनां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः अपसव्यास्तामस्या अपजहि स्वाहा । सूर्य्याय इदं न मम ।

अग्निवायुचन्द्रसूर्य्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयस्स्थ

ब्रह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः अपसव्यास्तामस्या अपहत स्वाहा । अग्निवायुचन्द्रसूर्य्येभ्यः इदं न मम ।"

इन प्रत्येक आहुतियों के प्रदान करने के समय स्रुवा में लिपिटे हुए घृतविन्दुओं को जल पात्र में छोड़ता जावे एवं इन बीस आहुतियों को केवल घृत से प्रदान करे।

ततो व्याहृतिहोमाद्युपरिष्टात्तन्त्रं पूर्णपात्रदक्षिणादानान्तं परिसमाप्य, प्रदक्षिणनमस्कारं कृत्वा वामदेव्यं गायेत् । ततस्सम्पाताज्ययुक्तजलेन वधूं सर्वाङ्गमभ्यज्योद्वर्त्तयित्वा स्नापयन्त्यन्याः ॥ इति चतुर्थीकर्मप्रयोगः ॥

अर्थ—भूरादि व्याहृतियों से आहुति प्रदान कर वामदेव्य साम गान तक कृत्य सम्पन्न करे। जिस जल में घृत विन्दू छोड़ा गया है उसी जल को वधू के सर्वांग में लेपन करे। उपटन लगाकर शुद्ध जल से स्नान करा देवे। यही चतुर्थी कर्म का प्रयोग है।

विवाहे सर्वेषु होमेषु पूर्णाहुतिनिषेधः क्वचिद्दृश्यते । "विवाहे व्रतबन्धे च शालायां चौलकर्मणि । गर्भाधानादि संस्कारे पूर्णहोमन्न कारयेत्" । विवाहानन्तरमागामिपौर्णमास्यां दर्शपौर्णमासस्थालीपाकारम्भः । पौर्णमास्यां प्रातरौपासनं कृत्वा ब्राह्मणाननुज्ञाप्याभ्युदयिकश्राद्धं कुर्यात् । दर्शपौर्णमासस्थालीपाकावारप्स्ये, यावज्जीवं करिष्ये । नात्रान्वारम्भणीयस्थालीपाकः सूत्रकृताऽनुक्तत्वात् । पश्चात्पौर्णमासस्थालीपाकं कुर्यात् ।

वैश्वदेवं पुण्ये नक्षत्रे तावदारभ्याहरहः सायम्प्रातः कुर्य्यात् ॥

अर्थ—कहीं कहीं देखा जाता है कि विवाह सम्बन्धी सब होम कार्य्यों में पूर्णाहुति निषेध है। विवाह, उपनयन, गृही-प्रवेश, चूड़ाकरण, गर्भाधान, पुंसवनं, सीमन्त, आदि संस्कारों में पूर्णाहुति नही करना चाहिए। विवाह संस्कार के पश्चात् जो पूर्णमासी आवे उसी में दर्शपूर्णमासस्थालीपाक का आरम्भ करे। पौर्णमासी में प्रातः कृत्य करने के पश्चात् ब्राह्मण से आज्ञा लेकर आभ्युदयिक श्राद्ध करे। "दर्शपौर्णमासस्थालीपाक कर्म को आरम्भ करते हैं एवं जीवन पर्यन्त करते रहेंगे" ऐसी प्रतिज्ञा करे। इस दर्शपौर्णमास स्थालीपाक के आरम्भ करने में गृह्यसूत्र में अन्वारभणीय स्थालीपाक करना नही लिखा है। अतः उसका करना अनावश्यक है। पुण्य तिथि वार और नक्षत्र में वैश्वदेव का आरम्भ कर नित्य सायं प्रातः वैश्वदेव कार्य्य को करता रहे।

अथ गर्भाधानप्रयोगः ॥ यदा भार्या ऋतुमतीस्यात्स्नातायां षोडशदिनादर्वाक् पुण्ये नक्षत्रे गर्भाधानं कुर्य्यात्। नात्रोदगयनपूर्वपक्षापेक्षा, ऋतोरनियतकालत्वात्। कालविलम्बे प्रायश्चित्तश्रवणाच्च।

अर्थ—अब गर्भाधान का प्रयोग लिखा जाता है। इस संस्कार को तब करना चाहिए कि जब विवाह संस्कार के पश्चात् स्त्री ऋतु मती हो स्नान कर लेवे। ऋतु के आरम्भ दिन से १६ दिन के आभ्यन्तर पहले ४ दिवस को छोड़कर शेष किसी पुण्य तिथि-वार, नक्षत्रादि में गर्भाधान संस्कार करे। यह मानव शक्ति के बाहर है कि स्त्री को मासिक सूर्य उत्तरायण और शुक्ल पक्षमें ही

हो, अतः इस संस्कार में उत्तरायण और शुक्ल पक्ष की प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। स्त्री के ऋतु स्नान कर लेने पर गर्भाधान संस्कार में विलम्ब करने से प्रायश्चित्त होता है।

गर्भाधानदिने प्रातर्गर्भाधानकर्माङ्गाभ्युदयिकश्राद्धं वक्ष्यमाणविधिना कुर्य्यात् । ब्राह्मणाननुज्ञाप्य गणेशञ्च सम्पूज्य, देशकालौ संकीर्त्य प्रतिगर्भसंस्कारायास्यामुत्पत्स्यमाना पत्यबीजगर्भसमुद्भवपापनिवृत्त्यर्थमिमां धर्म्मपत्नीं गर्भाधानकर्मणा संस्करिष्यामीति सङ्कल्प्य, मारुतनामगृह्याग्निं विधिवत्संस्थाप्याज्यतन्त्रेण व्याहृतिहोमान्तं कृत्वा, मनसा मन्त्रेणोपस्थाभिमर्शनं विभाव्योपरिष्टात्तन्त्रं समापयेत् । नात्रपूर्णाहुतिः ।

अर्थ—जिस दिन गर्भाधान करना हो उस दिन प्रातः काल ब्राह्मण की आज्ञा से गणेश की पूजा कर आभ्युदयिक श्राद्ध कृत्य सम्पन्न करे। देश काल आदि का स्मरण कर "प्रति गर्भ संस्कारायास्यामुत्पत्स्यमाना पत्यबीजगर्भसमुद्भवपापनिवृत्त्यर्थमिमां धर्म्मपत्नीं गर्भाधानकर्मणा संस्करिष्यामि" वाक्य की योजना कर संकल्प करे। पृष्ठ ८६ की विधि के अनुसार अग्निस्थापन करे। मारुत नाम अग्नि का आवाहन करे। पृष्ठ १६४ से १६८ के अनुसार चरु रहित केवल घृत का संस्कार कर "भूः स्वाहा" अग्नय इदन्न मम। 'भुवः स्वाहा' वायव इदन्न मम। स्वः स्वाहा, सूर्य्याय इदन्न मम"। इन घृताहुतियों को प्रदान करे। मन में मन्त्र को स्मरण करता हुआ उपस्थ स्पर्श कर शेष कृत्यों को सम्पन्न करे। इस होम कार्य में पूर्णाहुति कृत्य न होगा।

पुनः रात्रौ द्वितीययामे दक्षिणेन पाणिनोपस्थमभिमृशेत्। विष्णुर्योनिं कल्पयतु, गर्भं धेहि सिनीवालीतिऋग्भ्याम्। द्वयोर्मन्त्रयोः प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो विष्णवादयो देवता उपस्थाभिमर्शने विनियोगः। विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ १ ॥ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर स्रजौ ॥ २ ॥ ततो यथाशास्त्रं यथारुचि तथा ग्राम्यधर्म्मः कार्य्यः॥ इति गर्भाधानप्रयोगः॥

अर्थ – पुन. दूसरे दिन रात्रि में दाहिने हाथ से "विष्णुर्योनि० गर्भंधेहि०" दोनो मन्त्रों को पढ़ा हुआ उपस्थ का अभिमर्शन करे। पश्चात् यथाभिरुचि संसारी व्यवहार करे। यही गर्भाधान संस्कार है।

अथ पुंसवनप्रयोगः॥ तृतीयस्य गर्भमासस्य प्रथम तृतीयभागे यत्पुण्यमहस्तत्र प्रातरेव पुंसवनं कुर्य्यात्। यद्युक्तकालातिपत्तिस्स्यात्तर्हि सर्वप्रायश्चित्ताहुतिं कृत्वा तत् कुर्य्यात्। इदं च प्रायश्चित्तमुपनयनादधः। "तदुक्तं 'कर्मप्रदीपे'। देवतानां विपर्य्यासे जुहोतिषु कथं? भवेत्। सर्वप्रायश्चित्तं हुत्वा क्रमेण जुहुयात्पुनः॥ १ ॥ संस्कारा अतिपत्येरन्नुक्तकाले कथञ्चन। हुत्वैतदेव कर्त्तव्या ये तूपनयनादधः" ॥ २ ॥ उपनयनस्योक्तकालाति-

पत्तौ व्रात्यस्तोमादिकं स्मृत्युक्तं प्रायश्चित्तं द्रष्टव्यम् ।

अर्थ—अब पुंसवन संस्कार की विधि लिखते हैं। गर्भ ग्रहण से तीसरे मास के पहले पक्षमें जो पुण्य तिथि नक्षत्रादि हो उसी दिन के प्रातः काल ही में पुंसवन संस्कार करे। यदि नियत समय पर न कर सके तो सर्व प्रायश्चित्त संज्ञक भूरादि आहुतियोंको प्रदानकर पश्चात् पुंसवन संस्कार करना चाहिए। कर्मप्रदीप में लिखा है कि उपनयन संस्कार से पहले यदि कोई संस्कार नीयत समय पर न होसके हों अथवा होम कार्य में किसी आहुति का विपर्यय अर्थात् आगे पिछे हो जावे तो इन्ही भूः आदि व्यहृतियों से प्रायश्चित्त संज्ञक घृत की आहुतियों को प्रदान कर पूर्वोक्त होम कार्य अथवा संस्कार कृत्यों को सम्पन्न करे। उपनयन संस्कार के नीयत समय व्यतीत होजाने पर तो स्मृति कारों ने व्रात्यस्तोम आदि प्रायश्चित्त वताया है। उनमें से किसी प्रायश्चित को निश्चित करे।

उदगग्रेषु दर्भेषूपविश्य घटोदकेन सशिरस्काऽऽप्लुता भवति। ततो यजमानः पत्न्या सह प्रातर्होमं विधाय पुंसवनकर्माङ्गाभ्युदयिकश्राद्धं पूर्वदिने न कृतं चेत्पुंसवनदिने कुर्य्यात्। ततः प्रातरेव ब्राह्मणाननुज्ञाप्य, प्राङ्मुख उपविश्योदगग्रेषु दर्भेषु स्वदक्षिणभागे प्राङ्मुखीं पत्नीमुपवेशयति। एवमेवोपवेशनं पत्न्यास्सर्वत्र कर्मसु। विशेषवचनादन्यत्रापि। ततो देशकालौसंकीर्त्त्यास्यां भार्य्यायां जनिष्यमाणगर्भाणां बैजिकगार्भिकदोषापनुत्तये इमां मम पत्नीं पुंसवनकर्मणा संस्करिष्यामीति संकल्प्य स्वपुरतः संस्कृते स्थण्डिले गृह्याग्निं संस्थाप्याज्यतन्त्रेण

पत्न्या सह व्याहृतित्रयहोमान्तं कुर्य्यात्। अत्र चन्द्रमसमग्निमावाहयेत्। ततोऽग्ने पश्चादुपविष्टायाः पत्न्याः पृष्ठतः पतिः प्राङ्मुखस्तिष्ठन्दक्षिणहस्तेन पत्नीदक्षिणमंसं तूष्णीमन्वभिमृश्य पुमा ँ सौ मित्रावरुणावित्येतयर्चा वस्त्रादिभिराच्छादितं पत्न्या नाभिदेशमभिमृशेत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो मित्रावरुणादयो देवता नाभिस्पर्शनेविनियोगः। पुमा ँ सौ मित्रावरुणौ पुमा ँ सावश्विनावुभौ। पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे ॥ १ ॥

अर्थ—स्त्री उत्तराग्र कुशा पर बैठकर शीर के सहित घड़ा के जल से स्नान करलेवे। दम्पती पुंसवन संस्कार से एक दिन पहले अथवा उसी दिन प्रातः नित्य होमादि कृत्यों के पश्चात् पुण्याह वाचन आभ्युदयिकादि पुंसवन के अंग कार्य को सम्पन्न करें। प्रातः कालही ब्राह्मण की आज्ञा लेकर उत्तराग्र कुशासन पर पति और अपने दक्षिण पार्श्व में पूर्व मुख स्त्री को बैठावे। हरेक कर्म्मों में दम्पति के बैठने की यही रीति है। किसी किसी विशेष कार्यों में बैठने की विशेषता भी होती है। देश काल आदि के स्मरण करने के पश्चात् "यस्यां भार्य्यायां जनिष्यमाणगर्भाणां वैजिकगार्भिकदोषापनुत्तये इमां मम पत्नीं पुंसवनकर्मणा संस्करिष्यामि" वाक्य का योजना कर संकल्प करे। अपने पूर्व भाग में पृष्ठ ८९ में लिखी हुई विधि के अनुसार वेदिका का संस्कार कर गृह्याग्नि का स्थापन करे। चन्द्रमस नाम की अग्नि का आवाहन करे। पृष्ठ १६४ से १६८ तक में लिखी हुई विधि से चरु रहित आज्य का संस्कार करे। भूः स्वाहा, अग्नय इदं न मम।

भुवः स्वाहा, वायव इदन्न मम । स्वः स्वाहा, सूर्याय इदन्न मम" इन आहुतियों को प्रदान करे। अग्नि के पश्चिम पूर्वमुख बैठी हुई पत्नी के पीछे जाकर खड़ा होवे। विना मन्त्र पत्नी के दाहिने कन्धे को स्पर्श कर "पुमा सौ०" मन्त्र से वस्त्र से ढकी हुई नाभी का स्पर्श करे।

ततो व्याहृतित्रयहोमादि वामदेव्यगानान्तं कुर्य्यात्। पुनस्तस्मिन्नेव दिने शुङ्गाख्यमपरं पुंसवनकर्म कुर्य्यात्। दिनान्तरे चेन्नान्दीमुखश्राद्धं पुनः कुर्य्यात्। एकस्मिन्दिने चेत्पुंसवनद्वयाङ्गं सकृन्नान्दीश्राद्धमुभयोरादौ कुर्य्यात्।

अर्थ—पुनः भूः आदि व्याहृति मन्त्रों से घृत की आहुति प्रदान कर वामदेव्य साम गान तक कृत्य सम्पन्न करे। उसी दिन शुङ्गाख्य दूसरा पुंसवन संस्कार कृत्य को सम्पन्न करे। यदि यह दोनों पुंसवन संस्कार एकही दिन करना हो तो नान्दी (आभ्युदयिक) श्राद्धादि कार्य एकही वार होंगे। यदि दो दिन करे तो आभ्युदयिक श्राद्धादि अंग कृत्य भी दो वार करना चाहिए।

अथ पतिरेकविंशतिसंख्याकान्माषान् यवान्वा परिगृह्य, न्यग्रोधसमीपं गत्वा, यद्यसि सौमी सोमायत्वेत्यादिमन्त्रान्ते वटस्वामिने यवान्माषान्वा दत्वा, तदभावे वटमूले वा संस्थाप्य, वटस्येशान दिग्गतशाखाग्रस्थितमुभयतः फलं कीटाद्यदूषितमम्लानं शुङ्गाख्यम्मुकुलितपल्लवमोषधयस्सुमनस इत्युत्थाप्य

यज्ञियतृणैर्वेष्टयित्वा गृह्मानीयाकाशस्थाने स्थापयेत्। ससानां प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्शुङ्गा देवता शुङ्गापरिक्रयणे विनियोग.। ओषधयस्सुमनस इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरोषधयो देवताश्शुङ्गोत्थापने विनियोगः। यद्यसि सौमी सोमाय त्वा राज्ञे परिक्रीणामि॥१॥ यद्यसि वारुणी वरुणाय त्वा राज्ञे परिक्रीणामि ॥ २ ॥ यद्यसि वसुभ्यो वसुभ्यस्त्वा परिक्रीणामि ॥ ३ ॥ यद्यसि रुद्रेभ्यो रुद्रेभ्यस्त्वा परिक्रीणामि ॥ ४ ॥ यद्यस्यादित्येभ्य आदित्येभ्यस्त्वा परिक्रीणामि ॥५॥ यद्यसि मरुद्भ्यो मरुद्भ्यस्त्वा परिक्रीणामि ॥ ६ ॥ यद्यसि विश्वेभ्यो देवेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यस्त्वा परिक्रीणामि ॥ ७ ॥ ओषधयस्सुमनसो भूत्वाऽस्यां वीर्यꣳसमाधत्तेयं कर्म करिष्यतीति। इति शब्दान्तो मन्त्रः।

अर्थ—पति इक्कीस माष (उरद) अथवा यव लेकर किसी बट वृक्ष के निकट जावे। "यद्यपि सौमी" इन मन्त्रों को पढ़ता हुआ माष या यव को वृक्ष के स्वामी को दे देवे। यदि वृक्ष का स्वामी उपस्थित न हो तो वृक्ष के मूल भाग में रख देवे। बट वृक्ष की जो शाखा ईशान्य दिशा में फैली हो उसी के अग्रभाग के टूसा को "ओषधयस्सु०" मन्त्र को पढ़ता हुआ तोड़ लेवे। कुशा लपेट कर उचे स्थान पर रख देवे। यह टूसा ऐसी होनी चाहिए कि उस में दो फल लगे हों। कीड़े न काटे हों। मुरझाई न हो किन्तु विकशित हो "ओषधय०" यह इति शब्दान्त मन्त्र है अर्थात् इस मन्त्र के अन्त में इति शब्द है।

ततः सशिरस्कस्नातया पत्न्या सह ब्राह्मणाननुज्ञाप्य पुंसवनवत्संकल्पं कुर्य्यात्। तत औपासनाग्निं संस्थाप्याज्यतन्त्रेण ब्रह्मासनास्तरणादिव्याहृतित्रयहोमान्तं कुर्य्यात्। अथ शोभननामानमग्निमाह्वयेत्। ततो ब्रह्मचार्य्यनधीतवेदो ब्राह्मणः पतिव्रता कुमारी वा, अग्नेरुत्तरत आसादितदृषदं प्रक्षाल्य, तत्र पूर्वमाहृतां शुङ्गां संस्थाप्य (दृष) दुपल हस्ते गृहीत्वा तेनोद्धृत्य पेषणं कुर्य्यात्। ततोऽग्नेः पश्चादुदगग्रेषु दर्भेषु प्राक्शिरस्कामुत्तानां पत्नीमुपवेशयति। ततः पत्न्याः पश्चात्पतिस्स्थित्वा शुङ्गां दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठानामिकाभ्यामभिसंगृह्य, पत्न्या दक्षिणनासिकारन्ध्रे शुङ्गारसमवनयेत्पुमानग्निरित्येतयर्चा। अस्याः प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्न्यादयो देवता श्शुङ्गारसावनयने विनियोगः। पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः। पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननुजायताम्। ततस्तामुत्थाप्य व्याहृतित्रयं हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रं समापयेत्। इत्यपरपुंसवनप्रयोगः॥

अर्थ—शिर के सहित स्नान की हुई पत्नी के साथ ब्राह्मण की आज्ञा लेकर पुंसवन संस्कार के अनुसार संकल्प करे। अग्नि स्थापन कर शोभन नाम अग्नि का आवाहन करे। ब्रह्मोपवेशन से भूः आदि आहुतियों को केवल आज्य से संपन्न करे। किसी ब्रह्मचारी अथवा ब्राह्मण जाति की पतिव्रता कन्या से अग्नि के उत्तर पहले से रक्खे हुए सील और लोढ़ा को धोकर उसी पर लाए हुए वट वृक्ष के

टूसा को पिसवा लेवे। अग्नि के पश्चिम उत्तराग्र कुशासन पर बैठी हुई पत्नी के पृष्ठ भाग में बैठ कर पति अपनी गोदी में उत्तान झुकाकर दाहिने हाथ की अङ्गुष्ठ और अनामिका अङ्गुलियों से ले कर "पुमानग्नि०" मन्त्र को पढ़ता हुआ टूसे के रस को पत्नी के दाहिने नासिका के छिद्र में छोड़ देवे। इस कृत्य के पश्चात् पुनः व्याहृति मन्त्र से घृताहुति प्रदान कर वामदेव्य साम के गान तक कृत्यों को सपन्न करे यही दूसरा पुंसवन संस्कार है।

अथ सीमन्तोन्नयनप्रयोगः। अत्र सूत्रम्। "प्रथमगर्भे चतुर्थे मासि षष्ठेऽष्टमे वा"। सूत्रोक्तान्यतममासे पूर्वपक्षे पुण्ये नक्षत्रे तत्करिष्यन् पूर्वदिने तद्दिने वा, तदङ्गमाभ्युदयिकश्राद्धं कुर्य्यात्। प्रातरुदगग्रेषु दर्भेषूपविश्य चतुर्भिः कलशैराप्लुत भवति।। पत्न्या सह प्रातरौपासनं कृत्वा ब्राह्मणाननुज्ञाप्य पवित्रपाणिः प्राणानायम्य संकल्पं करोति। तद्यथा। अस्यां भार्यायां जनिष्यमाणगर्भाणां बैजिकगार्भिकदोषापनुत्तये इमां मम पत्नीं सीमन्तोन्नयनकर्मणा संस्करिष्यामि। तत औपासनाग्नावाज्यतन्त्रेण व्याहृतिहोमान्तं कुर्य्यात्। पात्रप्रयोगे विशेषः। अग्नेरुत्तरतः प्रकृतिवत्स्रुवाज्यस्थाल्यादिकमासाद्य चतुरादियुग्मफलयुतौदुम्बरनीलस्तबकं नूतनतन्तुग्रंथितं, तिस्रो दर्भपिञ्जलीस्सूत्रकर्त्तनलोहशलाकां, त्रिश्वेतां शललीं, तिलमिश्रिततण्डुलाश्चासादयेत्। कर्मकालेऽग्नेः पश्चादुदगग्रेषु दर्भेषु भर्तुर्दक्षिणतः प्राङ्मुख्यु-

पविशति । द्विः प्रक्षालितांस्तिलमिश्रिततण्डुलान्निर्वा-परहितानग्नौ श्रपयित्वाऽग्नेरुत्तरत आसादयेत् ।

अर्थ—अब सीमन्तोन्नयनयन संस्कार का प्रयोग लिखा जाता है। सूत्रकार गोभिलाचार्यने लिखा है कि यह संस्कार प्रथम वार गर्भ रहने पर चौथे, छठवें अथवा आठवे मास में करना चाहिए। उपरोक्त मासों मेसे जिसमें सुविधा हो शुक्ल पक्ष की पुण्य तिथि वार नक्षत्रादिमें करना चाहिए। सीमन्तोन्नयन संस्कार जिस दिन करना हो उससे एक दिन पहले अथवा उसी दिन प्रातः काल नित्य होमादि कृत्य को समाप्त कर पुण्याह वाचन आभ्युदयिक श्राद्ध कार्य सम्पन्न करे। उत्तराग्र कुशासन पर बैठकर चार घड़े जल से स्नान करावे। पति पत्नी के सहित प्रातः औपासन कृत्य को समाप्त करे। ब्राह्मण से आज्ञा लेकर पवित्र धारण करे। आचमन और प्राणायाम कर "अस्यां भार्य्यायां जनिष्यमाण गर्भाणां बैजिकगार्भिकदोषापनुत्तये इमां मम पत्नी सीमन्तोन्नयन कर्मणा संस्करिष्यामि" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। औपासन अग्नि में चरुरहित आज्य तन्त्र आरम्भ करे। पात्रासादन में आज्यस्थालो के पश्चात् फल युक्त गूलर और सतालू के गुच्छे, नया सूत लपेटी हुई कुशा की तीन पिञ्जुली, सूत कातने वाला टेकुआ, साही के कांटे, तिल मिला हुआ चावल आसादन करे। अग्नि के पश्चिम पति के दाहिने पार्श्वमें उत्तराग्र कुशासन पर पूर्व मुख पत्नी बैठे। तिल मिश्रित चावलको दो वार धोकर भात पकालेवे। पक जाने पर अग्नि से उतार कर अग्नि कुण्ड से उत्तर रख देवे ।

अत्र मङ्गलाभिधोऽग्निः। ततो व्याहृतिहोमान्तेऽग्नेः पश्चात्पतिस्तिष्ठन् पूर्वमासादितमौदुम्बरशलाटुग्रंथमयमू-

र्ज्जीवतो वृक्ष इतिमन्त्रेण पत्न्याः कण्ठ आबध्नाति । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द उदुम्बरो देवतौदुम्बर-शलाटुग्रन्थिबन्धने विनियोगः । अयमूर्ज्जावत्तो वृक्ष ऊर्ज्जीव फलिनीभव ।

अर्थ—अग्निमे समिध छोड़ कर पृष्ठ १६८ के अनुसार अग्नि का पर्युक्षण करे । मंगलाभिधोनाम अग्नि का आवाहन करे । "तपश्च तेजश्च०" आदि मन्त्रों को पढ़ने के पश्चात् "भूः स्वाहा, अग्नय इदन्न मम । भुवः स्वाहा, वायव इदन्न मम । स्वः स्वाहा, सूर्य्याय इदन्न मम" मन्त्रों से तीन घृताहुतियों को प्रदान करे । पति पत्नी के पीछे खड़ा होकर पहले से रखे हुए गूलर के फलों को "अयमूर्ज्जावतो०" मन्त्र को पढ़ता हुआ उसके गले में बान्ध देवे ।

पर्णं पनसपते नुत्वाऽनुत्वा सूयता ँरयिः ॥ १ ॥ ततस्तस्मिन्नेव स्थाने पतिर्दर्भपिञ्जलीस्समादाय भूरिति मन्त्रेण प्रथमं सीमन्तमूर्ध्वं नयति । ताभिरेव पिञ्जली-भिर्भुवरिति द्वितीयं, स्वरिति तृतीयम् । व्याहृतीनामृ-षिच्छन्दोदेवताः प्रसिद्धाः । पुनश्शरं वीरतराख्यतरुविशेषं वाऽऽदाय सीमन्तमूर्ध्वमुन्नयति येनादितेरितिमन्त्रेण । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः प्रजापतिर्देवता सीमन्तोन्नयने विनियोगः । येनादितेस्सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय । तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि ॥ १ ॥ ततस्सूत्रकर्त्तनलोह-

मयशलाकया राकामहमितिमन्त्रेण सीमन्तमुन्नयति। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो राका देवता सीमन्तोन्नयने विनियोगः। राकामहꣳसुहवाꣳसुष्टुनी हुवे शृणोतु नस्सुभगा बोधतु त्मना। सीव्यत्वपस्सूच्या छिद्यमानया ददातु वीरꣳशतदायु मुख्यम् ॥ १ ॥ ततस्त्रिस्थानश्वेतया शलल्या सीमन्तमुन्नयति यास्ते राक इतिमन्त्रेण। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो राका देवता सीमन्तोन्नयने विनियोगः। यास्ते राके समतयस्सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषꣳसुभगे रराणा ॥ १ ॥ एकैकेन द्रव्येण सीमन्तमुन्नीय तन्निरस्याप उपस्पृश्यान्येन सीमन्तमुन्नयेत्।

अर्थ कुश पिञ्जुलि लेकर "ओंभूः उन्नयामि 'ओं भुवः उन्नयामि' ओं स्व. उन्नयामि" मन्त्रो का ऋषि देवता छन्द और विनियोग पढ़ता हुआ कुश पिञ्जुलियों से मन्त्र के क्रम से तीन वार केश को ऊपर को झार देवे। पुनः वीर तरु नाम से प्रसिद्ध वृक्ष के काष्ट को लेकर 'येनादिते०" मन्त्र को पढ़ता हुआ माँग को झार देवे। तत् पश्चात् "राकामहम्०" मन्त्र को पढ़ता हुआ टेकुआ से माँग को झार देवे। "यास्तेराका०" मन्त्र को पढ़ता हुआ साही के कांटों से सीमन्त का उनयन करे। पूर्वोक्त रीत्यानुसार एक एक वस्तुओं से मन्त्रों को अलग अलग पढ़ते हुए शिर के बालों को झार कर ठीक कर देवे। जल का स्पर्श कर केशों को भली भांति झार देवे।

अथ कृशरस्थालीपाकमादाय तत्रावेक्षणयोग्यं घृतमवसिच्य तं पत्नीं प्रदर्शयेत् । पतिस्स्थालीपाकघृतं पश्यन्तीं पत्नीं किं ? पश्यसीति पृष्ट्वा प्रजां पशून् सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युरिति पत्नीं वाचयेत् । नात्र छन्दो यजुष्ट्वात् । विनियोगः प्रसिद्धः । येन मन्त्रेण यत्कर्म क्रियते तस्य तत्र विनियोगो न्याय्यः । ततोऽवेक्षितचरोर्भोजनं मेक्षणेन पात्रान्तरे उद्धृत्य पत्नी कुर्य्यात् । भोजनसमये वीरसूस्त्वं जीवसूस्त्वं पत्नी त्वं भवेति मङ्गलगिरोऽन्या ब्राह्मण्यो वदेयुः । ततो व्याहृतित्रयहोमादितन्त्रशेषं समापयेत् । "केचित्तु तन्त्रपरिसमाप्त्यनन्तरं पत्न्या कृशरचरुभक्षणं कार्यं, कर्ममध्ये भोजनाप्रसक्तेर्हुतशेषाभावाच्चेति वदन्ति" ।

अर्थ—तिल छोड़ कर पकाए हुए भात को पत्नी के आगे रक्ख देवे । उसमें इतना घी छोड़े कि उससे भात ढक जावे । पत्नी को घृत देखने की आज्ञा देवें । उसे पूछे कि क्या देखती हो और पत्नी जब कहे कि हाँ देख रही हूँ तो पति "प्रजाम्पशून् सौभाग्यं मह्य दीर्घायुष्ट्वं-पत्युः" को पढ़े । इस मन्त्र का कोई छन्द नही है । यह तो प्रसिद्ध ही है कि जिस मन्त्र से जो कार्य किया जाता है उसमें उसका विनियोग करना उचित है। मेक्षण द्वारा भात को थाली अथवा कसोरे में लेकर पत्नी उसे भोजन करे । पत्नी के भोजन के समय कोई एक ब्राह्मणी "तुम वीर और दीर्घ जीवी पुत्र को उत्पन्न करने वाली होवो" ऐसा आशीर्वाद देवें । भोजन के पश्चात् मुख और हाथ को धोकर आचमन करे । पति "भूः स्वाहा, अग्नय इदन्न मम । भुवः स्वाहा, वायव इदन्न

मम। स्वः स्वाहा, सूर्य्याय इदन्न मम"। इन घृत आहुतियों को प्रदान करे। पृष्ट ७३ में लिखी हुई विधियों को वामदेव्य सामगान तक सम्पन्न करे। कुछ लोगों की सम्मति है कि हवन कार्य के पहले ही तिल युक्त चावल के भात को पका कर पत्नी भोजन कर लेवे। जब इस भात की आहुति नही दी जाती है तो होम कार्य के मध्यमें होमशेष के समान भोजन करना अनावश्यक प्रतात होता है।

एतच्च सीमन्तोन्नयनं प्रथमगर्भे, उत? द्वितीयगर्भादावपि। "अत्र वदन्ति 'प्रतिगर्भमावर्त्तनीयमेतत्'। अन्यथा गौतमादिभिः प्रतिपुरुषं परिगणितगर्भाधानाद्यष्टाचत्वरिंशत्संस्कारविरोधापत्ते."। परे तु, 'न तत्प्रतिगर्भमावर्त्तनीयं' "सीमन्तकरणं प्रथमे गर्भे" इति गोभिलाचार्य्यैस्सूत्रितत्वात्। नच द्वितीयापत्यादेस्संस्कारन्यूनतेति शङ्कनीयम्। गर्भपात्रसंस्कारेण तत्र जातानामपत्यानामपि संस्कृतत्वात्। "यत्तु सीमन्तकरणं प्रथमे गर्भे" इति सूत्रकृदुक्त्या गर्भाधानपुंसवनयोः प्रतिगर्भमावृत्तिरिति तन्न। तयोरपि पात्रसंस्कारकत्वात्। अत एव गर्भाधाने दक्षिणेन पाणिनोपस्थमभिमृशेदित्युक्तः पात्रसंस्कारस्सङ्गच्छते "भट्टनारायणादयोऽपि 'सकृत्संस्कृते स्त्रीद्रव्ये यो यो गर्भ उत्पद्यते स संस्कृतो भवति तस्मात्सकृदेव स्याद्गर्भाधानसंस्कारो नतु प्रतिगर्भ मिति। एवं पुंसवनसीमन्तोन्नयनयोरपि द्रष्टव्यमित्याहुः'। तत्र प्रमाणवचनानि तत्रैव द्रष्टव्यानि ग्रन्थवि-

स्तरभयान्नोच्यन्तेऽस्माभिः ॥ इति सीमन्तकरण-प्रयोगः ॥

अर्थ—यह सीमन्तोन्नयन संस्कार केवल प्रथम गर्भ रहने के समय करना चाहिए या हरेक गर्भ के समय करना उचित है? यह विषय विचारणीय है। कुछ लोगों का मत है कि सीमन्तोन्नयन संस्कार प्रत्येक गर्भ में आवश्यक है। क्योंकि गौतम आदि स्मृतिकारोंने हरेक द्विज पुरुषों के लिए चालीस संस्कार का उल्लेख किया है। उसमें सीमन्तोन्नयन भी सम्मिलित है। यदि प्रत्येक गर्भ में यह संस्कार न किया जावे तो स्मृतियों में उक्त ४० संस्कार हर एक पुरुष के पुरा नहीं हो सकते। गोभिलाचार्य ने इस संस्कार को प्रथम ही गर्भ में करना लिखा है परन्तु यदि प्रत्येक गर्भ में सीमन्त न किया जावे तो सब सन्तान ४० संस्कारों से संस्कृत न होंगे

दूसरे-ऐसा नहीं है। गर्भाशय के संस्कृत हो जाने के कारण उस गर्भ से जितने सन्तान उत्पन्न होंगे-सब संस्कार युक्त होंगे। जो गोभिलाचार्य ने लिखा है कि "सीमन्तोन्नयन संस्कार प्रथम ही गर्भ के समय करना चाहिए" इससे सीमन्तोन्नयन संस्कार काही प्रथम गर्भ के समय करना नहीं समझना चाहिए। किन्तु गर्भाधान और पुसवन संस्कार करने की भी आवश्यकता प्रथम ही वार है। अतः इन्हें भी वार वार करने की आवश्यकता नहीं है। यही मत नारायण भट्टाचार्य टीकाकार का है कि "एक वार उक्त गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोनयन सस्कारों से संस्कृत स्त्री के गर्भाशय से जो जो सन्तान उत्पन्न होती है वह सब संस्कार सम्पन्न होती है"। अतः गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन तीनो संस्कारो को एक ही वार करने की आवश्यकता है। वार वार नहीं।

ग्रन्थ विस्तार के कारण एतत् विषयक प्रमाण-वचनों को यहां बहुत अधिक नहीं उद्धृत करते हैं। प्रकरणानुसार स्मृत्यादि ग्रन्थों में देखे जा सकते हैं। यहां उपरोक्त सीमन्तोन्नयन संस्कार का प्रयोग है

अथ सोष्यन्तीहोमः ॥ यदि पत्न्यामन्नप्रसवोदरपीडायुक्ता भवेत्तज्ज्ञात्वा शीघ्र सुखप्रसवार्थं पत्न्या होमः कार्य्यः। योनिद्वारे स्थिते गर्भे सति, पत्न्याः शीघ्रं सुखप्रसवार्थमाज्याहुतीर्होष्यामीति संकल्प्य, पूर्ववदौपासनाग्निं संस्थाप्य तूष्णीं परिसमूह्य परिस्तीर्य्याज्यं संस्कृत्य पर्युक्ष्य, या तिरश्चीत्येताभ्यामाज्याहुतीः कुर्य्यात्। मन्त्रद्वयस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दस्संराधिनी धाता च देवता सुखप्रसवहोमे विनियोगः। या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति। तांत्वा घृतस्य धारया यजे स ँ राधनीमहं स ँ राधिन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा। संराधिन्यै देव्या इदं न मम। विपश्चित्पुच्छमभरत्तद्धाता पुनराहरत्। परेहि त्वं विपश्चित्पुमानयञ्जनिष्यतेऽसौनाम स्वाहा। धात्र इदं न मम। असौनामेत्यत्र जनिष्यमाण पुत्रस्य यत्किञ्चिद्गुह्यं नाम परिकल्प्योच्चारयेत्। पुमानयं जनिष्यते रामनामास्वाहा। तत औपासनवदुपरिष्टात्तन्त्रं समापयेत्। नात्र स्थालीपाकवद्ब्रह्मोपवेशनसमिदाधानादिकम् ॥ इति सुखप्रसवप्रयोगः ॥

अर्थ—अब सोष्यन्ती नाम से प्रसिद्ध होम के प्रयोग लिखते हैं। जब स्त्री के उदर में बालक होने की पीड़ा होने लगे उसी समय इस सोष्यन्ती होम कार्य्य को करना चाहिए। प्रथम आचमन प्राणायाम कर "योनिद्वारेस्थिते गर्भे सति पत्न्याः शीघ्रं सुख प्रसवार्थमाज्याहुतीर्होष्यामि" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। पृष्ठ ८९ में लिखेऽनुसार अग्निस्थापन कर बिना मन्त्र परिसमूहन से पर्युक्षणान्त कृत्य सम्पन्न करे। केवल घृत से "या तिरश्ची०" इन दो मन्त्रों से दो आहुतियों को प्रदान करे। द्वितीय मन्त्र में "असौ" पद के स्थान में उत्पन्न होनेवाली संतान का कोई गुप्त नाम कल्पना करके उसी का उच्चारण करे अर्थात् "राम नाम का पुत्र उत्पन्न होवे" ऐसा स्मरण कर आहुति प्रदान करे। समिध होम कर बिना मन्त्र अनुपर्युक्षण करे। बस इतनाही कृत्य से इस हवन कार्य को समाप्त कर देवे। सोष्यन्ती होम कार्य में स्थालीपाक के अनुसार ब्रह्म वरण इध्मा और समिध होम, समन्त्रक पर्युक्षण, यज्ञ वास्तु इत्यादि कृत्य न होंगे। स्त्री को बालक उत्पन्न होने में अधिक कष्ट न हो उसी के लिए यह सोष्यन्ती हवन का प्रयोग है।

अथ जातकर्मप्रयोग ॥ जातं कुमारं श्रुत्वा नालच्छेदनं स्तन्यदानं चान्नप्राशनसमाप्तेः प्राङ्मा कुर्विन्युक्त्वा तूष्णीं दक्षिणोत्सङ्गे प्राङ्मुखं कुमारं संस्थाप्य, देशकालौ संकीर्त्यास्य कुमारस्य गर्भजलपानसंजातदोषापनुत्तये, बैजिकगार्भिकपापनिवर्हणाय च जातमिमं कुमारं जातकर्मणा संस्करिष्यामीति संकल्प्य, व्रीहियवौ शुक्लावज्ञलेन पेषयित्वा, दक्षिणाङ्गुष्ठानामिकाभ्यामभिगृह्य, कुमारस्य जिह्वायामियमाज्ञेतिमन्त्रेण "गार्ष्टि" ।

कुमारी चेदमन्त्रकमेतत्कर्म्म । अस्य प्रजापतिर्यजुरन्नं देवता मार्जने विनियोगः । इयमाज्ञेदमन्नमिदमायुरिदममृतम् । अत्र शिशोर्जिह्वायां प्रगल्भनामाग्निर्विभाव्यः । इति जातकर्मप्रयोगः ॥

अर्थ—अब जात कर्म संस्कार के प्रयोग को लिखते हैं। पितापुत्र का उत्पन्न होना सुनकर कह देवे कि स्तन्यदान और अन्न प्राशन के पहले नाल छेदन न करो। धान और यव को जल में पीस कर उसी जल से नवजात शिशु के जीभ का प्रक्षालन कर पश्चात् नार छेदन और माता के स्तन्य पान कराकर शिशु की रक्षा करो विना मन्त्र दाहिने बगल से गोद में पूर्व मुख बालक को रख देवे। देश काल आदि का स्मरण कर "अस्यकुमरस्य गर्भजलपानसंजातदोषापनुत्तये वैजिक गार्भिक पाप निवर्हणाय च जात मिमं कुमारं जात कर्मणा सस्करिष्यामि" वाक्य योजना के साथ सकल्प करे। धान और यव का पुंसवन संस्कार में बताई हुई वड शुंगा पेषण की विधि से पीस कर दाहिने हाथ के अंगुठे और अनामिका अंगुलियो से लेकर "इयमाज्ञेदमन्नमिदमायुरिदममृतम्"। मन्त्र से बालक के जीभ को धो देवें। बालक के जीभ को धोते समय प्रगल्भ नाम अग्नि का ध्यान करना चाहिए। यही जाति कर्म संस्कार प्रयोग है।

अथान्नप्राशनप्रयोगः ॥ अन्नप्राशनकर्म्मणा संस्करिष्यामीति सङ्कल्पः। ततो दक्षिणाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां सुवर्णेनाज्यमादाय कुमारस्य जिह्वायां मेधां ते मित्रावरुणावित्येतया सदसस्पतिमित्येतया च पृथक् पृथक्

जुहोति ॥ शिशुजिह्वायां शुचिनामाऽग्निः । आद्यायाः प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो मित्रावरुणादयो देवता, द्वितीयस्या मेधातिथिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दस्सदस्पतिर्देवता, सर्पिः प्राशने विनियोगः । मेधां ते मित्रावरुणौ मेधामग्निर्दधातु ते। मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ स्वाहा ॥ १ ॥ सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यं । सनिम्मेधामयासिषं स्वाहा ॥ २ ॥ ततो नालच्छेदनं स्तन्यदानं च कुर्विति ब्रूयात् ।

अर्थ—अब अन्नप्राशन का प्रयोग लिखते हैं। आचमन प्रणायाम कर देश काल तिथि वार आदि स्मरण के पश्चात् "अन्नप्राशन कर्म्मणा संस्करिष्यामि" वाक्य का योजना कर संकल्प करे। दक्षिण हाथ के अङ्गूठे और अनामि का अङ्गुलियों से सोने के टुकडे पर घी लेकर "मेधां ते मित्रा वरुणौ०" और "सदस्पति०" इन दोनों मंत्रों को पढ़ता हुआ दो वार बालक को चटा देवे। इन दोनों मन्त्रों में स्वाहा शब्द का प्रयोग इस कारण किया गया है कि बालक के मुख में शुचि नाम की अग्नि का वास है। अतः इस चटाने के कार्य में 'जुहोति" शब्द का भी प्रयोग किया है। घृत चटाने के पश्चात् नाल काटने और माता के दूध पिलाने के लिए पिता आज्ञा देवे।

अत ऊर्द्ध्वं पिता सचैलं स्नायात्। "भट्टभाष्ये पितुरपि पुत्रे जाते स्नानमिति" यत्तदस्मात्कर्मणि ऊर्द्ध्वमेव द्रष्टव्यम्। अत ऊर्द्ध्वं सूतिस्पर्शं वर्ज्जयेदादशरात्रात्। यत्तु जातकर्मणि नान्दीश्राद्धाभिधानं तन्न सम्यक्।

"नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते । न सोष्यन्तीजातकर्मप्रोषितागतकर्मसु"। इति 'कर्मप्रदीपे' निषेधदर्शनात् । युक्तश्चैतत् । अनिविलम्बेन नालच्छेदे शिशोश्शरीरबाधापत्तेः

अर्थ - नारायणभट्टभाष्यकार ने लिखा है कि नाल छेदन की आज्ञा देने के पश्चात् सचैल स्नान करे और अब से बालककी माता को दश दिन तक कोई स्पर्श न करे । कर्म प्रदीप में लिखा है कि अष्टका श्राद्ध में तद्वत् आभ्युदयिक श्राद्ध नहीं होता क्योंकि श्राद्ध के लिए श्राद्ध का करना अनावश्यक है । सोष्यन्ती हवन कार्य, जात कर्म तथा प्रवास से आए हुए यजमान को भी कर्माङ्ग श्राद्ध करने की आवश्यकता नही है । उपरोक्त कर्मों में नान्दी श्राद्ध का विधान कर्म प्रदीप में निषेध होने के कारण विधि नही हो सकती। अति विलम्ब से नवजात शिशु के लिए शारीरिक बाधा की सम्भावना होगी अत उपरोक्त संस्कार कार्य्यों में श्राद्ध नही करनाही युक्ति युक्त है।

अत्रकुमारजिह्वायां "व्रीहियवमार्ज्जनमेकं कर्म्म, घृतप्राशनं द्वितीयंकर्म, तदुभयं जातकर्मेति" केचिन्मन्यन्ते । "परे तु, व्रीहियवमार्ज्जनं जातकर्म, घृतप्राशनमन्नप्राशनाख्यं कर्म्मान्तरमित्याहुः" । कः? पुनरत्र ज्यायान्, द्वितीयः । इति कुतः? सर्पिः प्राशयेदित्युक्तेः । सर्पिश्चान्नं भविष्यतीत्यन्नप्राशने तैत्तिरीयमांसस्याप्यन्यत्रान्नत्वदर्शनात् । नचेदं जातकर्म्मान्तर्गतं तथैव मेधाजननं सर्पिरित्युक्तेऽपिव्रीहियवमार्ज्जनवत् पूर्वसूत्रस्थनिमार्ष्टिक्रिययैव

घृतश्चो तनसिद्धेः। एतेन 'व्रीहियवमार्ज्जनं, सर्पिः प्राशनं च, जातकर्मेति' मत्वा, गौतमोक्तचत्वारिंशत्संस्कार-संख्यापूरणायान्नसंस्काराय च गोभिलानुक्तमन्नप्राशन-मध्वर्युशाखोक्तं ग्राह्यमिति वदन्तिः परास्ताः। परशाखो-क्तविस्तृतान्नप्राशनानुष्ठानस्य वैफल्यस्मरणाच्च। तथाहि "कर्मप्रदीपे"। 'अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कर्म-कारिणाम्। अक्रिया च परोक्ता च तृतीया चायथा क्रिया ।१। स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयं च यः। कर्त्तु-मिच्छति दुर्मेधा मोघं तत्तस्य चेष्टितम्' ।२। तत्राक्रिया स्वसूत्राननुष्ठानरूपा आद्या, परशाखोक्तकर्मानुष्ठानरूपा द्वितीया, यथावदननुष्ठानरूपा तृतीया। "यत्तु स्वसूत्रोक्त-मल्पेतिकर्त्तव्यता युक्तं तत्र सविस्तरं परशाखोक्तमनुष्ठे-यमिति" तत्तुच्छम्। 'गृह्यपरिशिष्टे' निषेधस्मृतेः। तथा-हि "प्रयोगशास्त्रं गृह्यादि न समुच्चीयते परैः। प्रयोग-शास्त्रताहानेरनारम्भविधानतः ।१। कल्पे वा स्वगृह्यो-क्तं यस्य यावत् प्रकीर्त्तितम्। तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत्" ।२। अत्र [illegible] मन्यत्रान्यथा स्मर्य्यते। 'तेन सन्ततु[illegible] न कुर्य्यात् [illegible]' गृह्यासङ्ग्रहकारो[illegible]। 'यः स्वशाखो[illegible]मुत्सृज्य परशाखो[illegible]। अप्रमाणमृषिं कृत्वा [illegible]न्धे तमसि मज्जति' ।[illegible]। अत्र केचिद्व्रीहि[illegible] सर्पिः प्राशनं [illegible] कर्म, अन्नप्राशनं

णात्सूत्रान्तरे दर्शनात् । जातं यत्कर्म्मतज्जातकर्म्मास्यैव नामान्तरम् । वचनादेकेन कर्मणा संस्कारद्वयनिष्पत्तिरपि नानुचिता । गौतमोक्तचत्वारिंशत्संख्यापूर्त्तिश्चन्द्रदर्शनेनान्येन वा भविष्यति तस्मादुक्तयुक्तशास्त्रोक्तमन्नप्राशनं न कुर्यादित्याहुः" । अस्मिन्पक्षे जातकर्मण्यन्नप्राशने च पृथक् पृथगग्निनामकरणप्रतिपादकगृह्यासंग्रहवचनविरोधस्स्पष्ट एव । षष्ठे मास्यन्नप्राशनस्य विधिरन्येषाम् । ननु, 'सर्पिःप्राशनानन्तरं श्रूयमाणं नालच्छेदनादिकं प्राशनस्य जातकर्म्माङ्गत्वं बोधयति । सूत्रान्तरे नालच्छेदनादेर्जातकर्म्मान्ते विधानादिति' चेन्न । गोभिलमतेऽन्नप्राशनात्परमेव नालच्छेदनविधानाङ्गीकाराद्गोभिलीयानां जननकाल एव जातकर्म्मान्नप्राशनञ्च कर्त्तव्यमित्याहुः । इत्यन्नप्राशनप्रयोगः ।

अर्थ—१-धान और यव पीस कर उसी जल से नवजात शिशु के जीभ का धोना और सुवर्ण से घृत का चटाना ये दोनो क्रिया जातकर्म की ही हैं ।

२—नवजातशिशु के जीभ को व्रीहि और यव मिश्रित जल से धोना जातकर्म और सुवर्ण से धृत का चटाना अन्नप्राशन कर्म है ।

उपरोक्त मतो में विचारणीय यह है कि दोनो कर्मो को जात करण संस्कार मानना उत्तम है, अथवा अलग अलग जीभ प्रक्षालन को जात कर्म और घृत चटाने को अन्नप्राशन मानना युक्त है ?

२-अन्नप्राशन के प्रकरण में तित्तिर पक्षी के मांस को भी अन्नवत् प्राशन कराना देखा जाता है । यहाँ "सर्पिः प्राशयत्' लिखा

है। घृत प्राशन से अन्नप्राशन का ही भाव है। अतः घृत का चटाना अन्नप्राशन संस्कार है। यही युक्ति युक्त सिद्धान्त है। घृत का चटाना जात कर्म के अन्तर्गत नही है। यदि यह जात कर्म के अन्तर गत होता तो व्रीहि और यव मिश्रित जल से जीभ प्रक्षालन के समान घृत का भी जीभ पर से गिरा देने की विधि होती, परन्तु व्रीहि और यव मिश्रित जल से जीभ का प्रक्षालन और घृत का प्राशन कराना पाया जाता है।

१–व्रीहि यव मिश्रित जल से जीभ का प्रक्षालन और घृत का चटाना दोनो जातकर्म संस्कार ही मानना चाहिए। गौतम स्मृति में लिखे हुए–गर्भाधान १, पुंसवन २, सीमन्तोन्नयन ३, जातकर्म ४, नाम करण ५, अन्नप्रासन ६, चूड़ाकरण ७, उपनयन ८, ऋग्वेद व्रत ९, यजुर वेद व्रत १०, सामवेद व्रत ११, अथर्ववेद व्रत १२, समवर्त्तन १३, विवाह १४, होम, अतिथि सत्कार, वैश्वदेवबलि, वेदविद्या का पढ़ना पढ़ाना, अष्टका और पार्वण श्राद्ध, ये पंचमहायज्ञ ५, श्रावणी, अग्रहायणी, आश्वयुजि, अग्नि का आधान, चैत्री, ये ७ पाकयज्ञ। अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, आग्रहायणादि ये ७ हविर्यज्ञ। चातुर्मास्य, पशुवन्ध, सौत्रामणि, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, वाजपेय, अतिरात्र, सप्तोर्याम, ये ७ सोमयज्ञ* इन ४०

---

*—गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनं जातकर्मनामकरणान्नप्राशनं चौलोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणी संयोगः पंचानां यज्ञानामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषां च अष्टका पार्वण श्राद्ध श्रवण्याग्रहायणीचैत्र्याश्वयुजीति सप्तपाकयज्ञ संस्था अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपौर्णमासौ आग्रहायणं चातुर्मास्यानि निरूढ़पशुबन्धसौत्रामणीति सप्तहविर्यज्ञ संस्था अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ षोडशी वाजपेयोति रात्रोऽप्तोर्याम इति सप्तसोमसंस्था. इत्येते चत्वारिंशत्संस्काराः।

गौतम स्मृति अध्याय-८

संस्कार के पूर्ण करने के लिए यजुर्वेदीय शाखीय अन्नप्राशन विधि के अनुसार ही वे संस्कार को पूरा करना चाहिए।

२—अपने शाखा में स्वल्प रूप से लिखी हुई ही किया कर्त्तव्य है, परन्तु पर शाखा में विस्तार के साथ लिखी हुई विधि के अनुसार करने का कुछ फल नहीं है। कर्म प्रदीप में लिखा है कि विद्वानों को अक्रिया अर्थात् अकर्त्तव्य तीन प्रकार के होते हैं। कर्त्तव्य कार्य को न करना, दूसरे के कर्म का अनुष्ठान, और तीसरा वेनिक्रम के साथ अर्थात् आगे पिछे कर्म करना। जो विचार हीन मनुष्य स्व शाखोक्त कर्मों को परित्याग कर पर शाखोक्त कर्मों के करने की इच्छा करता है उन दुर्बुद्धि के किए हुए अनुष्ठान निष्फल है। स्व शाखोक्त कर्म स्वल्प हो तो भी श्रेष्ठफल दायक होता है परन्तु विस्तार पूर्वक पर शाखीय कर्म निष्फल होता है। गृह्यपरिशिष्ट में पर शाखीय कर्म के निषेधक स्मृति वचनों का संकलन किया गया है "स्थालीपाक आदि कर्म के समूह गृह्यसूत्रों की विधि को संग्रह कर-कर्मविधि का विस्तार न करे। जिसके गृह्यसूत्र में थोरा या बहुत जितना कर्म लिखा हो उसी के करने से सब कुछ करने का फल हो जाता है"। किसी किसी स्थानों पर उपरोक्त वचनों के अन्तिम पद का पाठान्तर यों मिलता है कि "उसी स्वगृह्योक्त कर्म विधि से ही स्थाली पाक आदि कृत्यों को सम्पन्न करे। पर शाखीय कर्म का अनुष्ठान न करे। इस विषय को गृह्यसंग्रहकार भी स्पष्ट कर दिया है कि "जो अपने शाखा में उक्त कर्म को छोड़कर पर शाखीय कर्मों का अनुष्ठान करता है वह स्व शाखा को अप्रमाणित करनेवाला अज्ञान रूपी अन्धकार में प्रवेश करता है।

१—व्रीहि और यव को जल में पीस कर उसी से नवजात शिशु के जीभ का प्रक्षालन और घृत का चटाना ये दोनो कर्म जात

करण संस्कार हैं। कारण कि व्रीहि और यव के प्रयोग को सूत्रान्तर में भी कही अन्नप्राशन संस्कार नही कहा गया है। हां कालान्तर में हो सकता है। जन्म काल में नहीं। जन्म के समय में जो किया जाता है वह जातकर्म है। जातकर्म का ही नामान्तर मेधा जनन घृत चटाना भी है।

२–एक ही जातकर्म के वचन से जातकर्म और अन्नप्राशन दो कर्मों का प्रतिपादन अनुचित नही है। इससे और चन्द्र दर्शन आदि संस्कार से गौतम लिखित ४० सस्कार पुरे हो जावेंगे। अतः यजुर्वेदीगृह्यसूत्रों मे उक्त अन्नप्राशन नही करना चाहिए। इस पक्ष में जातकर्म और अन्नप्राशन इन दोनो कर्मों में अलग अलग अग्नि का नाम प्रति पादक गृह्यासंग्रह वचन का विरोध स्पष्ट ही है। "जन्म से छठवें मास में अन्नप्राशन संस्कार करे" कौथुमी शाखा से भिन्न शाखा वालों के लिए है।

१–क्या घृत चटाने के पश्चात् जो नाल छेदन सुना जाता है उससे अन्नप्राशन जातकर्म के अंग होने का बोध होता है? क्योंकि आश्वलायनादि गृह्यसूत्रों में जातकर्म के पश्चात् नाल छेदन की विधि है। परन्तु ऐसा नही है। गोभिल के मतमें अन्नप्राशन के पश्चात् ही नाल छेदन की विधि का समर्थन किया गया है, अत. गोभिलगृह्य सूत्रवाले द्विज के लिए जनन काल ही में जात कर्म और अन्नप्राशन दोनो ही संस्कार करना चाहिए, यह कहना ठीक नही है। जन्मकाल में घृतप्राशन को अन्नप्राशन संस्कार मानना युक्ति युक्त नही है। शास्त्रीय मीमांसा के द्वारा असिद्ध हो जाता है। कर्मप्रदीप आदि के प्रमाण वचनों को उधृत कर स्व पक्ष सिद्ध करने के लिये अर्थाभास का प्रयोग किया गया है। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए नारायणभाष्य उधृत [illegible] है।

"तथैव मेधाजननँसर्पिः प्राशयेज्जातरूपेण वादाय कुमारस्य मुखे जुहोति मेधां ते मित्रावरुणावित्येतयर्चा सदसस्पतिमद्भुतमितिच"

नारायणभाष्यम्—"तथैव" तेनैव दक्षिणस्यपाणेरित्यादिना प्रकारेणाभिसंगृह्यमेधां श्रुतनिगादिन्त्र जनयतीति मेधाजननम्। किं ननु सर्पिर्घृतं प्राशयेत् । मेधांत इत्यनेन मन्त्रेण सदस इति च भेदे नोपन्यासोभेदेनैव प्राशनार्थः । प्राशयेज्जुहोतीति च भेदेनैवोपदेशात् । अथवा जातरूपेण सुवर्णेनादाय कुमारस्य मुखे जुहोति सोऽयं विकल्पः । हस्तेन वा जात रूपेणवेति । अन्येस्तु च शब्द मध्याहृत्येत्याचक्षते । वीह्यादि यन्मेधाजननं तन्त्रान्तरे प्रोक्तं तत्प्राशयेत् सर्पिश्च । तदसत्कुतः सर्पिषोपि मेधाजननत्वात् । अत्र कश्चिदाह । अन्नप्राशनं तदेव छन्दोगानामन्यस्याविधानात् । तदसत्कुतः यदैतदन्नप्राशनं जातकर्म कृतर नहि एतच्चेतज्जातकर्मतदान्नप्राशनमन्येन भवितव्यं । कुतः स्मृत्यन्तरेष्वपि पुरुषसंस्कारेषु पृथगेवास्य विधानात् । गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणान्नप्राशनचौलोपनयनमिति । नियतकालत्वाच्चान्नप्राशनस्य । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासीति नामकरणेनच व्यवहितत्वात् । यत् षष्ठे मासि विहितं नामकरणेन च व्यवहितम् । तत्प्राङ्नाभिवर्द्धनाद्भवतीत्यतन्नयुक्तनरमिव मन्यामहे । न चैकेन संस्कारेण क्रियमाणेन संस्कारद्वय निवृत्तिर्भवतीति । यच्चैतदुक्तमन्यस्या विधानादिति । अत्र का युक्तिः । यद्यत्स्व शाखायां न विहितं तस्याक्रियेत्यवं चेन्नसस्यास्यात् । कथं ? छन्दोग शाखायांमग्निहोत्रस्यैवाविधानमतस्तेषामग्निहोत्रस्यैवाभावः तदभावेऽग्निष्टोमादीनां क्रतूनामभाव एव भवेदेतदन्त्यतायुक्तं । अतोऽस्मादेवाग्निहोत्रदर्शनात् । सर्वं शाखाप्रत्ययमेकं कर्मेति च न्यायादध्वर्युभ्यो गृह्णीयात् । तथा च कर्मप्रदीपः । यन्नाम्नातं स्व शाखायां परोक्तमविरोधिच । विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादि कर्मवदिति । प्रतिविधानहोमदेवतामात्रमेवाध्वर्यु-

भ्यो गृह्णीयादिति। कर्त्तव्यताकलापश्च स्व गृह्योक्त एव स्यात्। कथं कर्मेति उच्यते। ब्रह्मोप वेशनान्तं कृत्वा स्वगृह्योक्तेन विधिना चरुं श्रपयेत्। निर्वाप प्रयोगस्तुप्रागेवोक्तः। यथा जुष्टं निर्वपामीति। प्राणायत्वा, अपानाय त्वा। चक्षुषेत्वा। श्रोत्राय त्वा। ततः आज्य भागान्तं कृत्वा स्रुवेणाज्याहुति द्वयं जुहुयात्। तत्र मन्त्रः "देवीं वाच मजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मेन्द्रेषु मूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतै तु स्वाहा एका। ताव देतया युक्ताचा हुतिर्भवति। यथा देवीं वाच मित्यनया वाजो नो अद्येतिच। वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजोनो देवांऽऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हि मा सर्व वीरं जजानविश्वा आशा वाज पतिर्जयेयँ स्वाहेति द्वितीया अथ हविष उपस्तरणाभिधारण न्यायेन। प्राणेनान्नमशीय स्वाहा। इति प्रथमा अपानेन गन्धमशीयस्वाहेति द्वितीया। चक्षुषा रूपाण्य-शीय स्वाहेति तृतीया। श्रोत्रेण यशोयशोय स्वाहेति चतुर्थी। ततः स्विष्टकृतादि तन्त्रं समाप्य हविष्यमन्नं गृहीत्वा कुमारं प्राशयेत्तूष्णीम् हंतेति वा।

अर्थात—जिस प्रकार व्रीहि और यव मिश्रित जल को दाहिने हाथ के अंगूठे और अनामिका अंगुलियों से लेकर बालक को प्राशन कराने का विधान है। उसी रीत्यानुसार "मेधांते" मंत्र को पढ़ता हुआ घृत लेकर मेधा जनन कर्म भी करे। अथवा जात नाम सुवर्ण का है। उसी पर घृत लेकर बालक को चटा देवे। ये दोनों प्रकार की विकल्प विधि कर्त्ताकी श्रद्धापूर्ण इच्छा पर निर्भर हैं। इनमें से जिसे चाहे उसे काम में लावे। जो व्रीह्यादि से शास्त्रों में मेधा जनन लिखा है वह इस घृत प्राशन के भी लिए है। कारण कि घृत मेध को उत्पन्न करता है। यहां पर कुछ लोग इसी घृतप्राशन को ही सामवेदियों के लिए अन्नप्राशन संस्कार मानते हैं। कारण कि उनके गृह्यसूत्र में [illegible] अन्नप्राशन

का कही विधान ही नहीं है। परन्तु यह कल्पना मिथ्या है। जिस प्रकार जातकर्म को अन्नप्राशन कहते हैं, उसी रीत्यानुसार अन्नप्राशन को जातकर्म की कुकल्पना कर सकते हैं। स्मृति शास्त्रों में पुरुष संस्कार के प्रकरण में गर्भाधान आदि संस्कारों को अलग अलग गिनाया गया है। समय विचार से भी अन्नप्राशन संस्कार को छठे मास में नाम करण के पश्चात् करने को लिखा गया है। जब अन्नप्राशन संस्कार को छठवें मास में नाम करण संस्कार के पश्चात् लिखा गया है तो वह नामकरण के पहले जातकरण के साथ कैसे हो सकता है? जातकर्म के साथ नामकरण संस्कार के पहले अन्नप्राशन संस्कार को करना हम अत्यन्त अयुक्त मानते हैं। एक जातकरण संस्कार के करने से जातकरण और नामकरण दोनों संस्कार पुरे हो जावेंगे यह युक्ति युक्त विचार नहीं है। नाल छेदन से पहले ही जातकरण संस्कार के कृत्य से अन्नप्राशन संस्कार के कृत्य को सम्पन्न करना हम अत्यन्त अनुचित मानते हैं। एक जातकरण संस्कार से इस जातकरण और अन्नप्राशन दोनो की पूर्त्ति नहीं हो सकती है। जो लोग एक सस्कार से दोनों का पूरा हो जाना मानते हैं इस विषय में उनकी कौन सी युक्ति अर्थात् प्रमाण है? जो जो कृत्य अपनी शाखा में न लिखी हों उन्हें अपना कर्त्तव्य नहीं मानना उचित नहीं है। सामवेद की कौथुमी शाखा में अग्नि का आधान, अग्निहोत्र का प्रयोग नहीं पाया जाता। उक्त शाखीय द्विज अपने लिए अग्निहोत्र का अभाव क्यों नहीं मानते? यदि अग्निहोत्र का अभाव मानते हैं तो अग्निष्टोमादि सब यज्ञों का भी अभाव हो जायगा। अत जो अपनी शाखा में न कहा गया हो उसे नहीं करना यह विचार असंघत है। "सर्व शाखाप्रत्ययमेककर्म" इस न्याय से यजुर्वेदीय शाखा में विहित उन विधियों को ग्रहण करना युक्ति युक्त प्रतीत होता है। जो कर्म अपनी शाखा में न उपदेश किया गया हो।

उसे शाखान्तर से पुरा करनाही चाहिए। कर्मप्रदीप में भी ऐसाही लिखा है कि "जो विधि अपनी शाखा में उपदिष्ट न हो परन्तु दूसरा शाखा में बताई गई हो और अपनीशाखा से कहीं विरोध न पड़ता हो तो ऐसी परशाखीय विधि का अनुष्ठान विद्वानों को करना चाहिए, जिसप्रकार यजुर्वेदीय शाखोक्त अग्निहोत्र आदि यज्ञों का किया जाता है"। परशाखीय विधियों से केवल आहुति के देवता मात्र और तद्विधायक मन्त्रों का ग्रहण करना चाहिए। शेष स्थालीपाकादि क्रियाओं के लिये स्वशाखोक्त विधि का ही अवलम्बन कर्त्तव्य है।

अथ अन्नप्राशन प्रयोग

जन्मसे छठवें मास के मध्यम में जिस दिन शुभ तिथि, वार और नक्षत्र हों उसी दिन इस अन्नप्राशन संस्कार को सम्पन्न करे। प्रातःकाल के नित्य होम कार्यों को समाप्त कर पुण्याह वाचन आदि कृत्य सम्पन्न करे। देशकाल स्मरण के पश्चात् "ममास्य शिशोर्मातृगर्भमलप्राशनशुद्ध्यन्नाद्यब्रह्मवर्चसतेजइन्द्रियायुर्लक्षणफलसिद्धिबीजगर्भसमुभवैनोनिवर्हणसमस्त दुरितक्षयद्वारा परमेश्वर प्रीत्यर्थ अन्नप्राशनाख्यं कर्म करिष्ये" संकल्प करे। पृष्ठ ८८ और ८९ में लिखी विधि से वेदिका को संस्कृत कर। लौकिकाग्निको स्थापन करे। अङ्गुलियों के बल दोनों हाथों को भूमिपर रखकर 'ओं इदम्भूमेर्भजामह इदम्भद्र ँ सुमङ्गलम्। परासपत्नान् बाधस्वान्येषां विन्दते वसु" मन्त्र का जप करे। "ओम् इम ँ स्तोममर्हते जात वेदसे रथमिव सम्महेमा मनीषया। भद्राहि नः प्रमतिरस्य स ँ सद्यग्ने सख्ये मारिषामा वय तव॥ भरामेध्मं कृणवामा हवी ँ षि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम्। जीवातवे प्रतरा ँ साधयाधियोऽग्ने सख्ये मारिषामा वयं तव॥ शकेमत्वा समिध ँ साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्। त्वमादित्या ँ आवह तान् ह्युश्मस्य-

ग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव" मन्त्रों को पढ़ता हुआ अग्नि को भस्म रहित कर प्रज्वलित करने का यत्न करे।

अग्नि के उत्तर उत्तराग्र कुशाओं को रखकर पूर्व मुख ब्रह्मा और पूर्वाग्र कुशाओं को रखकर उत्तर मुख यजमान बैठे। दोनों तीन तीन आचमन करें। दाहिने हाथ में कुशा लेकर यजामान ब्रह्मा से "एतद् अन्नप्राशनहोमकर्मणि ब्रह्माणं त्वां अहं वृणे" कहकर कुशा को ब्रह्मा के दाहिने हाथ में दे देवे। यजमान के प्रत्युत्तर में 'ब्रह्मास्मिवृतोऽस्मिकर्म करिष्यामि" कहे। तत्पश्चात् यजमान अग्नि के पूर्व से जाकर कुण्ड से दक्षिण क्रमशः दक्षिण को जल की धारा देवे। अग्नि के दक्षिण ब्रह्मा के आसन पर पूर्वाग्र तीन कुशपत्रों को रखे। ब्रह्मा शिखा को बाँधे हुए, यज्ञोपवीती आचमन कर अग्नि के पूर्व से दक्षिण जाकर आसन के पूर्व पश्चिम मुख खड़ा होवे। "निरस्तः अस्य मन्त्रस्य प्रजापति ऋषिः यजु छन्दः परावसुः देवता निरा निरसने विनियोग." ऋष्यादि का स्मरण कर 'ओम् निरस्तः परावसुः" मन्त्र को पढ़ता हुआ वाम हाथ के अंगूठे और अनामिका से आसन पर पूर्वाग्र रक्खे हुए कुशपत्रों से एक कुशा उठाकर पश्चिम और दक्षिण के कोन में फेंक कर जल स्पर्श कर ले। "आवसो. इति मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः परावसु. देवता उपवेशने विनियोगः। "ओम् आवसोः सदनेसीदामि" मन्त्र को पढ़ता हुआ उत्तर मुख आसन पर बैठ जावे। हाथ जोड़े हुए यज्ञ समाप्तिपर्यन्त सब कार्यों का निरीक्षण करता रहे।

यदि ब्रह्मा के कार्य-सम्पादन-कर्त्ता का अभाव हो तो यजमान ही विनियोग स्मरण के सहित ब्रह्मासन के कुशपत्र को नैर्ऋत्य में फेंक देवे।" आवसोः सदने सीदामि" मन्त्र से ब्रह्मासन पर छाता, जल पूर्ण कमण्डलु, डुपट्टा, अथवा बीच में गाँठि देकर कुशा इन में किसी एक को रख देवे। कितने कुशा को रक्खे-

यह यजमान की इच्छा पर निर्भर है। यजमान इस प्रकार ब्रह्मासन पर उसके प्रतिनिधि को स्थापन कर शेष सब कार्य्यों का सम्पादन करे।

ब्रह्मा के आसन पर बैठ जाने के पश्चात् यजमान अग्नि के उत्तर भाग में पूर्वाग्र कुशा बिछा कर उसपर जलसे भरी प्रणीता रक्खे। पुनः कुशा बिछा कर उन पर क्रमशः पूर्व-पूर्व को यज्ञ सामग्रियों को रक्खे—यथा कलश या लोटा में शुद्ध जल, चार मुष्टी कुशा हवि पकाने की बटुली, ओखली, मूसल, काँस की थाली, जिसकी हवि पकाई जाएगी, उस चावल के साथ सूप, मेक्षण, चार या तीन परिधि, २० इध्मा, घी, आज्यस्थाली स्रुची, स्रुवा, गर्मजल, सम्मार्जन के लिये कुशायें और पूर्ण पात्र इन्हें कर्मश पूर्व-पूर्व को रक्खे। आसादित सामग्रियों को भली भांति निरीक्षण कर स्रुचि आदि पात्रों को सीधा रख कर जल मे कुशा डुबोकर सब का प्रोक्षण कर दे।

ओखरी मूसल और सूप को गर्म जल से धोकर अग्नि पर तपा दे। अग्नि के पश्चिम पूर्व मुख बैठ कर पूर्वाग्र कुशा रक्खे। उसी पर ओखरी को स्थिरता पूर्वक रखकर "प्राणाय त्वा जुष्टम् निर्वपमि। अपानाय त्वा जुष्टन्निर्वपामि। चक्षुषे त्वा जुष्टन्निर्वपामि। श्रोत्राय त्वा जुष्टन्निर्वपामि"। वाक्यों से प्रथम एक एक मुष्टी हवि ले कर उसमें छोड़े और तीन तीन मुष्टी बिना मन्त्र छोड़े। ओखरि के पश्चिम पूर्व मुखबैठ कर दोनों हाथ से मूसल लेकर धान को तीन बार कूटे। सूप से भूसी को पछोर कर तीन बार जल से धो देवे।

पहले से आसादित, (रखे हुए) कुशा में से ऐसे दो पत्रों को लेवे जिनका अग्रभाग टूटा न हो और मध्य के पत्तों से भिन्न अगल बगल के हों। उस कुश पत्रों से एक बित्ते का पवित्र बनाया जायगा। प्रथम धान के पुआल अथवा जौ की डंटी में कुश पत्रों को लपेट

कर "पवित्रेस्थः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः यजुः छन्दः पवित्रे देवते पवित्रच्छेदने विनियोगः" ऋषि देवता छन्द और विनियोग का स्मरण कर ले "पवित्रेस्थो वैष्णाव्यौ" मन्त्र को पढ़ता हुआ पुआल या जौ की डंटी के सहारे से कुशपत्रों के अग्र भाग का एक वितस्त तोड़ लेवें। नखों से न तोड़े। पवित्र छेदन और कुशपत्रों के मूल को इशान कोण में फेक देवे। जल को स्पर्श कर ले। वाम हाथ से पवित्रों के मूल को पकड़े हुए "विष्णोः अस्य मन्त्रस्य प्रजापति ऋषिः पवित्रे देवते यजुः छन्दः अनुमार्जने विनियोगः" पढ़कर "विष्णोर्म्मनसा पूतेस्थः" मन्त्र को पढ़ता हुआ उन पवित्रों को दाहिने हाथ से जल लेकर धो देवे। धोए हुए पवित्रों को चरुस्थाली में उत्तराग्र रखकर उसमें चावल छोड़े। चावल छोड़ देने के पश्चात् पवित्रों को चरुस्थाली से अन्यत्र रख देवे। चरुस्थाली में इतना जल छोड़ देवे जिससे चरु अच्छी तरह पक जा सके। अग्नि पर रख कर अच्छी तरह पकावे।

पकती हुई हवि को मेक्षण से दक्षिणावर्त्त चला देवे। पवित्रों को चरुस्थाली के ऊपर हाथ से पकड़े हुए उसी पर से स्रुवा से घृत छोड़े। स्रुवा और पवित्र को अपने २ स्थान पर रख देवे। चरुस्थाली को अग्नि पर से उतार कर उसके उत्तर कुशा पर रखे। पहले के समान पुनः चरुस्थाली में स्रुवा से घी छोड़े।

अग्नि को इन्धन से प्रज्वलित कर दे। आसादित (पहले से रखे हुए) चारों मुट्ठी कुशाओं को लेकर अग्नि के पूर्व, दक्षिण उत्तर और पश्चिम बिछा देवे। सब कुशाओं के अग्रभाग पूर्व रक्खे। एवं तीन परत अथवा पाँच परत बिछाना चाहिए और इन्हें इस रीति से बिछाना चाहिए कि पहले की बिछाई कुशाओं के मूल भाग को पीछे की बिछाई हुई कुशा के अग्रभाग ढकते जावें अथवा सबसे पहले पश्चिम बिछावे, तत्पश्चात् दक्षिण

और उत्तर बिछाकर उनका अग्रभाग पूर्व की ओर इस रीति से मिला देवे कि त्रिकोण सा बन जावे। सब प्रकार के हवन में परिस्तरण की यही विधि है, परन्तु यह परिस्तरण-कार्य्य क्षिप्र होम में नहीं किया जाता है। परिस्तरण के पश्चात् अग्नि के, पूर्व, दक्षिण, उत्तर और पश्चिम इस प्रकार चार अथवा दक्षिण उत्तर और पश्चिम इस प्रकार तीन परिधि रक्खे। उन परिधियों के अग्रभाग पूर्व और उत्तर को होने चाहिए।)

अग्नि कुण्ड के उत्तर भाग में यदि प्रथम से प्रणीता न रख गया हो तो, प्रोक्षण और अग्नि पर्युक्षण के लिए स्रुक् में जल भर कर रख देवे। यदि प्रणीता रख गया हो तो स्रुक रखने की आवश्यकता नहीं है। पहिले से रखी हुई चरुस्थाली को अग्नि के पश्चिम बिछाई हुई कुशाओं पर रख देवे। पश्चात् २० इध्माओं को बिना मन्त्र एक ही साथ अग्नि में छोड़ देवे। पहले के बनाए हुए, पवित्र को उत्तराग्र आज्यस्थाली पर रख देवे। उसी आज्यस्थाली में घृत छोड़ देवे। दोनों हाथों के अनामिका और अंगुठे से पवित्र के दोनों ओर पकड़कर" देवस्त्वा अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः आज्यं देवता उत्पवने विनियोग, ऋष्यादि स्मरण कर "ओं देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्य्यस्य रश्मिभिः" एकवार मन्त्र से और दो वार बिना मन्त्र घृत का उत्पवन संस्कार कर।

पवित्र कुशा से घृत का उत्पवन संस्कार कर लेने के पश्चात् उसकी ग्रन्थि खोल देवें। जल से धोकर उसे अग्नि पर रख देवे।

उत्पवन संस्कार किये हुए घृत को पकने के लिये अग्नि पर रख देवे। जब भली भाँति पक जावे तो अग्नि से उतार कर पहले उत्तर तदूपश्चात् आहुति प्रदान के लिये अग्नि के पश्चिम चरुस्थाली के पूर्व परिस्तरण कुशा पर रख देवे।

स्रुवा, स्रुची आदि को गर्म जल से धो देवे ; पूर्व को अग्रभाग करके सम्मार्गकुशा के मूल से पात्रों के मूल, मध्य से मध्य और अग्र भाग से अग्रभाग को झार देवे । पुनः अग्नि पर तपाकर उनपर जल छिड़क देवे । फिर से अग्नि पर तपाकर आज्य और चरुस्थाली के उत्तर भाग में रख देवे । सब पात्रों को एक साथ तपा लेवे परन्तु उनका समार्जन (कुशा से झारने का कार्य्य) अलग २ करे ।

हाथ में जल लेकर "अदिते अनुमन्यस्व" से अग्नि के दक्षिण नैर्ऋत्य कोण से आग्नेय तक जल की धारा देवे । पुनः "अनुमते अनुमन्यस्व" मन्त्र से अग्नि के पश्चिम नैर्ऋत्य कोण से वायव्य तक दूसरी जलधारा प्रदान करे । "सरस्वत्यनुमन्यस्व" मन्त्र से अग्नि के उत्तर वायव्य कोण से इशान तक जलधारा देकर "देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय । दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु" मन्त्र से इशान से आग्नेय तक जलधारा देते हुए अग्नि के चारो तरफ प्रदक्षिण क्रम से एक अथवा तीन जलधाराओं से अग्नि कापर्य्युक्षण करे । हाथ जोड़कर "ओम्-तपश्च तेजश्च श्रद्धा च ह्रीश्च सत्यञ्चाक्रोधश्च त्यागश्च धृतिश्च धर्मश्च-सत्वञ्च वाक्च मनश्चात्मा च ब्रह्म च तानि प्रपद्ये तानि मामवन्तु भूर्भुवः स्वरोम्महान्तमात्मानं प्रपद्ये"। विरुपाक्षोऽसि दन्ताञ्जिस्तस्य ते शय्यापर्णे गृहा अन्तरिक्षे विमित हिरण्यं तद्देवानां हृदया-न्ययस्मये कुम्भे अन्तः स न्नहितानि तानि बलभृच्च बलसाच्च रक्षतो ऽप्रमनी अनिमिषत सत्यं यत्ते द्वादश पुत्रास्ते त्वा सम्वत्सरे सम्व-त्सरे कामप्रेण यज्ञेन याजयित्वा पुनर्ब्रह्मचर्य्यमुपयन्ति त्वं देवेषु ब्राह्मणोऽस्यहं मनुष्येषु ब्राह्मणो वै ब्राह्मणमुपधावत्युपत्वा धावामि जपन्तं मा माप्रतिजापीर्जुह्वन्त मा माप्रतिहौषी कुर्वन्तं मा माप्रति कार्षीस्त्वां प्रपद्ये त्वया प्रसूत इदं कर्म्म करिष्यामि तन्मे राध्यतां तन्मे समृध्यतां तन्म उपपद्यतां समुद्रो मा विश्वव्यचा ब्रह्मानुजा-

नातु तुथो मा विश्ववेदा ब्रह्मणः पुत्रोऽनुजानातु श्वात्रो मा प्रचेता मैत्रावरुणोऽनुजानातु तस्मै विरूपाक्षाय दत्ताञ्जये समुद्राय विश्वव्यचसे तुथाय विश्ववेदसे श्वात्राय प्रचेतसे सहस्राक्षाय ब्राह्मणः पुत्राय नमः (ये वैरुपाक्षमन्त्र हैं) इन मन्त्रों का जप करे।

जिनके तीन प्रवर हैं उन्हें चाहिए कि चार स्रुवा घृत आज्यस्थाली से स्रुची में भर लेवें। "अनयोः प्रजापतिर्ऋषिः अग्निसोमश्च क्रमेण देवताऽऽज्यभागहोमे विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर अग्नि के उत्तरार्द्ध और पूर्वार्द्ध के मध्य में "ओम् अग्नये स्वाहा। अग्नय इदन्न मम" इस मंत्र से आहुति प्रदान करे। पुनः चार स्रुवा घृत स्रुची में लेकर अग्नि के पूर्वार्द्ध और दक्षिणार्द्ध अर्थात् अग्नि कोण के मध्य में "ओम् सोमाय स्वाहा। सोमायेदं न मम" इस मन्त्र से आहुति प्रदान करे। यदि यजमान पाच प्रवर वाला भृगु गोत्र का हो तो उसे चार स्रुवा के स्थान में पाच स्रुवा घृत स्रुची में लेकर आहुति प्रदान करना चाहिए। स्रुवा से घृत लेकर ओं देवीं वाचमजनयन्तदेवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सानो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुवागस्मानुपसुष्टुतै तु स्वाहा। वाच इदं न मम। देवीं वाच० व्वाजो नोऽअद्य प्रसुवातिदान व्वाजो नो देवाँ२ऽ ऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हिमा सर्व वीरञ्जजानविश्वाऽआशा वाज पतिर्जयेय ऌ स्वाहा। वाचे वाजय इदं न मम।" उपरोक्त दोनों मन्त्रों को एकसाथ पढ़ता हुआ घृत की दुसरी आहुति को प्रदान करे। प्रथम आज्यस्थाली से एक स्रुवा घृत स्रुची में छोड़े। मेक्षण से चरुस्थाली के मध्य और पूर्व भाग से अंगुष्ठ पर्व के बराबर चरु लेकर स्रुची में रखे। उसपर एक स्रुवा घृत छोड़ देवें। आजस्थाली से एक स्रुवा घृत लेकर चरुस्थाली में उन स्थानों पर छोड़े कि जहाँ जहाँ से चरुलिया हो। यदि भृगु गोत्र एवं पाँच प्रवर वाला यजमान हो तो उसे चरुस्थाली के मध्य,

और पश्चिमार्द्ध एवं तीन स्थान से चरु लेना चाहिये। पूर्वोक्त रूप से स्रुवी में उपस्ततीरणाभिघारित चरु ले ले कर ओं प्राणेनाऽमशीय स्वाहा, प्राणाय इदं न मम । अपानेन गन्धानशीय स्वाहा, अपानाय इदं न मम। ओं चक्षुषा रूपाण्य शीय स्वाहा, चक्षुषे इदं न मम। ओं श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा, श्रोत्राय इदं न मम। मन्त्र से अग्नि के बीच में आहुति प्रदान करे। पुनः स्रुची में एक स्रुवा घृत छोड़े । पहले से कुछ अधिक मेक्षण से चरुस्थाली के उत्तर और पूर्व भाग से चरु लेकर स्रुची में छोड़ देवे। फिर ऊपर से एक स्रुवा घृत छोड़े। यदि पञ्च प्रवर भृगु गोत्र का यजमान हो तो उसे चरु लेने के पहले दो स्रुवा और उसके पश्चात् भी दो स्रुवा घृत छोड़ना चाहिये। इस बार चरुस्थाली में घृत नहीं छोड़ना होगा। इस प्रकार स्रुची में हवि लेकर प्रथम दी हुई आहुति से इशान भाग में—"ओम् अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। अग्नये स्विष्टकृत इदन्न मम" इस मंत्र से आहुति प्रदान करे। चरु होम के पश्चात् स्रुक् को रख देवे। हाथ जोड़ कर—"महाव्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजाः ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि, अग्निवायुसूर्य्यादेवताः, आज्यहोमे विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर आज्यस्थाली से स्रुवा द्वारा घृत ले ले कर "ओम् भूः स्वाहा। अग्नय इदं नमम। भुवः स्वाहा, वायव इदं न मम। स्वः स्वाहा सूर्य्याय इदं न मम" इन मन्त्रों से तीन आहुतियों को प्रदान करे।

अग्नि में एक समिध को विना मन्त्र छोड़ देवे। "अदिते अन्वमस्था" मन्त्र से अग्नि के दक्षिण नैर्ऋत्य से आग्नये तक जल की धारा देवे। 'अनुमते अन्वमंस्था" मन्त्र से अग्नि के पश्चिम नैर्ऋत्य से वायव्य तक और "सरस्वते अन्वमस्था" से अग्नि के उत्तर वायव्य से इशान तक जल की धारा देवे। "देव सवितः प्रसुव यज्ञं

प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतन्नः वाचस्पतिर्वाचनः स्वदतुः" मन्त्र से ईशान से जल धारा देते हुए अग्नि के चारों तरफ एक अथवा तीन बार जल की धारा देवे। बिछाए हुए परिस्तरण कुशाओं में से एक मुष्टी लेकर उनके अग्र मध्य और मूल भाग को "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषि. यजुः छन्दः विश्वे देवा देवता बर्हिरभ्यञ्जने विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर "अक्तुँ रिहाणा व्यन्तु वयः" मन्त्र से घृत अथवा चरु में डुबो देवे। जल से प्रोक्षण कर देवे। "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप् छन्दो रुद्रो देवता बर्हिर्होमे विनियोग." "ओम् यः पशूनामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो वृषा। पशूनस्माकं माहिँ सीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा" "पशूनामधिपतये रुद्राय तन्तिचरायेदं न मम"। मन्त्र से अग्नि में होम कर देवे। जल स्पर्श कर लेवे। स्रुची में घृत भर कर "प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्वसवो देवता होमे विनियोगः" ऋषि आदि का स्मरण कर "वसुभ्यः स्वाहा। वसुभ्य इदं न मम" इस मन्त्र से अविछिन्न घृत धारा अग्नि में प्रदान करे। होम से बचे हुए चरु को स्थाली से मेक्षण द्वारा निकाल कर कसोरे आदि पात्र में रखकर भोजनार्थ ब्रह्मा को दे देवे। ब्रह्मा चरु को बिना मन्त्र खाकर दो आचमन करे। चरु-स्थाली से हवि लेकर विना मन्त्र अथवा "हंत" शब्द को कह कर बालक को खिला देवे। ब्रह्मा जितने में भोजन करके तृप्त हो सके उतने भात, या चावल या फल "ब्रह्मन् पूर्णपात्रं ते तदामि" वाक्य से दक्षिणा प्रदान कर देवे। वामदेव्य साम का गान कर यज्ञ कर्म को ईश्वरार्पण कर देवे। यही अन्नप्राशन संस्कार है।

इस उपरोक्त अन्नप्राशन को संस्कारों की संख्या के अनुसार नामकरण संस्कार के पश्चात् लिखना चाहता था, परन्तु इस गोभि-लीयगृह्यकर्मप्रकाशिका में जातकरण के के साथ इसका विचार किया गया है, अतः उक्त

है । करना तो नामकरण के पश्चात् ही होगा ।

अथ चन्द्रदर्शनप्रयोगः ॥ कुमारस्य जन्मकालमारभ्य तृतीयो यश्शुक्लपक्षस्तत्र तृतीयायां शिशोश्चन्द्रं प्रदर्श्य पिता कृताञ्जलिपुटश्चन्द्रमुपतिष्ठते । प्रातः कुमारं सशिरस्कं स्नापयित्वा, पत्न्या सह ब्राह्मणाननुज्ञाप्य गणेशं संपूज्य कुमारस्य करिष्यमाणज्योत्स्नादर्शनकर्माङ्गं नान्दीमुखश्राद्धं प्रातः कुर्य्यात् । ततोऽस्तमिते सूर्ये लौहित्यापगमे पिता चन्द्राभिमुखो देशकालौ संकीर्त्य शिशोरायुरारोग्यवृद्ध्यर्थं शिशोश्चन्द्रदर्शनाख्यं कर्म करिष्ये । इति संकल्पं कुर्य्यात् । तदा माता अहतेन वाससा मुखवर्जं कुमारमाच्छाद्य, भर्त्तुर्दक्षिणतो गत्वोत्तानमुखमुदक्छिरसं कुमारं पित्रे प्रदाय, पत्युः पृष्ठदेशेनोत्तरतो गत्वा पत्युरुत्तरस्यां दिशि माताऽवतिष्ठते । ततः पिता जपति यत्ते सुसीमेति तिसृणामृचां प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दश्चन्द्रो देवता शिशोश्चन्द्रदर्शने विनियोगः । यत्ते सुसीमे हृदयꣳहितमन्तः प्रजापतौ । वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥ १ ॥ यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदामृतस्याहं नाम माहं पौत्रमघꣳरिषम् ॥ २ ॥ इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापती । यथाऽयं न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि ।३। यथादत्तं कुमारं मात्रे प्रदायो-

पविश्य वामदेव्यं गायेत् । अत ऊर्द्ध्वं द्वादशसु शुक्लपक्षेषु तृतीयास्वस्तमिते लौहित्यनिवृत्तौ पितोदकेनाञ्जलिमापूर्य्यचन्द्राभिमुखो यददश्चन्द्रमसीति मन्त्रेण चन्द्रं प्रत्युत्सृज्य तूष्णीमुदकाञ्जलिद्वयमुत्सृजेत् । यददश्चन्द्रमसीति मन्त्रस्य प्राजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दश्चन्द्रो देवतोदकाञ्जल्युत्सर्ज्जने विनियोगः । यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳश्रितम् । तदहं विद्वाꣳस्तत्पश्यन् माहं पौत्रमघꣳरुदम् ॥ १ ॥ ततो वामदेव्यं गायेत् । 'एतत्प्रतिपदि द्वीतीयायां वेति' केचित् । मातरं शिशुं च विहाय देशान्तरस्थोऽपि पिता चन्द्रमसे उदकाञ्जलित्रयं दद्यात् ॥ इति शिशोश्चन्द्रदर्शनप्रयोगः ॥

अर्थ—अब शिशु को चन्द्र दर्शन कराने का प्रयोग लिखते हैं। बालक के जन्म से तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि में चन्द्रमा का दर्शन कराना चाहिए। जिसदिन बालक को चन्द्र दर्शन कराना हो उस दिन प्रातः काल शिर के सहित कुमार को स्नान करा देवे। स्त्री के साथ पिता ब्राह्मण की आज्ञा लेकर गणेश की पूजा करे। बालक के चन्द्र दर्शन के उपलक्ष में नान्दी श्राद्ध करे। सूर्य्यास्त के समय लाल रंग से सुसज्जित आकाश को अवलोकन कर चन्द्रमा के ओर मुख कर देश काल आदि स्मरण के पश्चात् "शिशोरायुरारोग्यवृद्ध्यर्थं शिशोश्चन्द्रदर्शनाख्यं कर्म करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। बालक की माता कुमार को नये वस्त्र से सर्वाङ्ग ढांक देवे। केवल मुख खुला रक्खे। पति के दक्षिण पार्श्व में जाकर ऊपर को मुख और पूर्व को शिर किए हुए बा[illegible] उस के गोद में

दे देवे । पति के पीछे से आकर उसके उत्तर भाग में खड़ी हो जावे । पिता प्रथम बालक को चन्द्रदर्शन कराकर पश्चात् स्वयं हाथ जोड़ कर "यत्ते सुसीमें" तीनो मन्त्रों को पढ़ता हुआ स्तुति करे। जिस प्रकार माता कुमार को पति के गोद में दी थी उसी प्रकार पिता भी उसे माता के गोद में दे देवे । बैठकर वाम देव्य साम का गाम करे । इस कृत्य के पश्चात् २० शुक्ल पक्ष की तृतीयाओं को आकाश की लालिमा दूर हो जाने के पश्चात् पिता "यद्दश्चन्द्रमसि०" मन्त्र से एक और विना मन्त्र दो एवं तीन जलाञ्जलि प्रदान करता रहे । वामदेव्य साम का गान करे ।

किसी किसी का मत है कि इन जलाञ्जलियों को प्रतिपद अथवा द्वितीया तिथि को प्रदान किया करे । पिता यदि बच्चे और उसकी माता को गृह पर छोड़कर प्रदेश में भी रहता हो, तो भी चन्द्रमा को जलाञ्जलि प्रदान करता रहे । यही बालक को चन्द्रदर्शन कराने का अर्थात् निष्क्रमण संस्कार का प्रयोग है ।

अथ नामकरणप्रयोगो निरूप्यते । जन्मदिवसादेकादशेऽन्हि पिता नाम कुर्यात् । दैवान्मानुषाद्वोक्तदिने तदकरणे एकोत्तरशततमदिवसे । तत्राप्यकरणे द्वितीयसंवत्सरे, प्रथमदिने वा कुर्य्यात्। "न स्वेऽग्नावन्यहोमस्स्यान्मुक्त्वैकां समिदाहुतिम् । स्वगर्भसत्क्रियार्थांश्च यावन्नासौ प्रजायते । १ । अग्निस्तु नामधेयादिहोमे सर्वत्र लौकिकः । न हि पित्रा समानितः पुत्रस्य भवति क्वचित्" इति कर्मप्रदीपवचनान्नामकरणे लौकिकाग्निर्ग्राह्यः । गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनकर्मणां परम्परया गर्भसंस्कारकत्वेऽपि साक्षात्पत्नीसंस्कारार्थत्वात्तेषु गृह्याग्निरेव

युक्तः। येषां मते गर्भसंस्कारार्थत्वं तन्मते गृह्याग्नेर-प्राप्तौ तद्वचनविरोधस्स्पष्ट एव।

अर्थ—अब नाम करण संस्कार के प्रयोग का निरूपण करते हैं। यह नामकरण संस्कार जन्म से ग्यारहवें दिन करना चाहिए *। यदि किसी कारण से ग्यारहवें दिन न कर सके तो १०० दिन व्यतीतहोने पर अथवा एक वर्ष के पश्चात् नाम करण संस्कार करे।

उक्त नाम करण संस्कार की आहुतियाँ पिता की गृह्याग्नि में नही दीजा सकतीं। क्यों कि "किसी दूसरे की गृह्याग्नि में अन्य व्यक्ति के निमित्त आहुतियाँ नही प्रदान की जा सकतीं। हां ब्रह्मचारी की समिदाहुति और जबतक बालक उत्पन्न न हो जावे तब तक स्व पत्नी के गर्भ संस्कार के अर्थ आहुतियाँ दी जा सकती हैं। नामकरण चूड़ाकरण आदि संस्कारों में लौकिकाग्नि को स्थापन कर उसी में आहुति प्रदान करे। पिता की स्थापित की हुई गृह्याग्नि में पुत्र की आहुति नही प्रदान की जा सकती" ये कर्मप्रदीप के वचन हैं।

गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार का संबन्ध विवाह परम्परा के साथ साक्षात स्त्री से है। कारण कि उक्त संस्कार स्त्री के

---

* "पिता बालक के जन्मदिन से ग्यारहवें दिन में उसका नाम करण संस्कार करे" वाक्य में "ग्यारह" दिन शब्द सूतक व्यतीत हो जाने के दूसरे दिन का बोधक है। अतः उक्त सस्कार को क्षत्रिय पिता १२ वें, वैश्य १६ वें और शूद्र को ३१ वें दिन करना चाहिए। "सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत्" शातातप का वचन है कि सब वर्णों की शुद्धी दशही दिन में हो जाती है, अतः सब लोग दश दिन में भी शुद्ध होकर ग्यारहवें दिन नाम करण संस्कार कर सकते हैं।

गर्भ के संस्कारार्थ हैं। अतः उपरोक्त गर्भाधानादि संस्कार संबन्धी आहुतियों को गृह्याग्नि में ही प्रदान करना उचित है। जिनके मत में गर्भाधानादि गर्भसंस्कारार्थ कर्त्तव्य हैं, उनके मतव्यानुसार नाम प्रकरण आदि संस्कार का गृह्याग्नि से कोई संबन्ध नहीं है। कर्म-प्रदीप कार के वचन से प्रतिकूलता स्पष्ट है।

अस्य मम कुमारस्य करिष्यमाणनामकरणकर्म्माङ्गन्नान्दीमुखश्राद्धं करिष्ये। इति संकल्प्य तत्कुर्य्यात्॥ अथ प्रातर्ब्राह्मणाननुज्ञाप्य स्वदक्षिणभागे उपविष्टया पत्न्या सशिरस्काप्लावितेन कुमारेण च सह पवित्रपाणिः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्यास्य मम कुमारस्य वैजिकगार्भिकदोपनिवृत्त्यये, व्यवहारसिद्ध्ये च, नामधेयकरणं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य स्वपुरतो गोमयेनोपलिप्ते स्थण्डिले विधिवत्पार्थिवनामानं लौकिकाग्निं संस्थापयेत्। आज्यतन्त्रेण ब्रह्मोपवेशनाद्याज्यसंस्कारान्तं कुर्य्यात्।

अर्थ प्रातः काल नित्य कृत्यों के पश्चात् औपासन होम समाप्त कर सपत्नीक आचमन और प्राणायाम करे। "अस्य मम कुमारस्य करिष्यमाणनामकरण कर्म्माङ्गनान्दीमुखश्राद्धं करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। विधिवद् संस्काराङ्ग पुण्याहवाचनादि नान्दी श्राद्धान्त कृत्य सम्पन्न करें। ब्राह्मण की आज्ञा लेकर पति के दक्षिण भाग में पत्नी और अच्छी तरह स्नान कराया हुआ बालक बैठें। दम्पती कुशपवित्र धारण किए हुए आचमन, प्राणायाम के पश्चात् देश, काल, तिथि, वार आदि का स्मरण कर "मम कुमारस्य

वैजिकगर्भिकदोषनिवृत्तये व्यवहारसिद्धये च नामधेयकरणं करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। अपने पूर्व भागमें पृष्ठ ८६ में लीखी हुई विधि के अनुसार वेदिका को संस्कृत कर पार्थिव नाम की लौकिक अग्नि को स्थापन करे। ब्रह्मोपवेशन से आरम्भ कर पर्य्युक्षणान्त केवल आज्य संस्कार के साथ कृत्य सम्पन्न करे।

ततो माता मुखवर्जमहतेन वाससा कुमारमाच्छाद्य दक्षिणत उदञ्चमुदक्छिरसं पित्रे प्रदाय पत्युः पृष्ठत उत्तरतो गत्वोदगग्रेषु दर्भेषु प्राङ्मुखी पत्न्युपविशति। ततः पतिस्स्रुवसंमार्गादिव्याहृतित्रयान्तं हुत्वा मनसा प्रजापतये स्वाहेति जुहोति। ततः कुमारजन्मतिथये, जन्मतिथिदेवतायै, कुमारजन्मनक्षत्राय जन्म नक्षत्रदेवतायै चैकैकाज्याहुतिं जुहोति। चतुर्थ्यन्ततिथिनक्षत्रदेवतानामान्ते स्वाहेति पदं संयोज्य होमाः कर्त्तव्याः। सुखावबोधनार्थः प्रयोगः प्रदर्श्यते॥

अर्थ—माता उत्तम नूतन वस्त्र से बालक को ढाकी हुई पति के गोद में दे देवे। बालक का मुख ढका न हो। शिर उत्तर को होवे। पति के पीछे से जाकर उसके वाम भाग में पूर्वाग्र विछाए हुए कुशासन पर पूर्व मुख बैठ जावे।

बालक का पिता स्रुवा को धो देवे। अग्निपर तपाकर संमार्ग कुशाओं से पोछ कर पुनः अग्नि पर तपा देवे। स्रुवा से घृत ले ले कर "ओं भूः स्वाहा, अग्नय इदन्न मम। ओं भुव स्वाहा, वायव इदन्न मम। ओं स्वः स्वाहा, सूर्य्याय इदन्न मम। ओं प्रजापतये (इसे मन मेही स्मरण कर) स्वाहा, प्रजापतय इद[illegible] स्पष्ट

उत्थापनपूर्वक) आहुति को प्रदान करे ।

पूर्वोक्त आहुतियों के प्रदान करने के पश्चात् बालक जिस तिथि और नक्षत्र में उत्पन्न हुआ हो उस तिथि और उस तिथि के देवता तथा नक्षत्र और उस नक्षत्र के देवता के नाम से चार आहुतियों को प्रदान करे । सुगम से समझ जाने के लिये सब तिथियाँ और उनके देवता एवं नक्षत्र और उनके देवताओं का अनुक्रमिक नाम नीचे लिखा जाता है ।

प्रतिपदे स्वाहा । द्वितीयायै स्वाहा । तृतीयायै स्वाहा । चतुर्थ्यै० । पञ्चम्यै० । षष्ठ्यै० । सप्तम्यै० अष्टम्यै० । नवम्यै० । दशम्यै० । एकादश्यै० । द्वादश्यै० । त्रयोदश्यै० । चतुर्दश्यै० । पौर्णमास्यै० । अमावास्यायै० ॥ इति तिथिहोमः ॥ प्रतिपदादिदेवताहोमप्रयोग उच्यते ॥

आहुति प्रदान के लिए ये तिथियों के चतुर्थ्यन्त नाम हैं । इनमेंसे जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि के नाम को पढ़ता हुआ आहुति प्रदान करे । तिथियों के देवता के नाम निम्नाङ्कित हैं ।

ब्रह्मणे स्वाहा । त्वष्ट्रे० । विष्णवे० । यमाय० । सोमाय० । कुमाराय० । मुनिभ्यः० । वसुभ्यः । पिशाचेभ्यः० । धर्माय० । रुद्राय० । रवये० । मन्मथाय० । यक्षेभ्यः० । पितृभ्यः० । विश्वेभ्यो देवेभ्यः० । इति तिथिदेवताः ॥

यही तिथि के देवताओं के नाम हैं । इनमे से जिस तिथि के देवता के नाम से आहुति प्रदान करना हो करे ।

अश्विनीभ्यः स्वाहा । भरणीभ्यः० । कृत्तिकाभ्यः० । रोहिणीभ्यः० । मृगशिरसे० । आर्द्रायै० । पुनर्वसवे० । पुष्याय० । आश्लेषाभ्यः० । मघाभ्यः० । पूर्वाभ्यां फल्गुनीभ्याम्० । उत्तराभ्यां फाल्गुनीभ्याम्० । हस्ताय० । चित्रायै० । स्वात्यै० । विशाखाभ्यः० । अनूराधाभ्यः० । ज्येष्ठायै० । मूलाय० । पूर्वाभ्योऽषाढाभ्यः० । उत्तराभ्योऽषाढाभ्यः० । श्रवणाय० । धनिष्ठाभ्यः० । शत-भिषग्भ्यः० । पूर्वाभ्यां प्रौष्ठपदाभ्यां० । उत्तराभ्या प्रौष्ठ पदाभ्यां० । रेवत्यै० । इति नक्षत्रहोमः ॥

ये नक्षत्रों के नाम हैं । इनमें से जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस के नाम से आहुति प्रदान करे ।

अश्विभ्याम्० । यमाय० । अग्नये । प्रजापतये० । सोमाय० । रुद्राय० । अदित्यै० । बृहस्पतये० । सर्पेभ्यः० । पितृभ्यः० । भगाय० । अर्यम्णे० । सवित्रे० । त्वष्ट्रे० । वायवे० । इन्द्राग्निभ्याम्० । मित्राय० । इन्द्राय० । निर्ऋतये० । अद्भ्यः० । विश्वेभ्योदेवेभ्यः० । विष्णवे । वसुभ्यः० । वरुणाय० । अजायैकपदे० । अहयेबुध्न्याय० । पूष्णे० । इति नक्षत्रदेवताहोमप्रयोगः ॥

ये नक्षत्र के देवताओं के नाम हैं । इनमें से जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हो उसके देवता के नाम से आहुति प्रदान करे ।

हुत्वैवं कुमारस्य हृदयं [illegible], नासिके [illegible] च, संस्पृश्य कोऽसि कतमो[illegible] [illegible]

च्चितयस्य स्थाने सम्बोधनान्तं कुमारस्य परिकल्पितं नामो-च्चारयेत्। अनयोः प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरादित्यो देवता नामकरणे विनियोगः। "कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि आ हस्पत्यं मां संप्रविशासौ॥ १॥" स त्वाऽन्हे परिददात्वह-स्त्वाराव्यै परिददातु रात्रिस्त्वाऽ होरात्राभ्यां परिददात्व होरात्रौ त्वाऽर्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्त्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुपे जरायै परिददात्वसौ॥

अर्थ—आहुति प्रदान के पश्चात् बालक के मुख, नेत्र, नासिका, और कानों का स्पर्श करे। "कोऽसि० सत्वाऽन्हे०" मन्त्रों का जप करे। बालक का जो नाम रखना अभिष्ट हो उसे मन्त्रों के अन्त में "असौ" शब्द के स्थानपर संबोधनान्त, उच्चारण करे।

अथ नामलक्षण सूत्रम्॥ "घोषवदाद्यन्तरन्तस्थं दीर्घाभिनिष्ठानान्तं कृतं नाम दध्यादेतदतद्धितम्। अयुग्दान्तं स्त्रीणाम्"। अत्रेदं तात्पर्य्यम्। पुंसां युग्माक्षरं नाम। तत्राद्यक्षरं घोषवत्। वर्गाणां तृतीयचतुर्थपञ्चमहकारान्यतममिति यावत्। मध्याक्षरं यरलवान्यतमं विसर्गोत्तरदीर्घान्त्यं कृदन्तं नाम कुर्यात्। न तद्धितान्तम्। यथा। गोदा, हिरण्यदा, इति। स्त्रीणां त्वयुग्माक्षरं दाशब्दान्तं नाम कुर्यात्। 'सूत्रान्तरे' तु देवतानाम, ऋषिनाम, पितृनाम, वा कुर्यात्। प्रथमं मात्रे

कुमारस्य नमोक्त्वा सुहृद्भ्यः पश्चात्। उपरिष्टात्तन्त्रं समापयेत्। ब्रह्मणे गौर्दक्षिणा। वामदेव्यं गीत्वा ब्राह्मण-भोजनादिकं यथाशक्ति कार्य्यम्॥ इति नामकरणप्रयोगः॥

अर्थ– गोभिलगृह्यसूत्रप्रपाठक २ खण्डिका ८ में लिखा है कि पुरुष के नाम में पहले वर्गों के तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम वर्णों में से किसी अक्षर को रखना चाहिए। मध्य में अन्तस्थ संज्ञक अक्षरों में से किसी को रक्खे। अन्त में दीर्घ, कृतप्रत्यान्त और विसर्गान्त अक्षर उत्तम हैं। पुरुष का नाम "गौर्दा। हिरण्यदा" उदाहरण के अनुसार रखना चाहिए। तद्धित प्रत्यान्त नही रखना चाहिए। बालिकाओं का असंयुक्ताक्षर और दकारान्त नाम रखना अच्छा है। अन्य गृह्य-सूत्रो में किसी देवता, ऋषि अथवा पितरों के नामों मे से किसी के नाम रखने को लिखा है। नाम के पहले मात्रा के साथ "नामः" शब्द का प्रयोग कर पश्चात् सुहृदभ्यः" शब्द का उच्चारणकरे। व्याहृति होम के पश्चात् अनुपर्य्युक्ष से वास्तु कर्म पर्यन्त सब कृत्य सम्पन्नकरे। इस नाम कारण संस्कार के उपलक्ष में ब्रह्माको गौ दक्षिणा प्रदान करे। वामदेव्यसाम का गान करे। जैसी शक्ति हो ब्राह्मण भोजन करावे। यही नाम कारण संस्कार की विधि है।

अथ कुमारस्य श्रेयस्कराग्नीन्द्रादि देवतायागप्रयोगः। "तस्य कालो मासि मासि जन्मतिथिस्संवत्सरपर्यन्तम्। सांवत्सरिकेषु पर्वसु वा"॥ अस्यार्थः। कार्त्तिकीफा-ल्गुन्याषाढीष्विति।

अर्थ—अथ बालक के कल्याणार्थ अग्नि इन्द्र द्यावापृथ्वी और विश्वेदेवा के लिए आहुति प्रदान प्रयोग को लिखते हैं। उप-

रोक्त आहुतियों को हरेक मास की बालक की जन्मतिथि को एक वर्ष तक करते रहना चाहिए। अथवा कार्त्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ की पूर्णमासी तिथि में प्रदानकरे ।

तत उक्ततिथौ प्रातः कृतनित्यक्रियः पत्न्याकुमारेण च सह जन्मतिथियागानुष्ठानार्थं ब्राह्मणाननुज्ञाप्य गणेशं सम्पूज्य, तदङ्गं नान्दीमुखश्राद्धं विधायामुकशर्म्मणोऽस्यकुमारस्य श्रेयोऽभिवृद्ध्यर्थं जन्मतिथियागं करिष्य इति संकल्प्य शुद्धे स्थण्डिले उल्लेखनादिपूर्वकं पावकनामानं लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्याज्यतन्त्रेण व्याहृतित्रयहोमान्तं कृत्वा, वक्ष्यमाणदेवताभ्य एकैकामाज्याहुतिं जुहुयात् । अग्नीन्द्राभ्यां स्वाहा । अग्नीन्द्राभ्यामिदं न मम। द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा । द्यावापृथिवीभ्यामिदं न मम। विश्वेभ्यो देवेभ्यस्स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं न मम । ततो जन्मतिथिदेवतायै, जन्मतिथये, जन्मनक्षत्रदेवतायै, जन्मनक्षत्राय, चैकैकाज्याहुतिं कृत्वा व्याहृतित्रयहोमादितन्त्रशेषं प्रकृतिवत्समापयेत् । पूर्णपात्रं दक्षिणा । वामदेव्यगानम् । ब्राह्मणभोजनम् ॥ इति जन्मतिथियागः ॥

उक्त तिथियों में जिस दिन उपरोक्त आहुतियाँ प्रदान करनी हों उसदिन प्रातः काल नित्य कृत्य सम्पन्नकरे। स्त्री और बालक के साथ आचमन प्राणायाम करे। जन्म तिथि याग के लिए ब्राह्मण से आज्ञा लेवे । गणेश पूजन, पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध आदि कृत्यों

को सम्पन्न करे। "अमुक शर्मणोऽस्य कुमारस्य श्रेयोऽभिवृद्ध्यर्थं जन्मतिथि यागं करिष्ये" वाक्य योजना के साथ सकल्पकरे। वेदिका को शुद्ध कर पावक नाम अग्निका स्थापनकरे। केवल आज्य संस्कार कर व्यहृतियों से आहुति प्रदान करे। ओं अग्निन्द्राभ्यां स्वाहा, अग्नीन्द्राभ्यामिद न मम। द्यावापृथिविभ्यां स्वाहा' द्यावा-पृथिवीभ्यां इदं न मम। विश्वेभ्यो देवेभ्यो स्वाहा, विश्वेभ्यः देवेभ्यः इदं न मम" इन मन्त्रों से घृत आहुतियों को प्रदान करे। इन आहु-तियों के पश्चात् नाम करण के अनुसार घृत ले ले कर तिथि नक्षत्र और उनके देवताओं के चतुर्थ्यन्त नाम से चार आहुतियों को प्रदान-करे। व्याहृति आहुतियों से वास्तु कर्म्म पर्यन्त कृत्य सम्पन्नकर ब्रह्माको पूर्णपात्र दक्षिणा प्रदान करे। वामदेव्यसाम गान कर यथा शक्ति ब्राह्मण भोजन करावे। यही जन्म तिथि गया है।

अथ प्रवासं कृत्वाऽऽगत, पिता ज्येष्ठपुत्रस्य मूर्द्धानं हस्ताभ्यां परिगृह्याङ्गादङ्गादित्यृक्त्रयं जपेत्, मदीयः पितेति यदा कुमारो जानीयात्तदा। अथवोपनीतस्य हिंकारेणाभिजिघ्रामीति मन्त्रस्थपदप्रयोगकाले मूर्द्धा-नमभिजिघ्रति। असावित्यस्य स्थाने सम्बोधनान्तं पुत्र-नाम वदेत्। आसामृचां प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः प्रजा-पतिर्देवता मूर्द्धस्पर्शाघ्राणजपे विनियोगः। अङ्गादङ्गात्सम्भ-वसि हृदयादधि जायसे। प्राणं ते प्राणेन संदधामि जीव मे यावदायुषम्॥ १॥ अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदया-दधि जायसे। वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः श-तम्॥ २॥ अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव।

आत्माऽसि पुत्र मा मृथास्सजीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥ पशूनां त्वा हिंकारेणाभिजिघ्राम्यसौ ॥ ४ ॥ एवमन्येषामपि पुत्राणां ज्येष्ठक्रमेण पूर्ववत्कार्य्यम् । यथोपलम्भं वा । कन्यानां त्वमन्त्रकम् ॥ इति प्रवासादागतस्य कर्त्तव्यप्रयोगः ॥

अर्थ—अब प्रवास से आए हुए पिता के कर्त्तव्य के विधि को लिखते हैं। गृह से अन्य ग्राम में चला जावे और रात्रि में गृह पर लौट कर न आसके उसी का नाम प्रवास है। प्रवास से आया हुआ पिता अपने ज्येष्ठ पुत्र के शिर को दोनों हाथ से पकड़कर "अङ्गादङ्गात्" तीनो मन्त्रों को पढ़ता हुआ सुँघे। यदि पुत्र बड़ा होतो पिता के शिर घ्राण को करते हुए देखकर "मदीयं पिता" ऐसा वाक्य कहे। यदि पुत्र उपनीत होतो "हिंकारेणाभिजिघ्रामि" इस वाक्य का भी प्रयोग करे। 'असौ" पद के स्थान पर संबोधनान्त पुत्र का नाम उच्चारण करे।

इसी प्रकार यदि और पुत्र हों तो उनका भी घ्राण करे। उपनीत अनोपनीत जिस योग्य जो हों उनका वैसा घ्राण करे। कन्याओं का शिर विना मन्त्र घ्राण करे। प्रवास से वापस आए हुए पिता का यह कर्त्तव्य प्रयोग है।

अथ चूडाकरणप्रयोगः ॥ जननकालात्तृतीये वर्षे, उत्तरायणे, शुक्लपक्षे, पुण्ये नक्षत्रे, तत्करिष्यन्तदङ्गमाभ्युदयिकश्राद्धं कुर्यात् । अथ मध्यान्हात्पूर्वं सुस्नातेन कुमारेण स्नातया पत्न्या सह कृतनित्यक्रियः पिता चूडाकरणार्थं ब्राह्मणाननुज्ञाप्य, कुशेषु प्राङ्मुख उपविश्य,

प्राणानायम्य, देशकालौ सङ्कीर्त्य, ममास्य कुमारस्य बैजिकगार्भिकदोषापनुत्तये इमं कुमारं चूडाकरणकर्मणा संस्करिष्यामीति सङ्कल्प्य, गृहस्य पुरस्ताद्गोमयेनोपलिप्ते स्थण्डिले विधिवत्सभ्याभिधं लौकिकाग्निं संस्थाप्याज्यतन्त्रेणाज्यसंस्कारान्तं कुर्यात्। पात्रप्रयोगकाले विशेषः। अग्नेर्दक्षिणत उदगग्रेषु दर्भेषु समं त्रिधाबद्धा एकविंशतिदर्भपिञ्जलीरुष्णोदकपूरितं कांस्यपात्रं, ताम्रमयं क्षुरं, दर्पणं वा, प्राक्संस्थमासादयेत्। क्षुरहस्तं नापितं दक्षिणतस्संस्थापयेत्। अग्नेरुत्तरतस्तिलमिश्रिततण्डुलान् वृषभगोमयं चासादयेत्। व्रीहियवैस्तिलैर्माषैः पृथक् पात्राणि पूरयित्वाऽग्नेः पुरस्तादासादयेत्। निर्वापं विना कृसरचरुमग्नौ श्रपयित्वाऽऽसादयेत्।

अर्थ—अब चूडा कारण संस्कार का प्रयोग लिखा जाता है। बालक के जन्म दिन से तीसरे वर्ष में इस संस्कारको करना चाहिए। उक्त संस्कार के लिए सूर्य उत्तरायण और शुक्लपक्ष का होना आवश्यक है। ज्योतिष शास्त्रसे विहित पुण्यदायक तिथि, वार और नक्षत्र में उक्त संस्कार करने के लिए दोपहरसे पहले प्रथम पिता, माता और बालक स्नान कर नूतन वस्त्र धारण करें। ब्राह्मण से आज्ञा ले कर पुण्याह वाचन से आरम्भकर आभ्युदयिक श्राद्धान्त कृत्यों को समाप्त करें। कुशासनपर पूर्व मुख वैठे हुए आचमन और प्राणायाम करे। देश' काल, तिथि. वार आदि स्मरण के पश्चात् "ममास्य कुमारस्य बैजिक गार्भिक दोषापनुत्तये इमं कुमारं चूणाकरण कर्मणा संस्करिष्यामि" वाक्य योजना के साथ संकल्पकरे। इस पुस्तक

के पूर्व पृष्ठ ८८ और ८९ में लिखित विधिके अनुसार वेदिका को संस्कृत कर "सभ्याभिधम" नाम की लौकिकाग्निको स्थापनकरे। चरुरहित केवल आज्यसंस्कार को विधिसे आज्यसंकारान्त कृत्य-को पुरा करे। परन्तु आसादन के समय विशेष कृत्य यह होगी कि अग्नि के दक्षिण उत्तराग्र कुशा रखकर उसीपर तीन जगह वन्धी हुई २१ कुशा की पिञ्जली, कांस के कसोरे में गर्म जल, तामे के बेट युक्त क्षुरा, अयना, कलशः पूर्व पूर्व को रक्खे। उसी के दक्षिणभाग में हाथ में क्षुरालिए हुए नाई को भी बैठा लेवे। अग्नि के उत्तरतिल मिश्रित चावल, बैलका गोबर रक्खे। अग्नि के पूर्व तिल, यव ऊदर, को पात्रोंमें भर भर कर पृथक् पृथक् रक्खे। बिना निर्वाप के तिल मिश्रित भात पका कर रक्खे।

आज्यसंस्कारान्ते माताऽहतेन वाससा कुमारमाच्छाद्याग्नेः पश्चादुगग्रेषु दर्भेषु प्रङ्मुख्युपविशति। पश्चान्महाव्याहृतिभिर्व्यस्ताभिस्समस्ताभिश्च चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा गृहीतकुमाराया मातुः पश्चात्पाङ्मुखः पिताऽवतिष्ठते। ततः पिता सूर्यं मनसा ध्यायन् नापितं पश्यन्नायमगात्सवितेति मन्त्रं जपेत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्सविता देवता जपे विनियोगः। आयमगात्सविता क्षुरेण॥ अथोष्णोदककंस पश्यन्वायुं मनसा ध्यायन्नुष्णेन वायवित्ति जपेत्। अस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्वायुर्देवता जपे विनियोगः। उष्णेन वाय उदकेनैधि॥ अथ पिता दक्षिणहस्तेनोष्णोदकमादाय प्राङ्मुखः कुमारशिरसि दक्षिणकेशाना-

द्रीकरोत्याप उन्दन्तु जीवस इति मन्त्रेण । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरापो देवता क्लेदने विनियोगः । आप उन्दन्तु जीवसे ॥ विष्णोर्दꣳष्ट्रोसीति ताम्रमयं क्षुरमादर्शं वा प्रेक्षते । अस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्विष्णुर्दꣳष्ट्रो देवता प्रेक्षणे विनियोगः । विष्णोर्दꣳष्ट्रोऽसि ॥ अथ ससदर्भपिञ्जलीस्समादाय शिरोऽभिमुखाग्रा दक्षिणचूडायां स्थापयत्योषधे त्रायस्वैनमिति । अस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरोषधिर्देवता ससपिञ्जलीस्थापने विनियोगः । ओषधे त्रायस्वैनं ॥ ततो वामहस्तेन दर्भपिञ्जलीर्दक्षिणकेशांश्च गृहीत्वा, दक्षिणहस्तेन क्षुरं दर्पणं वा गृहीत्वा, तत्र क्षुरमादर्शं वा स्थापयति स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीरिति मन्त्रेण । अस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्स्वधितिर्देवता क्षुरस्यादर्शस्य वा स्थापने विनियोगः । स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥ ततः केशानां छेदनमकुर्वन् क्षुरमादर्शं वा प्राश्चं प्रेरयति येन पूषेति सकृत् छिस्तूष्णीम् । अस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः पूषा देवता प्रोहणे विनियोगः । येन पूषा बृहस्पतेर्वायोरिन्द्रस्य चावपत् । तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे ॥ अथ नापितहस्ताद्गृहीतेनायसेन दर्भपिञ्जल्यग्राणि केशांश्च सह छित्वाऽग्नेरुत्तरत आसादिते आनडुहगोमये स्थापयति । अथ दर्भपिञ्जलीर्निरस्याप उपस्पृशति । एवमेव पश्चाद्भागे उत्तरभागे च केशार्द्रीकरणप्रभृति छिन्नकेशदर्भपिञ्जलीस्थापनान्तं कर्म कर्त्तव्यम् ॥

अर्थ—अग्निस्थापन से हवि रहित केवल आज्यसंस्कार तक कृत्य सम्पन्न करे। माता बालक को नया वस्त्र पहना और ओढ़ा कर अग्नि के पश्चिम उत्तराग्र बिछाए हुए कुशासन पर पूर्व मुख बैठे। बालक का पिता अग्नि का पर्युक्षण कर प्रपद और विरूपाक्ष मन्त्रों को पढ़ने के पश्चात् 'ओं भूः स्वाहा, अग्नय इदं न मम'। भुवः स्वाहा, वायव इदं न मम। स्व. स्वाहा, सूर्याय इदं न मम। ओं भूर्भुव स्वः स्वाहा, प्रजापतय इदं न मम। चार आहुतियों को प्रदान करे। बालक को लेकर बैठी हुई माता के पीछे पूर्व मुख खड़ा होवे। मन में सूर्य का ध्यान करे नाई को देखता हुआ "ओं आयमगा त्सविता चुरेण" और गर्म जल को देखता हुआ "ओं उष्णेन वाय उदकेनैधि" मन्त्र का जपक करे। उपरोक्त मन्त्रों के पढ़ने के पश्चात् पिता "ओं आप उन्दन्तु जीव से" मन्त्र को पढ़ता हुआ गर्मजल से बालक के शिर के दाहिने ओर के बालों को भिगोवे। "विष्णोर्द ँ ष्ट्रोऽसि" मन्त्र को पढ़ता हुआ ताम्र बेंट युक्त चुरा या काच को अवलोकन करे। सात कुशाओं से बनी हुई पिंजली को "ओं ओषधे त्रास्वैनम्" मन्त्र को पढ़ता हुआ दाहिने ओर के बालों में बांध देवे। वाम हाथ से पिञ्जली के सहित बालों को पकड़ कर "ओं स्वधिते मैन ँ हि ँ सीः" मन्त्र को पढ़ता हुआ दाहिने हाथ से बाल पर चुरा अथवा सीसा लगावे। "येन पूषा०" मन्त्र को पढ़ता हुआ बालों को काट लेवे। एक बार मन्त्र से और दो बार विना मन्त्र काटे। पिञ्जली के सहित कटे बालों को अग्नि के उत्तर रक्खे हुए गोबर में गाड़ देवे। कुश पिञ्जली को अलग कर जल स्पर्श कर लेवे। इसी रीत्यानुसार पीछे तथा वाम भागों के बालों को भिगोना, पिञ्जली बांधना, चुरे को लगाना, काटना और बैल के गोबर में गाड़ना चाहिये।

अथ पिता हस्तद्वयेन कुमारस्य मूर्द्धानं परिगृह्य

त्र्यायुषं जमदग्नेरितिमन्त्रं जपेत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः प्रजापतिर्देवता जपे विनियोगः। त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषमगस्त्यस्य त्र्यायुषं यद्देवानां त्र्यायुषं तत्ते अस्तु त्र्यायुषम्॥ अथाग्नेरुत्तरतो बहिर्गत्वा कुमारस्य वपनं गोत्रकुलानुगुण्येन शिखास्थापनञ्च कारयेत्। कौथुमराणायनयोस्समावर्त्तनात्पूर्वं सशिखमेव वपनं कार्य्यम्। तथा वक्ष्यमाणसमावर्त्तनप्रयोगे सूत्रकृदुक्त्या ज्ञापयिष्यमाणत्वात्।

अर्थ—पिता अपने दोनों हाथों से बालक के शिर को पकड़ कर "त्र्यायुषम्०" मन्त्र का पाठ करे। अग्नि के उत्तर कुछ दूर पर ले जाकर भली भांति सब शिर को मुँड़वा देवे। जिसका जैसा कुलाचार हो शिखा राखे। कौथुम और रणायन शाखीयद्विजों को तो समावर्त्तन संस्कार से पहले शिखा के सहित वपन कराना चाहिये। क्योंकि गोभिलाचार्य ने समावर्त्तन काल में लिखा है कि "शिखा को छोड़ कर शेष सब शिर दाढ़ी और मूंछ के बालों को मुँड़वा देवे।"

ततः पिता व्याहृतिचतुष्टयं हुत्वा तन्त्रशेषं समापयेत्। गौर्दक्षिणा। गोमये सर्वान् केशान् संस्थाप्यारण्यं गत्वा निखनन्ति। व्रीहियवादिक्षेत्रे वा क्षिपेयुर्भृत्याः। स्त्रीणामप्यमन्त्रकं सावित्रजपप्रभृति गोमयनिधानान्तं कर्म्म, होमो, नान्दीमुखश्राद्धञ्च मन्त्रेण। एवं जातकर्मादौ प्रधानकर्मामन्त्रकमन्यत्सर्वं समन्त्रकम्। ब्राह्मणभोज-

नादिकं यथाशक्ति कार्य्यं । कृसरं व्रीह्यादिपात्राणि नापिताय दद्यात् ॥ इति चूडाकरणप्रयोगः ॥

बालों के मुंड़ाने के पश्चात् पिता पुनः व्याहृतियों से घृत की ४ आहुतियों को प्रदान करे। वरआहुति पर्यन्त कृत्यों को सम्पन्न कर ब्रह्मा को गौ दक्षिणा प्रदान करे।
किसी पात्र में गोबर और सब बालों को रख कर वन में ले जाकर भूमि में गाड़ देवे। अथवा कोई सेवक खेत में फेंक देवे।

बालिका का चूड़ा करण संस्कार भी इसी विधि से होगा। उसमें विशेषता इतनी ही होगी कि "आयमगात्" मन्त्र से लेकर "आयुषं०" तक मन्त्रों का पाठ न होगा, किन्तु क्रिया मात्र होगी। नान्दी श्राद्ध, होम आदि कृत्य उसी प्रकार समन्त्रक होंगे, जिस प्रकार बालक के चूडाकरण निमित्त किया जाता है।

इसी रीत्यानुसार जातकर्म आदि सब संस्कारोंमें बालिका के प्रधान कर्म बिना मन्त्र और सधारण कर्म समन्त्रक होते हैं। यथा शक्ति ब्राह्मण भोजन करावे। तिल मिश्रित भात और धान आदि अन्नो को नाई को दे देवे। यही चूड़ाकरण संस्कार का प्रयोग है।

यदि कुमारस्य स्वस्वकाले जातकर्मादीन्यननुष्ठितानि तर्ह्युपनयनात्पूर्वं चूडाकर्मणा सह प्रायश्चित्तपूर्वकमनुष्ठेयानि । यथा जातकर्मादिचूडाकर्मान्तं कर्मगणप्रारम्भाङ्गं नान्दीश्राद्धं सकृदेव कृत्वा देशकालौ सङ्कीर्त्यास्य कुमारस्य गर्भाम्बुपानसञ्जातसकलदोषबीजगर्भसमुद्भवपापनिबर्हणाय जातकर्मान्नप्राशनचन्द्रदर्शननामकरणजन्मतिथियागचूडाकरणकर्मभिरिमं कुमारं संस्करि-

उक्त समय पर जातकरण आदि संस्कार न किए गए हों और उपनयन संस्कार का समय उपस्थित हो जावे तो जात करण से चूड़ाकरण तक संस्कारों के निमित्त प्रायश्चित्त करना चाहिए । उनका प्रयोग यों होगा कि प्रथम जातकरण से चूड़ाकरण तक के उपलक्षमें केवल एकही वार पुण्याहवाचन, नान्दी श्राद्ध आदि कृत्यों को सम्पन्न करे। देश काल, तिथि, वार इत्यादि स्मर्ण के पश्चात् "अस्य कुमारस्य गर्भाम्बुपान सञ्जातसकल दोष बीजगर्भ समुद्भव पाप निवर्हणाय जात करणाग्निप्राशनचन्द्रदर्शननामकरणजन्मतिथि यागचूड़ाकरणकर्मभिरिमङ्कुमारं संस्करिष्यामि" संकल्प करे। विधिवत् अग्निका स्थापन करे। आज्य संस्कार कर व्याहृतियों से तीन आहुतियाँ प्रदान करे। "जातकर्मणो मुख्यकालातिपत्ति प्रायश्चित्तार्थसर्वप्रायश्चित्तं होष्यामि" सकल्प कर तीन व्याहृतियों से तीन तथा तीनों को एक साथ पढ़ता हुआ एक एवं चार आहुतियों को प्रदान करे। तत्पश्चात् उपरोक्त संस्कारों में जिन जिन देवताओं के नाम आहुति प्रदान करना लिखा हो उन्हे प्रदान करे। परन्तु यहां विशेषता यह होगी कि जो आहुति संस्कारके पृथक् पृथक् करने पर कयी वार दी जाती परन्तु देवता और मन्त्र एक हैं उन्हे सब संस्कारों के निमित्त एक ही बार दी जाएगी। इसीरीत्यानुसार जिस संस्कार का समय व्यतीत होगया हो उसको प्रायश्चित्त पूर्वक सम्पन्न कर उपस्थित संस्कार के कृत्यों को सम्पन्न करे।

यदि जातकरण न किया गया हो और चन्द्रदर्शन संस्कार का समय उपस्थितहो जावे तो पूर्वोक्त रीत्यानुसार प्रायश्चित्त संज्ञक आहुतियों को प्रदान कर जातकरण के विधिको सम्पन्न कर ले तत्श्चात् चन्द्र दर्शन संस्कार के कृत्यों का प्रारम्भ करे। उसी समय चन्द्रोपस्थान कर ३६ अञ्जलि जल प्रदान करे इत्यादि।

यदि नाम करण अथवा जन्म तिथि याग न किया हो और चूड़ाकरण संस्कार का समय उपस्थित हो जावे तो पूर्वोक्त विधिके अनुसार व्याहृतियोंसे प्रायश्चित्तात्मक आहुतियों को प्रदान करने के पश्चात् जन्मतिथि और तिथि देवता के नाम आहुति प्रदान करे। यदि चूड़ाकरण संस्कार न किया गया हो और उपनयन का समय उपस्थित हो जावे तो एक ही दिन एकही वार व्याहृतियोंसे प्रायश्चित्तात्मक सात आहुतियों को प्रदानकर एक ही साथ चूड़ाकरण और उपनयन की अङ्ग सब आहुतियों को प्रदान करे।

अथोपनयनप्रयोगः ॥ गर्भप्रभृत्यष्टमे वर्षे ब्राह्मणस्योपनयनम्, गर्भैकादशे क्षत्रियस्य, गर्भद्वादशे वैश्यस्य। आपद्याषोडशाद्ब्राह्मणस्य, आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य। "अत्राङ्मर्य्यादायामिति" केचित्, "अभिविधावित्यन्ये"। उक्तकालातिक्रमणे पतितसावित्रीका भवन्ति। नैनानुपनयेयुः। न याजयेयुः। नाध्यापयेयुः। नैभिर्विवहेयुः। "स्मृत्याद्युक्तप्रायश्चित्ताननुष्ठाने उक्तनिषेध" इति व्याचख्युः।

अर्थ—अब उपनयन अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार का प्रयोग लिखा जाता है। यह उपनयन सस्कार गर्भ अथवा जन्म से ब्राह्मण का आठवें, क्षत्रिय का ग्यारहवें एव वैश्यका बारहवें वर्ष में करना चाहिए। ये उपनयन के मुख्य समय हैं। यदि किसी प्रकार की कठिनाई आ पड़े तो, ब्राह्मण का १६ वर्ष क्षत्रिय का २२ वर्ष और वैश्य का २४ वर्ष तक उपनयन हो सकता है और इन्हे गौड कालकहते हैं।

कुछ आचार्य्योंका मत है कि "आ" निपात का प्रयोग इस कारण से किया गया है कि १६—२२ तथा २४ के पश्चात

उपनयन संस्कार नहीं हो सकता । उक्त समय व्यतीत होजाने के पश्चात् सावित्री ग्रहण के अयोग्य पतित हो जाते हैं । उपनयन के योग्य नहीं रह जाते । उनका यज्ञ भी न करावें और न उन्हें पढ़ावें न उनसे विवाह सम्बन्ध करना चाहिए । स्मृत्यादि ग्रन्थों में उक्त व्रात्यस्तोम आदि प्रायश्चित्त करने पर उपनयन के योग्य हो सकते हैं ।

उदगयने, शुक्लपक्षे, पुण्यनक्षत्रे पर्वाहे, उपनयनं करिष्यन् तदह्नः वृद्धिश्राद्धं तद्दिने पर्वदिने वा कुर्यात् । वृद्धिश्राद्धात्पूर्वं उपनेतृत्वाधिकारसिद्ध्यै कृच्छ्रत्रयं चरित्वा द्वादशसहस्रगायत्रीं जपेत् । कुमारेणापि कामचारकामवादकामभक्षणादि दोषापनोदार्थं कृच्छ्रत्रयं मुख्यविधिना तत्प्रत्याम्नायगोदानादिविधिना वा कारयेत् । तथा ममोपनेतृत्वाधिकारसिद्ध्यै कृच्छ्रत्रयं द्वादशसहस्रगायत्रीजपञ्च करिष्ये । स्वयं जपकरणाशक्तौ ब्राह्मणद्वारा वा कारयेत् । कुमारेणापि कामचारकामवादकामभक्षणादिदोषापनोदार्थं कृच्छ्रत्रयं प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयादिद्वारा करिष्ये इति सङ्कल्प्य गोनिष्क्रयद्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो दातुमहमुत्सृजे इति दद्यात् ।

अर्थ—इस उपनयन संस्कार को सूर्य के उत्तरायण होने पर शुक्ल पक्ष में पुण्यदायक तिथि, वार और नक्षत्र में करना चाहिए । उपनयन के अङ्ग पुण्याह वाचन नान्दी श्राद्ध आदि कृत्यों को उपनयन दिन से एक दिन पहले अथवा उसी दिन सम्पन्न करे । पुण्याह वाचन आदि कृत्यों से पहले आचार्य को उपनयन संस्कार की योग्यता के लिए तीन कृच्छ्र व्रत करना चाहिये । अथवा १२ हजार गायत्री का जप करे ।

बालक से अथवा किसी ब्राह्मण द्वारा "ममोपनेतृत्व०" संकल्प कराकर स्वेच्छाचार स्वेच्छानुसार भोजनादि दोषों के निवृत्यर्थक तीन कृच्छ्र व्रत अथवा तीन गोदान करावें * ।

यस्मिन्नहनि माणवकमुपनेष्यन् तस्मिन्नहनि तं भोजयति, वापयति, स्नापयत्यलङ्करोति । अत्रापि सशिखं वपनं। "तदुक्तं 'कर्मप्रदीपे' । सशिखं वपनं कार्य्यमास्नानाद्ब्रह्मचारिण" इति। केचित् "प्रथमं वपनं, ततः स्नानं, ततो भोजनमिति"। ततः पत्न्या, सुस्नातेन माणवकेन, च सह पवित्रपाणिः पिता ब्राह्मणानुज्ञापूर्वकं प्राङ्मुख उपविश्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य "द्विजत्वसिद्धये इमं माणवकमुपनेष्यामि" इति सङ्कल्प्य, गृहस्य पुरस्तात्स्थण्डिले विधिवत्समुद्भवनामानं लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य ।

अर्थ—जिस दिन बालक का उपनयन संस्कार करना हो उस दिन प्रथम भोजन कराकर शिखा के सहित उसका शिर मुण्डन करा देवे। स्नान कराकर भूषण वस्त्रों से विभूषित करे। कुछ लोगों का मत है कि मुण्डन पहले करना चाहिए। परन्तु गोभिलगृह्यसूत्र में भोजन के पश्चात् मुण्डन कार्य लिखा है। कर्मप्रदीप में लिखा है कि

* उचित समय पर उपनयन कर्त्ता और बालक को उपनयनीय योग्यता प्राप्त के लिए प्रायश्चित्तात्मक कृच्छ्रव्रत, गोदान अथवा गायत्री जप बहु संख्यक स्मृतिकारों के मतानुसार कर्त्तव्य नहीं है। प्रत्युत "भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यवाच्ये ऋतानृते। अस्मिन् बाले न दोषः स्यात् स जावन्नोपनीयते" दक्षस्मृति के वचन से प्रतिकूल है।

"ब्रह्मचारी समावर्त्तन पर्यन्त सहित शिखा के मुण्डन कराया करे"।

अब उपनयन की पद्धति लिखी जाती है। इस में जिन जिन मन्त्रों की आवश्यकता होगी उनका विनियोग मूल में सब जगह अङ्कित है। अतः टीका में उनका वार वार लिखना अनावश्यक है। जो मन्त्र मूल में पूरे लिखे हुए हैं उनका टीका में आदेश मात्र करदिया जाता है परन्तु जो पूरे नहीं हैं उन्हें पूरा पूरा लिखेंगे।

अच्छी तरह से स्नान कराकर विभूषित वालक के साथ उसकी माता और पिता ब्राह्मण की आज्ञा लेकर पूर्व मुख बैठें। कुशपवित्र धारण किए हुए आचमन और प्राणायाम करें। देश, काल, तिथि, वार आदि स्मरण के पश्चात् "द्विजत्वसिद्धये इम माणवकमुपनेष्यामि" वाक्य योजना के साथ सकल्प करें। पिता अग्निहोत्र शाला के पूर्व भाग में पृष्ठ ८६ में लिखी हुई विधि के अनुसार वेदिका को तीन कुशाओं से पूर्व या उत्तर को झार देवे। क्रमशः पश्चिम से पूर्व को गोवर और जल से लीप देवे। स्फ्य पुष्प, फल अथवा कुशा से अग्नि कुण्ड के दक्षिण डेढ़ अंगुल और पश्चिम वारह अंगुल छोड़ कर पूर्व को बारह अगुल की लम्बी पार्थिवी पीतवर्ण का ध्यान करते हुये रेखा करे। इसी रेखा के पश्चिम सिरा से लगी हुई आग्नेय लाल वर्ण की होने का ध्यान करता हुआ उत्तर को लम्बी २१ अंगुल की रेखा करे। प्रथम रेखा से उत्तर क्रमशः सात सात अंगुल छोड़ कर १२ अंगुल पूर्व को लम्बी दूसरी रेखा से मिली हुई प्रजापति, ऐन्द्री सौम्या एव काला, हरा तथा सफेद वर्ण का ध्यान करता हुआ। तीन रेखायें कर देवे। रेखा करने से अग्नि स्थापन तक वाम हाथ को भूमि पर रक्खे। रेखाओं की उभड़ी मिट्टी को उठा कर अग्निकुण्ड के इशान्य कोन में फेक देवे। दाहिने हाथ से जल लेकर कुण्ड पर छिड़िक देवे। संस्कृत वेदिका पर समुद्भव नाम की लौकिकाग्निको स्थापन करे।

माणवकं स्वदक्षिणभागे उपवेश्य, कटिसूत्रं बध्वा, वस्त्रं परिधाप्याचमनं कारयित्वा, यज्ञोपवीतं मन्त्रेण धारयेत्। धारणसंकल्पस्तु श्रौतस्मार्त्तसकलनित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठानयोग्यतासिद्धये ब्रह्मतेजोऽभिवृद्ध्यर्थं यज्ञोपवीतधारणं करिष्ये। यज्ञोपवीतमितिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्यज्ञोपवीतं देवता यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः। यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वोपवीतेनोपनह्यामि। अयञ्च मन्त्रः शाखान्तरे पठितो भट्टनारायणोपाध्यायैः परिगृहीतः। अग्नेरुत्तरतो यज्ञोपवीतिना माणवकेन द्विराचमनं कारयित्वा स्वदक्षिणभागे प्राङ्मुखमुपवेशयेत्।

अर्थ—पिता अथवा किसी कारण वस वह न करा सके तो उसका प्रतिनिधि स्वरूप आचार्य[1] बालक को अपने दक्षिण पार्श्व में बैठा लेवे। प्रथम कटि सूत्र (करधनी) तत्पश्चात् "येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधावमृतं। तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्च्चसे" मन्त्र से वस्त्र पहनने को देवे। बालक वस्त्र को पहन कर आचमन करे। "श्रौतस्मार्त्त०" वाक्य योजना के साथ सङ्कल्प कर "यज्ञोपवीत०" मन्त्र से यज्ञोपवीत पहनावे। बालक अग्नि के उत्तर यज्ञोपवीत धारण कर दो आचमन कर लेवे। आचार्य के दक्षिण भाग में जाकर पूर्व मुख बैठे।

भाष्यकार नारायणभट्टोपाध्याय ने "यज्ञोपवीतम्०" मन्त्र को

१—पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः उपायनेऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावे-परःपरः॥ पितैवोपनयेत्पुत्रं तदभावेपितु. पिता तदभावेपितुर्भ्राता तदभावेतु सोदरः॥ व्रतबन्धं कुमारस्य विना पितुरनुज्ञया जो कृत्वा द्विजोमोहान्नारकं तूपद्यते।

आचारानुसार संकलित किया है (कोष्ठक में दिये गये वचनों में न होने के कारण अनावश्यक हैं, परन्तु इस परिशिष्ट का मत भी आचारानुसार से संकलन करना आवश्यक प्रतीत होता है।)

ब्राह्मणादेर्वस्त्रादिकमाह 'गोभिलः'। "ब्राह्मणस्य क्षौमं, क्षत्रियस्य कार्पासं, वैश्यस्योर्णावस्त्रं, शाणं वा"। ब्राह्मणस्येति विकल्पः। "कृष्णमृगाजिनं ब्राह्मणस्य, क्षत्रियस्य रुरुमृगाजिनम्, वैश्यस्याजाजिनम्"। "ब्राह्मणस्य मौञ्जीमेखला, क्षत्रियस्य काशमयी, वैश्यस्य शाणी"। "पालाशो ब्राह्मणस्य दण्डः, क्षत्रियस्य बैल्वो, वैश्यस्याश्वत्थो दण्डः"। तल्लक्षणं तु "कर्मप्रदीपे"। 'केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः। ललाटसम्मितो राज्ञस्स्यात्तु नासान्तिको विशः ॥ १ ॥ ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणास्सौम्यदर्शनाः। अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचो नाग्निदूषिताः' ॥ २ ॥ तत्तद्वर्णस्योक्तवस्त्राजिनमेखलादण्डालाभे सर्वेषां वर्णानां सर्वे वस्त्राजिनमेखलादण्डा यथासम्भवं ग्राह्याः।

अर्थ—गोभिलाचार्यने ब्राह्मणादि वर्ण के लिए वस्त्रों का पृथक् पृथक् विधान किया है। ब्राह्मण के लिए रेशम अथवा सण का, क्षत्रिय के लिए कपास का और वैश्य के लिए भेड़ि के ऊन का होना चाहिए*। अजिन भी कालेमृग का ब्राह्मण के लिए, लालमृग का क्षत्रिय के लिए और बकरे का वैश्य के लिए होना चाहिए। ऐसी

* क्षौमं शाणं वसनं ब्राह्मणस्य। गो० गृ० सू० अ० २ सू० १२।

ही व्यवस्था मेखला और दण्ड के लिए भी है। ब्राह्मण की मेखला मूँज की क्षत्रिय के लिए काश की और वैश्य के लिए शण की होनी चाहिए। ब्राह्मण पलाश का, क्षत्रिय वेल का तथा वैश्य पिपल वृक्ष का दण्ड वनावे। कर्मप्रदीप में लिखा है कि 'ब्राह्मण का दण्ड वालों की उचाई तक, क्षत्रिय का ललाट तक और वैश्य का नासिका तक ऊँचा होना चाहिए। ये दण्ड कोमल हों, वीच में कटे कुटे न हों, देखने में सुन्दर हों, उनके देखने से किसी को भय न हो। वुकले के सहित एवं अग्नि में जले न हों। यद्यपि वर्णानुसार वस्त्र, अजिन, मेखला और दण्ड का पृथक् २ विधान हैं तथापि सब प्रकार के वस्त्र, अजिन, मेखला और दण्डों को सब द्विज धारण कर सकते हैं, यदि उनके निजके अभाव हो।

तत आज्यतन्त्रेणाज्यसंस्कारान्तं कुर्य्यात्। पात्रासादने विशेषः। प्रकृतिवत्पात्राण्यासाद्य तत्तद्वर्णविहितवस्त्राजिनमेखलादण्डभिक्षापात्राणि प्राक्संस्थान्यग्नेरुत्तरत आसादयेत्। ततस्समिधमाधायोदकाञ्जलित्रयं दत्वा पर्युक्ष्य व्यस्ताभिस्समस्ताभिर्व्याहृतिभिश्चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा माणवकेनान्वारब्धोऽग्नेव्रतपत इत्यादिभिर्माणवकानुपठितैर्व्रतनामव्रतपरिमाणोहयुक्तैः पञ्चभिः पञ्चाज्याहुतीर्जुहोति।

अर्थ—आचार्य अग्निके पश्चिम अङ्गुलियों के बल दोनों हाथों को भूमिपर रखकर "ओं इदम्भूमेर्भजामह इदम्भद्र ँ सुमङ्गलम्। परासपत्नान् बाधस्वान्येषांविन्दते वसु" मन्त्र का जप करे। "ओम् इम ँस्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सम्महेमा मनीषया। भद्राहि न

प्रमतिरस्य स ँ सद्यग्ने सख्ये मारिषामा वयं तव ॥ भरामेध्मं कृणवामा हवी ँ षि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम्। जीवातवे प्रतरा ँ साधया धियोऽग्नेसख्ये मारिषामा वयं तव ॥ शकेम त्वा समिध ँ साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् । त्वमादित्या ँ आ वह तान् ह्युशमस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव" मन्त्रों को पढ़ता हुआ अग्नि को भस्म रहित कर प्रज्वलित करने का यत्न करे। अग्नि के उत्तर उत्तराग्र कुशाओं को रखकर पूर्व मुख ब्रह्मा और पूर्वाग्र कुशाओं को रखकर उत्तर मुख यजमान बैठे। दोनों तीन तीन आचमन करे। दाहिने हाथ में कुशा लेकर यजमान ब्रह्मा से "एतत् उपनयन होम कर्मणि ब्रह्माणं त्वां अहं वृणे" कहकर कुशा ब्रह्मा के दाहिने हाथ में दे देवे। यजमान के प्रत्युत्तर में ब्रह्मा "वृतोऽस्मि-कर्म करिष्यामि" कहे। तत्पश्चात् यजमान अग्नि के पूर्व से जाकर कुण्ड से दक्षिण क्रमशः दक्षिण को जल की धारा देवे। अग्नि के दक्षिण ब्रह्मा के आसन पर पूर्वाग्र तीन कुशपत्रों को रखे। ब्रह्मा शिखा को बांधे हुए यज्ञोपवीती आचमन कर अग्नि के पूर्व से दक्षिण जाकर आसन के पूर्व पश्चिम मुख खड़ा होवे। "निरस्तः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्दः परावसुः देवता तृण निरसने विनियोगः" "ऋष्यादि का स्मरण कर" ओ३म् निरस्तः परावसुः" मन्त्र को पढ़ता हुआ वाम हाथ के अंगूठे और अनामिका से आसन पर पूर्वाग्र रक्खे हुए कुशपत्रों से एक कुशा उठाकर पश्चिम और दक्षिण के कोन में फेंक कर जल स्पर्श कर लेवे। "आवसो इति मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजु छन्दः परावसुर्देवता उपवेशने विनियोग। "ओम् आ वसोः सदने सीदामि" मन्त्र को पढ़ता हुआ उत्तर मुख आसन पर बैठ जावे। हाथ जोड़े हुए यज्ञ समाप्तपर्यन्त सब कार्यों का निरीक्षण करता रहे।

यदि ब्रह्मा के कार्य-सम्पादन-कर्त्ता का अभाव हो तो यजमान

ही विनियोग स्मरण के सहित ब्रह्मासन के कुशपत्र को नैऋत्य में फेक देवे। "आवसोः सदने सीदामि" मन्त्र से ब्रह्मासन पर छाता, जल पूर्ण कमण्डलु, डुपट्टा, अथवा बीच में गाँठि देकर कुशा इन में से किसी एक को रख देवे। "कितने कुशा को रक्खे!" यह यजमान का इच्छा पर निर्भर है। यजमान इस प्रकार ब्रह्मासन पर उसके प्रतिनिधि को स्थापन कर शेष सब कार्य्यों का सम्पादन करे।

ब्रह्मा के आसन पर बैठ जाने के पश्चात् यजमान अग्नि के उत्तर भाग में पूर्वाग्र कुशा बिछाकर उसपर जल से भरी प्रणीता रक्खे। पुन. कुशा बिछाकर उनपर क्रमशः पूर्व-पूर्व को यज्ञ सामग्रियों को रक्खे—यथा कलशा या लोटा में शुद्ध जल, चार मुष्टी कुशा, परिधि, २० इध्मा, समिधाएँ जौ का डंठल या धानका पुआल घी, आज्यस्थाली स्रुची, स्रुवा, गर्मजल, सम्मार्जन के लिए कुशायें ब्रह्मचारी को पहनने का वस्त्र, यज्ञोपवीत, मेखला, दण्ड, इत्यादि और पुर्ण पात्र इन्हें कमंशः पूर्व-पूर्व को रक्खे। आसादित सामग्रियों को भली भांति निरीक्षण कर स्रुचि आदि पात्रों को सीधा रखकर जल में कुशा डुबोकर सब का प्रोक्षण कर देवे।

अग्नि को इन्धन से प्रज्वलित कर दे। आसादित (पहले से रखे हुए) चारों मुट्ठी कुशाओं को लेकर अग्नि के पूर्व, दक्षिण उत्तर और पश्चिम बिछा देवे। सब कुशाओं के अग्रभाग पूर्व रक्खे। एवं तीन परत अथवा पाँच परत बिछाना चाहिए और इन्हे इस रीति से बिछाना चाहिए कि पहले की बिछाई कुशाओं के मूल भाग को पीछे की बिछाई हुई कुशा के अग्रभाग ढकते जावें। अथवा सबसे पहले पश्चिम बिछावे, तत्पश्चात् दक्षिण और उत्तर बिछाकर उनका अग्रभाग पूर्व को ओर इस रीति से मिला देवे कि त्रिकोण सा बन जावे। सब प्रकार के हवन में परिस्तरण की यही विधि है, परन्तु यह परिस्तरण-कार्य्य क्षिप्र होम

में नहीं किया जाता है। परिस्तरण के पश्चात् अग्नि के, पूर्व; दक्षिण, उत्तर और पश्चिम इस प्रकार चार अथवा दक्षिण उत्तर और पश्चिम इस प्रकार तीन परिधि रक्खे। उन परिधियों का अग्रभाग पूर्व और उत्तर को होने चाहिए।

विसो इध्माओं को बिना मंत्र एक ही साथ अग्नि में छोड़ देवे। पहिले से आसादित, (रखे हुए) कुशा में से ऐसे दो पत्रों को लेवे जिनका अग्रभाग टूटा न हो और मध्य के पत्तों से भिन्न अगल बगल के हों। उस कुशपत्रों से एक बित्ते का पवित्र बनाया जायगा। प्रथम धान के पुआल अथवा जौ की डंटी में कुश पत्रों को लपेट कर "पवित्रेस्थः अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः यजुः छन्दः पवित्रे देवते पवित्र छेदने विनियोग." ऋषि देवता छन्द और विनियोग का स्मरण करले "पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ" मन्त्र को पढ़ता हुआ पुआल या जौ की डंटी के सहारे से कुशपत्रों के अग्र भाग का एक बिलस्त तोड़ लेवें। नखों से न तोड़े। पवित्र छेदन और कुशपत्रों के मूल को इशान कोण में फेक देवे। जल को स्पर्श कर लेवे। वाम हाथ से पवित्रों के मूल को पकड़े हुए "विष्णोः अस्य मन्त्रस्य प्रजापति ऋषिः पिवत्रे देवते यजुः छन्दः अनुमार्जने विनियोगः" पढ़कर 'विष्णोर्म्मनसा पूतेस्थः" मन्त्र को पढ़ता हुआ उन पवित्रों को दाहिने हाथ से जल लेकर धो देवे। पवित्र को उत्तराग्र आज्यस्थाली पर रख देवे। उसी आज्यस्थाली में घृत छोड़ देवे। दोनों हाथों के अनामिका और अंगुठे से पवित्र के दोनों ओर पकड़कर" देवस्त्वा अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः यजुः छन्द आज्यं देवता उत्पवने विनियोगः, ऋष्यादि स्मरण कर "ओं देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्य्यस्य रश्मिभिः" एक वार मन्त्र से और दो वार बिना मन्त्र घृत का उत्पवन संस्कार करे।

पवित्र कुशा से घृत का उत्पवन संस्कार कर लेने के

पश्चात् उसकी ग्रन्थि खोल देवे। जल से धोकर उसे अग्नि पर रख देवे।

उत्पवन संस्कार किये हुए घृत को पकने के लिये अग्नि पर रख देवे। जब भली भाँति पक जावे तो अग्नि से उतार कर पहले उत्तर तद्पश्चात् आहुति प्रदान के लिए अग्नि के पश्चिम परिस्तरण कुशा पर रख देवे।

स्रुवा, स्रुची आदि को गर्म जल से धो देवे। पूर्व को अग्रभाग करके सम्मार्गकुशा के मूल से पात्रों के मूल, मध्य से मध्य और अग्रभाग से अग्रभाग को झाड कर उनपर जल छिड़क देवे। फिर से अग्नि पर तपाकर आज्य के उत्तर भाग में रख देवे। सब पात्रों को एक साथ तपा लेवे परन्तु उनका समार्जन (कुशा से झारने का कार्य्य) अलग २ करे।

हाथ में जल लेकर "अदिते अनुमन्यस्व" से अग्नि के दक्षिण नैर्ऋत्य कोण से आग्नेय तक जल की धारा देवे। पुन 'अनुमते अनुमन्यस्व" मन्त्र से अग्नि के पश्चिम नैर्ऋत्य कोण से वायव्य तक दूसरी जलधारा प्रदान करे। सरस्वत्यनुमन्यस्व" मन्त्र से अग्नि के उत्तर वायव्य कोण से इशान तक जलधारा देकर "देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय। दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतुः" मन्त्र से इशान से आग्नेय तक जलधारा देते हुए अग्नि के चारो तरफ प्रदक्षिण क्रम से एक अथवा तीन जलधाराओं से अग्नि का पर्य्युक्षण करे।

हाथ जोड़कर 'ओम् तपश्च तेजश्च श्रद्धा च ह्रीश्च सत्यञ्चाक्रोधश्च त्यागश्च धृतिश्च धर्मश्च सत्वञ्च वाक् च मनश्चात्मा च ब्रह्म च तानि प्रपद्येतानि मामवन्तु भूर्भुवः स्वरोम्महान्तमात्मानं प्रपद्ये"। विरुपाक्षोऽसि दन्ताञ्जिस्तस्य ते शय्यापर्णे गृहा अन्तरिक्षे विमित हिरण्यं तद्देवानां हृ-

यान्ययम्मये कुम्भे अन्तः सन्निहितानि तानि वलभृच्च वल-साच्च रक्षतो प्रमनी अनिमिषतः सत्यं यत्ते द्वादश पुत्रास्ते त्वा सम्वत्सरे सम्वत्सरे कामप्रण यज्ञेन याजयित्वा पुनर्ब्रह्मचर्य्यमुपयन्ति त्वं देवेषु ब्राह्मणोऽस्यहं मनुष्येषु ब्राह्मणो वै ब्राह्मणमुपधावत्युपत्वा धावामि जपन्तं मा माप्रतिज्ञापीर्जुह्वन्‌ मा माप्रतिहौर्षीः कुर्वन्तं मा माप्रति कार्षीस्त्वां प्रपद्ये त्वया प्रसूत इदं कर्म्म करिष्यामि तन्मे राध्यतां तन्मे समृध्यतां तन्म उपपद्यता७ँ समुद्रो मा विश्वव्यचा ब्रह्मानुजानातु तुथो मा विश्ववेदा ब्रह्मणः पुत्रोऽनुजानातु श्वात्रो मा प्रचेता मैत्रा वरुणोऽनुजानातु तस्मै विरूपाक्षाय दत्ताञ्जये समुद्राय विश्वव्यचसे तुथाय विश्ववेदसे श्वात्राय प्रचेतसे सहस्त्राक्षाय ब्रह्मणः पुत्राय नमः" उपरोक्त मन्त्रों को मध्यम स्वर से पढ़े । एक समिधा को अग्नि में छोड़ देवे । स्रुवा से घृत ले लेकर "ओं भूः स्वाहा, अग्नय इदं न मम । ओं भुवः स्वाहा, वायव इद न मम । ओं स्वः स्वाहा, सूर्याय इदं न मम । ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा, प्रजापतय इदं न मम । इन चार आहुतियों को प्रदान करे । बालक से अन्वारब्ध और उसी से निम्नांकित मन्त्रों को पढ़वाते हुए पांच घृत आहुतियाँ प्रदान करे ।

अग्ने व्रतपत इत्यादिमन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिर्निगद अग्निवायुसूर्य्यचन्द्रेन्द्रदेवता उपनयनाज्यहोमे विनि-योगः । अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छ-केयं तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ १ ॥ अग्नये व्रतपतय इदं न मम । सावित्रमष्टवर्षसष्टमा-समष्टदिनं वा एवमग्रिमेषु मन्त्रेषु व्रतनाम व्रतपरि-माणपदमूह्यम् ।

अर्थ—"सावित्रमष्ट वर्षमष्टमासमष्ट दिनं एकदिनम् वा" ।

इस उदाहरण के अनुसार प्रत्येक मन्त्रों में जितने दिव जिन व्रतों को करना चाहता हो उनकी संख्या 'व्रतं' और "चरिष्यामि" शब्द के मध्य में जोड़ता जावे।

वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि-तच्छकेयं तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ २ ॥ वायवे व्रतपतय इदं न मम। सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयं तेनर्ध्यासमिद-महमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ ३ ॥ सूर्य्याय व्रतपतय इदं न मम। चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयं तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ ४ ॥ चन्द्राय व्रतपतय इदं न मम। व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयं तेनर्ध्यासमिद-महमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ ५ ॥ इन्द्राय व्रतपतय इदं न मम।

इस प्रकार पांच मन्त्र घृताहुति प्रदान करे।

एवं हुत्वाऽग्नेः पश्चादुदग्रेषु दर्भेष्वाचार्यः प्राङ्मु-खोऽवतिष्ठते। ततोऽग्न्याचार्य्ययोर्मध्ये प्रसारिताञ्ज-लिर्म्माणवक आचार्य्याभिमुख उदगग्रेषु दर्भेष्ववतिष्ठते, माणवकस्य दक्षिणदिश्युदङ्मुखोऽवस्थितोऽधीतवेदो ब्रा-ह्मणो माणवकस्याञ्जलिमाचार्य्याञ्जलिं चोदकेनापूरयति। आचार्य्याञ्जलेरुपरि माणवकाञ्जलिर्भवति। ततो माणवकं पश्यन्नाचार्य्य आगन्त्रेतिमन्त्रद्वयं जपति। आगन्त्रेति-

मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता, अग्निष्ट इति प्रजापतिः पंक्तिरग्न्यादयो देवता, माणवकप्रेक्षणे विनियोगः । आगन्त्रा समगन्महि प्रसुमर्त्यं युयोत न । अरिष्टास्सञ्चरेमहि स्वस्ति चरतादयम् ॥ १ ॥ अग्निष्टे हस्तमग्रहीत्सविता हस्तमग्रहीदर्य्यमा हस्तमग्रहीन्मित्रस्त्वमसि कर्मणाऽग्निराचार्य्यस्तव ॥ २ ॥

अर्थ—उपरोक्त मन्त्रों से आहुतियों को प्रदान कर अग्निके पश्चिम उत्तराग्र बिछाई हुई कुशाओं पर पूर्व मुख आचार्य, एवं उसके समुख अग्नि और आचार्य के मध्य में अञ्जलि को फैलाए हुए बालक दोनों बैठें । आचार्य बालक की अञ्जलि के नीचे अपनी अञ्जलि कर लेवे उन दोनों के दक्षिण उत्तर मुख होकर कोई वेदाध्ययन किया हुआ ब्राह्मण प्रथम माणवक की तत्पश्चात् आचार्य की अञ्जलि में जल भर देवे । अञ्जलि भर जाने पर आचार्य बालक के मुखको देखता हुआ "आगन्त्रा समगन्महि०" और "अग्निष्टे०" दोनों मन्त्रों को पढ़े ।

ततो ब्रह्मचर्य्यमागामिति वाचयति । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुराचार्यो देवता माणवकवाचने विनियोगः । ब्रह्मचर्य्यमागामुपमानयस्व ॥ को नामाऽसीति माणवकस्य नामधेयं पृच्छत्याचार्य्यः । ततो देवताश्रयं वा, नक्षत्राश्रयं वा, गोत्राश्रयं वा,ऽभिवादनीयं नाम परिकल्प्यामुकशर्म्माऽस्मीति माणवकं वाचयेत् । शिवो विष्णुरित्यादि देवतानाम । आश्वयुजः, आपभरणः, कृत्ति-

कः, रौहिण, इत्यादि जातार्थतद्धितान्तं नक्षत्रनाम परिकल्पयेत्। 'सूक्तवाके' प्रसिद्धमेतत्। तत्र कपर्दिस्वाम्यपि विशेषमाह। "रोरेवमृज्येचिषु वृद्धिरादौ छात् फाच्च वान्त्यश्रवणाश्वयुक्तु। शेषेषु नाम्वोः कपरस्स्वरोऽन्त्यस्स्वाछोरदीर्घस्सविसर्ग इष्टः" ॥ १ ॥ गोत्रनामवात्सः, और्वः, गार्ग्यः, इत्याद्यूह्यम्।

अर्थ—आचार्य बालक के "ब्रह्मचर्य्यमागामुपमानयस्व" कहने पर "को नामाऽसि"। मन्त्र को पढ़ता हुवा बालक से प्रश्न करे। बालक उत्तर में "इन्द्रशर्म्मा वात्सोऽस्मि भो आचार्य" ऐसा कहे। उपरोक्त उत्तर में बालक ने गोत्राश्रय अपना नाम कहा है। इसी प्रकार "और्वः, गार्ग्यः, वासीष्ठः इत्यादि जिस गोत्र का हो जोजन करे। यदि देवनाश्रय कहना चाहे तो "शिव विष्णु" इत्यादि नाम कल्पना करे। यदि नक्षत्राश्रय कहना चाहे तो "आश्वयुजः, आपभरणः, कृत्तिकः रौहिण. इत्यादि तद्धितान्त नाम बतावे। ये नाम दर्शपौर्णमास इष्टी के सूक्त वाक्य में स्पष्ट दिखाए गये हैं। "रोरेवमृज्येचिषु०" उदाहरण से कपर्हिस्वामी भी वाहां विशेष स्पष्ट कर दिए हैं।

तत आचार्य्य उदकाञ्जलिं त्यक्त्वा दक्षिणहस्तेन माणवकस्य दक्षिणहस्तं साङ्गुष्ठं परिगृह्णाति देवस्य ते सवितुरितिमन्त्रेण। अत्र माणवकस्याप्यञ्जल्युत्सर्गः। मन्त्रेऽसावित्यस्य स्थाने माणवकस्य सम्बोधनान्तं नामोच्चारयेत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्सविता देवता हस्तग्रहणे विनियोगः। देवस्य ते सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ॥

अथाचार्य्यस्तस्मिन्नेव देशे प्रत्यङ्मुखमवस्थितं माणवकं प्रादक्षिण्येन प्राङ्मुखं करोति। सूर्य्यस्यावृतमन्वावर्त्तस्वासाविति। अत्राप्यसावित्यस्य स्थाने पूर्ववन्नामग्रहणम्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्सूर्य्यो देवता माणवकस्यावर्त्तने विनियोगः। सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्तस्वासौ॥

अर्थ—आचार्य और बालक दोनों अञ्जलि के जलको भूमिपर छोड़ देवें। आचार्य "देवस्य ते०" मन्त्र को पढ़ता हुआ अपने दाहिने हाथसे बालकके दाहिने हाथको अङ्गुठे के साथ पकड़ लेवे और मन्त्रमें अंकित "असौ" शब्द के स्थान पर उसका संबोधनान्त नाम उच्चारण करे। आचार्य बालकके हाथ को छोड़कर "सूर्य्यस्यावृत मन्वावर्त्तस्व असौ" इस मन्त्र से उसे सूर्य की परिक्रमा करने का आदेश करे और "असौ" शब्द के स्थान में उसका संबोधनान्त नाम उच्चारण करे। बालक अपने स्थान पर खड़ा होकर घुम जावे और पूर्ववत् पूर्वमुख बैठे।

अथाचार्य्यस्स्वदक्षिणहस्तेन माणवकस्य दक्षिणांसं तूष्णीं स्पृष्ट्वा वस्त्रादिनाऽनाच्छादितां माणवकस्य नाभिं प्राणानां ग्रन्थिरसीतिमन्त्रेणाभिमृशति॥ अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरन्तको देवता नाभिस्पर्शने विनियोगः। प्राणानां ग्रन्थिरसि माविस्रंसोन्तक इदं ते परिददाम्यमुम्॥ अमुमित्यस्य स्थाने द्वितीयान्तं माणवकस्य नामोच्चार्य्यम्। ततो नाभिदेशादुपरि जठरदेशे हस्तमवस्थाप्याहुर इति मन्त्रं जपति। अस्य प्रजापतिर्ऋषि-

र्यजुर्वायुर्देवता जठराभिमर्शने विनियोगः । अह्नुर इदं ते परिददाम्यमुम् ॥१॥ अमुमित्यत्र द्वितीयान्तं नाम । अथ हृदयदेशमभिमृश्य कृशन इतिमन्त्रं पठेत् । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरग्निर्देवता हृदयस्पर्शने विनियोगः । कृशन इदं ते परिददाम्यमुम् ॥ २ ॥ अत्रापि द्वितीयान्तं नाम । अथाचार्य्यो दक्षिणहस्तेन माणवकस्य दक्षिणांसं प्रजापतयेत्वेत्यभिमृशति । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजु प्रजापतिर्देवता दक्षिणस्कन्धस्पर्शने विनियोगः । प्रजापतये त्वा परिददाम्यसौ ॥ अत्रासावित्यस्य स्थाने सम्बोधनान्तं नाम । अथाचार्य्यो वामहस्तेन माणवकस्य वामांसमभिमृशति मन्त्रेण । मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्सविता देवता वामांसस्पर्शने विनियोगः । देवाय त्वा सवित्रे परिददाम्यसौ ॥ अत्रापि सम्बोधनान्तं नाम ।

अर्थ—आचार्य बालक के दाहिने पार्श्व को बिना मन्त्र स्पर्श कर तत्पश्चात् 'प्राणानां०" मन्त्र से उसके नाभी स्थान को दबावे । इस क्रिया को वस्त्र के ऊपर से नही करना चाहिए । "अह्नुर इदं ते परिददामि अमुम्" मन्त्रको पढ़ता हुआ नाभि देश के कुछ ऊपरी भागको दबावे । "कृशन इदं ते परिददामि अमुम्" मन्त्र से हृदय स्पर्श करे । उपरोक्त मन्त्रों में "अमुम्" शब्द के स्थान पर बालक का द्वितियान्त नाम उच्चारण करे । "प्रजापतये त्वा परिददामि असौ" मन्त्र से बालक के दाहिने और 'देवाय त्वा सावित्रे परिददामि असौ'

मन्त्रको पढ़ता हुआ बाये हाथ से बाम कन्धे को स्पर्श करे। "असौ" शब्द के अस्थान पर बालक का संबोधनान्त नाम उच्चारण करे।

अथ गृहीतांसद्वयं माणवकमाचार्य्यस्समादिशति ब्रह्मचार्य्यसीतिमन्त्रेण। अस्य मन्त्रस्य प्रजापति-र्ऋषिर्यजुरग्निर्देवताऽऽदेशने विनियोगः। ब्रह्मचार्य्य-स्यसौ॥ अत्रापि सम्बोधनान्तं नाम ग्रहणम्। बाढमोमिति वा ब्रूयान्माणवकः प्रत्यादेशम्। आचार्य्ये-णान्येप्यादेशा बोधयितव्याः। तद्यथा। समिधमाधेहि। माणवको बाढमिति प्रतिवदेत्। अपोऽशान। बाढम्। कर्म कुरु। बाढम्। मा दिवा स्वाप्सीः। बाढम्।

आचार्य अपने दोनों हाथों से बालक के दोनों कन्धे को स्पर्श किए हुए 'ब्रह्मचार्य्यसि असौ" मन्त्र से बालक को उपदेश करे। हरेक "असौ" शब्द के स्थान पर बालक का सम्बोधनान्त नाम उच्चारण करे। आचार्य के उपदेश करने पर बालक "बाढ़म' शब्द का उच्चारण कर स्वीकार करे। इसी प्रकार आचार्य निम्नाङ्कित उपदेशों को करे यथा—आचार्य—"समिधमाधेहि। अपोशान। कर्मकुरु। मा दिवास्वाप्सीः" बालक प्रत्येक उपदेशों को "बाढम्" शब्द उच्चारण कर स्वीकार करे।

अग्नेरुत्तरतो गत्वाऽऽचार्य्यः प्राङ्मुख उपविशत्युदगग्रेषु दर्भेषु। अथाग्नेरुत्तरत उदगग्रेषु दर्भेष्वाचार्य्याभिमुखो दक्षिणजानु भूमौ निधाय माणवकः प्रत्यङ्मुख उपविशति।

अथाचार्य्यो माणवकमियं दुरुक्तात् ऋतस्य गोप्त्रीति-मन्त्रद्वयं वाचयन् कटिप्रदेशे प्रादक्षिण्येन मुञ्जमेखलां त्रिवारमावेष्ट्य प्रवरसंख्यया ग्रन्थिं करोति। मन्त्रद्वय-स्य प्रजापतिर्ऋषिरुष्णिक्छन्दोऽग्निर्मेखला वा देवता मेखलापरिधापने विनियोगः॥ इयं दुरुक्तात्परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमा-हरंती स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्॥१॥ ऋतस्य गोप्त्री तपसः परस्वी घ्नती रक्षःसहमाना अरातीः। सा मा स-मन्तमभिपर्य्येहि भद्रे धर्त्तारस्ते मेखले मारिषाम॥२॥

अर्थ—अग्नि के उत्तर दो स्थान पर उत्तराग्र कुशाओं को रखकर एक पर पूर्वमुख आचार्य और दूसरे पर दक्षिण घुटने को भूमिपर टेके हुए आचार्य के सनमुख पश्चिममुख बालक दोनों बैठें। आचार्य "इयं दुरुक्तात्०" और 'ऋतस्य गोप्त्री" मन्त्रों को पढ़ता हुआ बालक के कटिमें तीनवार मुञ्ज की मेखला लपेट कर प्रवर के अनुसार गाठ दे देवे।

अथाचार्य्यसमीपं गत्वा माणवको नमस्काराञ्ज-लिम्बध्वाऽऽचार्यं पृच्छति। अधीहि भोः सावित्रीं मे भवाननुब्रवीतु। एवं पृष्टवते माणवकाय सावित्रीं त्रिवा-रमनुब्रवीति। प्रथमं पादंपादं कृत्वा तत ऋचोऽर्द्धमर्द्धं कृत्वा ततस्सर्वामृचमनुब्रूयात्। पृथक् पृथक् महाव्याहृ-तीश्चोङ्कारान्ता वदेत्। तद्यथा। सावित्र्या विश्वामित्र र्षिर्गायत्री छन्दस्सविता देवतोपदेशे विनियोगः। तत्स-

वितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। अयं पच्छः। तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। अयमर्द्धर्चशः। तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। अयमृक्शः पाठः। व्याहृतीनामत्रिभृगुकुत्सा, विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजा वा, ऋषयो गायत्र्युष्णिगनुष्टुपछन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवता उपदेशे विनियोगः॥ प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः परमात्मा देवता दैवीगायत्री छन्द उपदेशे विनियोगः। भूः ओं। भुवः ओं। स्वः ओं। ततो माणवकाय पलाशाद्यन्यतमं दण्डं यथावर्णं प्रयच्छन् सुश्रव इति वाचयति। अस्य प्रजापतिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दो दण्डो देवता दण्डग्रहणे विनियोगः। सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु यथा त्वँसुश्रवस्सुश्रवा देवेष्वेवमहँसुश्रवः सुश्रवा ब्राह्मणेषु भूयासम्॥ १॥ ततः पूर्वासादिताजिनधारणम्। "तस्य मन्त्रकाण्डे मन्त्रपाठाभावात्तैत्तिरीयशाखागतमन्त्रो ग्राह्य" इति भट्टनारायणोपाध्यायप्रभृतयः। "तूष्णीमजिनधारणं स्वशाखायां मन्त्रपाठाभावादिति" केचिद्विद्वांसः। अजिनधारणमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुपछन्दोऽजिनं देवताऽजिनधारणे विनियोगः। मित्रस्य चक्षुर्धरुणं बलीयस्तेजो यशस्वी स्थविरँसमिद्धं। अना-

हनस्यं वसनं जरिष्णु परीदं वाज्यजिनं दधेऽहम्। इत्येतं मन्त्रं माणवकं वाचयन् धारयति॥

अर्थ—बालक कुछ आचार्य के समीप में चला जावे। हाथों को जोड़े हुए प्रार्थना करे कि "आप मुझे गायत्री पढ़ाइए"। बालक के प्रार्थना करने पर आचार्य पहले—"ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यम्"। दूसरी बार "ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि" तीसरी बार बालक को साथ साथ पढ़ाते हुए "ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयत् ओम्" गायत्री का उपदेश करे। इसी मन्त्र को सावित्री भी कहते हैं। सावित्री उपदेश करने के पश्चात् भूः ओम्, भुवः ओम्, स्वः ओम्, ओंकारान्त व्याहृतियों का उपदेश करे। "सुश्रव सुश्रवसम्०" मन्त्र को पढ़ता हुआ बालक के हाथ में पालाश आदि किसी एक विहित वृक्ष के दण्ड को दे देवे। "मित्रस्य चक्षुः०" मन्त्र को पढ़ता हुआ बालक अजिन (मृगचर्म) धारण करे। यद्यपि अजिनके मन्त्र गोभिलाचार्य सूत्रित नहीं किया है तथापि भाष्यकार नारायण भट्टने तैतिरीय शाखा से संकलन किया है। किसी किसी विद्वानों की सम्मति है कि अपनी शाखा में मन्त्र का उल्लेख न होने के कारण बिना मन्त्र ही अजिन धारण करना चाहिए। अजिन धारण करने के मन्त्र बालक को स्वयं पढ़ना चाहिए।

अथ ब्रह्मचारिणं द्वादश प्रैषानुक्त्वा तदर्थञ्च बोधयेत्। तद्यथा। आचार्य्याधीनो भव। अन्यत्राधर्म्माचरणात्। माणवको बाढमिति वदेत्॥ १॥ क्रोधानृते वर्जय। बाढम्॥ २॥ मैथुनं वर्ज्जय। बाढम्॥ ३॥ उपरिशय्यां वर्ज्जय। बाढम्॥ ४॥ कौशीलवगन्धा-

ञ्जनानि वर्जय । बाढम् ॥ ५ ॥ स्नानं वर्जय । बाढम् ॥ ६ ॥ अवलेखनदन्तप्रक्षालनपादप्रक्षालनानि वर्जय । बाढम् ॥ ७ ॥ क्षुरकृत्यं वर्जय । बाढम् ॥ ८ ॥ मधुमांसे वर्जय । बाढम् ॥ ९॥ गोयुक्तवाहनारोहणं वर्जय । बाढम् ॥१०॥ अन्तर्ग्राम उपानहोर्धारणं वर्जय । बाढम् ॥ ११ ॥ स्वयमिन्द्रियमोचनं न कर्त्तव्यम् । बाढम् ॥ १२ ॥

अर्थ—आचार्य बालक को विशेष रूप से समझाते हुए बारह नियमों का उपदेश करे और बालक "बाढम्" शब्द का उच्चारण करता हुआ स्वीकार करता जावे । आचार्य उपरोक्त उपदेशों का अर्थ भी स्पष्ट करता जावे ।

अथ साधारणधर्म्मोपदेशः । मेखलाधारणभैक्ष्यचर्य्यदण्डधारणसमिदाधानोदकोपस्पर्शनप्रातरभिवादाः कर्त्तव्याः। बाढम् । ततो माणवकस्तूष्णीमादित्यमुपस्थायाग्निं प्रदक्षिणीकृत्य प्रथमं मातरं ततो भगिन्यादींस्सन्निहिताश्च भिक्षेत । तद्यथा । भवति भिक्षां देहीति ब्राह्मणस्य । भिक्षां भवति देहीति क्षत्रियस्य । भिक्षां देहि भवतीति वैश्यस्य ॥ अग्नेः पश्चात्प्राङ्मुखस्तिष्ठन्नुपविश्य वा भैक्ष्यमाचरेत् ॥ अथ ब्रह्मचारीदं भैक्ष्यं भो भगवन् गृहाणेत्याचार्य्याय निवेद्याचार्यदत्तं स्वयं प्रतिगृह्णीयात् । तत आचार्य्यो व्याहृतिचतुष्टयहोमादितन्त्रं समापयेत् ।

अर्थ—आचार्य इन सधारण धर्मों का भी उपदेश करे कि जबतक ब्रह्मचर्याश्रम में रहो मेखला और दण्ड धारण किए

रहो। भिक्षा माँग कर भोजन, सायं प्रातः समिध से हवन, आचमन और माता, पिता, आचार्यादि गुरु जनों को प्रणाम प्रति दिन के कर्त्तव्य को करते रहो।" ब्रह्मचारी विना मन्त्र सूर्य का प्रणाम कर अग्नि की प्रदक्षिणा करे। अग्नि के पश्चिम बैठे हुए या खड़ा होकर प्रथम माता तद्पश्चात् भगिनी मौसी आदि जितने निकट वर्त्ती हों उनसे भिक्षा माँगे। भिक्षा माँगने के समय ब्राह्मण ब्रह्मचारी "भवति भिक्षान्देहि" क्षत्रिय "भिक्षाम्भवति देहि" वैश्य "भिक्षां देहि भवति" वाक्यों का प्रयोग करे। ब्रह्मचारी उपलब्ध भिक्षा के वस्तुओं को "हे भगवन् यह भिक्षा आप ग्रहण कीजिए" इस प्रार्थना के साथ आचार्य को सम्मर्पण कर देवे। आचार्य से पाए हुए भिक्षान्न को ब्रह्मचारी ग्रहण करे। (आचार्य से भिक्षा वापस लेने का उपदेश दूसरे दिन के लिए है। उपनयन दिन के लिए नही। यद्यपि भिक्षा ब्रह्मचारी के जीविकार्थ है परन्तु उपनयन दिन की भिक्षा उपनयन की अंग है। उस दिन ब्रह्मचारी भोजन करने के पश्चात् आचार्य के समीप आता है जिसे उसका भोजन करना अनावश्यक है। उपनयन के दिन गोभिल, पारस्करादि सूत्रकारों ने ब्रह्मचारी को जिस प्रकार सब धर्माचरणों का उपदेश किया है उसी प्रकार भिक्षाचरण का रूप भी उपनयनाङ्ग उपदेश किया है। उस दिन की भिक्षा आचार्य को अर्पण कर देने ही तक विधि सूत्रित किया है।)

हाथ जोड़ कर—"महाव्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजा ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि, अग्निवायुसूर्या देवताः आज्यहोमे विनियोगः" ऋष्यादि का स्मरण कर आज्यस्थाली से स्रुवा द्वारा घृत ले ले कर "ओम् भूः स्वाहा। अग्नये इदं न मम। भुवः स्वाहा, वायव इदं न मम। स्वः स्वाहा सूर्याय इदं न मम। भूर्भुवः स्वः स्वाहा प्रजापतये इदं न मम" इन मन्त्रों से चार आहुतियों को प्रदान करे।

अग्नि में एक समिध को बिना मन्त्र छोड़ देवे। "अदितेऽनुमन्यस्व" मन्त्र से अग्नि के दक्षिण नैऋत्य से आग्नेय तक जल की धारा देवे। "अनुमतेऽनुमन्यस्व" मन्त्र से अग्नि के पश्चिम नैऋत्य से वायव्य तक और "सरस्वत्यनुमन्यस्व" अग्नि के उत्तर वायव्य से ईशान तक जल की धारा देवे। "देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचनः स्वदतु" मन्त्र से ईशान से जल धारा देते हुए अग्नि के चारों तरफ एक अथवा तीन बार जल की धारा देवे। बिछाए हुए परिस्तरण कुशाओं में से एक मुष्टी लेकर उनके अग्र मध्य और मूल भाग को "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषि यजुः छन्दः विश्वे देवा देवता बर्हिरभ्यञ्जने विनियोग:" ऋष्यादि का स्मरण कर "अक्तुᳬरिहाणाव्यन्तु वयः" मन्त्र से घृत में डुबो देवे। जल से प्रोक्षण कर देवे। "अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप् छन्दो रुद्रो देवता बर्हिर्होमे विनियोगः" "ओम् य पशूनामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो वृषा। पशूनस्माकं माहिᳬ सीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा" "पशूनामधिपतये रुद्राय तन्तिचरायेदं न मम"। मन्त्र से अग्नि में होम करदेवे। जल स्पर्श कर लेवे। स्रुची में घृत भर कर 'प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्वसवो देवता होमे विनयोगः" ऋषि आदि का स्मरण कर "वसुभ्यः स्वाहा। वसुभ्य इदं न मम" इस मन्त्र से अविछिन्न घृत धारा अग्नि में प्रदान करे। ब्रह्मा जितने में भोजन करके तृप्त हो सके उतने भात, या चावल या फल "ब्रह्मन् पूर्णपात्रं ते ददामि" वाक्य से दक्षिणा प्रदान कर देवे। वामदेव्य साम का गान कर यज्ञ कर्म को ईश्वरार्पण कर देवे।

ततोऽहश्शेषं ब्रह्मचारी वाग्यतस्तिष्ठेत्। अथोपनीतस्य "माध्यान्हिकसन्ध्योपक्रममाह 'जैमिनिः'। यावद्ब्रह्मो-

पदेशस्तु तावत्सन्ध्यादिकं न च। ततो मध्यान्हसन्ध्यादि सर्वं कर्म समाचरेत्"। आदिसर्वशब्दाभ्यां ब्रह्मयज्ञादिकमुच्यते। तत्र विशेषमाह स एव। "अनुपाकृतवेदस्य ब्रह्मयज्ञः कथं? भवेत्। वेदस्थाने तु गायत्री गद्यतेऽन्यत्समं भवेत्"। येषां सायं सन्ध्योपक्रमस्तेषां परेऽन्हि ब्रह्मयज्ञारम्भः॥ इत्युपनयनप्रयोगः॥

अर्थ—ब्रह्मचारी भिक्षा मांगने के पश्चात् उपनयन दिन के शेष समय को मौन होकर व्यतीत करे। महर्षि जैमिनि का मत है कि "ब्रह्मचारी को उसी दिन मध्यान्ह से सन्ध्योपासन कृत्य का आरम्भ करना चाहिए, कारण कि जब तक वेदोपदेश नही होता तब तक तो कुछ नहीं करना है, परन्तु जब गायत्री का उपदेश हो गया तो उसे मध्यान्ह सन्ध्या ब्रह्म यज्ञ आदि सभी कृत्य करना चाहिए परन्तु जब तक वेदारम्भ न हो तब तक स्वाध्याय के स्थान पर गायत्री मन्त्र का जप मात्र करना चाहिए। जिन द्विजों की शाखा में सायं सन्ध्योपासन से ब्रह्मचारी को अपना आहनिक कृत्य आरम्भ करना विधि हो उन्हें दूसरे दिन से ब्रह्मयज्ञ आरम्भ करना होगा। यही विधि कौथुमी शाखीय द्विजों के लिए पालनीय है। यह उपनयन प्रयोग समाप्त हुआ।

अथ सायंसन्ध्योपासनं कृत्वाऽग्नये समिधमाहार्षमिति समिदाधानं कुर्यात्। तस्य प्रयोगः। आचम्य प्राणानायम्य सायं समिधमाधास्ये इति सङ्कल्प्योपलिप्ते स्थण्डिले उल्लिख्याभ्युक्ष्य, प्रतिष्ठाप्याग्निं, तूष्णीं समिधमाधाय, परिसमूह्य, त्रिरुदकाञ्जलिं दत्वा, देव सवि-

न्तरिति पर्य्युक्ष्य, तूष्णीं प्रादेशमितां समिधमाधायाग्नये समिधमाहार्षमिति समिधमादध्यात्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरग्निर्देवता समिदाधाने विनियोगः। अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस्येवमहमायुषा मेधया वर्च्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्च्चसेन धनेनान्नाद्येन समेधिषीय स्वाहा। अग्नय इदं न मम। पूर्ववत्तूष्णीं समिधमाधायानुपर्य्युक्षणमुदकाञ्जलित्रयसेचनमुपस्थानादि चमसनिनयनं वामदेव्यगानञ्च कुर्य्यात्। एवमत ऊर्द्ध्वमहरहस्सायंप्रातस्समिदाधानमासमावर्त्तनात्कर्त्तव्यम्। त्रिरात्रं क्षारलवणवर्ज्जितं भुञ्जीत। इति समिदाधानप्रयोगः॥

अर्थ—उपनयन के दिन सायं सन्ध्योपासन कर "अग्नये समिध" मन्त्र से अग्नि में आहुति देने का कार्य आरम्भ करे। उसकी विधि नीचे लिखी जाती है। आचमन प्राणायाम कर "सायं समिध माधास्ये" योजना के साथ संकल्प करे। वेदिका को गोबर और जल से लीप कर पृष्ठ ८८ और ८९ में लिखी विधि से वेदिकाको संस्कृत कर अग्नि स्थापन करे। विना मन्त्र एक समिध छोड़कर परिसमूहन करे उपनयन विधि में लिखने के अनुसार "अदितेअनुमन्यस्व" इत्यादि मन्त्रों से उदकाञ्जलि देकर "देव सवितः" इसे परियुक्षण करे। बिना मन्त्र तीन समिध को हाथ में लेकर उनमें से एक समिध को "अग्नये समिध०" मन्त्र को पढ़ता हुआ अग्नि में चढ़ा देवे। इसी प्रकार शेष दोनों समिधाओं को अग्नि में हवन कर देवे। अनु पर्युक्षण, उदकांजलि और उपस्थान आदि कृत्यो को सम्पन्न करे। चमस का जल

गिराकर उसमें दूसरा जल प्रातः काल के लिए रख देवे। वाम देव्य साम का गान करे। इसी प्रकार जब तक ब्रह्मचर्य अवस्था में रहे समिदाधान करते रहे। तीन दिन तक लवण न खावे। यही समिदा धान का प्रयोग है।

अथ सावित्रचरुप्रयोगः। स च सावित्रव्रतान्ते कार्य्यः। तदङ्गमाभ्युदयिकश्राद्धं कृत्वा विधिवदग्निं प्रतिष्ठाप्य प्रकृतिस्थालीपाकवदाज्यभागान्तं कुर्यात्। चरुनिर्वापकाले सवित्रे त्वा जुष्टं निर्वपामीति विशेषः। सवित्रे स्वाहा। सवित्र इदं न मम। इति चरुं जुहोति। ततोऽग्ने व्रतपते व्रतमचारिषमित्यादिभिः पञ्चाज्याहुतयः। ऋष्यादय उपनयने उक्ताः। अग्ने व्रतपते व्रतं सावित्रमष्टवर्षमष्टमासमष्टदिनं वा अचारिषं तत्ते प्रब्रवीमि तदशकं तेनारात्समिदमहमनृतात् सत्यमुपागां स्वाहा॥ अग्निमन्त्रेष्वप्येवमूहः। वायो व्रतपते व्रतमचारिषं तत्ते प्रब्रवीमि। सूर्य व्रतपते व्रतमचारिषम्। चन्द्र व्रतपते व्रतमचारिषम्। व्रतानां व्रतपते व्रतमचारिषमिति। चतुर्षु मन्त्रेष्ववशिष्टः प्रथममन्त्रवद्धोतव्यः। तन्त्रशेषं समापयेत्। ब्रह्मणे गौर्दक्षिणा। आचार्यायेति केचित्।

अर्थ—अब सावित्र चरूका का प्रयोग लिखा जाता है। उपनयन दिनसे तीन दिन तक सावित्र व्रत होता है। यह सावित्र चरु सावित्र व्रत के अन्त में चौथे दिन करना चाहिए। उक्त कृत्य का अङ्गभूत पुण्याह-वाचन से नान्दी श्राद्ध पर्यन्त कर्म सम्पन्न करे। उपनयन में लिखी

हुई विधि से अग्नि स्थापन करे। यहां भी दर्शपौर्णमास स्थालीपाक की ही विधि से आज्य भाग तक कार्य किया जावेगा। केवल हवि निर्वपन में "सवित्रे त्वा जुष्टं निर्वपामि" मन्त्र से एकही देवता के लिए हवि लिया जाएगा। उपस्तीर्णाभिघारितचरु लेकर "ओं सवित्रे स्वाहा सवित्र इदं न मम" एक आहुति स्थालीपाक की दी जाएगी। चरु आहुति के पश्चात् घृत से उपरोक्त उपनयन विधि के अनुसार "अग्ने व्रतपते०" मन्त्रों से पांच आहुतियों को प्रदान करे। यहाँ पर भी सब मन्त्रों में व्रतों के नाम और समय का ऊह करना जावे। शेष कृत्य को पूर्णमास विधि के अनुसार समाप्त करे। इस हवन की दक्षिणा में ब्रह्मा को एक गौ देवे। किसी किसी का मत है कि ब्रह्मा को पूर्णपात्र और आचार्य को गौ दक्षिणा देवे।

"उपनयनकर्मणश्चतुर्थेऽहनि सावित्रचरुं कुर्यादिति" भवदेवभट्टः "त्रिरात्रव्रतान्ते सावित्रचरुः कर्त्तव्य" इति भट्टनारायणोऽपीममर्थमनुजानाति। "उपनयनदिने माणवकाय भैक्षदानानन्तरं सावित्रचरुरिति" रघुनन्दनः। ऊहे गृह्यासङ्ग्रहः। सावित्रमष्टभिर्वर्षैः कार्यं मासैर्दिनैश्च वा" ॥ इति सावित्रचरुप्रयोगः ॥

अर्थ—यह सावित्र चरु उपनयन दिन से चौथे दिन करना चाहिए गोभिलाचार्य का मत है*। भवदेव भट्ट का भी यही मत है। भाष्यकार नारायण भट्टोपाध्याय ने भी यही अर्थ बताया है। रघुनन्दन का मत है कि उसी दिन भिक्षा कार्य समाप्त होने के पश्चात् सावित्र चरु करना चाहिए। मन्त्र के ऊहापोह करने में

* त्रिरात्रमक्षारलवणाशी भवति। तस्यान्ते सावित्रश्चरुः। गो० गृ० सू० प्र० २ ख० १० सू० ४७, ४८।

गृह्यासंग्रहकार ने लिखा है कि "सावित्र चरु उपनयन से आठ वर्ष या मास या दिन व्यतीत हो जाने पर करना चाहिए। यही सावित्र चरु होम का प्रयोग है।

अथ गोदानव्रतप्रयोग उच्यते॥ "जन्मकालात्षोडशे वर्षे गोदानाख्यव्रतं ब्राह्मणस्य"। तत्रेदन्तात्पर्य्यम्। 'गर्भाष्टमे ब्राह्मणस्योपनयनम्, गर्भषोडशे वर्षे गोदान-मित्युक्त्या मध्ये व्रतानुष्ठानं प्रतीयते। एवं क्षत्रियस्य द्वाविंशे गोदानाख्यव्रतं, वैश्यस्य चतुर्विंशे गोदानाख्य-व्रतं, मध्ये व्रतानुष्ठानम्।

अर्थ—अब गोदान व्रत के प्रयोग को लिखा जाता है। यह संस्कार जन्म से सोलहवे वर्ष में करना चाहिए। इसका आशय यह है कि जिस प्रकार ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए उपनयन का समय पृथक् पृथक निर्धारित है उसी अनुसार गोदान व्रत का समय भी निर्धारि है। ब्रह्मचर्य व्रत के मध्यही में ब्राह्मण का गोदान व्रत गर्भ से १६ वें, क्षत्रिय का २२ वें और वैश्य का २४ वें वर्ष में करना चाहिए।

ब्राह्मणाननुज्ञाप्य गणेशं संपूज्य गोदानव्रताङ्गं ना-न्दीमुखश्राद्धं करिष्ये इति सङ्कल्प्य तत्कृत्वा, गोदा-नव्रताङ्गकेशान्तकर्म्म करिष्ये इति संकल्प्य चूडा-कर्म्मवदग्निप्रतिष्ठापनादिकेशवपनान्तं कर्म्म ब्रह्मचा-री कुर्यात्। नत्वाचार्येण। नात्र व्रीह्यादीनामासाद-नम्। सर्वेषामङ्गलोम्नां च वपनम्। गोमिथुनं दक्षिणा ब्राह्मणस्य, अश्वमिथुनं क्षत्रियस्य। अविमिथुनं वैश्यस्य यथोक्तदक्षिणालाभे सर्वेषामपि गौर्दक्षिणाऽऽचार्याय

देया । अथ केशप्रतिग्राहाय नापितायाजो देयः ॥ इति केशान्तकरणप्रयोगः ॥

ब्राह्मण से आज्ञा लेकर गणेश की पूजा करें । "गोदानव्रताङ्गं नान्दी-मुख श्राद्ध करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प कर पुण्याहवाच-नादि आभ्युदयिक श्राद्धान्त कृत्य सम्पन्न करें । ब्रह्मचारी "गोदान व्रताङ्गकेशान्त कर्म करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प कर चूडा कर्म विधि के अनुसार अग्निस्थापन से केश मुण्डन तक कृत्य सम्पन्न करें । यह कृत्य आचार्य के द्वारा न होगा, किन्तु ब्रह्मचारी को स्वयं सम्पन्न करना चाहिए । इस गोदान व्रत में धान्य पूर्ण भाण्डका आस्वादन न होगा । शरीर के सब लोम का मुण्डन होगा । गोदान व्रतकी दक्षिणा आचार्य के लिए, ब्राह्मण को दो गौ, क्षत्रिय को दो अश्व और वैश्यको दो भेडि देना होगा । यदि समय पर वर्णानुसारिक दक्षिणा न उपस्थित हो तो सब वर्णों के ब्रह्मचारी दो गौ देकर कृत्य सम्पन्न कर सकते हैं । इस गोदान व्रत में बाल बनाने वाले नाई की दक्षिणा एक बकरा देना चाहिए । यही गोदान व्रत का प्रयोग है ।

अथ गोदानव्रताङ्गोपनयनं कर्त्तव्यम् । तस्य प्रयोग उपनयनवत । अत्र विशेषः । होमस्त्वोहेन । अग्ने व्रतपते व्रतं गोदानं सांवत्सरिकं चरिष्यामीत्यादि । अहतवस्त्र-परिधारणमलङ्करणं च वर्जयेत् । न सावित्र्युपदेशः । पूर्वधृतयज्ञोपवीतमेखलादण्डाजिनानां त्यागः । पुनर्द्धारणं च । अथादेशा द्वादश आचार्येण कर्त्तव्याः । अथ दण्डं प्रयच्छन्नाचार्य्य उपनयनोक्तानादेशान्वदेत् । गोदानव्र-तान्ते आग्नेयैन्द्रपवमानपर्वणां श्रावणम् । तदन्ते ऐन्द्र-

श्चरुस्सावित्रचरुवत्कर्त्तव्यः। निर्वापकाले इन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि। आज्यभागान्ते ऋचं साम यजामहे-इत्येतयर्चा, सदसस्पतिमद्भुतमितिमन्त्रेणचोभाभ्यां वा चरुहोमं कुर्यात्। ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते। विते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षत. स्वाहा। सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यं। सनिं मेधामयासिषं स्वाहा। इन्द्रायेदं न मम। अग्ने व्रतपत इति पञ्चाज्याहुतयः। ऊहस्तु सावित्रचरौ लिखितः। यथा गोदानिकं सांवत्सरिकमेतावत्कालिकं वा तत्ते प्रब्रवीमीति। ततस्स्विष्टकृदृव्याहृतिहोमादि। ब्रह्मणे पूर्णपात्रं दक्षिणा। आचार्यायाजं मेषं गाञ्च पर्वदक्षिणां दद्यात्। आग्नेये पर्वणि आविते ऽजदक्षिणा। ऐन्द्रपर्वणि आविते मेषदक्षिणा। पवमाने पर्वणि आविते गौर्दक्षिणा॥ इति गोदानव्रतप्रयोगः॥

अर्थ—उपनयन काल से १६ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी को वेद प्रकरणों के अध्ययन के अनुसार ५ व्रत करने को लिखा है, उनमें प्रथम का नाम गोदानिकव्रत, दूसरे का [illegible], तीसरे का आदित्यव्रत चौथे का औपनिषदिक व्रत और पांचवें का [illegible] सामिक व्रत है। इन गोदानिक व्रतों के समय में [illegible] चार सब सामवेदीय ग्रन्थों का अध्ययन कर जाना होगा(?)।

गोदानव्रत के [illegible] पुनः उपनयन [illegible]

चाहिए। इसकी विधि वही होगी जो प्रथम उक्त उपनयन की है। इस उपनयन में जो जो विशेषता है उन्हें क्रमश अङ्कित किया जाता है। "हवन में" अग्ने व्रतपते व्रतं गोदानं साम्वत्सरिकं चरिष्यामि" वाक्य का ऊह करें। अहत वस्त्र परिधान न होगा। ब्रह्मचारी भूषण से अलंकृत न किया जावेगा। सावित्री का उपदेश भी न होगा। पहले के धारण किए हुए, यज्ञोपवीत, मेखला दण्ड और अजिनको परित्याग करके उन्हीं मन्त्रों से नवीन धारण कर लेना होगा। हां आचार्य उन २ उपदेशों को यहां भी सुनावें जिन्हें उपनयन संस्कार में सुनाते थे।

गोदान व्रत के अन्त में आग्नेय पर्व, ऐन्द्र पर्व, पवमान पर्व, आदि वेदप्रकरणों का श्रवण करावें। व्रत के अन्त में सावित्र चरु के समान ऐन्द्र चरु पका कर यजन करें। हवि निर्वपन में "इन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि" वाक्य का प्रयोग करें। आज्य-भाग आहुतियों के पश्चात् 'अन्नं नाम यजामहे०" और 'सद-सस्पति०" इन दो मन्त्रों से दो चरुकी आहुति प्रदान करें। "अग्नेव्रतपते०" इन ५ मन्त्रों से घृताहुति प्रदान करें। उक्त मन्त्रोंका पाठ वही रहेगा जो सावित्र चरु में है। जैसा कि गोदानव्रत में गोदा-निक साम्वत्सरिकं" इत्यादि वाक्यों का योजना किया गया है। स्विष्टकृतादि कृत्यों को पूर्ववत् समाप्त करें। ब्रह्मा को पूर्ण पात्र और आचार्य को बकरा, भेड़ा और गौ इस पर्वकृत्य में दक्षिणा देवें। वेद श्रवण करानेवाले आचार्य या उपाध्याय को आग्नेय पर्व में बकरा, ऐन्द्र पर्व में भेड़ा तथा पवमान पर्व में गौ दक्षिणा देनी चाहिए। यही गोदान व्रत का प्रयोग है।

अथ व्रातिकव्रतप्रयोगः ॥ व्रातिकव्रताङ्गं पुनर्नान्दी-मुखश्राद्धं, व्रातिकव्रताङ्गं पुनरुपनयनम् । व्रातिकमेताव-

[illegible]मित्युक्तं कृत्वा पञ्चाज्यहोमा इति विशेषः । गो-दानव्रतान्ते आश्विनानामुपाकर्मारभ्य अध्ययनम् । व्रतान्ते आरण्यक[illegible]ध्यायन[illegible]कर्म्याज्यहोमादि सामव्रत-पद्धतिवत् आचरणं, तदन्ते [illegible] । आज्यहोमे व्रातिकं [illegible] पद्धतिवत् । आचार्यवरदक्षि-णादेया ॥ इति व्रातिकव्रतप्रयोगः ॥

अर्थ— यह [illegible] व्रातिक [illegible] का प्रयोग लिखा जाता है । [illegible] कर्णों को [illegible] पुनः [illegible] । [illegible] मन्त्रों में '[illegible]' [illegible] आहुति प्रदान करे । [illegible] व्रातिक [illegible] करें । [illegible] में [illegible] करें । [illegible] इन्द्रों को [illegible] आदि [illegible] करें । [illegible] करें । "[illegible] व्रत-[illegible]" [illegible] दिन के व्रतानुष्ठान [illegible] आहुति प्रदान करे । [illegible] करें । यही व्रातिक [illegible] ।

[illegible]आदित्यव्रतप्रयोगः ॥ तदङ्गं नान्दीमुख श्राद्ध[illegible] [illegible] । आदित्यमेतावन्[illegible] [illegible] पञ्चाज्यहोमाः । [illegible]

व्रतिन एकवस्त्रधारणम् । वृक्षगृहाभ्यामन्यत्र छत्रादिना सूर्यस्य व्यवधाननिषेधः । जानुदघ्नजलाधिके अवतरणनिषेधः। गुर्वाज्ञया न दोषः। व्रातिकव्रतान्ते श्रुतारण्यकाध्ययनम् । व्रतान्ते महानाम्निभिन्नानां शुक्रियाणां श्रावणम् । व्रतान्ते ऐन्द्रश्चरुः । ऐन्द्रचरुं हुत्वा व्रतमादित्यमेतावत्कालिकमित्याद्यूहवद्भिः पञ्चाज्यहोमाः । अत्राचार्याय गोदानम् । ब्रह्मणे पूर्णपात्रमन्यत्सर्वं पूर्ववत् इत्यादित्यव्रतप्रयोगः ॥

अर्थ—अब तीसरा आदित्य व्रत का प्रयोग लिखा जाता है। इस व्रतमें भी पुण्यावाचनादि नान्दी श्राद्धान्त अंग कृत्य सम्पन्न कर पूर्ववत् पुनः उपनयन करना होगा। "अग्ने व्रतपते०" इन आज्य होमके पाँचों मन्त्रोंमें यहाँ भी आदित्य शब्दके साथ समय निर्धारित कर ऊह करना होगा। आदित्य व्रत में ब्रह्मचारियों को केवल एकही वस्त्र धारण करना चाहिए। गृह अथवा वृक्ष के अतिरिक्त छातासे सूर्य का ओट न करे। जहाँ जाँघ भर से अधिक जल हो उसे बिना गुरु आज्ञा के न पार करे। हम कह चुके हैं कि "व्रातिक के अन्त में आरण्य आर्चिक का अध्ययन करे।" इस आदित्य व्रत के अन्त में महानाम्नी शुक्रिया साम का गुरुमुख से श्रवण करे। इस व्रत के अन्त में ऐन्द्र चरुस्थालीपाक कर आहुति प्रदान करे। इस ऐन्द्र स्थाली पाक के हवन कार्य में भी "अग्नेव्रतपते०" मन्त्रों में भूत आदित्य व्रत के समय की योजना कर आहुतियोंको प्रदान करे। ऐन्द्र स्थालीपाक में आचार्य को गौ और ब्रह्माको पूर्णपात्र दक्षिणा देकर पूर्ववत् हवन कार्य को समाप्त करे। यही आदित्य व्रत का प्रयोग है।

अथौपनिषद्व्रतप्रयोगः । तदङ्गं नान्दीश्राद्धं तदङ्गमुपनयनं च पूर्ववत् । व्रतमौपनिषदमेतावत्कालिकमित्यूहवद्भिः पञ्चाज्यहोमाः । आदित्यव्रतान्ते श्रुतानां शुक्रियाणामध्ययनम् । व्रतान्ते उपनिषदां ब्राह्मणानां रहस्यस्य च श्रावणम् । तदन्ते ऐन्द्रश्चरुः । चरुहोमान्ते व्रतमौपनिषदमेतावत्कालिकमित्याद्यूहमुक्त्वा पञ्चाज्यहोमाः । आचार्याय गोदानं ब्रह्मणे पूर्णपात्रमन्यत्सर्वं पूर्ववत् ॥ इत्यौपनिषद्व्रतप्रयोगः ॥

अर्थ—अब औपनिषदिक व्रतका प्रयोग लिखा जाता है। इस व्रतमें भी प्रथम आभ्युदयिक श्राद्ध और पुनः उपनयन पहले के समान करना होगा। "अग्नेव्रत पते०" आज्य होम के पाँचों मन्त्रों में औपनिषद्व्रत शब्दके साथ समयको भी योजना करनी चाहिए। आदित्य व्रतमें सुने हुए शुक्रिया सामका पुन अध्ययन करे। इस व्रतके अन्त में आचार्य उपनिषद् ब्राह्मण, और रहस्य ग्रन्थों का श्रवण करावे। व्रत के अन्त में ऐन्द्रचरुस्थालीपाक से हवन करे। उन पाँच घृत आहुतियों में यहाँ भी व्रत के नाम और समय का ऊह करे। आचार्य को गौ और ब्रह्मा को पूर्णपात्र दक्षिणा देकर शेष कार्य को समाप्त करे। यही औपनिषदिक व्रत है।

अथ ज्येष्ठसामिकव्रतप्रयोगः ॥ ज्येष्ठसामिकव्रताङ्गं नान्दीमुखश्राद्धं तदर्थमुपनयनम् । अग्ने व्रतपते व्रतं ज्येष्ठसामिकमेतावत्कालिकं चरिष्यामीत्यूहं कृत्वा पञ्चाज्यहोमाः । पूर्वव्रतान्ते श्रुतोपनिषद्ब्रा ध्ययनम् ।

व्रतान्ते आज्यदोहानां साम्नां श्रावणम् । व्रतान्ते ऐन्द्रश्चरुः । चरुहोमान्ते अग्ने व्रतपते व्रतं ज्येष्ठसामिकमेतावत्कालिकमचारिषमित्यादिविशेषमुक्त्वा पञ्चाज्यहोमाः । आचार्याय गोदानं ब्रह्मणे पूर्णपात्रम् ॥ इति ज्येष्ठसामिकव्रतप्रयोगः ॥

अर्थ—अब ज्येष्ठ सामिक व्रत का प्रयोग लिखा जाता है । इसमें भी पहले के समान आभ्युदयिक श्राद्ध, पुनः उपनयन आदि कृत्य होंगे। आज्यहोम में ज्येष्ठ सामिक शब्द के साथ व्रत काल का ऊह करना होगा । इस व्रत में पहले के सुने हुए उपनिषद् ब्राह्मण और रहस्य का पुनः अध्ययन करना होगा। व्रत के अन्त में आज्य दोह सामका श्रवण करावे । आचार्य को गौ और ब्रह्मा को पूर्णपात्र दक्षिणा देकर शेष कृत्यों को समाप्त करे । यही ज्येष्ठ सामिक व्रत का प्रयोग है ।

गोदानिकव्रातिकादित्यव्रतौपनिषदज्येष्ठसामिकव्रतानां पृथक्पृथगेकैकसंवत्सरेऽनुष्ठानम् । देशकालशक्तिवयोवस्थाविशेषैर्यथासम्भवमनुष्ठानं वा कुर्यात् । आदित्यव्रतानुष्ठानात्परमध्ययनक्रमान्महानाम्निकव्रतानुष्ठानं कर्त्तव्यम् । तत औपनिषदज्येष्ठसामिकव्रतयोरनुष्ठानम् । एवं स्थितेऽपि कालादीनां साम्यान्महानाम्निकभिन्नानां गोदानिकादिव्रतानां प्रयोगमुक्त्वा महानाम्निकप्रयोगः पृथगुपदिष्टकालक्रियावैलक्षण्यादधुनोच्यते । सूत्रकारस्य लाघवात्क्रमत्यागः । तस्य द्वादशसंवत्सरा, नव षट् त्रयो वा संवत्सरा, अनुष्ठानकालः । एते चत्वारः पक्षाः

पुरुषशक्तिवयोवस्थादिविशेषापेक्षयोक्ताः । "संवत्सरमात्रं वा महानाम्निकव्रतमि" त्येक आचार्या मन्यन्ते । तस्य पित्रादिभिस्त्रिभिर्यथोक्तव्रतचर्य्यापूर्वकं महानाम्नीनामध्ययनं कृतं स्यात्तदा पुत्रस्य सांवत्सरिकमहानाम्निकव्रतेऽधिकारः। अन्येषां तु द्वादशवार्षिकादौ । अयमर्थो "रौरुकिब्राह्मणे"ऽपि स्पष्टः ॥

अर्थ—कुछ लोगों का मत है कि गोदानिक, व्रातिकव्रत, आदित्य व्रत, औपनिषदिक और ज्येष्ठ सामिकव्रतों का अनुष्ठान पृथक् पृथक् एक एक वर्ष करना चाहिए, परन्तु कुछ लोगों का विचार है कि देश काल, शक्ति तथा अवस्था के अनुसार जिस प्रकार होने की सम्भावना हो वैसा करना चाहिए। आदित्य व्रत अनुष्ठान के पश्चात् पहले के श्रवण किए हुए वेद ग्रन्थों का अध्ययन करे ग्रन्थाध्ययन के पश्चात् महानाम्निक व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। तत् पश्चात् औपनिषदिक और ज्येष्ठ सामिक व्रतों का अनुष्ठान कर्त्तव्य है। ऐसी स्थिति में भी समय आदि की समता से महानाम्निक से भिन्न गोदानिक आदि व्रतों के प्रयोग को पृथक् लिखकर अब महानाम्निक व्रत के प्रयोग को पृथक् लिखते हैं। यह व्रत उक्त व्रतों से विलक्षण है। गोभिलाचार्य के गृह्यसूत्र में स्पष्ट विधान न होने के कारण इसका क्रम आदित्य व्रत के पश्चात् नहीं है। महानाम्निक व्रत के अनुष्ठान का समय १२ वर्ष, ९वर्ष, ६ वर्ष, अथवा कम से कम तीन वर्ष का है। ये चारों समय ब्रह्मचारी के शक्ति, अवस्था आदि पर निर्भर है। जिस योग्य उसकी अवस्था हो उतने दिन का व्रत करे। एक वर्ष का भी महानाम्निक व्रत हो सकता है, इसे कोई कोई आचार्य मानते हैं, परन्तु उनके मानने में विशेषता

है कि "एक वर्ष का महानाम्निक व्रत वह ब्रह्मचारी कर सकता है, जिसके पिता, पितामह तथा पर पितामह भी उक्त व्रत के साथ महानाम्नी साम का अध्ययन किए हों । यदि व्रत के साथ तीसरी पीढ़ी तक शिक्षा न हुई हो तो १२ वर्ष तक महा नाम्निक व्रत कर्त्तव्य है । यह विधान रौरुकि ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से विधान है ।

अथ महानाम्निकव्रताङ्गं नान्दीमुखश्राद्धं करिष्ये । तदर्थमुपनयनम् । अग्ने व्रतपते महानाम्निकं द्वादशवार्षिकं वा, नववार्षिकं षड्वार्षिकं वा, त्रैवार्षिकं वा, सांवत्सरिकं चरिष्यामीत्यूहयुक्तैः पञ्चभिर्मन्त्रैः पञ्चाज्याहुतीः कुर्यादन्यत्पूर्ववत् ।

अर्थ—प्रथम महानाम्निक व्रतका अङ्गस्वरूप नान्दी श्राद्ध और पुन उपनयन करे। उपनयन में "अग्नेव्रतपते-" इन ५ मन्त्रों में महानाम्निक शब्दके साथ साथ व्रतकी वर्ष संख्याओं का भी ऊह कर आज्याहुतिओं को प्रदान करे। शेष कृत्य सब पहलेही के समान होंगे।

महानाम्निकव्रतिनः पूर्वोक्तव्रतनियमातिरिक्तनियमा उच्यन्ते । त्रिकालं स्नानम् । सायम्प्रातः समिदाधानात्पूर्वं भोजननिषेधः । कृष्णवस्त्रधारणम् । कृष्णवस्तुभक्षणम् । आचार्य्याधीनता । स्मृत्यन्तरोपदिष्टस्य पथिदानस्य निषेधः । तपस्विता दिवा सदा स्थितिर्नोपवेशनम् । भिक्षाटने परिक्रमणम् । सन्ध्योपासनार्थमुपवेशनम् । रात्रावुपवेशनम्, न शयनम् । वहिर्गतस्यपर्ज्जन्ये वर्षति मनुष्यैराच्छादितगृहादिप्रवेशनिषेधः । वर्षारम्भे-

ऽपि गृहादिप्रवेशननिषेधः । यदा पर्ज्जन्यो वर्षति तदा वृष्ट्यपगमपर्यन्तमापश्शक्वर्य्य इतिमन्त्रं पुनः पुनः पठेत् । यदायदा विद्युद्विद्योतते तदातदेवं रूपा खलु शक्वर्यो भवन्तीतिमन्त्रं पठेत् । यदायदा मेघो गर्ज्जति तदातदा मह्या महान् घोष इतिमन्त्रं पठेत् ।

महानाम्निक व्रत करनेवाले ब्रह्मचारियों के लिए उन नियमों का उपदेश किया जाता है जो पहले की अपेक्षा विशेष रूप में हैं। ब्रह्मचारी को त्रिकाल स्नान करना चाहिए । सायं प्रातः समिदाधान से पहले भोजन न करे । काले रङ्ग के वस्त्र धारण करे। जो फल या अन्न पकने पर काले हो जाते हों उन फलों का भोजन करे । आचार्य के आधीन रहें । स्मृत्यन्तर में विहित मार्ग भी चलना मना है। तपश्चर्य्या करते हुए दिन में खड़ा रहे। केवल भिक्षा के लिए कहीं जाना हो तो जावे। सन्ध्योपासन के लिए बैठे। रात्रि में बैठे रहे, सोए नहीं। यदि बाहर निकलने पर वर्षा होने लगे तो किसी से आड़ करके घर में न हले। किन्तु जब तक वर्षा बन्द न हो तब तक "आपश्शक्वर्य्यः" मन्त्र को बार बार पढ़ता रहे। जितना ही अधिक विद्युत चमके अथवा मेघ वर्षे उतनाही "मह्यम॰" मन्त्र को पढ़ता हुआ यह मन्त्र विकाश तथा महान शब्द युक्त हों ऐसा विचार करे।

न नदीमतिक्रामेत् । यद्यातिक्रामेत्स्नात्वाऽतिक्रामेत् । अतिक्रम्य वा स्नानं कुर्यात् । नौकारोहणं न कुर्यात् । नावारोहणाभावे केनापि निमित्तेन प्राणसंशये स्नात्वा नौकारोहणं कुर्यात् । पारं तीर्त्वा वा स्नायात् । उदकस-

स्त्वन्यिनियमानां त्रिषवणस्नानादीनामवश्यानुष्ठानम्। महानाम्नीनामुदकाधीनत्वादुदकदातृत्वाच्च । इत्थं व्रतमनुष्ठितवतः परमेश्वरात्सर्वकामावाप्तिरिच्छानुसारेण महती वृष्टिर्वा फलम् । केषाञ्चित्कर्म्मणामनुष्ठानमनुजानाति परमकृपालुराचार्य्यः । कृष्णवस्त्रधारणम् । दिवोर्द्ध्वस्थितिः । निशायामुपवेशनम् । शयनाभावश्च । पथिप्रदानं । कृष्णपदार्थभक्षणम् । एतेषां शक्त्यभावे सति नानुष्ठानम् ।

अर्थ—नदी पार न करे। यदि करना हो तो स्नान करके पार करे। अथवा पार जाकर स्नान कर लेवे। नाव पर न चढ़े। यदि न चढ़ने से मरण का सन्देह हो तो स्नान करके चढ़े। अथवा नाव से उतर कर स्नान करे। जल संबंधी नियमों में तीन वार अवश्य स्नान करे। महानाम्नी व्रत इच्छानुसार फल देने वाला है। इस प्रकार की तपस्या करने पर परमेश्वर की कृपा से जो इच्छा हो पूर्ण होती है। यदि महान वृष्टि की इच्छा हो तो भी पूर्ण हो जाती है। किसी २ धर्म का अनुष्ठान परम कृपालु आचार्य जानते हैं। कृष्ण वस्त्र का धारण, दिन में खड़े रहना, रात्रि में बैठे रहना, सूनने का निषेध, पथ प्रदान और कृष्ण पदार्थ का भोजन अनावश्यक नहीं किन्तु विकल्प है।

त्रेधाविभक्तव्रतकालस्य प्रथमभागान्ते एकस्यास्तोत्रियायाश्श्रावणम् । मध्यमभागान्ते द्वितीयस्तोत्रियायाश्श्रावणम्। तृतीयभागान्ते तृतीयस्याः स्तोत्रियायाश्श्रावणम्। सर्वव्रतान्ते वा सर्वासां महानाम्नीनां

स्तोत्रियाणां युगपदेव श्रावणम्। तासामध्ययनप्रयोग उच्यते। अरण्ये गत्वोदकपूरितकांस्यपात्रे सर्वौषधीः प्रक्षिपेत्। व्रीहिशालि मुद्ग-गोधूम-तिल-यव-सर्षपाः सर्वौषधयः। तज्जले हस्तद्वयं ब्रह्मचारिणस्थापयित्वा प्रादक्षिण्येनाहतवस्त्रेण नेत्रपिधानं कुर्यात्। एवं निमग्न हस्ताय पिहितनेत्राय त्रिरात्रमुपोषिताय व्रतान्ते महानाम्नीश्श्रावयेत्। अथवा नेत्रपिधानान्ते श्रावयेत्। नात्र त्रिरात्रोपवासः। पिहितनेत्रो जले निमग्नहस्तो वाग्यतोऽरण्ये निवसन् त्रिरात्रं न भुञ्जीत। अशक्तावहोरात्रं वा। अध्यापनान्ते उपवासः। उपवासान्ते वाऽध्यापनम्। अथवा दिवाऽरण्ये तिष्ठेद्रात्रौ ग्रामे।

अर्थ—इस महानाम्निका व्रत के समय को तीन भागों में विभक्त कर देवे। आचार्य हर एक के अन्त में महानाम्नी साम के एक एक स्तोत्र को सुनावे। व्रत समाप्त के समय महानाम्नी साम के सब मन्त्रों को दुबारा सुना देवे। महानाम्नी साम के अध्ययन के प्रयोग को आगे लिखा जाता है।

ब्रह्मचारी महानाम्नी साम के अभ्यास करने के लिए वन में जाकर रहे। कांसे के पात्र में जल भर देवे। धान, साठी, मूंग, गेहूँ, तिल, यव और सरसो को सर्वौषधि कहते हैं। इन सब प्रकार की औषधियों का संग्रह करे। उस कांसे पात्र में रखे हुए जल में इन ओषधियों को छोड़ देवे। ब्रह्मचारी उसी जल में अपने दोनों हाथों को डुबोकर नये वस्त्र से आखों को बन्द कर लेवे पूर्वोक्त रूप से हाथों को जल में डुबोए और

आंखों को बन्द किए हुए तीन दिन उपवास व्रत करें। व्रत के अन्त में आचार्य महानाम्नी साम का पाठ सुनावें। यदि इच्छा न हो तो तीन रात्रि दिन का उपवास आवश्यक नहीं है। केवल जल में हाथ डुबोकर नेत्रों को बन्द कर लेवें। ब्रह्मचारी को यदि तीन दिन रात्रि उपवास करने का सामर्थ्य न हो तो केवल एकही दिन का उपवास करें। कुछ लोगों का मत है कि अध्ययन के अन्त में उपवास करें। दिन में वनमें और रात्रि होने पर ग्राम में रहें।

त्रिरात्रव्रतान्ते आचार्यो वनं गत्वा पूर्वोक्तलक्षणं स्थण्डिलं विधाय पञ्च भूसंस्कारान्कृत्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्याऽऽज्यतन्त्रेण व्याहृतिभिर्हुत्वाऽग्न्यादीन्प्रदर्शयेन्मन्त्रेण ब्रह्मचारिणम् । प्रतिद्रव्यं मन्त्रावृत्तिः । अग्निराज्यमादित्यो ब्राह्मणोऽनड्वानन्नं जलं दधि । एतेऽग्न्यादयः । एतान्पृथक्पृथक् प्रदर्शयेत् । तत्र मन्त्रः । स्वरभिव्यख्यं ज्योतिरभिव्यख्यम् । अत्र वाग्विसर्गादिः । त्रिवारमग्न्यादीनामवेक्षणम् । ततस्तन्त्रसमाप्तिर्वामदेव्यगानम् । गुरोरभिवादनम् । गुरवे, अनड्वाहं कांस्यपात्रं वासो गां च ते ददामि । पृथक् पृथक् स्तोत्रियाध्यापनपक्षे प्रथमस्तोत्रियाया वृषभः कांस्यपात्रञ्च दक्षिणा । द्वितीयाया वस्त्रम् । तृतीयाया गौः । अशक्तौ यथाशक्ति दक्षिणादानम् । व्रतान्ते ऐन्द्रश्चरुः । अग्ने व्रतपते व्रतं महानाम्निकमेतावत्कालिकमचारिषमित्यादिविशेषयुक्तैर्मन्त्रैः पञ्चाज्याहुतयः । ततोऽरण्याद्गृहमागत्य सर्वैरन्तेवासिभिःसहाचार्यं भो-

जयेत्। अन्येषामपि भिन्नशाखिनां भिन्नगुरूणां ब्रह्म-चारिणां चान्नदानमावश्यकम्॥ इति महानाम्निक-व्रतप्रयोगः।

अर्थ तीन दिन और रात्रि व्यतीत हो जाने पर आचार्य वन में ही जाकर स्थण्डिल बनावे। उसका पंचभू संस्कार कर अग्नि स्थापन करे। भूरादि व्याहृतियों से आहुति प्रदान करे। होम के पश्चात् ब्रह्मचारी को "स्वरभिव्यख्यं ज्योतिरभिव्यख्यम्" मन्त्र को पढ़ता हुआ अग्नि, घृत, सूर्य, ब्राह्मण, बैल, अन्न, जल और दही को पृथक् पृथक् दिखावे। मन्त्र को भी पृथक् पृथक् पढ़े। इसके पश्चात् ब्रह्मचारी मौन व्रत का त्याग करे। उक्त पदार्थों को तीन वार दिखाना चाहिए। तत्पश्चात् शेष विधि को समाप्त कर वाम देव्य साम का गान करे। आचार्य्य आदि गुरुजनों को प्रणाम करे। आचार्य को महानाम्नी साम के प्रथम स्तोत्रा-ध्ययन के लिए बैल, दूसरे के लिए कांस्य के पात्र और वस्त्र और तीसरे के लिए गौ दक्षिणा प्रदान करे। यदि उक्त वस्तुओं को न दे सके तो उसे जो सुगम से मिले वही देवे। व्रत समाप्त के समय ऐन्द्र स्थालीपाक यज्ञ करे। यहाँ भी महानाम्निक आदि ऊह के साथ। घृताहुति प्रदान करे। इस व्रत को पुरा कर वन से गृह आने पर सब शिष्यों के साथ आचार्य को भोजन करावे। अन्य शाखीय ब्रह्मचारी और अभ्यागत आदि को भी भोजन कराना उत्तम है। यही महानाम्निक व्रत का प्रयोग है।

ज्येष्ठसाम्नामध्यापनम्महानाम्न्यध्यापनवदरण्ये। तत्तूक्तम्। ज्येष्ठसामव्रतिनो यावज्जीवमनुष्ठेयानि व्रतान्यु-च्यन्ते। न शूद्रामुद्वहेत्। न पक्षिमांसमश्नीयात्। धान्य-

मध्ये एकं धान्यं वर्जयेत्। गन्तव्यदेशानामेकं देशं वर्जयेत्। कार्पासक्षौमशाणाविकानां मध्ये एकं वर्जयेत्। उद्धृतोदकेन शौचं कुर्य्यात्। मृन्मयपात्रे भोजनं न कुर्य्यात्। मृन्मयेन न पिबेत्। "एतत्सर्वं नियमजातं ज्येष्ठसामिक व्रतोपनयनप्रभृतीत्येके"। "ज्येष्ठसामाध्यापनप्रभृतीत्यपरे"। भौतिकव्रतप्रयोगो गोभिलानुक्तत्वादुपेक्षितः॥

अर्थ—ज्येष्ठ साम के अध्यापन की वही रीति है जो महानाम्नी व्रत का है। उसके विषय में लिखा है कि 'ज्येष्ठसामव्रत जब तक जीवित रहे तबतक करता रहे। ज्येष्ठ सामव्रती शुद्रा से विवाह न करे। किसी पक्षी का मांस न खावे। अन्न में किसी एक अन्न का परित्याग कर देवे। किसी एक देश का आवागमन छोड़ देवे। कपास रेशम, शण और ऊन इनमें से किसी एक वस्त्र को त्याग देवे। किसी एक पात्र में जल लेकर शौच क्रिया करे। मिट्टी के पात्र में भोजन न करे और न जल पीवे। ये सब नियम ज्येष्ठ सामिक व्रती को पालन करना चाहिये। किसी किसी का मत है कि "उपनयन आदि कृत्य भी होंगी, तत्पश्चात् वेदाध्ययन कार्य होंगे। भौतिक व्रत के प्रयोग का इस कारणसे उपेक्षा कर दिया गया है कि उसे गोभिलाचार्य नहीं सूचित किया है।

अथोपाकर्म। पूर्वं गोदानादिव्रतान्तेषु श्रुतानां वेदभागानामुपाकर्मपूर्वकाध्ययननियमायोपाकर्मविधिमधुनोपदिशति। भाद्रपदशुक्ले हस्तनक्षत्रे आचार्य्यश्शिष्यैस्सह स्नात्वा कृतनित्यक्रियो, मृत्तिकास्नानोपयुक्तकुशगोमयादिकमृषिपूजोपयुक्तकुशगन्धपुष्पादिपूजासामग्रीश्च समा-

दाय, ग्रामात्प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा निष्क्रम्य, नाभिदघ्ना यत्र क्वचन स्थिता अपः प्राप्याध्यायोपाकर्माङ्गस्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, मृत्तिकास्नानविधिना स्नात्वा, स्नानाङ्गतर्प्पणं विधाय, छन्दांस्यृषीनाचार्य्यांश्च तर्पयेत्। अत्र सूत्रे च शब्दाद्ब्रह्मादीनां तर्पणम्, ऋषीणां पूजनमभिषेकश्चाभिधीयते।

अर्थ—अब उपाकर्म का प्रयोग लिखा जाता है। ब्रह्मचारी पहले गोदानिक आदि व्रतों में आचार्य मुख से वेदों का श्रवण करता है, पश्चात् उनका उपाकर्म कृत्यके साथ अध्ययन करता है। आगे उसी उपाकर्म विधि का उपदेश किया जाता है। भाद्रपद शुक्ल पक्ष के हस्त नक्षत्र में आचार्य शिष्यों के साथ स्नान करे। नित्य क्रिया के पश्चात् मध्यान्ह स्नान के उपयोगी मिट्टी, गोमय कुशा, ऋषि पूजाके योग्य चन्दन, पुष्प आदि सामग्रियों को लेकर ग्राम से पूर्व अथवा उत्तर नदी आदि जलाशय के तट पर जावे। नाभी मात्र जल में हल कर "अध्यायोपाकर्माङ्ग, स्नानमहँ करिष्ये" योजना के साथ संकल्प करें। मृतिका गोमय आदि लेपन कर स्नान करे। ऋषि और आचार्यों का तर्पण करे। सूत्र में "च" शब्द से ब्रह्मा आदि का तर्पण और ऋषियों का पूजन तथा अभिषेक दोनों माना जाता है।

अथ प्रयोगः॥ कुशपवित्रपाणिराचम्यप्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्त्याधीनानां वेदानां यातयामत्वदोषनिवृत्तिपूर्वकाप्यायनार्थं, अध्येष्यमाणानां वेदानां वीर्यवत्वसिद्ध्यर्थमध्यायोपाकर्माङ्गं ऋषिपूजनतर्प्पणादिकमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, तीरे प्राक्प्रत्यक्षो उदक-

प्रवणे वा यज्ञवृक्षनिर्मिते पीठे प्रागग्रानुदगग्रान्वा कुशानास्तीर्य तेषु पञ्चाशत्कुशनिर्मितान्द्वादशवटून्संस्थापयेत् । ततः कलशोदकं प्रणवव्याहृतिभिर्गायत्र्या चाभिमन्त्र्य तेनोदकेन पीठपूजाद्रव्याण्यात्मानञ्च प्रोक्षयेत् ।

अर्थ—अब उक्त कर्म का प्रयोग लिखा जाता है। प्रथम पवित्र धारण कर आचमन और प्राणायाम करे। देश, काल तिथि, वार आदि स्मरण के पश्चात 'अधीनानां०' वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। जल के किनारे पूर्वाग्र अथवा उत्तराग्र यज्ञोपयोगी वृक्ष का बना हुआ पीढ़ा रक्खे। उसीपर पूर्वाग्र अथवा उत्तराग्र कुशा रक्खे। उन रक्खी हुई कुशाओं पर पचास कुशाओं से बनाए हुए बारह बटू को रक्खे। एक घड़ा में जल भर लेवे। उस जल को प्रणव, त्रिव्याहृति तथा गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। उसी जल से सब पूजा सामग्री और अपने को भी प्रोक्षण करे।

"अत्र केचिद्गौतमादिसामभिर्गौतमादीनामावाहनं कुर्वन्ति" तन्निर्मूलम् । गौतमादिसाम्नां गौतमाद्युषिदृष्टत्वेऽपि गौतमादिप्रतिपादकत्वाभावाद्देवतान्तरप्रकाशकत्वान्नवग्रहादिमन्त्रवद्विनियोजक स्मृत्यभावाच्च । तस्मात्प्रणवव्याहृतिभिः पूजनमभिधीयते । ओं भूर्भुवस्स्वः गौतममावाहयामि ॥१॥ एवं वक्ष्यमाणानामृषीणामावाहनं पृथक्पृथक् कुर्यात् । तद्यथा । ओं भूर्भुवस्स्वः भरद्वाजम् ॥२॥ ओं भूर्भुवस्स्वः विश्वामित्रम् ॥३॥ ओं भूर्भुवस्स्वः जमदग्निम् ॥४॥ ओं भूर्भुवस्स्वः

वशिष्ठम् ॥५॥ ओं भूर्भुवस्स्व कश्यपम् ॥६॥ ओं भूर्भुवस्स्वः अत्रिम् ॥७॥ ओं भूर्भुवस्स्वः गौतमादिसप्तऋषयस्सुप्रतिष्ठा वरदा भवन्तु। इति कुशचटुषु क्रमेणावाहनं कृत्वा समष्ट्योपचारान् कुर्य्यात्। ओं भूर्भुवस्स्व गौतमादिभ्य आसनं समर्प्पयामि। एवमुत्तरेषूपचारेषु। पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्कं पञ्चामृतस्नानं शुद्धोदकस्नानं वस्त्रं यज्ञोपवीतं चन्दनमक्षतान्पुष्पाणि धूपं दीपं नैवेद्यमन्यानप्युपचारान् यथासम्भवं कुर्यात्।

अर्थ—कुछ लोगों का मत है कि जिन साममन्त्रों के गौतम आदि ऋषि हैं उन मन्त्रों को पढ़कर गौतमादि ऋषियों का आवाहन करे, परन्तु इसमें किसी शास्त्र का प्रमाण नहीं है। जिन मन्त्रों के गौतम आदि ऋषि लिखे जाते हैं, उनसे उन ऋषियों का प्रचारक होना सिद्ध होता है। वे लोग उन उन मन्त्रों के देवता नहीं हैं। नवग्रह आदि मन्त्रों के समान उनका स्मृतिकारभि देवतान्तर संबन्ध भी नहीं लिखे है। अतः उनका पूजन प्रणव और व्याहृतियोंही से करना उचित प्रतीत होता है। ओ३म् भूर्भुवस्वः,, विधि से गौतम आदि ऋषियों का पृथक् पृथक् आवाहन और पाद्य, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से पूजन करे।

ततो नाभिदघ्नोदकेनोपविष्टा देवतीर्थेन तत्तीर्थाग्रकुशैर्ऋषीनुच्चैरभिषिञ्चन्तस्तर्पयेयुः। आदौ समुदायेन तर्पणं यथा। ओंकारो महाव्याहृतयो गायत्री ब्रह्मा देवा वेदा ऋषयश्छन्दांस्याचार्य्यास्तृप्यन्ताम्। इति त्रिः। ततः पृथक्।

अर्थ—ऋषियों के पूजन के पश्चात् नाभी तक जल में चला जावे । अङ्गुलियों के अग्र भाग के तरफ कुशाओं का भी अग्र भाग कर हाथ में रक्खे "ओंकार०" वाक्य से एक साथ सब को तीन अञ्जलि जल प्रदान करे । तत्पश्चात् निम्नलिख्यानुसार पृथक् पृथक्—

ओंकारस्तृप्यतु । भूर्भुवस्स्वः महाव्याहृतयस्तृप्यन्तु । तत्सवितुरितिमन्त्रात्मा गायत्री तृप्यतु । सोमं राजानमिति । सोमꣳराजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे । आदित्यं विष्णुꣳसूर्य्यं ब्रह्माणञ्च बृहस्पतिम् । ब्रह्मा तृप्यतु । अग्न आयाहि दशत्युपास्मा इत्यध्यायेन ऋगन्तैरर्द्धर्चैर्वा सन्तर्प्पयेत् ।

अर्थ ओंकार, व्याहृति, गायत्री और "सोम०" से तर्पण करने के पश्चात् "अग्न०" इत्यादि दश मन्त्रों से तर्पण करे । यथा—

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥ त्वमग्ने यज्ञानाꣳहोता विश्वेषाꣳहितः । देवेभिर्म्मानुषे जने ॥ २ ॥ अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥ अग्निर्वृत्राणि जंघनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥ प्रेष्ठं वो

अतिथिँस्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ।
॥ ५ ॥ त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः ।
उत द्विषो मर्त्त्यस्य ॥ ६ ॥ एह्यूषु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा
गिरः । एभिर्वर्द्धास इन्दुभिः ॥ ७ ॥ आ ते वत्सो मनो
यमत्परमाच्चित्सधस्थात । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ ८ ॥
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्द्ध्नो विश्वस्य
वाघतः ॥ ९ ॥ अग्ने विवस्वदाभरास्मभ्यमूतये महे ।
देवो ह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥ वेदास्तृप्यन्तु । एवमुपास्मै
गायतेत्युत्तराध्यायेन देवास्तृप्यन्तु । उपास्मै गायता नरः
पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते । अभि ते मधुना
पयोथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु । स नः पवस्व
शं गवे शं जनाय शमर्वते । शँराजन्नोषधीभ्यः ॥ १ ॥
दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवा
शिरः । हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।
सीदन्तो वनुषो यथा । ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो
दिवा कवे । पवस्व सूर्यो दृशे ॥ २ ॥ पवमानस्य ने कवे

वाजिन्त्सर्गो असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः । अच्छा-
कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये । अवावशंत धीतयः ।
अच्छासमुद्रमिन्दवोस्तंगावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य यो-
निमा ॥ ३ ॥ अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
निहोता सत्सि बर्हिषि । तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन
वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य । स नः पृथुश्रवाय्य-
मच्छादेव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्य्यं ॥ ४ ॥ आ नो
मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतं । मध्वा रजाँसि सुक्रतू ।
उरुशँसा नमोवृधा मन्हा दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः
शुचिव्रता । गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतं ।
पातँ सोममृतावृधा ॥ ५ ॥ आयाहि सुषुमा हित इन्द्र
सोमं पिबा इमं । एदं बर्हिः सदो मम । आ त्वा ब्रह्म-
युजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ।
ब्रह्माणस्त्वा युजा वयँ सोमपामिंद्र सोमिनः । सुता-
वन्तो हवामहे ॥ ६ ॥ इन्द्राग्नी आगतँ सुतं गीर्भिर्नभो
वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता । इन्द्राग्नी जरितुः सचा

यज्ञो जिगाति चेतनः । अथापातमिमꣳसुतं । इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥७॥ उच्चा ते जातमन्धसो दिविसद्भूम्याददे । उग्रꣳशर्म महिश्रवः । स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यतः । वरिवोवित्परिस्रव । एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणां । सिषासंतो वनामहे ॥८॥ पुनानः सोमधारयापो वसानो अर्षति । आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः । दुहान उधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नꣳसधस्थमासदत् । आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥९॥ प्र तुद्रव परिकोशं निषीद नृभिः पुनानो अभिवाजमर्ष । अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोच्छावर्हि रशनाभिर्नयन्ति । स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः । पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टंभो दिवो धरुणः पृथिव्याः । ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन । सचिद्विवेद निहितं यदासा-

अपीच्य ३ृ गुह्यं नाम गोनाम् ॥ १० ॥ अभि त्वा शूर-
नोनुमो दुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमी-
शानमिन्द्र तस्थुषः ॥ ११ ॥ न त्वावा२ँ अन्यो दिव्यो न
पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र
वाजिनो गव्यंतस्त्वा हवामहे ॥ ११ ॥ कया नश्चित्र
आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ।
कस्त्वा सत्यो मदानां म२ँहिष्ठो मत्सदंधसः । दृढाचिदा-
रुजे वसु । अभीषुणः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं
भवास्यूतये ॥१२॥ तं वोदस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमंधसः ।
अभिवत्सन्न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे । द्युक्ष२ँ
सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसं । क्षुमंतं
वाज२ँ शतिन२ँ सहस्रिणं मक्षू गोमंतमीमहे ॥ १३ ॥
तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्र२ँ सबाध ऊतये । बृहद्गायन्तः
सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणं । न यं दुध्रा वरं ते
न स्थिरामुरो मदेषु शिप्रमन्धस । य आदृत्या शशमा-

नाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थं ॥ १४ ॥ स्वादिष्ठया
मदिष्ठया पवस्व सोमधारया। इन्द्राय पातवे सुतः।
रक्षोहा विश्वचर्षणिर भियोनिमयोहते। द्रोणे सधस्थ-
मासदत्। वरिवो धातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहंतमः।
पर्षिराधो मघोनाम् ॥ १५ ॥ पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय
सोमक्रतुवित्तमो मदः। महि द्युक्षतमो मदः। यस्य ते
पीत्वा वृषभो वृषायतेस्य पीत्वा स्वर्विद। स सुप्रकेतो
अभ्यक्रमीदिशोछावाजं नैतशः ॥ १६ ॥ इन्द्रमच्छसुता
इमे वृषणं जन्तु हरयः। श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः।
अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः। सोमो जैत्रस्य
चेतति यथा विदे। अस्येदिन्द्रो मदेष्वाग्नाभं गृभ्णानि
सानसिं। वज्रश्च वृषणं भरतसमप्सुजित् ॥ १७ ॥
पुरोजिती वो अंधसः सुताय मादयित्नवे। अपस्वानं
श्नथिष्ठ न सखायो दीर्घजीह्वयं यो धारया पावकया
परिप्रस्पन्दते सुतः। इन्दुरश्वो न कृत्व्यः।

मभीनरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥ १८ ॥ अभि प्रियाणि पवते चनो हितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्द्धते । आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वंचमरुहद्विचक्षणः । ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्द्धियो अस्या अदाभ्यः । दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्या ३३ नाम तृतीयमधिरोचनं दिवः । अव द्युतानः कलशाꣳ अचिक्रद नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये । अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधित्रिपृष्ठ उषसो विराजसि ॥ १९ ॥ यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे । प्रप्रवयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषं । ऊर्ज्जो नपातꣳ स हिना यमस्मयु-र्दाशेम हव्यदातये । भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ २० ॥ एह्यूषु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्द्धास इन्दुभिः । यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरं । तत्रा योनिं कृणवसे । न हि ते पूर्त्तम-

त्विपङ्कुवन्नेमानां पते । अथादुवोवनवसे ॥ २१ ॥ वय-
मुत्वामपूर्व्यस्थूरं न कच्चिद्भरंतो वस्यवः । वज्रिञ्चित्रꣳ
हवामहे ॥ उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्रामयो-
धृषत् । त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिं
॥२२॥ अधा हींद्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
उदेवग्मंत उदभिः । वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्द्धन्ति शूर-
ब्रह्माणि ॥ वावृध्वाꣳसं चिद्रद्रिवो दिवेदिवे युंजंति हरि
इषोरस्य गाथयोरौरथ उरुयुगे वचोयुजा । इन्द्रवाहा
स्वर्विदा ॥ २३ ॥ इत्यर्द्ध प्रपाठकः । देवास्तृप्यन्तु ॥

अर्थ—इन आधे प्रपाठक के २३ मन्त्रों से देवताओं का तर्पण करे ।

ततो भूरादिसमस्तव्याहृतिभिः सन्तर्प्यन्ते ऋषयः । ओं भूस्तृप्यतु । ओं भुवस्तृप्यतु । ओं स्वस्तृ । ओं महस्तृ । ओं जनस्तृ० । ओं तपस्तृ० । ओं सत्यं तृ० । ओं ऋषयस्तृप्यन्त । तत अग्न आयाहीत्यादितत्तच्छन्दस्काभिर्ऋग्भिश्छन्दांसि तर्पयेयुः अग्न आयाहि-ऋगन्ते गायत्री ।

दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्धत्क्राणा विवस्वते नाभा संदाय नव्यसे । अधप्रनूनमुपयंति धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः । अत्यष्टिस्तृप्यतु । ओं घर्मः प्रवृक्तस्तन्वा समानृधे वृधे । ओं धृतिस्तृप्यतु । सर्पत प्रसर्पत सुवर्गमेम ते वयम् ॥ ओं अतिधृतिस्तृप्यतु । संयमन्नन्याय मन्वियमन्नसमायमन् । ओं कृतिस्तृप्यतु । चराचराय वृहत इदं वाममिदं वृहत् । ओं प्रकृतिस्तृप्यतु । द्यौरक्रान्भूमिरततन्त्समुद्रँ समचुकुपत् । ओं आकृतिस्तृप्यतु । ज्योतिष्पत स्वः प्पतान्तरिक्षं पृथिवीं पंच प्रदिशः । ओं विकृतिस्तृप्यतु । मनोजयिद्धृदयमजयिदिन्द्रोजयिदहमजैषम् । ओं संस्कृतिस्तृप्यतु । प्रागदन्यनुवर्त्तते रजोपागन्यत्तमो पेवतिभ्यसा । ओं अभिकृतिस्तृप्यतु । ओं अधिप । तायि । मित्रप । तायि । क्षत्रप । तायि । स्वः प्पतायि । धनपतारयि । नारमाः । ओं उत्कृतिस्तृ० । इति विच्छन्दांसि । ततो वंशीयानामृषीणां प्रतिनामभिः प्रथमं तर्पणं । तद्यथा । ओं नमो ब्रह्मणे नमो

ब्राह्मणेभ्यो, नम आचार्य्येभ्यो, नम ऋषिभ्यो, नमो देवेभ्यो नमो वेदेभ्यो, नमो वायवे, च मृत्यवे, च विष्णवे, च नमो वैश्रवणाय, चोपजयाय च। इत्यन्तं कृताञ्जलिः पठित्वा तर्प्पयेत् ।

अर्थ—"नमो ब्रह्मणे" इत्यादि वाक्यों को पढ़ता हुआ कृताञ्जलि कर पुनः तर्पण—

शर्वदत्तस्तृप्यतु ॥ १ ॥ रुद्रभूतिस्तृ० ॥ २ ॥ त्रातस्तृ० ॥ ३ ॥ निगरस्तृ० ॥ ४ ॥ गिरिशर्म्मा तृ० ॥ ५ ॥ ब्रह्मवृद्धिस्तृ० ॥ ६ ॥ मित्रवर्चास्तृ० ॥ ७ ॥ सुप्रतीतस्तृ० ॥ ८ ॥ बृहस्पतिगुप्तस्तृ० ॥ ९ ॥ भवत्रातस्तृ० ॥ १० ॥ कुस्तुकस्तृ० ॥ ११ ॥ श्रवणदत्तस्तृ० ॥ १२ ॥ सुशारदस्तृ० ॥ १३ ॥ ऊर्ज्जयन्तस्तृ० ॥ १४ ॥ भानुमाँस्तृ० ॥ १५ ॥ आनन्दजस्तृ० ॥ १६ ॥ शाम्बस्तृ० ॥ १७ ॥ काम्बोजस्तृ० ॥ १८ ॥ मद्रगारस्तृ० ॥ १९ ॥ सातिस्तृ० ॥ २० ॥ सुश्रवस्तृ० ॥ २१ ॥ प्रातरनूहस्तृ० ॥ २२ ॥ केतुस्तृ० ॥ २३ ॥ मित्रविन्दस्तृ० ॥ २४ ॥ सुनीथस्तृ ॥ २५ ॥ सुतेमनास्तृ० ॥ २६ ॥ अंशुस्तृ० ॥ २७ ॥ अमावस्यस्तृ० ॥ २८ ॥ राधस्तृ० ॥ २९ ॥ गातास्तृ० ॥ ३० ॥ संवर्गजित्तृ० ॥ ३१ ॥ शाकदासस्तृ० ॥ ३२ ॥ विचक्षणस्तृ ॥ ३३ ॥ गर्द्दभीमुखस्तृ० ॥ ३४ ॥ उदरशाण्डिल्यस्तृ० ॥ ३५ ॥ अतिधन्वातृ०

॥ ३६ ॥ मशकस्तृ० ॥ ३७ ॥ स्थिरकस्तृ० ॥ ३८ ॥ वसिष्ठस्तृ० ॥ ३९ ॥ वासिष्ठस्तृ० ॥ ४० ॥ सुमन्त्रस्तृ० ॥ ४१ ॥ शूषस्तृ० ॥ ४२ ॥ शालस्तृ० ॥ ४३ ॥ हतिस्तृ० ॥ ४४ ॥ इन्द्रोतस्तृ० ॥ ४५ ॥ वृषशुष्णस्तृ० ॥ ४६ ॥ निकोथकस्तृ० ॥ ४७ ॥ प्रतिथिस्तृ० ॥ ४८ ॥ देवतरास्तृ० ॥ ४९ ॥ शवास्तृ० ॥ ५० ॥ अग्निभूस्तृ० ॥ ५१ ॥ इन्द्रभूस्तृ० ॥ ५२ ॥ मित्रभूस्तृ० ॥ ५३ विभण्डकस्तृ० ॥ ५४ ॥ ऋष्यशृङ्गस्तृ० ॥ ५५ ॥ कश्यपस्तृ० ॥ ५६ ॥ अग्निस्तृ० ॥ ५७ ॥ इन्द्रस्तृ० ॥ ५८ ॥ वायुस्तृ० ॥ ५९ ॥ मृत्युस्तृ० ॥ ६० ॥ प्रजापतिस्तृ० ॥ ६१ ॥ ब्रह्मा तृ० ॥ ६२ ॥

ततोऽग्न्यादीनां तर्पणम्। अग्निस्तृप्यतु। प्रजापतिस्तृप्यतु। विश्वेदेवास्तृप्यन्तु। ओंकारस्तृप्यतु। वषट्कारस्तृप्यतु। महाव्याहृतयस्तृप्यन्तु। गायत्रीतृप्यतु। ब्रह्मातृप्यतु। विष्णुस्तृप्यतु। वेदास्तृप्यन्तु। देवास्तृप्यन्तु। ऋषयस्तृप्यन्तु। मुनयस्तृप्यन्तु। आचार्यास्तृप्यन्तु। पुराणानि तृप्यन्तु। छन्दाꣳसितृप्यन्तु। यज्ञास्तृप्यन्तु। अध्ययनं तृप्यतु। द्यावापृथिव्यौतृप्येताम्। अन्तरिक्षं तृप्यतु। अहोरात्राणि तृप्यन्तु। मासास्तृप्यन्तु। ऋतवस्तृप्यन्तु। संवत्सरस्तृप्यतु। वरुणस्तृप्यतु। समुद्रास्तृप्यन्तु। नद्यस्तृप्यन्तु। गिरयस्तृप्यन्तु। क्षेत्राणितृप्यन्तु। वनानि तृप्यन्तु। ओषधयस्तृप्यन्तु। वनस्पतयस्तृप्यन्तु

पशवस्तृप्यन्तु। नागास्तृप्यन्तु। उरगास्तृप्यन्तु। सुपर्णा-स्तृप्यन्तु। वयांसि तृप्यन्तु। गावस्तृप्यन्तु। वसवस्तृ-प्यन्तु। रुद्रास्तृप्यन्तु। आदित्यास्तृप्यन्तु। मरुतस्तृप्यन्तु। सिद्धास्तृप्यन्तु। साध्यास्तृप्यन्तु। गन्धर्वास्तृप्यन्तु। पिशाचास्तृप्यन्तु। यक्षास्तृप्यन्तु। रक्षांसितृप्यन्तु भूतानि तृप्यन्तु। नक्षत्राणि तृप्यन्तु अश्विनौ तृप्येताम् अप्सरसस्तृप्यन्तु। चतुर्विधभूतग्रामस्तृप्यतु। मरीचि-स्तृप्यतु। अत्रिस्तृ०। अङ्गिरास्तृ०। पुलस्तिस्तृ०। पुल-हस्तृ०। क्रतुस्तृ०। प्रचेतास्तृ०। वसिष्ठस्तृ०। भृगुस्तृ० नारदस्तृ०। सप्तर्षयस्तृप्यन्तु। अरुन्धती तृ०। गोभि-लाचार्यस्तृ०। एवमादयः स्वस्ति कुर्वन्तु तर्पिताः स्वस्ति कुर्वन्तु तर्पिता॥

अथापसव्येन तिलैर्द्विगुणदर्भैः पितृतीर्थेन त्रिस्तर्पयेत्।

अर्थ—यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर धारण कर लेवे जो वाम पार्श्व में लटकी रहे। हाथ में दुगुन कुशाएँ लेकर तिल के साथ दक्षिण मुख पितृ तीर्थ से तीन तीन अञ्जलि देता हुआ—

ओंकारो महाव्याहृतयो गायत्री ब्रह्मा वेदा देवा ऋषयः पितरश्छन्दास्याचार्यास्तृप्यन्तु। एवं त्रिः। राणायनिस्तृप्यतु। शाट्यमुग्रस्तृ०। व्यास-स्तृ०। भागुरिस्तृ०। औगुण्डिस्तृ०। गौल्गुल्विस्तृ०। भानुमानौपमन्यवस्तृ०। कराटिस्तृ०। मशकोगार्ग्यस्तृ०।

वार्षगण्यस्तृ० । कौथुमिस्तृ० । शालिहोत्रिस्तृ० । जैमिनिस्तृ० त्रयोदशैते मे सामगाचार्याः स्वति कुर्वन्तु तर्पिताः० ॥ शठिस्तृ० । भाल्लविस्तृ० । काल्लविस्तृ० । ताण्ड्यस्तृ० । वृषाणकस्तृ० । रुरुकिस्त० । शमवाहुस्तृ० । अगस्त्यस्तृ० । वष्कशिरास्तृ० । हूहूस्तृ० । दशैते मे प्रवचनकर्त्तारः स्वस्ति कु० ॥ कव्यवालस्तृ० । नलस्तृ० । सोमस्तृ० । यमस्तृ० । अर्यमा तृ० । अग्निष्वात्तास्तृप्यन्तु । सोमपास्तृप्यन्तु । वर्हिषदस्तृप्यन्तु । यमस्तृ० । धर्मराजस्तृ० । मृत्युस्तृ० । अन्तकस्तृ० । वैवस्वतस्तृ० । कालास्तृप्यन्तु । सर्व भूतक्षयस्तृप्यन्तु औदुम्बरस्तृ० । दध्नस्तृ० नीलस्तृ० परमेष्ठी तृ० । वृकोदरस्तृ० । चित्रस्तृ० । चित्रगुप्तस्तृ० ।

तत उत्तरवंशीयानाम् अर्यमभूतिस्तृ० । भद्रशर्मा तृ० । पुष्पयशसस्तृ० । सङ्करस्तृ० । अर्यमगोभिलस्तृ० । पूषमित्रगोभिलस्तृ० । अश्वमित्रगोभिलस्तृ० । वरुणमित्रगोभिलस्तृ० । मूलमित्रगोभिलस्तृप्यतु । वत्समित्रगोभिलस्तृ० । गौल्गुल्वीपुत्रगोभिलस्तृ० । बृहद्वसुर्गोभिलस्तृ० । ततो राधादिद्वितीयखण्डोक्तांस्तर्प्पयेत् । राधस्तृप्यतु । गातास्तृ० । संवर्गजिनस्तृ० । शाकदासविचक्षणस्तृ० । गर्द्दभीमुखस्तृ० । उदरशाण्डिल्यस्तृ० । अतिधन्वास्तृ० । मशकस्तृ० स्थिरकस्तृ० । वसिष्ठस्तृ० । वासिष्ठतृ० । सुमन्त्रस्तृ० ।

शूषस्तृ०। रालस्तृ०। दृतिस्तृ०। इन्द्रोतास्तृ०। वृषशुष्णस्तृ०। निकोथकस्तृ०। प्रतिथिस्तृ०। देवतरास्तृ०। शवसायनस्तृ०। अग्निभूइन्द्रभूमित्रभुवस्तृप्यन्तु। विभण्डकस्तृ०। ऋष्यशृङ्गस्तृ०। कश्यपस्तृ०। अग्निस्तृ० इन्द्रस्तृ०। वायुस्तृ०। मृत्युस्तृ०। प्रजापतिस्तृ०। ब्रह्मा तृप्यतु।

ततः समाचारान्निवीतिना सनकादीन् सन्तर्प्याचम्य, ऋषीन्सम्पूज्य, ऋषिश्राद्धं कृत्वा, ऋषिमाल्यामादाय, प्लवसाम्ना तद्ब्राह्मणेन च संप्लाव्य, निमज्याचम्य, अरिष्टवर्गसामानि पठित्वा, ऋषीनादाय, गृहम्प्रागच्छेयुः॥ इति ऋषितर्पणप्रयोगः॥

अर्थ—उपरोक्त तर्पण के पश्चात् आचार के अनुसार निवीती हो कर सनकादि ऋषियों का अर्पण करे। आचमन कर ऋषियों का पूजन करे। ऋषि श्राद्ध करे। ऋषियों की पूजापर चढ़ाई हुई मालाओं को लेकर प्लव साम और प्लव ब्राह्मण को पढ़ता हुआ नदी आदि जलाशय में वहवा देवे। जल में गोता लगा कर अरिष्ट साम का पाठ करे। कुश निर्मित ऋषियों को लिए हुए गृह को आवे। यही ऋषि तर्पण और पूजन का प्रयोग है।

अथोपाकर्मप्रयोगः। तत्र येषां ब्रह्मचारिणां पूर्वमुक्तान्तश्रुतस्य वेदस्य प्रथमारम्भस्तेषामत्र वृद्धिश्राद्धम्। आनीतानृषीन् शुभपीठाद्यासने कुशोपरि संस्थाप्य गन्धादिभिरुपचारैः सम्पूज्याचम्य शालाग्नेः [illegible] ग्नौ समिधं हुत्वा ब्राह्मणमुपवेश्य [illegible]

तत्र विशेषः । रत्ना, धाना, दधि चासाद्य सम्प्रोक्ष्य देशकालौ सङ्कीर्त्य छन्दोयातयामत्वनिवृत्तये नित्य-विधिरूपमुपाकर्माङ्गहोममहंकरिष्ये इति सङ्कल्प्याग्निं परिस्तीर्य्य, इध्ममभ्याधायाज्यं संस्कृत्य, पर्युक्ष्य, स्रुवं सम्मृज्य, व्याहृतित्रयं हुत्वा, पङ्क्त्याकारेणोपविष्टां-श्छिष्यान्पाठयेद्गायत्रीं संहितावत् । तत्सवितुर्व्वरेण्यम् । इति प्रथमम् । ततः । भर्गो देवस्य धीमहि । ततः धियो यो नः प्रचोदयात् । ततोऽर्द्धर्चेशः पुनः समस्ताम् । ततः । सावित्रं साम ।

अर्थ—ये उपरोक्त देव, ऋषि आदि के तर्पण का प्रयोग समाप्त हुआ । यद्यपि ज्येष्ठ सामिकव्रत के पश्चात् "अथोपाकर्म" वाक्य लिख-कर आरम्भ किया गया है परन्तु ऋषि तर्पण कर्म तक गृह्य सूत्र का कोई स्पष्ट आदेश नही सूत्रित है। यह आचार से विशेष संबन्धि है ।

अब उपाकर्म का प्रयोग अङ्कित किया जाता है । जो गोभिलाचार्य ने सूत्रित किया है। जिन ब्रह्मचारियों को आचार्य ने वेद केवल श्रवण करा दिया हो किन्तु उसका अध्ययन (अभ्यास) नहीं किया गया हो उन्हें उपाकर्म कृत्य सम्पन्न कर अध्ययन करना चाहिए। इस उपाकर्म में प्रथम वृद्धि श्राद्ध करना चाहिए । जिसकी विधि श्राद्ध कल्प सूत्र में लिखी है। पीढ़े पर ऋषियों का स्थापन पूजनादि कृत्य के पश्चात् गृह पर आकर। आचमन प्राणायाम करे । गृह्याग्नि के पश्चिम बैठकर बिना मन्त्र एक समिध होम कर देवे । ब्रह्मवरण से आरम्भ कर व्याहृति होमान्त

कृत्य सम्पन्न करे। यहाँ पर आसादन में विशेषता यह होगी कि रक्षा सूत, भुँना हुआ जौ और दही भी रहेगा। देश काल, आदि स्मरण के पश्चात् "छन्दो यात०" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। अग्निका परिस्तरण, इध्म प्रक्षेप, आज्य संस्कार, पर्युक्षण और स्रुव प्रतपन कर व्याहृतियों से तीन घृताहुति प्रदान करे। एक पंक्ति में सब शिष्यों को बैठाकर प्रथम संहिता पाठ के अनुसार सावित्री मन्त्र का एक एक चरण पढ़ावे। चतुर्थ वार आधे ऋचा को पढ़ा कर पुनः पुरा पुरा गायत्री मन्त्र को पढ़ा देवे। "सोमꣳ राजानं०" मन्त्रों के पढ़ाने के प्रथम वेद के पर्व (प्रकरण) को पढ़ा देना चाहिए। तत् पश्चात् "सोमꣳ राजानम् उच्चा" साम का अध्ययन करावे यथा—

सोमꣳ राजानमिति वृहस्पतिर्ऋषिरनुष्टप्छन्दो विश्वेदेवा देवता पङ्क्त्याकारेण शिष्यान्

४र ५ ४र २ ५ ५ ५ २ १

पाठने विनियोगः। सोमꣳ राजानं वरुणाम्। अग्नि-

र २र १ २ २ २१ १ २ १र

मन्वारभामहे३ होवा३हाइ। आदित्यं विष्णुꣳसू-

२ १ २ २ २१र २ १ २ २

र्यम्। होवा३हाइ। ब्रह्माणाऽ२३ब्बा३। होवा३हाइ।

१ र २ ३ ५

वृहा३उवा३। पा२३४तोम्। ततो वेदस्यादिनिः पर्वनामानि

४ ५र ४ ५ ५ ४

पाठयेत्। ॐ ओग्नायि। ॐ तद्यौहोवा ॐ उच्चा। ततश्छन्दोहोमः।

अर्थ—उपरोक्त मन्त्र पाठ के पश्चात् स्रुवा से घृत ले लेकर निम्नाङ्कित मन्त्रों को पढ़ता हुआ आहुतियों को प्रदान करे यथा—

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि स्वाहा । गायत्र्या इदं न ममेति त्यागः । एवं सर्वत्र । पुरुन्त्वा दाशिवा२ँवोचेररिग्ने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आमहस्य स्वाहा । उष्णिह इदं० अग्न ओजिष्ठमाभर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो । प्रनो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् स्वाहा । अनुष्टुभ इदं० । यज्ञा-यज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे । प्र प्रवयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शᳪसिपं स्वाहा । बृहत्या इदं० । स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः । या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यं स्वाहा । पङ्क्त्या इदं० । आजुहोता हविषामर्जयध्वं निहोतारं गृहपतिं दधिध्वं । इडस्पदे नमसा रातहव्यᳪ सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् स्वाहा । त्रिष्टुभ इदं० । चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे । अनूधा यदजीजनदधाचिदाववक्षत्सद्यो महि दूत्या३ᳪ

१ २   १ २ १ १ २ १ ३
चरन् स्वाहा। जगत्या इदं०। प्र वो महे मनयो यन्तु
१ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   १ २ १
विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवया मरुत्। प्रशर्द्धाय
१ २र   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे
१ २   ३ १ २
स्वाहा। अतिजगत्या इदं०। प्रोष्वस्मै पुरो रथमिन्द्राय
३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २   १ २
शूषमर्चत। अभीके चिदुलोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा।
३ १ २   ३ १ २र   ३ १ २ ३ १ २
अस्माकं बोधि चोदिता नभतामन्यकेषां ज्याका अधि
१ २   २ ३ १ २र   १ २
धन्वसु स्वाहा। शक्वर्य्या इदं०। तवन्त्यं नर्यं नृतो
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २   २ ३ १ २
इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतं। यो देवस्य
१२ ३   १ २ ३   १ २ ३ २   ३ २   २ ३   १ २ ३ १
शवसा प्राणिणा असुरिणं नपः। भुवो विश्वमभ्य-
२ ३ १ २   ३ १ २र   ३ २ ३ १ २र
देवमोजसा विदेदूर्ज२ शतक्रतुर्विदेदिषं स्वाहा। अति-
१ २   ३ १ २र   १ २
शक्वर्य्या इदं०। त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्म-
३ १ २र ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २   १ २ ३
स्तृंपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशं। स ईं ममाद
२ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १   २र   २ ३ २ ३
महि कर्म कर्त्तवे महामुरु२ सैन२ संश्चद्देवो देवा२
३ १   २र ३ १   २र   २ ३
सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रं स्वाहा। अष्ट्या इदं०। अग्न
१ २   ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १   २ ३ २ २
औषट् पुरो अग्निं धिया दध आनुत्यच्छर्द्धो दिव्यं वृणी-

मह इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्ध्यचक्राणा विवस्वते नाभा-
संदाय नव्यसे । अधमनूनमुपयन्ति धीतयो देवा अच्छा
न धीतयः स्वाहा । अत्यष्ट्या इदं० । धर्मः प्रवृत्तन्तन्वा
समानृधे वृधे स्वाहा । धृत्या इदं० । सर्पन्त प्रसर्पन्त सुवर्ग-
सेम ते वयं स्वाहा । अतिधृत्या इदं० । संयमन्नव्याय-
मवन्विमञ्च समान्यमन् स्वाहा । कृत्या इदं० । चरा-
चराय वृहत इदं वायमिदं वृहत्स्वाहा । प्रकृत्या इदं० ।
द्यौरक्षान्सूम्भिरततनत्समुद्रँ समचूकुपत्स्वाहा । आकृत्या
इदं० । ज्योतिष्पत स्वः प्पतान्तरिक्षं पृथिवीं पंच प्रदिशः
स्वाहा । विकृत्या इदं । मनो जयिद्धृदयमजयिदिन्द्रो
जयिदहमजैषम् स्वाहा । सङ्कृत्या इदं० । प्रागन्यदनु-
वर्त्तते रजो पागन्यतमो पेपति भ्यसा स्वाहा । अभि-
कृत्या इदं० । अधिप । तायि । मित्रप । तायिः । क्षत्रप
तायि । स्वःप्प तायि । धनपतारयि । नास्माः स्वाहा । उत्कृ-
त्या इदं० । ततो गानपर्वादिहोमः । यथा । ओं ओग्नायि

स्वाहा। आग्नेयायेदं०। तद्धौहोवा स्वाहा। इन्द्रायेदं०। ओं उच्चा स्वाहा। पवमानायेदं। ओं यद्यावई स्वाहा। अर्कायेदं०। ओं हाउ ३। आयु ३। सात्यं ३। इन्द्रन्नरो स्वाहा। छन्दायेदं०। ओं हुवेवाचाम्। स्वाहा। वाचोव्रत्तायेदं०। ओं ए २। विदामघवन्विदाः स्वाहा। शक्वार्य्या इदं०। ओं उच्चाता ३ इयिजातमन्धसाः। स्वाहा। दशरात्रायेदं०। ओं वृषापा ३ वस्वधारया स्वाहा। संवत्सरायेदं०। ओं प्रत्यस्मैपिपी स्वाहा। एकाहायेदं०। ओं पन्यं पन्यमित्सोतारः। पन्यं पन्यो वा स्वाहा। अहीनायेदं०। ओं विशः। विशो ३। वो अतिथाइम् स्वाहा। सत्रायेदं। ओं प्रत्नꣳसधस्थमाहो २। सदात्स्वाहा। प्रायश्चित्तायेदं०। ओं आभि त्वा शूरनोनुमाः स्वाहा। क्षुद्रायेदं०। ओं आभित्वा शूरनोनुमा स्वाहा। क्षुद्रायेदं०। ओं आभित्वा शूरनोनुमो वा स्वाहा। दशरात्रायेदं०। पूनानस्सोमधारयोवा स्वाहा।

संवत्सरायेदं० ओं उहुवा ओहा । ओं होवा । पुरोजिताग्नि स्वाहा । एकाहायेदं० । चयोहम् । प्रमुन्वनाना २ स्वाहा । अहीनायेदं० । ओं मा भेम माश्रमिष्मोवावा स्वाहा । सत्रायेदं० । ओं उहुवा ओहाओहो वा तम्वोदस्माम् स्वाहा । प्रायश्चित्तायेदं० । ओहोग्नियज्ञायज्ञावो अग्नया३ए स्वाहा । क्षुद्रायेदं० । अग्नआयाहीत्यृचं पठित्वा, अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि स्वाहा । छन्दस्या इदं० । ओं इन्द्र ज्येष्ठं न आभर ओजिष्ठं पुपुरिश्रवः । यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी ओभेसुशिप्रपपाः स्वाहा । आरण्या इदं० । विदा मघवन् विदा गातुमनुशँसिषो दिशः शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरुवसो स्वाहा । महानाम्नीभ्य इदं० । ओं उपास्मै गायतानरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँइयक्षते स्वाहा उत्तराया इदं० ।

महन्मे वोचो भर्गो मे वोचो यशोमेवाचे स्तोमं मे वोचो भुक्तिं मे वोचः सर्वं मे वोचस्तन्मावतु तन्मा

विशतु तेन भुक्षिषीय स्वाहा । ताण्ड्यब्राह्मणायेदं० । ब्रह्म च वा इद मग्रे सुब्रह्म चास्तां स्वाहा । षड्विंशायेदं० । ब्रह्मा ह वा इदमग्र आसीत् स्वाहा । सामविधानायेदं० । अथ खल्वयमार्षप्रदेशो भवति स्वाहा । आर्षेयायेदं० । अग्निरिन्द्रः प्रजापतिः सोमो वरुणस्त्वष्टाङ्गिरसः पूषा सरस्वतीन्द्राग्नी स्वाहा । देवताध्यायायेदं० । अथातः संहितोप निषदो व्याख्यास्यामः स्वाहा । संहितोपनिषद इदं । ओं नमो ब्रह्मणे नमो ब्राह्मणेभ्यो नम आचार्येभ्यो नह ऋषिभ्यो नमो देवेभ्यो नमो वेदेभ्यो नमो वायवे च मृत्यवे च विष्णवे च नमो वैश्रवणाय चोपजयाय च स्वाहा । वंशब्राह्मणायेदं० । देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दीव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं न स्वदतु । उपनिषद इदं० । अथातः स्वरशास्त्राणां सर्वेषां वेद निश्चयम् । उच्चनीचविशेषांश्च स्वरान्यत्वं प्रवर्तते स्वाहा । शिक्षाया इदं० । क्लृप्तो ज्योतिष्टमोऽतिरात्रोक्थ्यशो उशीकः स्वाहा । कल्पसूत्रायेदं० । कल्पसूत्रं यदा नाधीतं भवति तदा दशानां सूत्राणां मध्ये यदधीतं भवति तन्नाम्ना होमः कर्त्तव्यः ।

अर्थ—यदि कल्प सूत्र का अध्ययन न किया हो तो दशों सूत्रों में जिसका अध्ययन किया हो उसी से आहुति प्रदान करे ।

अथ वाचो वृत्तिं व्याख्यास्यामः स्वाहा । वैय्याकरणयेदं० । समाम्नायः समाम्नातः सव्याख्यातव्यस्तमिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचत्तते स्वाहा । निरुक्तायेदं० । अथातश्छन्दसां विषयं व्याख्यास्यामः स्वहा । छन्दोभ्य इदं । पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यत्तं प्रजापतिम् । दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः । इदं ज्योतिषामयनविकल्पाः । इदं सूत्रमभ्यतं भवति तस्मात्प्रसिद्धं अनिषिद्धं ज्योतिष उक्ता कस्मादिदं ग्राह्यमेव तेषामयनं विकल्पाय स्वाहा । ज्योतिष उक्ता कस्मादिदं ग्राह्यमेव तेषामयनं विकल्पाय स्वाहा । ज्योतिष इदं० । ततो व्याहृतिचतुष्टयं हुत्वा पुनस्त्रयं हुत्वा समिदाधानपर्य्युत्तणयज्ञवास्तुवस्वाहुत्यन्तं कृत्वा दत्तिणे पाणौ रत्तावन्धनम् ।

अर्थ—"अग्नआयाहि०" मन्त्रों से ६१ घृताहुति प्रदान करे। व्याहृतियों से चार तत्पश्चात् तीन आहुति प्रदान कर दर्शपौर्णमासंवत् शेष कृत्य सम्पन्न करे।

हिरण्यभूषितां यवपोटलिकां विचित्रतन्तुबद्धां,
२र १ २ र र र र र १ २र र २ऽ३ १ १
ए रत्तत नो रत्तितारो गोपायत गोपायितारा २३-
१ १
४५ः ॥ इतिमन्त्रेण । येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वामनुबध्नामि रत्ते माचल

१ २ १ २ १र २ १ र २
माचलेति ॥ तुवं यवायि । छ दाशूऽ२३षाः । नहॅंप्पाहि
२ १र २ १ २ ३ १ ५
श्रू । गुहोगा २३ यिराः । रत्नातो ३ का३म् ऊताऽ२३हा
१ ५ ५
३४ऽ३यि । त्माऽ२३४नो६हायि । इत्यनेन रत्नाबन्धनम् ।
ततः सर्वं धानावन्तमितिमन्त्रेण । अस्य मन्त्रस्य पुष्प-
ऋषिर्गायत्रीछन्द इन्द्रो देवता धानाभक्षणे विनियोगः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
धानावन्तं करंभिणमपूपवंतमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व
नः असंस्वादन्निर्गीर्य्य अनाचान्ता एव दधिक्राव्ण इति ।
अस्यात्रिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द इन्द्रो देवता दधिप्राशने विनि-
३ १ २ ३ १— २र ३ १ २
योगः । दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुरभि नो मुखाकरत्प्र ण आयूंँषि तारिषत् । ततः
समाचान्ताः शिष्याः पङ्क्त्याकारेणो पविशेयुः । एतस्मि
न्नेवकाले आचार्य्योऽपि प्रति सरबन्धनादि कुर्य्यात् । ततः
आचार्य्योऽग्न आयाहीत्याद्यृक्त्रयं तान्येव त्रीणि सामानि
२ ३ १ २ ३ १ २
स्वपठनादनु शिष्यान्पाठयेत् । अग्न आयाहि वीतये
३ २ ३ १ २ १- २र ३ १ २
गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
त्वमग्ने यज्ञानांँहोता विश्वेषांँहितः । देवेभिर्मानुषे
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जने ॥ २ ॥ अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं ।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् । ओं ओग्नायि । आयाही३वोयि-
तोयाऽ२यि । तोयाऽ२यि । गृणानोह् । व्यदातोयाऽ२यि ।
तोयाऽ२यि । नायिहोतासाऽ२३ । त्साऽ२यिवाऽ२३४औ
होवा । ही२३४षी ॥ १ ॥ अग्नआयाहिवी । तयायि ।
गृणानोहव्यदाताऽ२३यायि । निहोनासत्सिबर्हो२३यि-
षी । बर्होऽ२यिषाऽ२३४औ होवा । बर्हो३षीऽ२३४५ ॥२॥
अग्न आयाहि । वा५यितयायि । गृणानोहव्यदा१ता३ये ।
निहोता २३४सा । त्साऽ२३यिबा३ । हाऽ२३४यिषो३हाइ ।
एवं पठित्वा ब्राह्मणभोजनपूर्णपात्रादिसङ्कल्पं कृत्वा वाम-
देव्यं गायेत् ॥ इत्युपाकर्मप्रयोगः ॥

अर्थ—सब लोग दाहिने हाथ में "ग़रक्षत नो०" इन मन्त्रों को पढ़ते हुए रक्षा बान्धे । इस रक्षा सूत को सुवर्ण और जौ की पोटरी आदि से बहुत सुन्दर बनाना चाहिए । "धानावन्तं०" मन्त्र को पढ़ते हुए एक जौ को निगल जावें । आचमन न करें । "दधि क्राव्णो०" मन्त्र को पढ़ते हुए दही खावें । सर्व शिष्य आचमन कर पक्तयाकार में बैठें । इसी समय आचार्य भी रक्षा बन्धन कर लेवें । "अग्न आयाहि०" मन्त्रों को उच्चस्वर से शिष्यों को पढ़ाकर ब्राह्मण भोजन का संकल्प करे । ब्रह्मा को पूर्णपात्र दक्षिणा प्रदान करे और वामदेव्य साम का गान कर उपाकर्म कृत्य को समाप्त करे । यही उपाकर्म का प्रयोग है ।

एवमुपाकरणं कृत्वा तद्दिनमारभ्याध्ययनं न कार्य्यं, किन्तु हस्तनक्षत्रयुक्तदिनं काङ्क्षन्ते, न पठन्तीत्यर्थः। आरण्यकादीनामुपाकरणं येषां दक्षिणायने प्रतिषिध्यते, उदगयने च विधीयते, तेषांमुदगयन उपाकृत्य पक्षिणीं रात्रिं काङ्क्षन्ते न पठन्तीत्यर्थः। "उक्तयोरुपाकरणयोस्त्रिरात्रमनध्यायं मन्यते" केचिदाचार्याः। अथवा, श्रावण्यां पौर्णमास्यामुपाकृत्य न पठन्ति यावद्भाद्रपदो हस्तः।

अर्थ—पूर्वोक्त रित्यानुसार उपाकर्म कर वेद पढ़ना आरम्भ करे। परन्तु उपाकर्म दिन से दूसरे दिन तक विश्राम कर लेवे। जिस नक्षत्र में उपाकर्म किया गया हो उस नक्षत्र युत दिन में अनध्याय रक्खें। जिन महा नाम्निक व्रत करने वाले ब्रह्मचारियों का उपाकर्म सूर्य के उत्तरायण रहते हुए बन में करने की विधि है, उन्हें भी उपाकर्म दिन से दूसरे दिन तक अनध्याय रखना चाहिए। कुछ आचार्यों का मत है कि उपाकर्म दिन से तीन दिन का अनध्याय करना चाहिए। अथवा श्रावण मास की पूर्णमासी को उपाकर्मकर भाद्र मास में हस्त नक्षत्र युत आने वाले दिन तक अनध्याय रक्खे।

पौष्यामुदगयने पुष्यनक्षत्रयुक्ततिथावुत्सर्जनम्। आरण्यकादिग्रन्थाध्ययनायोदगयन उपाकरणपक्षे, भाद्रपदे तैष्यां तिथावुत्सर्जनम्। उत्सर्जनप्रयोग उपाकर्मप्रयोगवत् ज्ञेयः।

अर्थ—दूसरा, उत्सर्जन कर्म होता है। उसे सूर्य के उत्तरायण होने पर पौष की पुष्य नक्षत्रयुक्त पूर्णमासी क [illegible] । आर-

एयार्चिक ग्रन्थों के अध्ययन के लिए सूर्य उत्तरायण के समय उपाकरण तथा भाद्र मास में पुष्य नक्षत्र युत दिन में उत्सर्जन करना चाहिए। उत्सर्जन कर्म का भी वही प्रयोग है जो उपाकरण का है।

स यथा। ततस्तद्दिनमारभ्य भाद्रपदमासीयहस्तादधस्तनपुष्यनक्षत्रं यावद्गृहीतानामृषीणां प्रत्यहं पुष्यनक्षत्रयुतेऽहनि प्रातरेव सशिष्याः प्राङ्मुखा उदङ्मुखा वा ग्रामाद्बहिर्नद्यादौ गत्वा प्रत्यहं पूजनं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, यथाविधि स्थापितानृषीन्पूजयेत्। ततो देशकालौ सङ्कीर्त्य छन्दसामाप्यायनार्थं, यातयामत्वदोषनिवृत्तये, वेदोत्सर्गकर्मणि ऋषीणां पूजनं तर्पणञ्च करिष्ये इति सङ्कल्प्यावाहनं विना पूर्ववदृषीन् सम्पूज्य तथैव तर्पयित्वा पुनः सपूज्य ऋषीन् प्लवसाम्ना प्लावयेत्। हा। वो३हा। वो३हा३। हा। ओ२३४ वा। हायि। पूनाना२३४ः सो। माधारा२३४या। आपोवा२३४सा। नोअर्षा२३४सी। आरत्ना२३४धाः। योनीमा२३४र्त्तो। स्यासीदा२३४सी। उत्सोदा२३४यिवो। हायिरण्या२३४याः। हा। वो३हा। वो३हा३। हा। ओ२३४ वा। हा३४औ होवा। ए३। अतिविश्वानिदुरिता-

२र २३ १ १ १ र १
तरेमा२३४५ । प्लवोन्वहं भवति समुद्रं वा एते प्रस्नान्तियें संवत्सरमुपयन्ति यो वा अप्लवः समुद्रं प्रस्नाति न स तत उदेति यत्प्लवो भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यया अतिविश्वानि दुरितातरेमेति यदेवैषां दुष्टुतं दुःशस्तं तदेतेन तरन्ति । ततो निमज्याचम्य गृहमागच्छेयुः । तत आपुनरुपाकरणाच्छन्दसामनध्यायोऽन्यत्र ब्रह्मयज्ञात् । इत्युत्सर्ज्जनप्रयोगः ॥

अर्थ—आचार्य उपाकरण दिन से भाद्र मास में हस्त नक्षत्र से युक्त आने वाले दिन से पहले जितने दिन पुष्य नक्षत्र युत मिले उस दिन प्रातःकाल शिष्यों को साथ लेकर ग्राम के पूर्व अथवा उत्तर नदी आदि जलाशय पर चला जावे। आचमन आदि कृत्य कर उपाकरण में लिखी हुई विधि से ऋषियों की पूजा करें। देश काल आदि स्मरण के पश्चात् "छन्द सामाध्यायनार्थं०" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। बिना आवाहन पहले उपाकरण में लिखी हुई विधि से ऋषियों का पूजन करे। तर्पण कर पुनः पूजन करे। "हा। वो ३ हा०" मन्त्र से उन्हें जल में तैरा देवे।

प्लवन क्रिया नित्य होती है। जो लोग इस प्लवन कृत्य को समु में करते हैं, अथवा जो समुद्र में एक वर्ष तक स्नान करते हैं उनका स्वर्ग के अयोग्य समस्त दोष दूर हो जाता है।

इस प्रकार गुरु शिष्य को स्नान आचमन कर गृह को जाना चहिए। उपाकर्म के पश्चात् अनध्याय होगी परन्तु ब्राह्मयज्ञ के निमित्त से वेद पाठ किया जावेगा। यही उत्सर्जन प्रयोग है।

ब्रह्मचारिणां, गृहस्थानां, वानप्रस्थानां, चोपाकर्म्मोत्सर्ज्जने तावदावश्यके। अन्यथाऽधीतवेदानां यातयामतास्यात्। नतोऽनध्याया उच्यन्ते। मेघाच्छादनयुक्तदिने छन्दसामध्ययनं न कार्यम्। विद्युत्स्तनयित्नुवर्षणेषु जातेष्वनध्यायः। उल्कापाते, भूमिचलने, उपरागद्वये च दिनमेकमुत्तरमनध्यायः। निर्घातेऽनध्यायः। वक्ष्यमाणासु चतसृष्वष्टकास्वमावास्यायां, पौर्णमास्यां, चतुर्दश्यां, नाध्यायनम्। कार्तिक्यां फाल्गुन्यामाषाढ्यां च पौर्णमासोप्रतिपदोत्तरद्वितीयां नाध्ययनम्। उक्तानध्यायोऽहोरात्रम्। सद्ब्रह्मचारिणि, श्रोत्रिये च, मृतेऽहोरात्रमध्ययनं वर्ज्जयेत्। स्वदेशराजनि च मृतेऽहोरात्रमनध्यायः। आचार्य्ये दिवं गते त्रिरात्रमध्ययनं वर्ज्जयेत्। अनुकूलशिष्ये मृते त्वहोरात्रमनध्यायः। गीतवाद्यरोदनातिवातेषु तत्कालेऽनध्ययनम्। शिष्टाचारादन्येऽप्यनध्याया ज्ञातव्याः॥

अर्थ—उपाकर्म और उत्सर्जन की आवश्यकता ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ इन तीनों के लिए है। ऐसा न करने से वेद का अभ्यास ;बहुत दिन छुटने से विस्मरण होने की संभावना होती जाती है।

नीचे अनध्याय की व्यवस्था लिखते हैं। केवल बादल लगा हो तो सामवेद का पढ़ना पढ़ाना बन्द न करे परन्तु जब बिजुली चमके अथवा वृष्टि होने लगे तो अनध्याय कर देना चाहिए। लूक्क गिरने पर, भूकम्प होने पर, सूर्य और चन्द्रग्रहण होने पर

एक दिन का अनध्याय करना चाहिए। बिजुली गिरने पर दूसरे दिन उसी समय तक अनध्याय होगी जिस समय गिरी हो। पौष, माघ और फाल्गुन की कृष्णा अष्टमी तिथि को अष्ट का कृत्य होती है। उनमें वेद का पढ़ना पढ़ाना बन्द रक्खे। अमावास्या, पौर्णमासी और चतुरदशी तिथियों को अनध्याय करना चाहिए कार्त्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ की पूर्णमासी प्रतिपद और द्वितीया को भी अवश्य अनध्याय रखना चाहिए। ये उपरोक्त अनध्यायें एक दिन और रात्रि की होती हैं। कोई ब्रह्मचारी अथवा वेदपाठी का देहान्त हो जावे तो एक दिन रात्रि का अनध्याय करना चाहिए। अपने देश के राजा के देहान्त हो जाने पर भी एक दिन रात्रि का अनध्याय कर्त्तव्य है। आचार्य्य के देहान्त होने पर तीन दिन, शिष्य के मृत्यु में एक दिन और रात्रि का अनध्याय करना चाहिए। गाने, बजाने, रोदन तथा प्रबल अवा (आँधी) चलना इत्यादि कार्य जब तक होते रहें तब तक के लिए अनध्याय करना चाहिये। शिष्टाचार के अनुसार और भी अनध्यायें होती हैं।

अथ नैमित्तिकप्रायश्चित्तान्युच्यन्ते। दिव्यन्तरिक्षभौमाख्यत्रिविधोत्पाते दम्पत्योः प्रायश्चित्तम्। दोषविनिवृत्तये प्रायश्चित्तानुपदेशाद्व्याहृतिचतुष्टयहोमः। अथ वा, ग्रन्थान्तरोक्ततीर्थस्नानाभिषेकादिरूपं कुर्यात्। तत्रेतिकर्त्तव्यताकलापस्तत एवाधिगन्तव्यः। गृह उपरितनवंशे, मध्यमस्तम्भे वा, मणिके वा, भिन्ने व्यस्तसमस्ताभिर्व्याहृतिभिश्चतस्र आज्याहुतीः कुर्यात्। दुस्वप्नेषु सञ्जातेष्वद्य नो देव सवितरित्येतामृचं जपेत्। मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दस्सविता देवता जपे विनि-

योगः । अद्य नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । पराद्दुष्वप्न्यं सुव । अग्नेयात्र न मम । तत्तत्कर्मसमाप्तौ सचिनस्याग्नेयूपस्य च स्पर्शे, कर्णक्रोशे, नेत्रस्फुरणे, सूर्योदये सूर्यास्तसमये वा निद्रायामिन्द्रियाणां निषिद्धविषयसम्बन्धे च, पुनर्मा मैत्विन्द्रियमित्येताभ्यां मन्त्राभ्यामाज्याहुतीर्जुहुयात् । अनयोर्मन्त्रयोः प्रजापतिर्ऋषिर्यजुषी अग्निर्देवतेन्द्रियापचारे प्रायश्चित्तकर्मणि समित्प्रक्षेपे आज्यहोमे वा विनियोगः । पुनर्मा मैत्विन्द्रियं पुनरायुः पुनर्भगः । पुनर्द्रविणमैतु मा पुनर्ब्राह्मणमैतु मा स्वाहा । पुनर्मनः पुनरात्मा म आगात् पुनश्चक्षुः पुनश्श्रोत्रं म आगात् वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठतु मे मनोऽमृतस्यकेतु स्वाहा । उभयत्राग्नय इदं न मम । आज्यलिप्ते समिधौ वोक्तमन्त्राभ्यामादध्यात् । समिदाधाने क्षिप्रहोमविधिः । आज्यहोमे आज्यतन्त्रम् । लघुष्वमेध्यादिदर्शनादिषु मानसेषु च पापेपूक्तयोर्मन्त्रयोर्जपं वा कुर्यात् । अन्येषामपि साम्नामध्ययने सामान्यब्रह्मचर्य्यव्रतम् ।

अर्थ—जो दैवात् अनुचितकार्य हो जाते हैं उन्हें नैमित्तिक कहते हैं । अथ उन्हीं के प्रायश्चित्तों को लिखा जाता है । यदि अन्तरीक्ष अथवा पृथ्वी पर किसी प्रकार अशुभ घटना उपस्थित हो जावे तो गृह स्वामियों को सपत्निक प्रायश्चित्त करना चाहिए ।

ऐसे प्रायश्चित्तों के लिए गायत्री मन्त्रों से चार घृताहुति प्रदान करे। अथवा अन्य ग्रन्थान्तरों में उपदिष्ट तीथ यात्रा आदि से भी ऐसे नैमित्तिक प्रायश्चित्तों की निवृत्ती हो जाती है। ऐसे यात्रा आदि की बिधियों को भी ग्रन्थान्तर से जानना चाहिए* ।

यदि गृह के धरन के बांस फट जावे अथवा गृह मध्य का खम्भा टूट जावे या जल का मटका फूट जावे तो व्यस्त और समस्त व्याहृतियों से घृताहुति प्रदान करे।

यदि सोते समय दुखद स्वप्न देखे तो "अद्यनोदेव०" मन्त्र का संहिता पाठ के अनुसार जाप करे। यदि सुरक्षित अग्नि यूप (स्तम्भ जो सोम आदि यज्ञों में महावेदी के समीप में गाढ़ा जाता है) का स्पर्श करे या कानों में निष्कारण किसी प्रकार का शब्द सुनाई परे, या नेत्र फरकने लगें, या सूर्य्योदय और अस्त होने के समय सो जावे या निषिद्ध भावना से इन्द्रिय स्पर्श करे तो "पुनर्म्मामैत्विन्द्रियं०" मन्त्रों से घृत की आहुतियों को प्रदान करे। दोनों मन्त्रों में "अग्नय इदं न मम" त्याक करे। यदि आज्य तन्त्र से घृताहुति न कर सके तो क्षिप्र होम बिधि से घी पोत कर समिध की आहुति प्रदान कर देवे। किसी अपवित्र वस्तु का स्वप्न देखे अथवा मन में किसी प्रकार की पाप भावना उत्पन्न हो परन्तु उसे किया न हो तो ऐसी दशा में भी "पुनर्म्मा०" इन मन्त्रों का जप करे।

---

* तपो वनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च। एतेषु ख्यापनेन पुण्यं गत्वा तु सागरम्। दश योजन विस्तीर्णं शत योजनमायतम्। रामचन्द्रसमादिष्टं नल-संचय सचितम्। सेतुं दृष्ट्वा विमुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम्। पराशर स्मृति। अ० ११ श्लो० ६८

इत्थं साङ्गं वेदमधीत्य, गुरवे दक्षिणां दत्वा, विवाहं कुर्यात् । कौथुमीयानां के वा ? ग्रन्था अध्येतव्या इति-चेदत्राह 'कश्चित्' । "छिपञ्चाशद्विमे ग्रन्थाश्शाखायाः कौथुमेरिह । प्रोक्ताः सामोद्धवा यस्मात्तस्मात्ते स्मार्त्त सुनिश्चिताः ॥ १ ॥ तस्माद्वै सामशाखायां ग्रन्थभेदो निगद्यते । श्रौतस्मार्त्तादिते यस्मान्न मुक्तं कथञ्च न ॥ २ ॥ वेयारण्यकमूहोऽत्र रहस्यं गानमुच्यते । छन्दस्यारण्यके चैवं मन्त्राम्नोत्तरकास्मृताः ॥ ३ ॥ छन्दस्यादित्रयं स्तोभः स्पदं स्याच्चतुष्टयम् । ताण्ड्यः षड्विंशकं सामविधानार्षेयके तथा ॥ ४ ॥ देवताध्याय-वंशाख्यास्संहितोपनिषत्तथा । अष्टमोपनिषच्चैव ब्राह्मणे समुदीरिताः ॥ ५ ॥ नारदी लोमशी शिक्षा गौतमो चेति-वै त्रिधा । कल्पसूत्रं तथा क्षुद्रं लाट्यायनकमेव च ॥६॥

अर्थ—गोदानिक व्रत प्रयोग से आरम्भ कर उत्सर्जन प्रयोग तक साम वेद के विशेष विशेष ग्रन्थों के अध्ययन और व्रतों का उपदेश किया गया है। वेदों के सामान्य ग्रन्थों के अध्ययन में सा-मान्य ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करना चाहिए ।

उपरोक्त विधि से वेदों का ध्ययनन कर और गुरु को दक्षिणा देने के पश्चात् गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के लिए विवाह संस्कार करे । वेज, आरण्यक, उह्य ऊह और रहस्य साम वेद में गान के ग्रन्थ हैं । छन्दस्यआर्चिक, आरण्यार्चिक और उत्तरार्चिक संहिता के ग्रन्थ हैं ।

कौथुमी शाखाध्यायी द्विजों के लिए कौन कौन से ग्रन्थ पठनीय हैं! इस प्रश्न के उत्तर में कुछ लोगों के वचन उधृत किए जाते हैं। ये कौथुमी शाखा के ५२ ग्रन्थ इस लिए बताए गये हैं कि उन से श्रौत और स्मार्त्त कर्म के प्रयोग निश्चित हो जाते हैं। इस कारण उपरोक्त ग्रन्थों को पृथक् पृथक् अंकित कर दिया जाता है इनके अध्ययन से किसी को श्रौ और स्मार्त्त कर्म्म करने में भ्रम न होगा। वेञ, आरण्यक, ऊह और रहस्य अथवा ऊह्य ये चार ग्रन्थ साम गान के हैं। इनके मूल वे ही मन्त्र हैं जो छन्दस्यार्चिक, आरण्यार्चिक और उत्तरार्चिक संहिता में हैं। साम संहिता की उपरोक्त नामों से प्रसिद्ध तीन और एक पदपाठ एवं चार ग्रन्थ संहिता के हैं। ताण्ड्य, षड्विंशक, सामविधान, आर्षेयक, दैवत, वंश संहितोपनिषद् और उपनिषद् ये आठ सामवेद के ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। नारदीय, लोमशीय और गौतमीय ये तीन शिक्षा के ग्रन्थ हैं। लाट्यायन और क्षुद्र (द्राहायण) कल्प सूत्र हैं।

उपग्रन्थः पञ्चविधो निदानं ताण्ड्यलक्षणम्। अनुपरस्थादनुस्तोत्रं कल्पानुपदमेव च ॥७॥ एतद्दशविधं सूत्रं सामगेषु च विश्रुतम्। ऋक्तन्त्रं सामतन्त्रञ्च सञ्ज्ञाकरणमेव च ॥ ८ ॥ धातुलक्षणकञ्च स्यादिति व्याकरणानि च। अनुक्रमणिका चेति नैगेयश्च ततः परम् ॥ ९ ॥ फुल्लं गोभिलगृह्यञ्च मन्त्रलक्षणकं तथा। गायत्र्यादिविधानञ्च ततस्तोभानुसंग्रहः ॥१०॥ छन्दोगपरिशिष्टं तु गृह्यासङ्ग्रह एव च श्राद्धकल्पं ततो वेद्यासाधनं गोभिलीयकम् ॥ ११ ॥ स्नानविधिरुपाकर्म श्रावणेन परो

विधिः । द्विपञ्चाशदिमे ग्रन्था वृषोत्सर्गान्तगाः स्मृताः” ॥ १२ ॥ इति कौथुमशाखायां ग्रन्थसंख्या यथाक्रमात् । एतानधीत्य निखिलं वेदोक्तं ज्ञातुमर्हति ॥

अर्थ—निदानम्, ताण्ड्यलक्षणम्, अनुपत्, स्तोत्र और कल्प अनुपद सामवेद उपग्रन्थ में हैं। ऋग् तन्त्र, सामतन्त्र, संज्ञाकरण, धातुक्षण (ये व्याकरण के हैं), अनुक्रमणिका, नैगेय, फुल्ल, गोभिलगृह्यसूत्र, मन्त्रलक्षण और गायत्री आदि मन्त्र विधान ये भी दश उपग्रन्थ में हैं। छन्दोगपरिशिष्ट, गृह्या संग्रह, श्राद्धकल्प, वेदीमानकरण, स्नान विधि उपाकर्म, श्रवणाक, वृषोत्सर्ग इत्यन्त ५२ ग्रन्थ साम वेद संबन्धी बताए गए हैं, जिन्हें कौथुमीय शाखा ध्यायी द्विजों को अध्यतन करना चाहिए। उपरोक्त ग्रन्थों का अध्ययन कर द्विज वेदोपदेश के जानने के योग्य होता है।

उक्तानेतान् ग्रथानधीत्य, ततो वैदिकान्धर्म्मान्विचार्य, गुरुपादयोर्दक्षिणां समर्प्य, कन्यामुद्वाहाय निश्चित्य, ‘उद्वाहायाभ्यनुजानातु भवानाचार्य, इति पृष्ट्वाऽनुज्ञातो ब्रह्मचारी स्नात्वा समावृत्तो दारानवश्यमुद्वहेत् । अलाभे तु कन्याया न स्नायात् । यावज्जीवं ब्रह्मचारी भवेत् । अथ वा, ब्रह्मचर्य्यात्सन्न्यसेत् । न हि कदाचित्स्नात्वा चिरं तिष्ठेदनाश्रमित्वापत्तेः । तच्चानिष्टम् । “अनाश्रमी न तिष्ठेत क्षणमेकमपि द्विज” इति सुदर्शनभाष्योक्तत्वात् ।

"यस्य दत्ता भवेत्कन्या वाचा सत्येन केनचित् । सोऽन्त्यां समिधमाधास्यन्नादधीतैव नान्यथा" इति कर्मप्रदीपोक्तेश्च । अत्र केचित् । "विवाहेच्छाया अभावेऽपि कलौ दीर्घकालब्रह्मचर्यस्य क्वचित्क्वचिन्निषेधात्स्नानं कर्त्तव्यमिति" वदन्ति । मातुस्सपिण्डां सगोत्राञ्च कन्यां नोद्वहेत् । "कन्योद्वाहश्श्रेष्ठ" इति गोभिलाचार्योक्त्या रोहिण्या गौर्य्याश्च विवाहो न श्रेष्ठ इत्यवगम्यते ।

अर्थ—उपरोक्त ग्रन्थों का अध्ययन कर वैदिक धर्म्म का विचार करे। गुरु के चरणों पर दक्षिणा समर्पित कर विवाह संस्कार का निश्चय करे। द्वितीय आश्रम में प्रविष्ट होने के लिए गुरु से अनुमति की प्रार्थना करे और उनकी आज्ञा पाने पर समावर्त्तन स्नान करे। उद्वाह संस्कार विधि से स्त्री का पाणिग्रहण कर गृहस्थ आश्रम का आरम्भ करे। यदि किसी कारण वसात् विवाह संस्कार में असमर्थ हो तो आजीवन ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करे। अथवा संसार से चित्त उपराम हो गया हो तो समावर्तन स्नान कर संन्यास आश्रम में चला जावे। द्विजों को समार्त्तन स्नान कर अधिक दिन तक अनाश्रमी रहना अच्छा नहीं है। सुदर्शन भाष्य में लिखा है कि "द्विज को एक दिन भी अनाश्रमी नहीं रहना चाहिए।" कर्मप्रदीप में लिखा है कि 'जिस ब्रह्मचारी को लोग कन्या-प्रदान करने का वचन देते हों उसी को ब्रह्मचर्य्य व्रत की अन्तिम समिधाहुति प्रदान कर समावर्तन स्नान करना चाहिए। यदि विवाह की सम्भावना न हो तो आजीवन ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करना ही श्रेयस्कर है।" सकुछ लोगों की स्मति है कि "विवाह की सम्भावना न होने पर भी समावर्त्तन स्नान कर लेवे'

कारण कि कलि में अधिक दिन ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन का निषेध है।" परन्तु यह वचन सर्वमान्य नही है जिस कन्या के साथ विवाह करे वह माता की सपिण्ड तथा अपने गोत्र की न होनी चाहिए। गोभिलाचार्य के मतानुसार रोहणी और गौर संज्ञक कन्याओं से विवाह करना अच्छा नहीं है किन्तु युवती कन्या से विवाह करना चाहिए।

अथ ब्रह्मचारि व्रतलोपप्रायश्चित्तम्। स्नानदिनात्पूर्वेद्युस्तदहरेव वा कार्यम्। तत्र गोदानादीनां व्रतानां लोपे प्रत्येकमेकैकं कृच्छ्रंचरित्वा गायत्र्या शताज्याहुतीर्जुहुयात्। तथा ब्रह्मचारिणः सन्ध्याऽग्निकार्यभिक्षालोप-शूद्रादिस्पर्शनकटिसूत्रमेखलाजिनत्याग-दिवास्वापच्छत्रधारण-मालाधारणाञ्जन-पर्य्युषितान्नभोजनादि-सर्वब्रह्मचर्य्यनियमलोपप्रायश्चित्तार्थं कृच्छ्रत्रयं महाव्याहृतिहोमश्च कृत्वा स्नानं कार्य्यम्। बहुधर्मलोपे तु, स्मृत्युक्तं प्रायश्चित्तान्तरं कार्यम्।

अर्थ—अब ब्रह्मचर्य्य व्रत के प्रतिकूल कार्य का प्रायश्चित्त लिखा जाता है। निम्नांकित प्रायश्चित्तों को ब्रह्मचारी समावर्त्तन से पहले अथवा उस दिन तक कर सकता है।

यदि गोदानिक आदि व्रतों को न किया हो तो हरेक व्रत के लिए एक एक कृच्छ्र व्रत कर गायत्री मन्त्र से घृत की सौ आहुति प्रदान करे। यदि ब्रह्मचारी साधारणत. सन्ध्योपासन, समिदाधन, भिक्षाचर्या न किया हो, शूद्रादि अनस्पृश्य का स्पर्श किया हो, कटि सूत्र, मेखला, मृगचर्मादि त्यागि दिया

हो, दिन में सो गया हो अथवा छाता, पुष्प की माला, अंजन धारण कर लिया हो अथवा वासी भोजन खाया हो तो इन सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत के प्रतिकूल आचरणों के लिये तीन कृच्छ्र व्रत और व्याहृति से घृत की आहुति प्रदान कर समावर्त्तन स्नान करे। यदि अधिक धर्म्म का उलंघन हुआ हो तो मनु आदि स्मृतियों में उक्त प्रायश्चित करे।

अथ प्रयोगः देशकालौ सङ्कीर्त्य मम ब्रह्मचर्यनियमलोपजनितसम्भावितदोषपरिहारेण स्नानाधिकारसम्पादनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमाज्यहोमपूर्वकं कृच्छ्रत्रयं तथा गोदानादिव्रतलोपे प्रतिव्रतमेकैककृच्छ्रगणनया गायत्र्या घृतहोमपूर्वकं प्रायश्चित्तमहमाचरिष्ये। इति सङ्कल्प्य विधिवदग्निं प्रतिष्ठाप्याऽऽज्यतन्त्रेण व्याहृतिहोमान्तं कृत्वा प्रधानाज्याहुतीर्जुहुयात्।

अर्थ—अब प्रायश्चित्तों का प्रयोग लिखा जाता है। प्रथम आचमन प्राणायाम कर देश, काल, तिथि, वार इत्यादि स्मरण के पश्चात् "मम ब्रह्मचर्य०" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। पृष्ठ ८९ में लिखी बिधि से अग्नि स्थापन कर आज्य तन्त्र से पर्युक्षणादि कृत्य सम्पन्न करे। स्रुवा में घृत ले ले कर निम्नांकित आहुतियों को प्रदान करे।

यथा। व्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजभृगवऋषयो, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्बृहत्यश्छन्दांसि, अग्निवायुसूर्यप्रजापतयो देवता, आज्यहोमे विनियोगः। ओं भूः स्वाहा। अग्नये इदं न मम। ओं भुवः स्वाहा। वायव

इदं न मम। ओं स्व स्वाहा। सूर्यायेदं न मम। भूर्भुवःस्वः स्वाहा। प्रजापतय इदं न मम। प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरग्निर्देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः। पाहि नो अग्न एनसे स्वाहा। अग्नय इदं न मम। प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्विश्वेदेवा देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः। पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं न मम। प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्विश्वेदेवा देवता प्रायश्चित्त होमे विनियोगः। यज्ञं पाहि विभावसो स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्यो इदं न मम। प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः शतक्रतुर्देवता प्रायश्चितहोमे विनियोगः। सर्वं पाहि शतक्रतो स्वाहा। शतक्रतव इदं न मम। प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः। पुनरुर्ज्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा। पुनर्नः पाहि विश्वतः स्वाहा। अग्नय इदं न मम। प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता प्रायश्चित्त होमे विनियोगः। सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्सिया विश्वतस्परि स्वाहा। अग्नय इदं न मम।

पुनर्व्यस्तसमस्तव्याहृति चतुष्टयं हुत्वा, गोदानादिव्रतलोपप्रायश्चित्तार्थं प्रत्येकमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा गायत्र्या आज्याहुतीश्च हुत्वा, एकैकं कृच्छ्रं चरित्वा, व्याहृतिहोमादितन्त्रशेषं समापयेत्। इति ब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्तप्रयोगः॥

अर्थ—इन उपरोक्त आहुतियों को प्रदान करने के पश्चात् पुनः व्याहृतिमन्त्रों से चार आहुति प्रदान करे। यदि गोदानादिक व्रत में त्रुटि हुई हो तो उनके निमित्त १०८ या २८ अथवा ६ आहुति गायत्री मन्त्र से प्रदान करे। एक एक कृच्छ्र व्रत भी करे। पूर्ववत् व्याहृति होम को प्रदान कर शेष कृत्य समाप्त करे। यही ब्रह्मचर्य व्रत में दैवात व्रत के प्रतिकूल कार्य हो जाने का प्रायश्चित्त है।

अथ स्नानप्रयोगः। अथ ब्रह्मचर्यव्रतान्ते ऐन्द्रचरुं कृत्वाऽऽचार्यगृहस्य पुरस्तादुत्तरतस्सर्वत अच्छादिते देशे प्रागग्रेषु दर्भेषूदङ्मुख आचार्य्य उपविशति, उदगग्रेषु दर्भेषु प्राङ्मुखो ब्रह्मचार्य्युपविशति। ततो नान्दीमुख श्राद्धं कुर्य्यात्। व्रीहि-शालि-मुद्ग-सर्षप-गोधूम-तिल-यवानुदकपूरिते भाण्डे निक्षिप्योष्णं कृत्वा तेन गन्धद्रव्ययुक्तेन शीतलजलमिश्रितेनोष्णोदकेनाचार्य्यो ब्रह्मचारिणमभिषिञ्चेत्। अथवा, ब्रह्मचारी स्वयमेवात्मानमभिषिञ्चेत्। अस्यैव पक्षस्य मुख्यत्वे प्रमाणमुपन्यस्यत्याचार्यः “मन्त्रवर्णो भवतीति”। अस्मिन्नभिषेकमन्त्रे ‘तेनासौ मामभिषिञ्चामी’ त्यस्मच्छब्दप्रयोगाल्लिङ्गात्। ततो ब्रह्मचारी ब्राह्मणाननुज्ञाप्य, गणेशं सम्पूज्य, परमेश्वरप्रीत्यर्थमाप्लवनं तरिष्ये इति सङ्कल्प्य, ब्रह्मचारी स्वयमञ्जलिना पूर्वोक्तमुष्णोदकमादाय ये अप्स्विति भूमावुत्सृजति। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरग्निर्देवता भूमौ जलप्रक्षेपणे विनियो-

गः । ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूखो मनोहाः । स्खलो विरुजस्तनूदूषिरिन्द्रियहा अति तान् सृजामि ॥ पुनरुदकं गृहीत्वा यदपामित्यनेन मन्त्रेण भूमौ प्रक्षिपति । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरग्निर्देवता भूमौ जलप्रक्षेपणे विनियोगः । यदपां घोरं यदपां क्रूरं यदपामशान्तमति तत्सृजामि ॥ पुनरञ्जलिनोदकमादाय यो रोचन इतिमन्त्रेणात्मनःशिरस्यभिषेचनं कुर्वीत । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरग्निर्देवता समावर्त्तनाभिषेके विनियोगः यो रोचनस्तमिह गृह्णामि तेनाहं मामभिषिञ्चामि ॥ पुनरुदकमादाय यशसे इतिमन्त्रेणात्मानमभिषिञ्चेत् । पूर्वमन्त्रवदृष्यादिः । यशसे तेजसे ब्रह्मवर्चसाय बलायेन्द्रियाय वीर्यायान्नाद्याय रायस्पोषाय त्विष्यै अपचित्यै ॥ पुनरञ्जलिनाऽपो गृहीत्वा येन स्त्रियमितिमन्त्रेण स्वशिरस्यभिषिञ्चेत् । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः पञ्चपदापङ्क्तिश्छन्दोऽश्विनौ देवते अभिषेके विनियोगः । येन स्त्रियमकृणुतं येनापामृशतं सुराम् । येनाक्षानभ्यषिञ्चतं येनेमां पृथिवीं महीं यद्वांतदश्विना यशस्तेन मामभिषिञ्चतम् । पुनरञ्जलिनोदकमादाय तूष्णीं चतुर्थमात्मानमभिषिञ्चेत् ।

अर्थ—ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त करने के उपलक्ष्य में जो कृत्य होते हैं उन्हें समावर्त्तन संस्कार कहते हैं। इस संस्कार में ब्रह्मचारी सर्वोषधि युक्त जल से स्नान करता है। जिसे उक्त संस्कार को

समावर्त्तन स्नान कहते हैं। ब्रह्मचर्य्याश्रमव्रतोपदेश के पश्चात्, अब समावर्त्तन का प्रयोग लिखा जाता है। इस संस्कार को सम्पन्न करने के लिए आचार्य्य गृह से पूर्व अथवा उत्तर यज्ञ भूमि नियत करे। उसे चारो तरफ़ से आड़ कर देवे। पूर्वाग्र कुशासन पर उत्तर मुख आचार्य तथा उत्तराग्र कुशासन पर पूर्व मुख ब्रह्मचारी बैठे। प्रथम ब्रह्मचर्यव्रत पूर्ण कर लेने के उपलक्ष में पौर्णमास विधि के अनुसार स्थालीपाक करे। इस स्थालीपाक में विशेष कार्य ये होंगे कि पात्रासादन के समय व्रीहि, साठी, मुद्ग, सरसो, गेहूँ, तिल और जौ इन्हें एक पात्र में रखे। उसमें जल छोड़ कर अग्नि पर गरम कर लेवे। कपड़ा से छान कर कुछ ठंढा पानी भी मिला देवे। केशर आदि सुगन्ध द्रव्यों को छोड़कर एक घड़ा में चन्दन, अग्नि के पूर्व रक्खे। पूर्ण पात्र के पूर्व क्रमशः आचार्य की दक्षिणा, ब्रह्मचारी के लिए एक धोती, एक डुपट्टा, पुष्प की माला, जूता, बांस की छड़ी, इत्यादि का आसादन करे। हवि निर्वाप में "इन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि" से हविका ग्रहण और चरुस्थाली में निर्वपन करे। स्रुची में पूर्णमास विधि के अनुसार उपस्तीर्णाभिधारित चरु लेकर "ओं ऋचं साम यजामहे याभ्यां कार्माणि कृण्वते। वितेसदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः स्वाहा। इन्द्राय इदं न मम। ओं सदसस्पति मद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिम्मेधामयासिषं स्वाहा। इन्द्राय इदं न मम। दो आहुति प्रदान करे। स्विष्टकृतादि संपूर्ण होम कृत्य को पौर्णमासवत् सम्पन्न करे। ब्रह्मा को पूर्ण पात्र दक्षिणा देवे। आचार्य को गौ, अश्व, सुवर्ण आदि दक्षिणा देकर समावर्त्तन स्नान की आज्ञा की प्रार्थना करे। गुरु आज्ञा प्राप्त कर नान्दीमुख श्राद्ध करे। गणेश पूजन, पुण्याहवाचनादि कृत्य सम्पन्न करे "परमेश्वर प्रीत्यर्थं द्वितीयाश्रमे प्रविष्टार्थं चाप्लवनं अहं करिष्ये" योजना के साथ संकल्प करे। ब्रह्मचारी स्वयं अथवा

आचार्य्य के दिए हुए जल को "ये अप्स्व०" अञ्जलि में लेवे। "यद्पाम्०" मन्त्र को पढ़ता हुआ भूमि पर छोड़ देवे। पुनः पूर्ववत् अञ्जलि में जल लेकर "यो रोचनस्तमिह०" मन्त्र को पढ़ता हुआ शिर पर छोड़ देवे। उपरोक्त विधि से जल ले लेकर "यशसे तेजसे० येन स्त्रियमकृणुतं०" मन्त्रों को भी पढ़ता हुआ दो बार शिर पर छोड़े। चतुर्थवार विना मन्त्र पढ़े जल को शिर पर छोड़कर भली भाँति स्नान कर लेवे।

तत उत्थायादित्याभिमुख आदित्यमुपतिष्ठेदुद्यन्भ्राजभृष्टिभिरित्यादिभिश्चतुर्भिर्मन्त्रैः। तद्यथा। चतुर्णां मन्त्राणां मध्ये प्रातर्लिङ्गेन मन्त्रेण प्रातरादित्योपस्थानम्। मध्यान्हे सान्तपनलिङ्गेन सायान्हे सायंलिङ्गमन्त्रेणोपस्थानम्। त्रिष्वपि कालेषु चक्षुरसीति चतुर्थमन्त्रेण तत्तत्कालोपस्थानानन्तरमुपस्थानं कुर्यात्। त्रयाणां मन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः। चक्षुरसीति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दस्सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः। उद्यन्भ्राजभृष्टिभिरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्यावभिरस्थात्। दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वात्वा विशाम्यामा विश॥ चक्षुरसि चक्षुष्ट्वमस्यव मे पाप्मानं जहि सोमस्त्वा राजाऽवतु नमस्तेऽस्तु मा माहिँसीरति प्रातः। उद्यन्भ्राजभृष्टिभिरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् सान्तपनेभिरस्थात् शतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वात्वा विशाम्यामा विश॥ पूर्ववच्चक्षुरसीति च मध्यान्हे।

उद्यन्भ्राजभृष्टिभिरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्सायं ग्रावभिरस्थात्सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वात्वा विशाम्यामा विश ॥ चक्षुरसीति च सायम् ।

अर्थ—स्नान के स्थान से उठकर सूर्य के तरफ हाथ जोरे हुए उद्यन्भ्राज०" मन्त्र को पढ़ता हुआ स्तुति करे । मन्त्र पाठ में प्रातः मध्यान्ह और सायं शब्द के साथ ऊह स्पष्ट लिखा गया है । उन्हीं समयों में उपस्थान कर्त्तव्य है । "चक्षुरसि०" मन्त्र को "उद्यन्भ्राज०" के अन्त में तीनो बार पूरा पूरा पढ़ना चाहिए ।

ततो मेखलामुदुत्तमं वरुणपाशमिति मन्त्रेणाधस्तान्मोचयति । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो वरुणो देवता मेखलामोक्षणे विनियोगः । उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ श्रथाय । अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥ १ ॥ अजिनदण्डयोस्तूष्णीन्त्याग आचारात् । ततो ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वयं भुक्त्वाकेशश्मश्रुरोमनखानि वापयेच्छिखावर्जम् । अत्र "ब्राह्मणान्भोजयित्वेत्यनेन नान्दीमुखश्राद्धं विधीयत" इति भट्टनारायणादयः । "कर्मान्तविहितं ब्राह्मणभोजनमत्र विधीयत" इति भवदेवभट्टप्रभृतयः । "उभयस्मादन्यदेवेदं ब्राह्मणभोजनमि" त्यपरे । कतम ? एषां पक्षो ज्यायानित्यत्र तृतीय इति ब्रूमः । श्राद्धकर्माङ्गब्राह्मणभोजनयोर्विहितत्वादादावन्ते

च तयोः प्राप्तेः कपिञ्जलाधिकरणन्यायेन त्रयो भोजयितव्याः ।

अर्थ—"उदुत्तमम्०" मन्त्र को पढ़ता हुआ मेखला खोलकर पैर की तरफ से भूमि पर डार देवे। मृग चर्म और दण्ड को बिना मन्त्र भूमि पर रख देवे। ब्राह्मणों को भोजन करावे और स्वयं भी भोजन करे। शिखा को छोड़कर सब शिर और दाढ़ी मूछ के बालों को मुड़वा देवे।

भाष्यकार नारायण भट्ट का मत है कि यह ब्राह्मण भोजन नान्दीमुख श्राद्ध के उपलक्ष में है। परन्तु भवदेवभट्ट आदि बहुतों का मत है कि यहां समावर्त्तन कृत्य के समाप्त के उपलक्ष में ब्राह्मण भोजन का उपदेश है। कुछ लोगों का मत है कि यहाँ दोनों के उपलक्ष में ब्राह्मण भोजन का उपदेश किया गया है। यद्यपि तीन प्रकार के मत हैं परन्तु उपरोक्त ब्राह्मण भोजन के विषय में तृतीय पक्ष श्रेष्ठ है। कारण यह कि श्राद्धाङ्ग एवं कर्मान्त दोनों में ब्राह्मण भोजन की विधि है। यहाँ दोनों का समय भी उपस्थित है। अतः कपिञ्जलाधिकरण न्याय से इस अवसर पर दोनों पक्ष के लिए तीन तीन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

ततः स्नात्वाऽऽत्मानमलङ्कृत्याहतं वस्त्रद्वयं परिधाय पुष्पमालांशिरसि बध्नीयाच्छ्रीरसीतिमन्त्रेण। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्श्रीर्देवता स्रग्बन्धने विनियोगः। श्रीरसि मयि रमस्व। नेत्र्यो स्था इतिमन्त्रेण पादयोरुपानहावाबध्नीयात्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्यजुरुपानहौ देवते आबन्धने विनियोगः। नेत्र्यौस्थो नयतं

माम्। गन्धर्वोऽसीतिमन्त्रेण वैणवं दण्डं परिगृह्णाति। अस्य प्रजापतिर्यजुर्दण्डो देवता दण्डग्रहणे विनियोगः। गन्धर्वोऽस्युपाव उप मामव। ततस्सपरिषत्कमाचार्यमभ्येत्याचार्य्यं परिषदञ्च मन्त्रेण पश्यति। अस्य प्रजापतिर्यजुराचार्य्यो देवता प्रेक्षणे विनियोगः। यक्षमिव चक्षुषः प्रियो वो भूयासम्। तत आचार्य्यसमीप उपविश्य मुखनासिकाक्षिकर्णछिद्राणि स्पृशन्नोष्ठापिधानेतिमन्त्रं जपति। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो नकुली देवता मुखादिस्पर्शने विनियोगः। ओष्ठापिधाना नकुलीदन्तपरिमितः पविः। जिह्वे मा विह्वलो वाचं चारुमाद्येह वादय। अस्मिन्काले स्नातकायाचार्येण मधुपर्को देयो वक्ष्यमाणविधिना। ततो वृषभयुक्तं रथं गत्वा द्वे चक्रे ईषे च। मन्त्रेणाभिमृशेत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोवनस्पतिर्देवता पादत्रयेणाभिमर्शने चतुर्थपादेनास्थाने विनियोगः। वनस्पते वीड्वंगो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणस्सुवीरः। गोभिस्सन्नद्धो असि वीडयस्व। ततस्तूष्णीं रथमारुह्य रथे मन्त्रेण तिष्ठति। मन्त्रः आस्थाता ते जयतु जेत्वानि। ततस्तेनैव रथेन प्रागुदग्वा गत्वा प्रादक्षिण्येनावर्त्याचार्यसमीपमागच्छति। वामदेव्यगानम्। "अस्मिन्काले स्नातकायाचार्य्येणमधुपर्को देयो नतु प्रागिति" कौहलशाखिनः। यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनं कुर्यात्॥ इति स्नानप्रयोगः॥

अर्थ—स्नान कर नवीन धोती और दुपट्टा धारण करे। कानों में कुण्डल और चन्दन आदि से अलंकृत होकर "श्रीरसि मयिरमस्व" मन्त्र को पढ़ता हुआ पुष्प की माला धारण करे। "नेत्र्यौस्थो०" मन्त्र को पढ़ता हुआ पैर में जूता पहने और "गन्धर्वोऽसि०" मन्त्र से हाथ में छड़ी लेवे। "यक्षमिव चक्षुषः प्रियो वो भूयासम्" मन्त्र को पढ़ता हुआ शिष्य सज्जनों के युक्त आचार्य को अवलोकन करे। आचार्य के समीप में बैठ कर मुख, नाक, नेत्र और कान इन्द्रियों का स्पर्श कर "ओष्ठापि०" मन्त्रका जप करे। इस समय आचार्य मधुपर्क विधि से स्नातक की पूजा करे। बैल जुते हुए गाड़ी के पास जाकर "वनस्पत०" मन्त्र को पढ़ता हुआ पहिये को स्पर्श करे। चुप चाप रथ पर चढ़ कर "आस्थाता ते जयतु जेत्वानि" मन्त्र को जपता हुआ बैठ जावे। रथ को कुछ दूर ले जावे और घुमाकर आचार्य के समीप में लावे। वामदेव्य साम का गान करे। कौथुम शाखीय द्विजों के लिए इसी समय आचार्य को स्नातक का मधुपर्क करना श्रेष्ठ है। परन्तु कौहल शाखा ध्यायी के लिए नहीं यथा शक्ति ब्राह्मण भोजन करावे। यही समावर्त्तन स्नान का प्रयोग है।

अथ स्नातकव्रतान्युपदिशति। स्नानादूर्ध्वं प्राचीनशिष्टानां ये तावदाचारास्तान्परिशीलयेत्। वृद्धाचाराप्रचक्षत आचार्य्याः। अजातनवयौवनाया मैथुनं वर्ज्जयेत्। काकवन्ध्यायाः कन्याया विवाहं वर्ज्जयेत्। रजस्वलाया मैथुनं नेच्छेत्। समानप्रवरां नोद्वहेत्। गवाक्षादिद्वारेणाहृतमन्नं नाश्नीयात्। पक्वान्नस्यैवायं निषेधः। द्विवारं पक्वस्यान्नस्य भोजनं न कुर्यात्। पर्य्युषितान्नं न भुञ्जीतान्यत्र शाक, मांसयवपिष्ठविकारेभ्यः। वृष्टिसमये-

गमनं न कार्यम्। स्वयं हस्तेनोपानहौ न हरेत्। कूपस्यावेक्षणं न कुर्यात्। स्वयं फलानि वृक्षमारुह्य न गृह्णीयात्। गन्धरहितपुष्पमालां न धारयेत्। सुवर्णमालाधारणे न दोषः। मालेत्युक्ते स्रगिति वाचयित्वा धारयेत्। अभद्रे भद्रमिति वृथावाचं परिहरेत्। भद्रे भद्रमिति ब्रूयात्।

अर्थ—जो ब्रह्मचर्य्याश्रम को कुशलता पूर्वक समाप्त कर समावर्त्तनस्नान कर लेता है उसे स्नातक कहते हैं। अब जो स्नातकों का पालनीय नियम है उसका उपदेश किया जाता है। समावर्त्तन स्नानके पश्चात् प्राचीन आदर्श पुरुषों के आचार व्योवहार का अध्ययनकर उसका आचरण करे। पिता आचर्य आदि गुरुजन लोग वृद्ध आदर्श पुरुषों के आचार का उपदेश करें। बालिका के साथ मैथुन न करे। काक के सदृश चंचला वन्ध्या लक्षण वाली कन्या से विवाह न करे। रजस्वला से मैथुनकी इच्छा न करे। समान गोत्र तथा प्रवर वाली कन्या से विवाह न करे। जँगला, खिरकी आदि आने जाने के अस्वभाविक स्थान से लाए हुए भोजन को न खावे। यह निषेध पके हुए भोजन के लिए है। कच्चे अन्न या फल आदि के लिए नहीं। दो वार पकाया अन्न का भोजन न करे। शाक, मांस एवं जौ के पिष्ट से बने हुए अन्न से भिन्न भोजन को वासी होने पर न खावे। वर्षते समय यात्रा न करे। हाथों से जूता न निकाले। कुआँ न झाँके। फल तोरने के लिए वृक्ष पर न चढ़े। जिसमें गन्ध न हो ऐसे पुष्पों की माला न पहने। सुवर्ण, स्फटिक आदि माला के लिए निर्गन्धता का निषेध नहीं है। माला को स्रग् कह कर

धारण करे। बुरे को अच्छा कह कर झूठ न बोले। सज्जन को अवश्य सज्जन कहे।

विद्यास्नातको, व्रतस्नातको, विद्याव्रतस्नातक, इति। त्रयस्नातका भवन्ति। तत्राद्यौ ब्रह्मचर्यव्रतेनैव वेदमधीत्यान्ते गोदानादीनि कृत्वा स्नाति। द्वितीयस्तत्तत्काले गोदानादीनि व्रतान्यनुष्ठाय किञ्चिद्वेदमधीत्य स्नाति। तृतीयस्तु तत्तद्व्रतानुष्ठानपूर्वकं तत्तद्वेदभागमधीत्य समग्रवेदमप्यधीत्य स्नाति। त्रयाणां मध्ये तृतीयश्श्रेष्ठः। प्रथमद्वितीयौ तुल्यौ। आर्द्रवस्त्रपरिधानं न कुर्यात्। एक वस्त्रधारी न भवेत्। मनुष्यस्तोत्रं न कुर्यात्। अदृष्टं दृष्टमिति न वदेत्। अश्रुतं श्रुतमिति न वदेत्। वेदाभ्यासविरुद्धालौकिकव्यापारान्त्यजेत्। तैलपात्रमिव शरीररक्षणं कुर्यात्। न वृक्षमारोहेत्। सायम्प्रातः काले ग्रामन्तरं न गच्छेत्। एकाकी ग्रामान्तरं न गच्छेत्। वृषलैः सह ग्रामान्तरं न गच्छेत्। महामार्गे सति कुत्सितमार्गं न गच्छेत्। भृत्यरहितो ग्रामान्तरं न गच्छेत्। समावृत्तेनैतानि व्रतानि सङ्कल्पनीयान्यनुष्ठेयानि च। अन्यानपि शिष्टाचाराननुतिष्ठेत्॥ इति स्नातकव्रतोपदेशः॥

अर्थ—स्नातक तीन प्रकार के होते हैं। जो २५ वर्ष की अवस्था से पहले सब वेदों का अध्ययन कर समावर्त्तन स्नान कर लेवें उन्हें

विद्या स्नातक, जो २५ वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन करें परन्तु वेदों का अध्ययन पूरा न कर सकें उन्हें व्रत स्नातक एवं जो २५ वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्माश्रम-व्रत का पालन करें और वेदों का अध्ययन भी पूरा कर लेवें उन्हें विद्याव्रत स्नातक कहते हैं। उपरोक्त स्नातकों में विद्याव्रत स्नातक श्रेष्ठ है। स्नातक भिगे वस्त्रों को न पहनें। केवल एक वस्त्र को भी न पहने रहें। किसी की झूठी प्रशंसा न करें। न देखी हुई वस्तु को "हमने देखा है" ऐसा न कहें। जिसे न सुना हो उसे "सुना हूँ" न कहे। ऐसा व्यवसाय न करें कि पठित विद्यायें भूल जाँय। यदि असावधानी से तेल का पात्र टेढ़ा हो जावे तो तेल भूमि पर गिर कर नष्ट हो जाता है। अतः तेल के पात्र को लोग बड़ी सावधानी से रखते हैं। वैसेही मिथ्या आहार व्यवहार से शरीर भी नष्ट हो जाती है। सदाचार में सावधान होकर शरीर को सुरक्षित रक्खे। वृक्ष पर न चढ़े। सायं प्रातः ग्रामान्तर में निष्प्रयोजन न जावे। अकेला अथवा शूद्र के साथ ग्रामान्तर में न जावे। कहीं दूर जाना हो तो अप्रचलित मार्ग से न जावे। समावर्त्तन के समय स्नातक को उपरोक्त नियम पालन का संकल्प करना चाहिए और आजीवन पालन भी करे। उपदिष्ट नियमों के अतिरिक्त शिष्टाचार भी पालनीय होता है। यही स्नातक के लिए नियमोपदेश है।

अथ गोपुष्टिप्रदकाम्यकर्माण्युच्यन्ते ॥ तत्रादावनुमन्त्रणम्। गवानुमन्त्रणाङ्गं पूर्वदिने नान्दीमुखश्राद्धं प्रथमारम्भे कुर्यात्। त्रिरात्रोपवासश्च। प्रातर्गवां पुष्ट्यर्थमरण्यं नीयमानानां गवामनुमन्त्रणं करिष्ये इति सङ्कल्प्य गृहादरण्यं नीयमाना गा इमा मे विश्वत इतिमन्त्रेणानु-

मन्त्रयते। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टप्छन्द इन्द्रो देवता गवानुमन्त्रणे विनियोगः। इमा मे विश्वतो वीर्यो भव इन्द्रश्च रक्षतं। पूषाँस्त्वं पर्यावर्त्तयानष्टा आयन्तु नो गृहान्। सायमरण्याद्गृहं प्रत्यागता गा इमा मे मधुमतीरितिमन्त्रेणानुमन्त्रयते। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द इन्द्रो देवता प्रत्यागतगवानुमन्त्रणे विनियोगः। इमा मे मधुमतीर्मह्यमनष्टाः पयसा सह। गाव आज्यस्य मातर इहेमाः सन्तु भूयसीः। एतदुभयं प्रत्यहंकार्य्यम्। इति गवानुमन्त्रणप्रयोगः॥

अर्थ—गौ के पुष्ट करने वाले काम्य कर्म्मों को लिखा जाता है। प्रथम गौओं को देखता हुआ मन्त्रों को पढ़ना चाहिए जिनकी विधि निम्नाङ्कित हैं। यदि पहले पहल आरम्भ करना हो तो एक दिन पहले नान्दीमुख श्राद्ध और तीन दिन उपवास व्रत करे। प्रातः काल गौओं को वन में ले जाते हुए "अरण्यं नीयमानानांगवां मनुमन्त्रणं करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। "इमा मे विश्वत०" मन्त्र को पढ़ते हुए गौओं को अवलोकन करे। सायंकाल में वन से घर को जाती हुई गौओं को "इमा मे मधुमती०" मन्त्र से अनुमन्त्रित करे। इस प्रकार दोनों समय नित्य अनुमन्त्रित करना चाहिए। यह गवानुमन्त्रण प्रयोग है।

अथ गवां प्रसवसमये पुष्टिप्रदश्लेष्मभक्षणप्रयोग उच्यते। गवां प्रसवसमये प्रथमजातस्य वत्सस्य माता गौर्जिह्वयाऽऽस्वादं यावत्कालं न करोति, ततः पूर्वमेव

यजमानो वत्सस्य ललाटं स्वजिह्वया तूष्णीमास्वाद्य, मनसा शीघ्रं मन्त्रमुच्चार्य्य, श्लेष्म भक्षयति। गवां पुष्ट्यर्थं ललाटोल्लेहन-निगरण-कर्मणी करिष्ये। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्श्लेष्मा देवता श्लेष्मभक्षणे-विनियोगः। गवाꣳ श्लेष्मासि गावो मयि श्लिष्यन्तु। "वसन्तादारभ्य मासत्रयेऽस्यानुष्ठानमिति" केचित्। "वर्षास्वित्यन्ये"। तदुभयं न साधु। प्रसवकालस्यानि-यतत्वात्। इति श्लेष्मभक्षणप्रयोगः॥

अर्थ—अब गौ के प्रसव समय में पुष्टकारक श्लेष्मभक्षण का प्रयोग लिखा जाता है। गौ प्रथम बच्चा पैदा होने पर जब तक उसे न चाटे तब तक गोपाल को चाहिए कि स्वयं वत्सा का ललाट चाटे और "गवां श्लेष्म०" मन्त्र को मन में स्मरण कर मुह में गए हुए लार को निगल जावे। उपरोक्त अनुष्ठान वसन्त ऋतु के आरम्भ से तीन मास तक करना चाहिए।कुछ लोगों का मत है कि यह प्रयोग वर्षाऋतु में करना चाहिए। यह कर्त्ता की इच्छा पर निर्भर है। बच्चा के उत्पन्न होने का समय एक ऋतु नही है किन्तु दोनों ही ऋतुओं में हो सकते हैं। अतः दोनो ऋतु उत्तम हैं। यह वत्स होने के समय का प्रयोग है।

अथ गोपुष्ट्यर्थं विलयनहोमः। तदङ्गं नान्दीश्रा-द्धम्। सर्वासु गोषु प्रसूतासु निशायां गोष्ठेऽग्निं प्रतिष्ठा-प्य क्षिप्रहोमविधिना संग्रहणसंगृहाणेतिमन्त्रेण घृतवि-लयनेनैकाहुतिं जुहुयात्। विलयनशब्देन घृतनिःस्पन्द-

नमर्द्धमथितं दधि चोच्यते । अनयोरन्यतरेण होमः । नात्र विलयनसंस्कारो, न परिस्तरणब्रह्मोपवेशनादिकम् । काम्यत्वाद्भूमिजपमात्रम् । प्रपदविरूपाक्षौ न स्तः । क्षिप्रहोमे तयोर्निषेधात् । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर-नुष्टुप्छन्दः पूषा देवता विलयनहोमेविनियोगः । संग्रहण संगृहाण ये जाता पशवो मम । पूषैषाᳪशर्म यच्छतु यथा जीवन्तो अप्ययात् स्वाहा । पूष्ण इदं न मम । क्षिप्रहोमे विधिस्सायम्प्रातर्होमविधिना व्याख्यातः । इति विलयन होमप्रयोगः ॥

अर्थ—जिसमें से घी न निकाला गया हो ऐसे अधमथित दही को विलयन कहते हैं। अब गौओं के पुष्ट रहने के लिए विलयन नाम से प्रसिद्ध होम का प्रयोग लिखा जाता है। इस हवन-कार्य में भी तदंग नान्दी श्राद्ध कर्त्तव्य है। व्याई हुई गौओं को एक शाला में रक्खे। उस गोशाला में रात्रि को अग्निस्थापन करे। यहाँ परिस्तरण आदि कृत्य न होंगे विलयन का संस्कार भी नहीं होगा। काम्य-कर्म होने सेभूमि-जप हो सकता है। परन्तु प्रपद और विरुपाक्ष जप न होंगे। क्षिप्र होम में इनका निषेध है। "संग्रहण संगृहाण०" मन्त्र से उसी की आहुति प्रदान करे। क्षिप्र होम में सायं प्रातः आहुतियों के समान उतनीही आहुतियाँ दी जाती हैं जो प्रधान हैं। उनकी सहकारिणी भूरादि आहुतियाँ नहीं दी जातीं। वही विलयन होम की विधि है।

अथ वत्समिथुनयोर्लक्षणं कुर्य्याद्गवां पुष्ट्यर्थम् । अत्र त्रिरात्रमुपवासस्तदङ्गं नान्दीश्राद्धम् । वत्समिथुन-

योः कर्णयोर्लक्षणमहं करिष्ये। ततः प्रसूतासु गोषु ताम्रमयेनासिना वत्सस्य चिन्हं कुर्याद्भुवनमसीति- मन्त्रेण। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दस्स्व- धितिर्देवता वत्सस्य कर्णयोश्चिन्हकरणे विनियोगः। भुवनमसि साहस्रमिन्द्राय त्वा सृमोददात्। अक्षतम- रिष्टमिलादम्। गोपोषणमसि गोपोषस्येशिषे गोपोषाय त्वा सहस्रपोषणमसि सहस्रपोषस्येशिषे सहस्रपोषाय त्वा। अस्य मन्त्रस्य देवतादयः पूर्ववत्।

अर्थ—गौओं को वलवान होने की इच्छा करने वाले पुरुष को वछवा और वछिया को दागना चाहिए। दागने की विधि ये हैं कि- प्रथम तीन दिन उपवास करे। उसका अंग स्वरूप नान्दी श्राद्ध करे। "वत्स मिथुनयोः कर्णयोः लक्षणमहं करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। "भुवनमसि०" मन्त्र को पढ़ता हुआ ताम्बे के शस्त्र से चिन्ह बना देवे। अर्थात् अग्नि में लाल करके दाग देवे।

एकः कर्णो यथा द्वेधा दृश्यते तथाछेदनं द्वयोः कर्णयोः कुर्यात्। कर्णभेदान्मन्त्रावृत्तिः। प्रथमं दक्षिणकर्णे पश्चाद्वामे। प्रथमं पुंस एव पश्चा- त्स्त्रियश्चिन्हकरणम्। "पुंसोऽग्रभागे स्त्रियोऽध- स्ताच्चिन्हकरणमिति" व्याचक्षाणो 'मिथुनं कर्ण- योरिति' मन्त्रलिङ्गं पीडयेदतस्तदुपेक्ष्यम्। असिना स्वधितिना चिन्हं कुर्यात्। "लोहितेन स्वधितिनेतिमन्त्र- लिङ्गादिति" भट्टनारायणोपाध्यायः। "असिना वत्स-

मिथुनयोर्लक्षणं करोतीत्यत्रासिपदश्रुतेर्लिङ्गाद्धलीय-स्त्वादसिपदं रूढ्या खड्गबोधकमिति" केचित् । ततो । लोहितेन स्वधितिनेतिमन्त्रेणानुमन्त्रयते। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिपादनुष्टुप्छन्दो गौर्देवता कृतलक्षण-स्यानुमन्त्रणे विनियोगः । लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृतम् । यावतीनां यावतीनां च ऐषमो लक्षण-मकारिषम् । भूयसीनां भूयसीनां च उत्तरामुत्तराᳬ समां क्रियासम् । अत्रापिकर्णलक्षणभेदादनुमन्त्रणभेदः । तत इयं तन्तीगवाम्मातेतिमन्त्रेण वत्सबन्धनरज्जुं प्रसा-र्यमाणामनुमन्त्र्य पुनस्तेनैव मन्त्रेण बद्धवत्सरज्जुमप्य-नुमन्त्रयेत् । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो वत्सो देवता प्रसार्यमाणरज्ज्वभिमन्त्रणे विनियोगः । इयं तन्ती गवां माता सवत्सानां निवेशिनी सा नः । पयस्वती दुहा उत्तरामुत्तराᳬ समाम् ॥१॥ इदञ्च कृत्यं प्रत्येहं कार्यम् । इति वत्समिथुनलक्षणप्रयोगः ॥

अर्थ—एक कान दे। ज्ञात हो उस रूप में चीर देवे। प्रथम दाहिने को तद् पश्चात् वाम कान को चीरे। कानों के चीरने में बारी-बारी दो बार मन्त्र को पढ़े। प्रथम बछवा को तद्पश्चात् बछिया को दागे। भाष्यकार नारायन भट्ट ने "लोहितेन० मन्त्र से गौ दागने को लिखा है। "असिना वत्स मिथुनयोर्लक्षणं करोति" मन्त्र में "असि" शब्द खड्ग बोधक रूढ़ी है। 'लोहितेन०" मन्त्र से दागे हुए चिन्ह को देखे। यहां भी कानों के भेद के अनुसार बारी-बारी और दाहिने

थाम के भेदानुसार मन्त्र पढ़े। "इयं तन्त्री०" मन्त्र को पढ़कर प्रथम बछड़े के बन्धन रस्सी को फैलाकर पुनः बटोरे। इस रज्जु अनुमन्त्रण कार्य को प्रति दिन करना चाहिए। यही वत्स मिथुन लक्षण प्रयोग है।

अथ गोयज्ञप्रयोगः। स च गवां पुष्ट्यर्थः। तस्य कालः परिभाषोक्त उदगयनादिः। तदङ्गं नान्दीश्राद्धं कृत्वा गवां पुष्ट्य गोयज्ञस्थालीपाकं करिष्ये इति सङ्कल्प्य सर्वं पार्वणस्थालीपाकवत्कुर्यात्। निर्वापकाले विशेषः। अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि। पूष्णे त्वा जुष्टं निर्वपामि। इन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि। ईश्वराय त्वा जुष्टं निर्वपामि। पयसि चरुश्रपणम्। अस्य कर्म्मणः काम्यत्वाद्वक्ष्यमाणप्रकारेण भूमिजपपरिसमूहनविरूपाक्षप्रपदजपान् कुर्य्यात्। आज्यभागान्ते चरु होमः। अग्नये स्वाहा। अग्नय इदं न मम। पूष्णे स्वाहा। पूष्ण इदं न मम। इन्द्राय स्वाहा। इन्द्रायेदं न मम। ईश्वराय स्वाहा। ईश्वरायेदं न मम। वृषभस्य कर्णे शृंगे वाऽऽभरणम्बद्ध्वा, घासादिकञ्च दत्वा, पूजनं कुर्य्यात्। सायमागतानां गवां गन्धोदकैरभ्युक्षणम्। ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम्, वामदेव्यगानं, ब्राह्मणभोजनं च, कुर्यात्। इति गोयज्ञप्रयोगः॥

अर्थ—अब गो यज्ञ का प्रयोग लिखा जाता है यह यज्ञ गौओं के

बलवान बनाने के लिए किया जाता है। इसे सूर्य के उत्तरायण होने पर करना चाहिए। नान्दीश्राद्ध करने के पश्चात् "गवां पुष्ट्यर्थं गो यज्ञ स्थालीपाकं करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। इस कृत्य में सर्व कार्य पूर्णमास स्थालीपाक की विधि से होंगे। हवि के निर्वाप के समय "अग्नये इत्यादि वाक्यों से निर्वपन करे। दूध में चावल पकावे। इस यज्ञ में भूमि जप परिसमूहन, प्रपद और विरूपाक्ष मन्त्रों का प्रयोग आवश्यक है। आज्य भाग संज्ञक आहुतियों के पश्चात् उपस्तीर्णाभिघारित पायस चरु से लेकर "अग्नये स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों से चार आहुति प्रदान करे। वृषभ (बैल) के सींगों में भूषण पहना और घास खिलाकर उसकी पूजा करे। सायंकाल में चरकर आई हुई गौओं का हल्दी चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से प्रोक्षण करे। शेष कृत्य पूर्णमास के अनुसार सम्पन्न कर ब्रह्मा को पूर्ण पात्र दक्षिणा प्रदान करे वामदेव्य साम का गान करे। यथा शक्ति ब्राह्मण भोजन करावे। यही गो यज्ञ का प्रयोग है।

अथाश्वयज्ञप्रयोग उच्यते। तस्य प्रयोगो गोयज्ञवद्व्याख्यातस्तथाऽपि विशेषो ऽभिधीयते। गोयज्ञोऽश्वयज्ञश्च विद्यमानानां गवामश्वानां च पुष्ट्यर्थः। "पुष्टिकर्म" इति सूत्रोक्तेरविद्यमानासु गोष्वसत्स्वश्वेषु नायं गोयज्ञोऽश्वयज्ञश्च। तथा च विद्यमानानामश्वानां पुष्ट्यर्थमश्वयज्ञमहं करिष्ये इति संकल्प्य पूर्ववत्पायसचरुं कुर्यात्। निर्वापकाले विशेषः। गोयज्ञवदग्निपूषेन्द्रेश्वरेभ्यो हविर्निरूप्य यमवरुणयोर्निर्वापः। यमाय त्वा जुष्टं निर्वपामि। वरुणाय त्वा जुष्टं निर्वपामीत्याज्य-

भागान्ते गोयज्ञवदग्न्यादिभ्यश्चतसृभ्यो देवताभ्यश्चरुं हुत्वा, यमाय स्वाहा। यमायेदं न मम। वरुणाय स्वाहा। वरुणायेदं न ममेति जुहुयात्। अनयोः काम्यत्वात्काम्येषु वक्ष्यमाणत्रिरात्रोपोषणमशक्तौ त्रिरात्रमेकभक्तं वा। अन्ये तु "मार्गपालीदिने गोयज्ञो, नीराजनदिनेऽश्वयज्ञः" इति कर्मप्रदीपवचनाच्चेत्याहुः॥ इत्यश्वयज्ञप्रयोगः॥

अर्थ—अब अश्व यज्ञ का प्रयोग लिखा जाता है। यद्यपि अश्व यज्ञ का प्रयोग गोयज्ञ के ही अनुसार है, तो भी उसमें जो विशेष कृत्य हैं उनकी विधि लिखते हैं। गो और अश्व यज्ञ ये दोनों ही उपस्थित गौ और घोड़े के बलवान बनाने के लिए किये जाते हैं। गो-यज्ञ गो पशु-यज्ञ होने से अश्व के पुष्टयर्थ नहीं हो सकता, कारण कि अश्वयज्ञ का आरम्भ अश्व के विद्यमान होने पर करना होता है। गो-यज्ञ के अनुसार इसमें भी पायस चरु होगा परन्तु निर्वाप के समय "यमाय त्वा जुष्टं निर्वपामि। वरुणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि" देवताओं के नाम से भी निर्वाप करे। आज्य भाग आहुतिओं के पश्चात् अग्नि, पूषन्, इन्द्र और ईश्वर देवताओं के पश्चात् "यमाय स्वाहा, यमाय इदं न मम। वरुणाय स्वाहा। वरुणाय इदं न मम" इन दो आहुतियों को प्रदान करे। इस प्रकार अश्वयज्ञ में चरु से छः प्रधान आहुति प्रदान करे। काम्य कर्म होने के कारण यदि तीन दिन उपवास न कर सके तो तीन दिन एक समय भोजन करे। कर्मप्रदीप में लिखा है कि अगहन की पूर्णमासी को गोयज्ञ और चैत्र की पूर्णमासी को अश्वयज्ञ करना चाहिए। यही अश्व-यज्ञ का प्रयोग है।

अथ श्रवणाकर्मप्रयोग उच्यते। तच्छ्रावण्यां पौर्णमास्यां कर्त्तव्यम्। तस्य यावज्जीवं प्रतिसंवत्सरमनुष्ठेयत्वात्प्रथमप्रयोगे नान्दीश्राद्धं कुर्यात्। प्रातरेव श्रवणाकर्म करिष्ये इति संकल्प्याग्न्यायतनस्य पुरस्तात्संस्कृते स्थण्डिल औपासनाग्नेरेकदेशमाहृत्य प्रणयति। ततोऽतिप्रणीतस्याग्नेश्चतसृषु दिक्षु किञ्चिदधिके प्रक्रमान्तरिते देशे गोमयेनोपलिप्य प्रादेशमात्रं चतुरस्रं स्थण्डिलं कुर्यात्। त्रिपदः प्रक्रमो ग्राह्य इति। "तदुक्तं 'कर्मप्रदीपे'। संसक्तपदविन्यासस्त्रिपदः प्रक्रमः स्मृतः। स्मार्त्ते कर्मणि सर्वत्र श्रौते त्वध्वर्य्युणोदित" इति वचनात्।

अर्थ—अब श्रवणाकर्म का प्रयोग लिखा जाता है। इस यज्ञ को श्रावण मास की पूर्णमासी के दिन करना चाहिए। उक्त यज्ञको भी नित्य होम के समान द्विज अपने जीवन का कर्त्तव्य समझ कर प्रति श्रावण की पूर्णमासी को करता रहे। जब पहले पहल आरम्भ करे तो इसका प्रारम्भि अङ्ग नान्दी श्राद्ध करे। प्रातः नित्य सन्ध्योपासनादि कृत्य सम्पन्न कर आचमन प्राणायाम करे। देश, काल, तिथि वार आदि स्मरण के पश्चात् "श्रवणा कर्म करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। गृह्याग्नि के पूर्व कुछ दूर पर वेदिका बना कर उसे पृष्ठ ८९ के अनुसार संस्कृत करे। गृह्याग्नि कुण्ड से थोड़ी सी अग्नि लेकर स्थापित करे। इस अग्नि को अति प्रणीताग्नि कहते हैं। अतिप्रणीत अग्नि के चारो दिशाओं में तीन पग से कुछ अधिक दूरी पर एक वित्तस्त की वेदिका बनाकर उन्हे गोमय

और जल से लीप देवे । कर्म प्रदीप में लिखा है कि ' पैर को मिला मिला कर तीन पग चला जावे उसे गृह्यकर्म में त्रिपद-प्रक्रम कहते हैं और श्रौत कर्म के लिए तो याजुप शाखा में वेदिका माप बहुतही विस्तार के साथ लिखा हुआ है ।

ततोऽग्निमुपसमाधायातिप्रणीताग्नेरुत्तरत उदग्ग्रेषु दर्भेषु यवान् भर्जनकपालमुलूखलं मुसलं शूर्पमनुगुप्ता अपश्च सादयित्वाऽनुगुप्ताभिरद्भिः प्रोक्ष्य, चक्राघटितं मृन्मयं कपालमग्नौ संस्थाप्य, तस्मिन् कपाले सकृद्गृहीतयवमुष्टिं प्रक्षिप्य भर्ज्जति यथा यवा दग्धा न भवेयुस्तथा । ततो भ्रष्टान् यवानुदग्गुद्वास्य, प्रणीताग्नेः पश्चादुलूखलं दृढं संस्थाप्य, तस्मिन् भ्रष्टान्यवान् प्रक्षिप्य, मुसलमादाय पार्वणस्थालीपाकवदवहननं कुर्यात् । यथा यवाः सक्तवो भवन्ति तथोद्रेचं कृत्वाऽवहननं कुर्य्यात् । एवं सम्यक् सक्तून् कृत्वा, तान् चमसे संस्थाप्य, शूर्पेणाच्छाद्य गृहे निदधाति । एतावत्कर्मान्हि कर्त्तव्यम् ।

अर्थ—वेदिका पर स्थापित अग्नि के उत्तर उत्तराग्र कुशा रख कर उसी पर क्रमशः पूर्व पूर्व को जौ, उसे भूनने के लिए एक हड़िया, ओखरि, मूसल और एक पात्र में जल आसादन करे। दो कुशाओं को जल में डुबो कर जौ आदि सब आसादित वस्तुओं का प्रोक्षण कर देवे । हड़िये को अग्नि पर रख कर उसमें एकही वार जौ छोड़े । उन जौ के दाने को भूँन डाले । जलें न पावें । जब

अच्छी तरह भूँन जावें तो अति प्रणीताग्नि के पश्चिम ओखलि को रखकर उसी में छोड़ देवे । जिस प्रकार स्थालीपाक में बताया गया है उसी प्रकार कूट डालें । उसे इतना कूटना चाहिए कि सत्तू बन जावे । सम्पूर्ण जौ का सत्तू बनाकर प्रणीता में भरे । सूप से ढक कर अग्निहोत्र गृह में रख देवे । यह सत्तू बनाने का कार्य प्रातः काल दिन में कर लेवे ।

इतः परं वक्ष्यमाणकर्मानुष्ठानाय सञ्चरप्रदेशोऽतिप्रणीताग्नेर्दक्षिणपश्चिमयोर्मध्यमप्रदेशः । ततोऽस्तं गते सूर्येऽतिप्रणीतास्याग्नेस्समीपं गच्छति । चमसं दर्वीञ्च गृहीत्वा ततश्चमसे स्थितान् सक्तून् शूर्पे निक्षिप्य चमसेनोदकं गृह्णाति । ततः सञ्चरेण प्रविश्यातिप्रणीतस्याग्नेरुत्तरतो मार्गेण पूर्वस्यां दिशि गत्वा प्राङ्मुख उपविश्य पूर्वदिशि कृते मण्डले चमसजलं हस्तेन निनीय दर्व्या सकृत्सक्तून् गृहीत्वा मन्त्रेण बलिं निर्वपति । वक्ष्यमाणानां चतुर्णां मंत्राणां प्रजापतिर्ऋषिर्निगदः सर्पो देवता सर्पबलिकर्मणि विनियोगः । यः प्राच्यां दिशि सर्पराज एष ते बलिः । ततश्चमसेऽवशिष्टमुदकं हस्तेन गृहीत्वा बलिसमीपे निक्षिपति यथा बलिस्स्वस्थानान्न प्रच्युतो भवेत् । ततोऽप्रदक्षिणेनाभ्यावृत्य चमसं दर्वीञ्चाभ्युदय, युगपदेव प्रताप्य, पूर्ववच्चमसेनोदकं गृहीत्वा, दर्व्या सक्तून् गृहीत्वा, ऽग्नेरुत्तरतो गत्वा, दक्षिणस्यां दिशि दक्षिणाभिमुख उपविश्य,

पूर्वकृतदक्षिणमण्डले चमसादुदकं पाणिना निनीय, दर्व्या सक्तून् निर्वपति, यो दक्षिणस्यां दिशि सर्पराज एष ते बलिरित्येतावता मन्त्रेण। पूर्ववच्चमसोदकं हस्तेन बलिसमीपे निक्षिपेत्। ततः पूर्ववदभ्यावृत्य, चमसदर्व्यावभ्युदयाग्नौप्रताप्य, पश्चिममण्डलस्य पुरतः प्रत्यङ्मुख उपविश्य, तत्रैव पश्चिमस्थण्डिलेऽपो निनीय, मन्त्रेण बलिं निर्वपति, यः प्रतीच्यां दिशि सर्पराज एष ते बलिरिति मन्त्रः। पुनः पूर्ववदपो निक्षिप्य चमसदर्व्यावभ्युदय प्रतापयेत्। नात्राभ्यावर्त्तनं तत्रैव स्थितत्वात्। तत उत्तरस्थण्डिलस्य दक्षिणत उत्तराभिमुखो भूत्वोत्तरस्थण्डिलेऽपो निनीय, मन्त्रेण सक्तून् निक्षिप्य, पुनरपोऽवनयति पूर्ववत्। तत्र बलिमन्त्रः। य उदीच्यां दिशि सर्पराज एष ते बलिः।

अर्थ—जिस दिन सत्तू बनाया जावे उसी दिन सूर्यास्त के पश्चात् रात्रि में गृह्याग्नि और अतिप्रणीत अग्नि के मध्य हो नैर्ऋत्य से जाकर दोनो, अग्नि के बीच में पूर्व मुख बैठे। चमस के सत्त को सूपमें रख देवे। चमस में जल भर लेवे। अति प्रणीत और आवसथ्य अग्नि के मध्य से पश्चिम जाकर पूर्व मुख बैठा था उसी मार्ग से निकल कर उसके पूर्व बनाई हुई बलि वेदिका के पश्चिम पूर्व मुख बैठे। वेदिका पर चमस से जल छोड़ देवे। दर्वी से सत्तू लेकर उस जल गिराये हुए स्थान पर "यः प्राच्यां०" मन्त्र को पढ़ता हुआ बलि प्रदान करे। चमस से हाथ से जल ले कर ऐसी रीति

से गिरावे कि दी हुई वलि के स्थान खराब न हो। जिसमें पूरा प्रदक्षिण न हो जावे इस प्रकार घूम कर चमस और दर्वी को धो देवे। दोनो को एक साथ अग्नि पर तपा कर प्रणीता में जल भर लेवे। दर्वी में सत्तू लेकर दक्षिण बलि वेदिका के उत्तर दक्षिण मुख वैठ जावे। वेदिका पर चमस से जल गिरा कर उसी पर दर्वी से "यो दक्षिणस्यां०" मन्त्र को पढ़ता हुआ सत्तू की बलि प्रदान करे। पूर्ववत् चमस से जल को प्रदान कर दोनो पात्रों को प्रक्षालित और अग्नि पर तपा कर चमस में जल और दर्वी में सत्तू लेकर पश्चिम बलि वेदिका के पूर्व जाकर पश्चिम मुख वैठ जावे। प्रथम बलि प्रदान के अनुसार "यः प्रतिच्यां०" मन्त्र को पढ़ता हुआ सत्तू की बलि प्रदान करे। पूर्ववत् उत्तर बलिवेदिका के दक्षिण उत्तर मुख वैठ कर "यः उदिच्यां०" मन्त्र को पढ़ता हुआ वलि प्रदान करे।

अत्र "केचित्प्रतीच्यामुदीच्यां चमसदर्व्योः प्रोक्षणप्रतापनयोः प्रतिषेधं वदन्ति" तेषामेवं प्रतीच्येवमुदीचीतिसूत्रविरोधस्स्पष्ट एव। व्यावर्त्तन-निषेधस्तु तत्र स्थितत्वात्स्पष्टार्थः। ततोऽवशिष्ट-सक्तून् शूर्प्पेणातिप्रणीताग्नौ तूष्णीं प्रक्षिप्य पूर्वोक्तद-क्षिणपश्चिममध्यसञ्चरमार्ग्रेण गृह्याग्निसमीपमागच्छति। ततस्तस्याग्नेः पश्चात् भूमौ न्यञ्चौ पाणी प्रतिष्ठाप्य नमः पृथिव्या इति मन्त्रं जपेत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजा-पतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता भूमिजपे विनियोगः। नमः पृथिव्यै दँष्ट्राय विश्वभृन्मा ते अन्ते रिषाम सँ-

हृतं मा विवधीर्विहृतं माऽभिसंषन्धीः। ऋत्विक्कर्तृकपक्षेऽप्यस्यैव मन्त्रपठनं, नास्त्यत्रोहः।

अर्थ—कुछ लोगों का मत है कि "पश्चिम और उत्तर के सत्तू बलि प्रदान में चमस और दर्वी के प्रक्षालन और प्रतपन की आवश्यकता नही होती। परन्तु जिस प्रकार पूर्व और दक्षिण वेदिका पर बलि प्रदान करे उसी रीत्यानुसार पश्चिम और उत्तर की वेदिका पर भी बलि प्रदान करे" वाक्य से विरोध परता है। अर्द्ध परिक्रम तो इस कारण से कहा गया है कि एक वेदिका से दूसरे पर उठकर जावे। घुसुक कर जाने का भ्रम न रहे किन्तु स्पष्ट हो जावे। सूप में बचे हुए शेष सत्तू को विना मन्त्र अति प्रणीत अग्नि में हवन कर देवे। पूर्वोक्त रीत्यानुसार अतिप्रणीताग्नि और गृह्याग्नि के मध्य से दक्षिण मुख निकल कर गृह्याग्नि के पश्चिम पूर्व मुख बैठे हुए अँगुलियों के बल भूमि पर हाथों को किये हुए "नमः पृथिव्यै०" मन्त्र का जप करे। यदि उपरोक्त कृत्य ऋत्विक् द्वारा सम्पन्न कराया जावे तो "नमः" मन्त्र में ऊह करने की आवश्यकता न होगी।

सन्ध्यां निर्वर्त्य गृह्याग्नौ सायमौपासनं विधाय पायसस्थालीपाकं कुर्यात्। "अत्र केचिद्वैश्वदेवबलिहरणानन्तरं स्थालीपाकं वदन्ति" तन्न साधु, प्रमाणाभावात्, प्रदोषे स्थालीपाकविधिविरोधाच्च, सन्ध्याहोमयोर्नियतकालत्वात्कालात्यये प्रायश्चित्तश्रवणाच्च तयोः पूर्वमनुष्ठानं न्याय्यम्। बलिहरणन्तु न तथा। तत आचान्तोदकः प्राणानायम्य श्रवणाकर्म करिष्ये

इति संकल्प्याग्निमुपसमाधाय ब्रह्मोपवेशनादि श्रवणे पूर्णपात्रदक्षिणादानान्तं पार्वणस्थालीपाकवत्कुर्यात् । तत्र विशेषः ।

अर्थ—उपरोक्त कृत्य कर लेने के पश्चात् सायं काल के सन्ध्योपासन और हवन कृत्यों को समाप्त करें । तदु पश्चात् श्रवणाकर्म संबन्धी चरुस्थालीपाक करें । कुछ लोगों का मत है कि सायंकाल के वैश्वदेव कृत्य के पश्चात् श्रवणाकर्म के स्थालीपाक को आरम्भ करें, परन्तु इसमें कोई प्रमाण न होने के कारण अच्छा नहीं है। सूत्रकार ने प्रदोष में स्थाली पाक करने का उपदेश किया है और प्रदोष काल रात्रि के पहले पहर तक माना गया है । पाक कर वैश्वदेव करने में प्रदोष की व्यतीत होने की सम्भावना सूत्रकार के प्रतिकूल है । सन्ध्योपासन और सायंहवन के लिए सायं समय नियत है । अतः इन दोनों कृत्यों को सम्पन्न कर स्थालीपाक का आरम्भ करना उचित प्रतीत होता है । परन्तु वैश्वदेव बलि करने के पश्चात् स्थालीपाक करना उचित नहीं है ।

आचमन प्राणायाम करे । देश, काल, तिथि, वार आदि स्मरण कर "श्रवणाकर्म करिष्ये' वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। ब्रह्मोपवेशन से पूर्णपात्र दान तक सब कृत्य पूर्णमासस्थालीपाक के अनुसार सम्पन्न करे। श्रवणास्थालीपाक के कृत्य में जो जो विशेषतायें होंगी उन्हें नीचे अङ्कित करता हूँ और उचित स्थानों पर उन्हें यजमान अथवा ऋत्विज को ऊह कर लेना चाहिए ।

पात्रासादनकाले पयसोऽप्यासादनं समूलदर्भस्तम्बस्य च । निर्वापकाले श्रवणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि। विष्णवे त्वा जुष्टं निर्वपामि। अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि।

प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि । विश्वेभ्यो देवेभ्यस्त्वा जुष्टं निर्वपामि । आज्यभागान्ते पायसचरुहोमाः पञ्च । श्रवणाय स्वाहा । श्रवणायेदं न मम । विष्णवे स्वाहा । विष्णव इदं न मम । अग्नये स्वाहा । अग्नय इदं न मम । प्रजापतये स्वाहा । प्रजापतय इदं न मम । विश्वेभ्य देवेभ्यः स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं न मम ।

अर्थ—पात्रासादन में जल के साथ दूध और परिस्तरणार्थ कुशा, मूल के सहित स्तम्ब बनाने के लिए कुशायें आसादन करे । ओखरी और चरुस्थाली में "श्रवणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि" इत्यादि मन्त्रों से हवि निर्वपन करे । दूध से चरुपाक सम्पन्न करे । आज्यभागसंज्ञक आहुतियों के पश्चात् पूर्णमास विधि के अनुसार चरु ले ले कर 'श्रवणाय स्वाहा' इत्यादि पाँच आहुतियों को प्रदान करे ।

ब्रह्मणे दक्षिणादानान्तेऽग्नेरुत्तरतस्समूलं दर्भस्तम्बं प्रागग्रं प्रतिष्ठाप्य सोमो राजेत्येतन्मन्त्रं याꣳसन्धास-मधत्तेति च मन्त्रं जपति । उभयोर्मन्त्रयोः प्रजापतिर्ऋ-षिर्यजुषी सोमसूर्यौ देवते जपे विनियोगः । सोमो राजा सोमस्तम्बो राजा सोमोऽस्माकꣳराजा सोमस्य वयꣳ स्मः । अहिजम्भनमसि सोमस्तम्बꣳसोमस्तम्बमहिज-म्भनमसि ॥ १ ॥ याꣳसन्धाꣳसमधत्त यूयꣳसप्तऋ-षिभिस्सह । ताꣳसर्पामात्यक्रामिष्ट नमो वो अस्तु मा नो हिꣳसिष्ट । सूत्रे "एतमिति" निर्देशादन्यकर्त्तृकत्व-

यज्ञेऽनयोर्जपः। ततो वामदेव्यगानम् ब्राह्मणभोजनादिकञ्च।

अर्थ—ब्रह्मा के दक्षिणा दान के पश्चात् अग्नि के उत्तर मूल सहित स्तम्ब कुशा को पूर्वाग्र रख कर "सोमोराजा०" और "या सन्ध्यां०" मन्त्रों का जप करे। गृह्यसूत्र में 'एनम्' शब्द द्वारा आदेश करने के कारण दूसरे के द्वारा यज्ञों के कराने में भी इन मन्त्रों का जप कर्त्तव्य है। मन्त्रों के जप के पश्चात् वामदेव्य नामका गान करे। यथा शक्ति ब्राह्मण भोजन करावे।

दर्भस्तम्बे न संख्यानियमः। "यज्ञवास्तुनि मुष्ट्यां च स्तम्बे दर्भवटौ तथा। दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेष्वपि" इति कर्मप्रदीपोक्तेः। इति श्रवणाकर्मप्रयोगः॥

अर्थ—कर्मप्रदीप में लिखा है कि 'यज्ञवास्तुकर्म, पौष्टिककर्म स्तम्ब, आस्तरण, चटु और विष्टर में कुश संख्या का नियम नहीं है। अतः यहाँ समूल स्तम्ब संज्ञक कुशाओं के लिए कोई संख्या के साथ रखने की आवश्यकता नहीं है। जितने सुलभ हों उतनाही रखे। यही श्रवणाकर्म प्रयोग है।

तत उत्तरे दिवसे प्रातर्होमानन्तरं पूर्ववदौपासनाग्नौ सक्तून् कृत्वाऽन्येन वा कारयित्वा, नूतनपात्रे संस्थाप्य, पात्रान्तरेणाच्छाद्य, गृहे स्थापयति। अतऊर्ध्वमाग्रहायणीपौर्णमासीपर्यन्तं प्रतिदिनं सायंहोमात्पूर्वं तूष्णीं बलिं हरेत्।

अर्थ—श्रवणाकर्म के दूसरे दिन प्रातः होम के पश्चात् आव-सथ्याग्नि में पूर्ववत् स्वय सत्तू तैयार कर लेवे, अथवा दूसरे से करा लेवे। उसे नए पात्र में रखकर किसी दूसरे पात्र से ढाक देवे। अग्निहोत्र गृह में सुरक्षित रख देवे। आज से मार्गशीर्ष (अगहन) की पूर्णमासी तक प्रति दिन सायं आहुति के पहले उसी सत्तू की विना मन्त्र वलि प्रदान करे।

"अत्र केचित्तूष्णीमित्युक्तेरमन्त्रकं वलिहरणं मन्यन्ते"। अपरे तु "तूष्णीमित्युक्त्या वाङ्नि-यमनं कथयन्ते मन्त्रेण वलिंहरेदिति" वदन्ति। अत्र द्वितीयः पक्षो ज्यायानारम्भे मन्त्रपाठात्त्रैविद्य-वृद्धानामाचाराच्च।

इस वलि प्रदान विषय में कुछ लोगों का मत है कि "तूष्णी" शब्द का भाव विना मन्त्र वलि प्रदान करने का है" परन्तु कुछ लोगों का मत है कि "उक्त शब्द का भाव मौन व्रत धारण कर मन्त्र से वलि प्रदान करने का है। विना मन्त्र वलि प्रदान करे, अथवा मौन व्रत धारण कर मन्त्र से वलि प्रदान करे यह दोनों परम्परा वृद्ध आदर्श पुरुषों से चली आती हैं। अतः मौन व्रत धारण कर मन्त्र से वलि प्रदान करना श्रेष्ठ है।

आचम्य प्राणानायम्य सर्पबलिं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, चमसे उदकं गृहीत्वा, अपेक्षितसक्तून् शूर्पे गृहीत्वा, गृह्याग्नेः पुरस्तादेतदग्नेरुल्मुकं-निधाय, तत्परितः पूर्वोक्तैश्चतुर्भिर्मन्त्रैर्वलिहरणं

कुर्यात् । बलेः पुरस्तादुपरिष्टाच्चापां निनयनं, चमसदर्व्योरभ्युक्षणं प्रतपनं च । नात्र बलिशेषहोमोऽवशिष्टसक्तूनां दिनान्तरे बलिहरणायोपयोक्ष्यमाणत्वात् । नात्र न्यञ्चकर्म । "न्यञ्चकर्म न सर्वदेति" निषेधात् । "बलिशेषस्य हवनमग्निप्रणयनं तथा । प्रत्यहं न भवेयातामुल्मुकं च भवेत्सदेति" कर्मप्रदीपस्मरणात् । इत्यहरहः सर्पबलिप्रयोगः ॥

अर्थ—सत्तू बलि की विधि यह होगी कि नित्य सायं होम से पहले आचमन प्राणायाम कर "सर्पबलि करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे । प्रणीतापात्र में जल और जितने की बलि देनी हो उतने सत्तू सूप में ले लेवे । गृह्याग्नि से अँगार लेकर अग्निकुण्ड के पूर्व रक्खे । उसी अग्नि के चारो दिशाओं में श्रवणा-कर्म विधि के अनुसार बलि प्रदान करे । परन्तु बलि प्रदान के प्रथम और पीछे जल दान, चमस और दर्वी का बार बार प्रक्षालन प्रतपन और शेष सत्तू का होम न होगा । कारण कि श्रवणकर्म में लिखी हुई विधि के अनुसार सायं काल के समय नित्य होगी और उसके बलि दी जाएँ नित्य एही सत्तू रक्खा रहेगा । अंगुलियों के बल हाथ को किए हुए मन्त्र जप भी न होंगे । पूर्व विधि के अनुसार वेदिका संस्कार पूर्वक अग्नि स्थापन भी न होगा केवल अग्नि लेकर रख दी जायगी । कर्म प्रदीप में लिखा है कि "अग्नि स्थापनादि कर्म नित्य नही होता किन्तु उल्मुक रख दिया जाता है । यही प्रति दिन की सर्प बलि का प्रयोग है ।

अथाश्वयुजीकर्मोच्यते । आश्वयुज्यां पौर्णमास्यामाश्वयुजीकर्म कर्त्तव्यम् । प्रथमे प्रयोगेऽनुज्ञां गणेशपूजनं

नान्दीमुखश्राद्धं च कुर्यात्। आश्वयुजि मासे पौर्णमास्यां प्रातरौपासनं कृत्वाऽऽश्वयुजीस्थालीपाकं करिष्ये इति सङ्कल्प्य सर्वं पार्वणस्थालीपाकवत्कुर्यात्। तत्र विशेषः। पात्रासादनेऽग्नेरुत्तरतो दधिमिश्रितं घृतं, घृतमिश्रितं पयो वा पृषातकाख्यं, चर्वर्थं पयश्च, व्रीहिशालि-मुद्ग-गोधूम-सर्षप-तिल यवादिसर्वौषधिमिश्रिताल्लाक्षामया-न्मणींश्चासादयेत्। होमकालेऽग्नेरीशान्यां पृषातकं स्थापयेत्। निर्वापकाले, रुद्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि।

अर्थ—अब आश्वयुजी कर्म का प्रयोग लिखा जाता है। इस कर्म को प्रत्येक आश्विन मास की पूर्णमासी को करना चाहिए। जब पहले पहल आरम्भ करे तो ब्राह्मण से आज्ञा लेकर गणेश पूजन, पुण्याह वाचनादि से नान्दी श्राद्धान्त कृत्य सम्पन्न करे। आश्विन मास की पूर्णमासी को प्रातः होम के पश्चात् "आश्वयुजीस्थाली-पाकं करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। पूर्णमास विधि के अनुसार सब कृत्य सम्पन्न करे। इसमें जो विशेषता होगी उसे नीचे लिखा जाता है। आसादन में घृत मिलाकर दही या दूध, चरु पाक के लिए केवल दूध, व्रीहि, शाली, मुद्ग, गेहूँ, सरसो, तिल और यव इन सर्वौषधियों को मिला कर लाह की मणि को आसादन करे। हवन के समय अग्नि से ईशान्य में घृत मिश्रित दही या दूध को रक्खे। हवि निर्वपन के समय "रुद्राय त्वा जुष्ट निर्वपामि" से हवि का निर्वाप करे।

पयसि चरुं श्रपयेत्। आज्यभागान्तेऽवदान-धर्मेण पायसचरुमवदायानोमित्रावरुणेति प्रथमं हुत्वा,

पुनश्चरुमवदाय मानस्तोक इतिमन्त्रेण द्वितीयं जुहोति । आनो मित्रावरुणेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दो रुद्रो देवता चरुहोमे विनियोगः । आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतं । मध्वा रजाँसि सुक्रतू स्वाहा । रुद्रायेदं न मम । मानस्तोक इति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्जगतीछन्दो रुद्रो देवता चरुहोमे विनियोगः । मानस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नोऽश्वेषु रीरिषः । वीरान्मा नो रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे स्वाहा । रुद्रायेदं न मम ।

अर्थ—दूध में खीर पका कर आज्य भागान्त आहुति प्रदान करे । पूर्णमास विधि के अनुसार उपस्तीर्णाभिधारित पायस चरु लेकर "आनोमित्रा०" और "मानस्तोके०" मन्त्रों से दो आहुतियों को प्रदान करे ।

अथाष्टभिर्गोनामभिर्यथापठितैराज्येन जुहुयात् । काम्यासि स्वाहा । काम्याया इदं न मम । प्रियासि स्वाहा । प्रियाया इदं न मम । हव्यासि स्वाहा । हव्याया इदं न मम । इडे स्वाहा । इडाया इदं न मम । रन्ते स्वाहा । रन्ताया इदं न मम । सरस्वती स्वाहा । सरस्वत्या इदं न मम । मही स्वाहा । मह्या इदं न मम । विश्रुते स्वाहा । विश्रुता-

या इदं न मम । ततस्स्विष्टकृदादिपूर्णपात्रदक्षिणा-दानान्तेऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य पूर्वमासादितं पृषातकमा-नीय मन्त्रेण ब्राह्मणानवेक्षयित्वा यजमानस्स्वयमवेक्षते । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः शुक्रो देवताऽवेक्षणे विनियोगः। तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदश्शतं जीवेम शरदश्शतम् ॥ अवेक्षणाय ब्राह्मणानां सन्निधानाभावे पृषातकं स्वयं पश्येत् । ब्रा-ह्मणानितिबहुवचनानवेक्षकास्त्रयः । बहुबचनस्य त्रित्वे 'पर्य्यवसानस्य कपिञ्जलाधिकरणे' सिद्धान्तितत्वात् ।

अर्थ--"काम्यासि स्वाहा" इन आठ मन्त्रों से घृत की आहुति प्रदान करे। उपरोक्त घृत आहुतियों के पश्चात् स्विष्टकृत आहुतियों से ब्रह्मा को पूर्णपात्र दक्षिणा प्रदान तक पूर्णमास विधि के अनुसार सम्पन्न करे। अग्नि की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करे। यजमान पृषातक लाकर "तच्चक्षु०" मन्त्र से प्रथम ब्राह्मणों को दिखा देवे। यदि ब्राह्मणों का अभाव हो तो यजमान ही उपरोक्त मन्त्र को पढ़ता हुआ उसे अवलोकन करे। यह पृषातक तीन ब्राह्मणों को दिखाना चाहिए। गोभिलगृह्यसूत्र में ब्राह्मण शब्द बहु वचनान्त है । कपिञ्जलाधिकरण में लिखा है कि तीन में बहुबचन की पूर्ति हो जाती है।

ततो ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वयम्भुक्त्वा जातुषा-न्सर्वौषधिमिश्रान्मणीनाबन्धीरन् । स्वस्त्ययनाय सायं गाः पृषातकं प्राशयित्वा

स्ति ह्वासां भवति । आबन्धीरन्निति बहुवचनदर्शना-द्यजमानपुत्रादीनां बाहौ मणिबन्धनम् । परिभाषासूत्रेण कर्मान्ते विहितब्राह्मणभोजनमत्र दिवैव कर्त्तव्यम् । "ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वयं भुक्त्वा जातुषान्मणीनिति" पुनस्सूत्रकृतोक्तत्वात् । पर्वणि रात्रिभोजननिषेधस्मरणाच्च । केचित्तु "कर्मान्ते कर्त्तव्यब्राह्मणभोजनादन्यदेवेदं ब्राह्मणत्रयभोजनमिति" वदन्ति । अन्येतु, "ब्राह्मणान्भोजयित्वेत्यत्र पृषातकं भोजयेदिति" व्याचक्षते । एतदपि शास्त्रार्थापरिज्ञानविलसितम् । तथाहि पूर्वमीमांसायां शाबरभाष्ये जिज्ञासाऽधिकरणे । "लोके येष्वर्थेषु प्रसिद्धानि पदानि तानि सति सम्भवे तदर्थान्येव सूत्रेष्वित्यवगन्तव्यम् । नाध्याहारादिभिरेषां परिकल्पनीयोऽर्थः परिभाषितव्यो वे"त्युक्तत्वात् अत्राश्रुतपृषातकपदाध्याहरप्रसङ्गः । किञ्च पृषाकस्य गोभक्षणं विदधत्सूत्रं व्याकुप्येत । न हि पृषातकभक्षणेन ब्राह्मणानां तृप्तिस्स्यात् । तस्मात्प्रथमत उक्तार्थ एव शिष्टैरादर्त्तव्य इत्यलम् ।

आत्मकल्याण के लिए मणिखण्ड और सर्वौषधि को एक वस्त्र में बाँधकर दाहिने हाथ के पहुचे मे बाँध लेवे। सायं काल में पृषातक पिला कर गौओं को बछड़े के सहित गृह के बाहर छोड़ देवे। इससे उनका कल्याण होता है। परिभाषा सूत्र के अनुसार कर्म समाप्त हो जाने पर दिन में ही ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। परन्तु

'ब्राह्मणों को भोजन करा कर स्वयं भी भोजन करले, तत्पश्चात् मणिबन्धन कृत्य करे" इस गृह्यसूत्र के वचनानुसार दिन में ही भोजन करना और करवाना उचित प्रतीत होता है। कारण कि पर्व के दिन रात्रि में यजमान को भोजन करना निषेध है। ब्राह्मण भोजन को कर्मान्त ब्राह्मण भोजन से पृथक् मानते हैं। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि यहाँ पर पृषातक प्राशन के लिए ब्राह्मण भोजन का उल्लेख किया गया है। परन्तु इससे भी शास्त्रार्थ की अज्ञता ही व्यक्त होती है। पूर्व मीमांसा के जिज्ञासा अधिकरण में भाष्यकार शाबर ने लिखा है कि--"लोक में जिस शब्द का जो अर्थ प्रसिद्ध हो और प्रकरणानुसार उसी अर्थ की सम्भावना भी होती हो तो अन्य सूत्रों की अनुवृत्ति से उसी अर्थ का समर्थन कर्तव्य है। अध्याहार से दूसरे अर्थ की परिकल्पना नहीं करनी चाहिए" पृषातक का ब्राह्मण भोजन के प्रसंग में प्राशन का अध्याहार अयुक्त है। जब कि सूत्र में पृषातक गौ को खिला देना लिखा है तो पृषतक प्राशन का ब्राह्मणों से क्या संबन्ध है और उससे क्षुधा की तृप्ति भी नहीं हो सकती। अतः यहाँ पर यही सिद्धान्त श्रेष्ठ है कि दिन में ही ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयं भोजन कर लेवे और सपरिवार रक्षाबन्धन करें।

'लाक्षामयमणिबन्धनमपि' नित्यं न तु काम्यम्। 'स्वस्त्ययनार्थमिति' नाधिकारविधिः वाक्यभेदप्रसङ्गात्। किन्तु मणिबन्धनस्तावकम्। एतेन "मणिबन्धनकाम्यकृतेऽपि न दोष" इति केषाञ्चिदुक्तिः परास्ता, निर्मूलत्वात्।

अर्थ--रक्षाबन्धन भी नित्य कर्म है। नैमित्तिक नहीं है। किसी किसी का मत है कि--"स्वस्त्ययनार्थम्" यह किसी विधि के अधि-

कार का सूचक नहीं है। किन्तु मणि और सर्वौषधि युक्त रक्षा-बन्धन के ही लिए प्रयोग किया गया है। अतः मणि बन्धन को काम्य कर्म मानना अयुक्त नहीं है"। परन्तु उपरोक्त मत युक्ति युक्त नहीं है। मणि बन्धन को काम्य कर्म मानना निर्मूल है। यह कर्म आश्वयुजि का हक्ष एवं नित्य कर्म है।

ननु मैत्रावरुण्या ऋचा रौद्रचरुहोमे कथं? विनियोग उक्तः 'अन्यस्यै देवतायै हविर्दिरूप्यान्यस्यै न हूयत, इति तु न्याय्यम्, "निरूप्य हविरन्यस्मा अन्यस्मै न हि हूयत" इति कर्मप्रदीपस्मरणान्मित्रावरुणचरुहोमे विनियोगो युक्त इति चेन्न, "रौद्रश्चरु." इति श्रुते रौद्रचरुमधिकृत्यानोमित्रावरुणेति प्रथमामिति श्रुतेश्च। अन्यत्रापि ऐन्द्र्या ऋचो गार्हपत्योपस्थाने विनियोगो दृश्यते, तद्वदत्रापि लिङ्गम्बाधित्वा श्रुत्या रुद्रप्रतिपादकेयमृग्भवितुमर्हति, केनापि योगेन त्रिावरुणशब्दो रुद्रे वर्त्तिष्यते। अधिकं मीमांसान्यायविद्भिरूह्यम्। इत्याश्वयुजोकर्मप्रयोगः।

अर्थ--इस आश्वयुजि कर्म में रुद्र देवता के लिए स्थाली-पाक करना लिखा है। यहां सन्देह होता है कि "आनो मित्रा वरुणा०" मैत्रावारुणीय ऋचा का विनियोग रुद्र देवता के लिये चरु की आहुति प्रदान करने में क्यों किया गया है? यह विनियोग युक्ति युक्त नहीं है? जिस देवता के लिए हवि पकाई जावे उसी के मन्त्र से आहुति प्रदान करना चाहिए। यही न्याय युक्ति युक्त है।

कर्म प्रदीप में लिखा है कि किसी दूसरे देवता के लिए पकाई हुई हवि को दूसरे के लिए नहीं प्रदान करना चाहिए। उपरोक्त सन्देह किया जा सकता है, परन्तु इस स्थान पर ऐसा विरोध नहीं है। आश्व युजि कर्म में रुद्र देवता के लिए हवि पका कर तद् पश्चात् "आनोमित्रावरुणा०" मन्त्र से रुद्र देवता के लिए हवि की पहली आहुति प्रदान करने में श्रुति प्रमाण है। जैसे गार्हपत्य की स्तुति में उक्त मन्त्र इन्द्र देवता संबन्धी माना गया है, उसी प्रकार यहाँ रुद्र संबन्धी मान कर हवि होम में विनियोग किया गया है। जिस प्रकार निरुक्त में अग्नि शब्द रुद्र का भी बोधक बताया है उसी रीत्यानुसार मित्र और वरुण शब्दों का प्रयोग रुद्र के लिए भी हो सकता है। इस विषय का अधिक ऊहापोह पूर्व मीमांसा के विद्वानों द्वारा किया जा सकता है। यही उपरोक्त आश्वयुजी कर्म का प्रयोग है।

अथ नवयज्ञप्रयोग उच्यते। स च नित्यो गौतमेन नित्यसंस्कारमध्ये परिगणितत्वात्। स च नूतनव्रीहिभिःकर्त्तव्यो, "नवयज्ञ" इत्यन्वर्थसंज्ञाकरणात्। तस्य कालः सूत्रान्तरोक्तः शरत्। तत्रापि शुक्लपक्षे देवनक्षत्रममावास्या पौर्णमासीवा। उक्तकालातिक्रमेऽनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नभक्षणे 'वैश्वानरश्चरुः प्रायश्चित्तं' परिशिष्टोक्तादित्यधस्तान्निरूपितम्। नवयज्ञस्य प्रथमारम्भे नान्दीमुश्राद्धम्।

अर्थ--अब नव-यज्ञ का प्रयोग लिखा जाता है। महर्षि गौतम ने पुरुष के ४० संस्कारों के अन्तर्गत उक्त यज्ञ को भी गिनाया है,

अतः यह भी नित्य कर्म्मों में है। इस यज्ञ के नाम-करण से ही व्यक्त हो जाता है कि नया अन्न तैयार हो जाने पर उसी की हवि से इस यज्ञको सम्पन्न करे। यद्यपि गोभिलाचार्य ने नवान्न के यज्ञ करने का समय निर्धारित नहीं किया है, तथापि मानव गृह्यसूत्रानुसार यव का वसन्त एवं व्रीहि का शरद ऋतु माना गया है। उक्त यज्ञ के लिए पूर्णमासी अथवा आमावास्या तिथि अति उत्तम है। अथवा शुक्ल पक्ष की किसी शुभ नक्षत्र युक्त तिथि में सम्पन्न करे।

यदि कोई वसन्त और शरद् ऋतुओं में उक्त नवान्न यज्ञ न करे और नये अन्न का भोजन कर लेवे तो उसे प्रायश्चित्तार्थ वैश्वानर स्थालीपाक करना चाहिए। यह परिशिष्ट में लिखा है। इस यज्ञ के प्रथम आरम्भ के समय नान्दी श्राद्ध भी कर्त्तव्य है।

प्रातरौपासनं कृत्वा ब्राह्मणाननुज्ञाप्य गणेशपूजां कुर्यात्। प्राणानायम्य सङ्कल्पं करोति नवान्नसंस्कारार्थं नवयज्ञं करिष्ये इति। ततोऽग्निमुपसमाधाय सर्वं पार्वणस्थालीपाकवत्कुर्यात्। पात्रासादनकाले प्रकृतिवत्पात्राण्यासाद्य नवान्नतण्डुलान्पयश्चासादयेत्। निर्वापकाले, इन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं निर्वपामि। नवानां तण्डुलानां निर्वापः। पयसि चरुश्रपणम्। आज्यभागान्ते नवचरुमवदाय जुहोति। इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। इन्द्राग्निभ्यामिदं न मम।

अर्थ—जिस दिन नव यज्ञ करना हो नित्य सन्ध्योपासनादि होमान्त कार्य संपन्न कर ले। यदि प्रथम वार आरम्भ करना हो तो गणेश पूजनारम्भ से नान्दी श्राद्धान्त कृत्य भी सम्पन्न करे।

आचमन प्राणायाम कर "नवान्नसंस्कारार्थं नवयज्ञं करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। पूर्णमास विधि के अनुसार स्थाली-पाक प्रस्तुत करे। यदि आमावास्या अथवा पूर्णिमा को करना हो तो पर्वस्थालीपाक के साथ ही एक तन्त्र से नवान्न स्थालीपाक भी सम्पन्न करे। विशेषता केवल इतनाही होगी कि आसादन में नये अन्न का चावल और दूध भी आसादन करना होगा। निर्वाप के समय "इन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं निर्वपामि" वाक्य से नये चावल का निर्वपन करे। उस नए चावल की दूध में खीर पका लेवे। पूर्णमास विधि के अनुसार आज्य भागान्त कृत्य सम्पन्न करे। यदि पर्व चरुस्थालीपाक के साथ हो तो पर्वस्थालीपाक के चरु से पर्व देवता की आहुतियों को भी प्रदान कर लेवे। उपस्तीर्णाभिघारित नवान्न पायस चरु लेकर "ओं इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा, इन्द्राग्निभ्यामिदन्न मम।" आहुति प्रदान करे।

चरुं हुत्वा शतायुधायेत्येतत्प्रभृतिभिश्चतस्र आज्या-हुतीर्जुहोति। एषां चतुर्णां मन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिराद्य-स्य पङ्क्तिश्छन्दः त्रयाणां त्रिष्टुप्छन्द, इन्द्रो देवा ग्रीष्मादय इड्वत्सराश्च देवताः आज्यहोमे विनियोगः। शतायुधाय शतवीर्याय शतोतयेभिमातिषाहे। शतं यो नः शारदो अजी-जादिन्द्रो नेषदतिदुरितानि विश्वा स्वाहा ॥ १ ॥ इन्द्रायेदं न मम। ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति। तेषां यो अज्यानि मजीजिमावहास्तस्मै नो देवाः परिदत्तेह सर्वे स्वाहा ॥ २ ॥ देवेभ्य इदं न मम। ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तः शरद्वर्षाः सुवितन्नो अस्तु।

तेषामृतूनाँ शतशारदानां निवात एषामभये स्याम स्वाहा ॥ ३ ॥ ग्रीष्मादिभ्य इदं न मम । इड्वत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः । तेषां वयँ सुमतौ यज्ञियानां ज्योगजीता अहता स्याम स्वाहा ॥ ४ ॥ इड्वत्सरादिभ्य इदं न मम । ततः स्विष्टकृदादिकं कुर्यात् । प्राशनकाले यजमानस्त्र्यार्षेयश्चेद्वामहस्तेन दक्षिणहस्ते सकृदुपस्तीर्य्य मेक्षणेन हविरुच्छिष्टस्य मध्यात्पूर्वार्द्धाच्चावदाय सकृदभिघारयति । पञ्चार्षेयश्चेत्सकृदुपस्तीर्य्य मेक्षणेन हविरुच्छिष्टस्य मध्यात्पूर्वार्द्धात्पश्चार्द्धाच्चावदाय सकृदभिघारयति । अत्रोपस्तीर्णाभिघारणमुदकेन नत्वाज्येन । एवमवत्तं हविर्भद्रान्नश्श्रेय इति मन्त्रेणास्वादनमकुर्वन्दन्तैरसम्भिन्दन्भक्षयेत् । पूर्ववदुपस्तीर्य्यावदायाभिघार्य्य मन्त्रेण द्वितीयं भक्षयेत् । पुनः पूर्ववत्कृत्वा मन्त्रेण तृतीयं भक्षयेत् । पुनः पूर्ववत्कृत्वाऽमन्त्रकं चतुर्थं भक्षयेत् अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो व्रीहयो देवता नवव्रीहिहविर्भक्षणे विनियोगः । भद्रान्नः श्रेयस्समनैष्ट देवास्त्वया वसेन समशीमहि त्वा । स नो मयोभूः पितेवाविशस्व शं तोकाय तन्वै स्योनः स्वाहा ॥ ततो भूय एवावदाय काममास्वादयन्भक्षयेत् । ये चान्येऽपि ब्राह्मणास्सन्निहितास्स्युस्तेभ्यो दत्वा यजमानो भक्षयेत् । तेषामपि पूर्ववद्भक्षणविधिः । परन्तूपस्तरणावदानाभिघारणानि यजमानकर्तृकाणि । सर्वे कृताचमना मुखं शिरोऽङ्गानि चानुलोमं पृथ-

गमोसीतिमन्त्रेणाभिमृशेरन्। अङ्गानीत्येतद्बहुवचनस्य त्रित्वे पर्यवसानाज्जठरं दक्षिणबाहुं वामबाहुं पृथक्पृथगभिमृशेतेतियावत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः प्राणो देवताऽङ्गाभिमर्शने विनियोगः। अमोसि प्राण तदृतं ब्रवीम्यमा ह्यसि सर्वमनुप्रविष्टः। स मे जराँ रोगमपमृज्य शरीरादमाम एधि मा मृधा न इन्द्र॥ हविश्शेषं यजमानो भोजनकाले भक्षयेत्। वामदेव्यगानम्। ब्राह्मणभोजनम्॥ इति नवव्रीहियज्ञप्रयोगः॥

अर्थ—तदुपरान्त् केवल घृत ले लेकर "शतायुधाय० ये चत्वार० ग्रीष्मोहेमन्त० इद्वत्सराय" मन्त्रों से चार आहुतियों को प्रदान करे। स्विष्टकृत आदि वास्तु कर्मान्त कृत्य सम्पन्न करे। यजमान दाहिने हाथ से वाम हाथ पर थोड़ा सा जल लेवे। होम से शेष हवि के मध्य और पूर्व भाग से दो वार और यदि पाँच प्रवर का यजमान हो तो पश्चात् भाग से भी एवं तीन वार हवि को वाम हाथ पर लेकर ऊपर से जल छाड़े। इस प्रकार नवान्न हवि को लेकर "भद्रान्नश्श्रेय०" मन्त्र को स्मरण करता हुआ भोजन कर लेवे। इसी प्रकार चार वार भोजन कर जावे। यदि प्राशन के समय और ब्राह्मण भी उपस्थित हों तो उन्हें भी नवान्न हवि को प्राशन करने के लिए दे देवे। उन लोगों को भी उसी मन्त्र को स्मरण करता हुआ भोजन करना चाहिए। परन्तु उन्हें हवि लेने के पहले और पश्चात् जल लेने की आवश्यकता न होगी। नवान्न भोजन के पश्चात् सब लोग आचमन कर "अमोसि०" मन्त्र से मुखादि अङ्गों का स्पर्श करें। इस कृत्य में उदर, दाहिने हाथ से वाम और वाम से दाहिने हाथ का भी स्पर्श करे। शेष हवि को भोजन के समय भोजन करे। वामदेव्य

साम का गान करे और यथा शक्ति ब्राह्मणों को भोजन करावे । यही शरद् ऋतु में नए व्रीहि नवान्न का यज्ञ है ।

वर्षर्तौ नवश्यामाकानां पयसि चरुः पूर्वोक्तवनव्रीहियज्ञवत्कर्त्तव्यः । वसन्तर्त्तौ यवानां चरुर्नवयज्ञवत्कर्त्तव्यः । तत्र श्यामाकहविश्शेषभक्षणे मन्त्रान्तरम्, अग्निः प्राश्नातु प्रथम इति । मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो जठराग्निर्दैवता श्यापाकचरुप्राशने विनियोगः । अग्निः प्राश्नातु प्रथमः स हि वेद यथा हविः । शिवा अस्मभ्यमोषधीः कृणोतु विश्वचर्षणिः स्वाहा ॥ यवहविश्शेषभक्षणे मन्त्रान्तरम् एतमुत्यमिति । मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्जगतीछन्द इन्द्रो देवता यवचरुप्राशने विनियोगः । एतमुत्यं मधुना संयुतं यवꣳ सरस्वत्या अधिवनावचर्कृधि । इन्द्र आसीत्सीरपतिश्शतक्रतुः कीनाशा आसन्मरुतः सुदानवः स्वाहा ॥ व्रीहियज्ञो यवयज्ञश्च गृहस्थानाम् । श्यामाकयज्ञो वानप्रस्थानामिति व्यवस्था ॥ इति नवयज्ञप्रयोगः ॥

अर्थ—इसी उपरोक्त विधि के अनुसार वर्षा ऋतु में सावाँ अन्न का पायस चरु बना कर, नवान्न यज्ञ सम्पन्न करे। वसन्त ऋतु में नए यव से नवान्न यज्ञ करे। केवल सावाँ हवि के प्राशन में ' भद्रान्नः०" मन्त्र के स्थान पर "अग्निः प्राश्नातु प्रथमः; और यव हवि के प्राशन में "एतमुत्यम्०" मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए । नवान्न यज्ञ में एक यह भी व्यवस्था है कि साँवाँ अन्न का नवान्न यज्ञ वानप्रस्थाश्रमी का कर्त्तव्य है, गृहस्थका नहीं । यही उपरोक्त शरद, वसन्त और वर्षा

ऋतुओं में नए साठी, यव और सावाँ अन्नों से कर्त्तव्य नवयज्ञ का प्रयोग है।

अथाग्रहायणीप्रयोग उच्यते। आग्रहायण्यां मार्गशीर्षपौर्णमास्यां बलिहरणं श्रवणाकर्मवत्कर्त्तव्यम्। नमः पृथिव्या इत्येतन्मन्त्रं न जपति। विशेषस्तूच्यते। प्रथमारम्भे नान्दीश्राद्धम्।

अर्थ—अब अग्रहायणी यज्ञ का प्रयोग लिखते हैं। इस यज्ञ को अगहन की पूर्णिमातिथि में करना चाहिए। यहाँ भी श्रवणा कर्म में अङ्कित वधि के अनुसार सत्तू की वलि होगी। "नमः पृथिव्या" मन्त्र का जप न करना होगा। जो जो कृत्य श्रवणाकर्म में लिखा जा चुका है उन्हें वहाँ से देख लेना चाहिए। जो यहाँ विशेष कार्य होंगे उन्हें अङ्कित करते हैं। इस यज्ञ के भी प्रथम आरम्भ करने में पुण्याहवाचनादि नान्दीश्राद्धान्त कृत्य कर्त्तव्य हैं।

प्रातराहुतिं हुत्वा दर्भान् शमीं वीरणान् फलयुक्तबदरीशाखामपामार्गं शिरीषञ्चाहृत्याहार्य्य वाऽक्षतसक्तून् कृत्वा तेषामेकदेशं तूष्णीमग्नौ प्रक्षिपेत्। ततो ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयित्वा तेभ्यो यत्किञ्चिद्दत्वा पूर्वाहृतैः षड्भिर्दर्भादिभिरेकीकृतैस्सम्भारैः प्रादक्षिण्येन नित्याग्निशालामारभ्य भित्तिपटलादिसल्लग्नं धूमं शातयन् सर्वान् गृहाननुगच्छेत्। एवं धूमशातनानन्तरं दर्भादीन् सम्भारानुत्सृजेत्।

अर्थ—प्रातःकाल की नित्य आहुतियों को प्रदान कर कुशा, शमी वीरान् (एक प्रकार की कुशा की अनुरूप की घास है जिसे बेरहुँट कहते हैं । बगई भी कहते हैं ।) फल के युक्त बेर की शाखा अपामार्ग (चिचिरा) शिरीष की शाखा इन उक्त वस्तुओं को स्वयं या किसी शिष्यादि से मँगा लेवे । श्रवणा कर्म विधि के अनुसार सत्तू बनाकर थोड़ा सा बिना मन्त्र अग्नि में होम करे । विद्वान् ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करावे । उन्हें यथा शक्ति दक्षिणा प्रदान करे । उन कुशा, शमी आदि छवो वस्तुओं को एक में मिश्रित कर देवे । अग्नि पर रखकर अग्निहोत्र शाला से लेकर सब घरों में जा जाकर दिवारों में उसका धूँआ लगावे । जब सर्वत्र धूँआ लग जावे तब उन्हें फेंक देवे ।

ततस्तूष्णीमैशान्यां स्थापितासु तिसृषु जातशिलासु वास्तोष्पत इत्यनेन सामद्वयेन तदृचा च मणिकं प्रतिष्ठापयति । जातशिला शर्करशिलेत्यर्थः । मणिकं बृहदुदकभाण्डमित्यर्थः । वास्तोष्पतिसामप्रकाशो यथा ।

वास्तोष्पताइ । ध्रुवा । स्थूणाओ२३४वा । अꣳस-
त्रꣳसोम्याना२म् । द्रप्सःपुराम्भेताशश्वता२३इनाम् ।
आ२३४इन्द्राः । मुनी२ । ना३१उवा२३ । सा२३४खा ॥
वास्तोष्पते ध्रुवा । स्थूणा३ । आ२३४ । सत्रꣳसो ।
म्यानाम् । द्रप्सःपुराम्भेत्ताशश्वता२३इनाम् । आ२३इ-
न्द्राः । मुनी२ । नो२३४वा । सा२३४खा ॥ वास्तोष्पते
ध्रुवा स्थूणाꣳ सत्रꣳ सोम्यानाम । द्रप्सः पुराम्भेत्ता

शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनाँ सखा ॥ ततो मणिके समन्या-यन्तीत्यृचा द्वावुदककुम्भावासिञ्चेत्। प्रतिकुम्भमृगा-वृत्तिः। अस्या गृत्समदऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता सेचने विनियोगः। समन्न्यायंत्युपयन्त्यन्याः समानमूर्व्वं-न्नद्यस्पृणन्ति। तमूशुचिँ शुचयो दीदिवाँसमपांन-पातमुपयन्त्यापः। एतावत्कृत्यं पूर्वाह्णे कुर्य्यात्।

अर्थ—अग्नि कुण्ड से इशान्य दिशा में पहले से पत्थर के सदृश बालू मिलाकर तीन वेदिकाएँ बनाए रहे। उन्ही वेदिकाओं पर बहुत वृहद और सुदृढ़ जलपात्र (कुण्डा) को "वास्तोष्पत०" इन दोनों मन्त्रों को पढ़ता हुआ रक्खे। उन वेदिका पर रक्खे हुए मटकों में घड़ा से जल लेकर "समन्यायन्ति" दोनों मन्त्रों को पढ़ता हुआ भर देवे। प्रत्यक मटकों के भरने में मन्त्रों को वार वार पढ़े। इन उपरोक्त कृत्यों को दो पहर से पहले कर लेना चाहिए।

श्रवणाकर्मवदस्तमिते बलिहरणम्। ततः सायं सन्ध्यां नित्यहोमञ्चनिर्वर्त्य पयसि चरुः कर्त्तव्यः। आग्रहायणीस्थालीपाकं करिष्ये इति सङ्कल्य, आग्र-हायण्यै त्वा जुष्टं निर्वपामीति निर्वापः। आज्यभागाते चरुमवदाय जुहुयात्प्रथमा हव्युवाससेतिमन्त्रेण। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द आग्रहायणी देवता चरुहोमे विनियोगः। प्रथमा हव्युवाससा धेनुरभव

व्यमे। सा नः पतस्वती दुहा उत्तरामुत्तराᳫँ समां स्वाहा॥ आग्रहायण्या इदं न मम। अन्यत्सर्वं पार्वणस्थालीपाकवत्कर्त्तव्यम्।

अर्थ—सायंकाल में सन्ध्या, अग्निहोत्र आदि कृत्य से निवृत्त होकर श्रवणाकर्म में लिखी हुई विधि के अनुसार सत्तू की बलि प्रदान करे। "आग्रहायणी पायस चरुस्थालीपाकं" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। पौर्णमास-स्थालीपाक के रीत्यानुसार सब कृत्यों को करते हुए "आग्रहायण्यै त्वा जुष्टं निर्वपामि" हवि निर्वपन करे। आज्यभागान्त पौर्णमासवत कृत्य सम्पन्न कर "प्रथमा हव्युवासस॰" मन्त्र को पढ़ता हुआ उपस्तीर्णाभिघारित पायस चरु की आहुति प्रदान करे। स्विष्टकृतादि शेष कृत्य पौर्णमास विधि के अनुसार सम्पन्न करे।

दक्षिणादानान्ते पश्चादग्नेर्बर्हिषि न्यञ्चौ पाणी प्रतिष्ठाप्य प्रतिक्षत्रमित्येतौ व्याहृतीश्च जपति। अनयोः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता जपे विनियोगः। प्रतिक्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु। प्रतिप्राणे प्रतितिष्ठामि पुष्टौ प्रत्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मनि। प्रतिद्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे॥ १॥ ॐभूर्भुवस्स्वः॥

अर्थ—ब्रह्मा के दक्षिणा देने के पश्चात् अग्नि-कुण्ड के पश्चिम अङ्गुलियों के बल दोनों हाथों को कुशा पर रखे हुए "प्रतिक्षत्रे॰" मन्त्र और व्याहृतियों का जाप करे।

केचिदत्र "वामदेव्यं गीत्वाऽऽग्र हायणीकर्म समापयन्ति, स्वस्तरारोहणं कर्मान्तरम्" इति च वदन्ति। परे तु, "स्वस्तारोहणमाग्रहाण्यङ्गम्, सूत्रे तस्य कर्मान्तरत्वबोधकाथशब्दाभावात्, अध्याहारे प्रमाणाभावाच्च, पश्चादग्नेर्बर्हिषि न्यञ्चकरणवत्स्वस्तरारोहणमपि तस्मिन्नेव दिने वामदेव्यगानात्पूर्वं कर्त्तव्यं"इत्याहुः॥ इत्याग्रहायणीप्रयोगः

अर्थ—कुछ आचार्यों का मत है कि वामदेव्य साम का गान कर आग्रहायणी कर्म समाप्त करे। वे लोग स्वस्तरारोहण आग्रहायणी कर्म से पृथक् कृत्य मानते हैं। उपरोक्त आचार्यों से विपरीत मत के लोग स्वस्तरारोहण आग्रहायणी कर्म का एक अङ्ग मानते हैं। उनका कहना है कि गोभिल गृह्य सूत्र में कर्मान्तर सूचक 'अथ' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। "अथ" शब्द के अध्याहार करने के लिए कोई प्रमाण भी नहीं है। "प्रतिक्षत्रे०" भूर्भुवःस्वः" मन्त्रों के जप के पश्चात् ही स्वस्तरारोहण करना चाहिए। अस्तु उपरोक्त आग्राहायणी यज्ञ का प्रयोग है। स्वस्तरा रोहण-कृत्य का प्रयोग आगे लिखेंगे।

अथ स्वस्तरारोहणप्रयोग उच्यते॥ उदगयने प्राग्वसन्तात्पुण्येऽहनि पूर्वाह्णे नान्दीश्राद्धं विधाय सायम्बलिहरणान्ते पश्चादग्नेरुदगग्रैस्तृणैरुदक्प्रवणं स्वस्तरमास्तीर्य्य तस्मिन्नहतान्यूर्णामयानि कार्पासमयानि वा स्तरणान्यास्तीर्य्य दक्षिणतो गृहपतिरुपविशति, तस्योत्तरतस्तद्भ्रातर एकपाकोपजीविनश्च यथाज्येष्ठमुपविश-

न्ति। ततस्तेषामुत्तरतो गृहपतिप्रभृतीनां पत्न्यः क्रमेणोपविशन्ति। ततस्तासामपत्यान्यपिक्रमेण स्वाया स्वाया मातुरुत्तरत उपविशन्ति।

अर्थ—अब स्वस्तरारोहण का प्रयोग लिखते हैं। इस कृत्य को सूर्य के उत्तरायण होने पर वसन्त से पहले किसी शुभ तिथि में करना चाहिए। जिस दिन इस कृत्य को सम्पन्न करना हो दो पहर से पहले नान्दी श्राद्ध करे। सायकाल में वलिवैश्वदेव के पश्चात् अग्नि-कुण्ड के पश्चित् त्रिणों के अग्रभाग उत्तर को करके क्रमशः उत्तर को ढालू विस्तर विछावे। ऊपर से ऊँन या कपाश का नया वस्त्र विछा देवे। उस विस्तर पर प्रथम गृहस्वामी वैठे, उसके उत्तर भाग मे एक पाक में भोजन करनेवाले भाई लोग वैठें और उन लोगों के उत्तर जो जिस योग्य हो क्रमशः उनकी स्त्रियाँ वैठें। स्त्रियों के साथ साथ उनके पुत्र पुत्री आदि वैठें। सर्व लोगों को पूर्व मुख वैठना चाहिए।

सम्यक् प्राङ्मुखेपूपविष्टेषु गृहपतिः सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं स्वस्तरारोहणं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, स्वस्तरेऽधोमुखौ हस्तौ संस्थाप्य, स्योनापृथिवीत्येतामृचं जपेत्। अस्याः प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः पृथिवी देवता जपे विनियोगः। स्योना पृथिविनो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म्म सप्रथो देवान्मा भयादिति। ऋचि समाप्तायां सर्वे दक्षिणपार्श्वैः प्राक्शिरसः संविशन्ति। एवमुपवेशनक्रमेण संवेशनमुत्थानं च त्रिवार-

मभ्यात्मं कार्यम् । ततो यथाज्ञानं स्वस्त्ययनमुच्चार्य वामदेव्यं गायेत् । स्वस्त्ययनप्रयोगे महित्रीणामिति द्वे, त्वावतइत्येकं साम प्रयोक्तव्यम् । सामप्रकाशो यथा ।

महाइत्रा२३४इणाम् । अवा२रस्तु । द्युत्तम्मा२३४इत्रा । स्या२र्य्यम्णाः । दुराधा२३४र्षाम् । वरौहो२३४।वा।णा ५स्योदेहाइ । द्वितीयं साम । महित्रीणामवरस्तू ६ए । द्युक्षंमित्रस्यार्यम्णाः । दुराधा२३र्षाम् । वरौहो२ । हुम्मा२ । ए । स्यो २ । या२३४औ होवा । हाओवा । ओवा२३४५ । त्वावतो३ । हौ३हो३१यि । पुरूवसो३ । हौ३हो३१इ । वयमिन्द्रा३ । हौ३हो३१ इ । प्रणेता३ः । हौ३हो३१ इ । स्मसिस्थाता३ः । हौ३हो३१ इ । हरीणा३म् । हौ३हो३१ २३४५इ । डा । 'अरिष्टवर्गसामगानं' एके वदन्ति । तत अप उपस्पृश्य यथाकाममन्यत्र शयनं कुर्य्युः । इति स्वस्तरारोहण प्रयोगः ।

अर्थ—जब सब परिवार के लोग विस्तर पर बैठ जावें पश्चात् गृहपति "सर्वोपद्रव शान्त्यर्थं स्वस्तरारोहण करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे । विस्तर पर हथेली के बल हाथ रखकर 'स्योना पृथिवि०" मन्त्र का जप करे मन्त्र समाप्त होते समय सब लोग दाहिने

करवट पूर्व को शिरकर लेट जावें । पूर्वोक्त रूप से तीन वार लेटें और उठें । तत्पश्चात् जिन्हें जितने स्वस्त्ययन मन्त्र का ज्ञान हो पढ़ें। वामदेव्य साम का गान करें । स्वस्त्ययन के प्रयोग में "महिम्नीणाम्" इन दो और "त्वावत०" साम मन्त्रों को गाना चाहिए । कुछ लोगों का मत है कि अरिष्टवर्गीय साम को गाना चाहिए । सब लोग जल स्पर्श कर इस कृत्य को समाप्त कर अपने अपने विस्तर पर जाकर सयन करें । यही खस्तरारोहण का प्रयोग है ।

अथाष्टकाप्रयोग उच्यते । सा च रात्रिदेवताऽग्निदेवता, पितृदेवता, प्रजापतिदेवता, ऋतुदेवता, वैश्वदेवी वा । अन्ये तु, "अग्न्यादयो देवता मतान्तराभिप्रायेण, गोभिलस्य तु रात्रिदेवताऽष्टका" इति वदन्ति, तन्न सूत्रविरोधः स्पष्ट एव ।

अर्थ—अब अष्टका-नामके यज्ञ का प्रयोग लिखा जाता है। रात्रि, अग्नि, पितृ, प्रजापति, ऋतु और वैश्वदेवी इस अष्टका यज्ञ के देवता हैं। कुछ लोगों का मत है कि उपरोक्त देवताओं में से जिसपर जिनकी विशेष श्रद्धा होवे उनका यजन करें । कुछ लोगों का मत है कि गोभिल को रात्रि देवता इष्ट हैं, परन्तु गोभिल सूत्र से साफ साफ विरोध पड़ता है।

तच्च कर्म नित्यं पुरुषसंस्कारमध्ये पठित्वात् । यदत्र 'पुष्टिफलं' श्रूयते तच्चानुषङ्गिकमिति स्पष्टं भाष्ये । षड्दैवत्याऽनुसन्धानमात्रं सर्वास्वष्टकासु, न तु निर्वापकाले उक्तदेवतानामुच्चारणम् । सर्वत्राष्टका देवताः ।

अर्थ—अष्टका कर्म को गौतम-स्मृति में पुरुष के ४० संस्कारों के अन्तर्गत नित्य कर्मों में लिखा है। यहाँ जो पुष्टि-फल प्राप्ति के लिए अष्टका-कर्म का अनुष्ठान लिखा गया है वह अनुषङ्गिक (संकलित) विषय है। भाष्यकार ने स्पष्ट लिख दिया है। रात्रि आदि देवताओं का नाम उल्लेख मात्र है। कारण कि निर्वपन अथवा आहुति प्रदान कार्य में उक्त देवताओं के नाम उच्चारण कर कर्म नहीं किया जाता, किन्तु अष्टका शब्द का ही प्रयोग किया जाता है।

"ताश्चाष्टकाश्चतस्रो हेमन्ते मांसयुक्ताः कर्त्तव्या" इति कौत्सऋषिर्मन्यते। "अष्टकात्रयं हेमन्ते कर्त्तव्यम्" इत्यौद्गाहमानिमतम्। तदेव गौतमवार्कखण्डिमतम्। गोभिलाचार्याणां मते त्वष्टकात्रयमेव, हेमन्ते तस्यैवोत्तरत्रोपदेक्ष्यमाणत्वात्। गोभिलाचार्याणां मते मध्यमाष्टका मांससहिता, तत्रैव गोपशोर्विधानात्।

अर्थ—कौत्स ऋषि का मन्तव्य है कि हिम ऋतु में पशु मांस से चार अष्टका कृत्यों को सम्पन्न करना चाहिए। "उक्त ऋतु में तीन अष्टका यज्ञ करे, यह औद्गाहमानि ऋषिका मत है। यही मत गौतम और वार्कखण्डि ऋषि का है। गोभिलाचार्य के मत में भी तीन ही अष्टका यज्ञ है। हेमन्त ऋतु में तीन की ही विधि लिखेंगे। गोभिलाचार्य आदि ऋषियों के मत से मध्य अष्टका मांस से कर्त्तव्य है और इस यज्ञ में गोपशु का विधान किया गया है *।

---

* हम पशुवध और मांस भक्षण की मीमांसा भूमिका में लिखेंगे।

तिसृणामष्टकानां स्वरूपमुच्यते। मार्गशीर्षपौर्णमास्या ऊर्ध्वं या कृष्णाऽष्टमी तामपूपाष्टकामाचक्षते, अपूपसाध्यत्वात्। मध्या मांससाध्यत्वान्मांसाष्टका। तृतीया शाकसाध्यत्वाच्छाकाष्टका। अष्टकाश्राद्धकरणे न नान्दीमुखश्राद्धम्, "न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते" इति कर्मप्रदीपस्मरणात्। प्रातर्होमान्तेऽपूपाष्टकां करिष्ये इति सङ्कल्प्याग्निमुपसमाधाय पात्रासादनकाले प्रकृतिवत्पात्राण्यासाद्यापूपाष्टकाकरणार्थं करतलप्रमाणान्यष्टौ कपालान्यासाद्य चर्व्वर्थं व्रीहीनपूपार्थं पिष्टान्युपदं दृषत्पुत्रञ्च सम्मृलं यद्रि परिस्तरणार्थं सम्मूलदर्भांश्चासादयेत्। निर्वापकाले तण्डुलान् पिष्टांश्च गृहीत्वा तन्त्रेण निर्वपति। अष्टकायै त्वा जुष्टं निर्वपामि। तन्त्रेणावहत्य प्रक्षाल्येमे चर्व्वर्थास्तण्डुला इमेऽपूपार्थास्तण्डुलाः इति तण्डुला न्विभज्य पिष्टार्थतण्डुलानुपदि संस्थाप्यदृषत्पुत्रेण पिष्टान् करोति।

अर्थ – अब तीनों अष्टकाओं की विधि लिखते हैं। अगहन मास की पूर्णमासी के पश्चात् जो कृष्ण पक्ष की अष्टमी आवे उसे अपूप अष्टका कहते हैं। कारण कि यह यज्ञ मालपूए से सम्पन्न करना होता है। दूसरी मांस से होने के कारण मांस अष्टका और तीसरी शाक द्वारा सम्पन्न होने के कारण शाक अष्टका कही जाती है। अष्टका में श्राद्ध कृत्य भी किया जाता है। इस कारण उनके आरम्भ में नान्दी श्राद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती। कर्मप्रदीककार का वचन है कि "श्राद्ध के निमित्त श्राद्ध

नहीं करना चाहिए। प्रातः काल के होम के पश्चात् "अन्वष्टकां करिष्ये" वाक्य योजना के साथ सकल्प करे। अग्नि को स्थापन कर पर्व-विधि के अनुसार पात्रासादन करे। पूआ बनाने के लिए हथेली भर चौड़े ८ कपाल चरुके लिए व्रीही, पूआ के लिए पृष्ठ, सिलवट लोढ़ा और मूल के सहित कुशाओं का आसादन करें। निर्वपन के समय आंटा और चावल दोनों के लिये एकही साथ धान लेकर एक तन्त्र से "अष्टका यै त्वा जुष्ट निर्वपामि" दोनों का निर्वपन करे। धान को कूट और पछोर कर "यह चरु के लिए और यह पूआ के लिए है"। इस प्रकार विभाग कर देवे। पूआ के चावल को सील पर रखकर लोढ़ा से पीस देवे जिससे आंटा बन जावे।

"छिन्ने पिष्टे तथा लूने सान्नाय्ये मार्तिके तथा। पश्चान्मन्त्राः प्रयोक्तव्या मन्त्रा यज्ञार्थसाधका" इति सुदर्शनभाष्यस्मरणात् सिद्धपिष्टे मन्त्रसंस्कारः। ततश्चरुं श्रपयति। पिष्टैरपूपान् कृत्वा श्रपयति। तत्प्रकारश्च, चरोरुत्तरत अग्नावष्टौ कपालानि संस्थाप्य तेषु परिवर्त्तनमकुर्वन्नपूपान् श्रपयति। अभिघार्य्य चरुमुदगुद्वास्य, अपूपांश्चोदगुद्वास्य प्रत्यभिघारयति।

अर्थ—सुदर्शनाचार्य भाष्यकार का मत है कि शाखा छेदन, पृष्ट पेषण, कुश छेदन सानाय्य आदि को तैयार कर पश्चात् मन्त्रो से संस्कृत कर लेवे। मन्त्रों का प्रयोग अत्यावश्यक है। मन्त्र ही यज्ञ फल के साधक हैं। पूर्णमास विधि के अनुसार चरु को अग्नि पर रख देवे। चरुस्थाली के उत्तर आठ कपाल (पूआ पकाने के लिए छोटी २ कराही) क्रमशः उत्तर को अग्नि पर रख देवे। आटा का पूआ बनाकर उन्हीं कपालों पर रख देवे। उन्हें एक

कपाल से दूसरे पर न रखे। चरु और पूआओं के अच्छे रूप से पक जाने पर उनपर स्रुवा से घी छोड़ देवे। अग्नि से उतार कर कुण्ड के उत्तर रख देवे। उन चरुस्थाली और पूआओं पर पुनः स्रुवा से घी छोड़े।

आज्यभागान्ते स्रुचि सकृदुपस्तीर्यावदानधर्मेण चरोर्मध्यात्पूर्वार्द्धाच्चावद्यति । पञ्चार्षेयश्चेत्पश्चार्द्धाच्च तृतीयमवद्यति । एवमपूपेभ्यः प्रत्येकं प्रत्येकं द्विस्त्रिर्वाऽवदाय सकृदभिघार्य्य सर्वाणि हवींषि पृथक्पृथक् प्रत्यभिघार्य्यावदानान्येकीकृत्याष्टकायै स्वाहेति जुहोति । अष्टकाया इदं न मम । अन्यत्सर्वं पार्वणस्थालीपाकवत्कर्त्तव्यम् । अपूपैर्ब्राह्मणान्भोजयेत् । इत्यपूपाष्टकाप्रयोगः ।

अर्थ—दर्श-पूर्णमास विधि के अनुसार आज्य भागान्त कृत्य सम्पन्न करे। पहले स्रुची मे एक स्रुवा घृत लेवे। पश्चात् चरु के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध से मेक्षण द्वारा थोड़ी थोड़ी हवि स्रुची में लेवे। यदि पाँच प्रवर वाला यजमान हो तो पश्चिमार्द्ध भाग से भी हवि लेवे। ऐसेही हरेक पूआओं में से भी दो वार अथवा तीन वार लेकर स्रुची में रक्खे। स्रुची में पुनः एक स्रुवा घृत छोड़े। जिन जिन स्थानों से चरु और पुआ लिया गया है, वहाँ वहाँ घृत छोड़ देवे। उन सब चरु और पुआओं को स्रुची में मिश्रित कर "ओ३मष्टकायै स्वाहा" अष्टकाया इदं न मम।" एक आहुति प्रदान करे। स्विष्टकृतादि से वसु आहुत्यान्त पूर्णमास विधि के अनुसार कृत्य सम्पन्न करे। दो से अधिक ब्राह्मणों को पूआ भोजन करावे। यही प्रथम अष्टका का प्रयोग है।

अथ मध्यमाष्टकाप्रयोग उच्यते । यद्यप्यत्र सूत्रकृता "गौरारब्धव्या" इत्युक्तं, तथाऽपि कलिवर्ज्य प्रकरणे गवालम्भस्य निषेधात्तत्प्रतिनिधित्वेन छागस्य स्मरणात्, अत्रैव प्रकरणे शक्तस्य सूत्रकारेण छागस्य विहितत्वात्, तत्पक्षमवलम्ब्य प्रयोगः कथ्यते ।

अर्थ—अब दूसरी मध्यमाष्टका का प्रयोग लिखते हैं। यद्यपि गोभिलाचार्य ने इस मध्यमाष्टका को गोभिलगृह्यसूत्र प्रपाठक तीन, खण्ड दश, सूत्र चौदह में गौ द्वारा सम्पन्न करने का उपदेश किया है परन्तु कलि में गवालम्भ निषेध है। शास्त्रकारों ने गौ के प्रतिनिधि स्वरूप बकरा को बताया है। अत इस यज्ञ को बकरा पशु के द्वारा सम्पन्न करने की विधि लिखी जाती है।

पौष्याः पौर्णमास्या उर्द्ध्वं या कृष्णाष्टमी तस्यां प्रातर्होमान्तेऽनुज्ञां कृत्वा मध्याष्टकां करिष्ये इति सङ्कल्प्य सूर्य्योदयसामीप्य एवाग्नेः पूर्वस्यां दिशि प्रत्यङ्मुखं छागमवस्थाप्योपस्थिते पशौ यत्पशव इतिमन्त्रेण स्रुवेणाज्यं जुहोति। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः पशवो देवता पशोरुपस्थिति होमे विनियोगः। यत्पशवः प्रध्यायत मनसा हृदयेन च। वाचा सहस्रपाशया मयि बध्नामि वो मनः स्वाहा पशुभ्य इदं न मम।

अर्थ—पौष मास की पूर्णमासी के पश्चात् माघमास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में प्रातः होम के पश्चात् इस मध्यमाष्टका कृत्य

को आरम्भ करें। सूर्योदय के ही समय आचमन प्राणायाम करें। हाथ में जल और कुशा लेकर देश, काल, तिथि, वार आदि का स्मरण कर "मध्यमाष्टका करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। अग्नि के पूर्व पशु को लाकर खड़ा करें। आज्यस्थाली में घृत लेकर उसका उत्पवन आदि संस्कार कर लें। स्रुवा से घृत लेकर "यत्पशवः०" मन्त्र से एक आहुति प्रदान करें।

तत उपविष्टे ब्रह्मणि पात्राण्यासादयति । यव-मिश्रितोदकं पवित्रे क्षुरमेकशाखाविशाखे पलाश काष्ठे बर्हिरिध्माज्यं समिधौ स्रुक्स्रुवावाज्यस्थाली-मनुगुप्ता अपश्चासाद्याज्यतन्त्रेणाज्यसंस्कारान्तं प्रकृतिव-त्कुर्यात् । ततः पशुमनामिकाग्रेण स्पृशन्ननु त्वा माता मन्य-तामित्यनुमन्त्रयते । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप् छन्दः पशुर्देवताऽनुमन्त्रणे विनियोगः । अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनुभ्राताऽनुसगर्भ्योऽनुसखा सयूथ्यः । ततो-यवयुक्तेन जलेन पशुं प्रोक्षति । तत्र मन्त्रः, अष्टकायै त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति सौत्रः । उल्मुकेन पशुं प्रदक्षिणीकुर्यात्प-रिवाजपतिरित्यृचा । अस्याः प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवतोल्मुकेन पशुपरिहरणे विनियोग । परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥

अर्थ—पूर्णमास विधि के अनुसार ब्रह्मवरण करे। जब ब्रह्मा अपने आसन पर बैठ जावे तब अग्नि के उत्तर क्रमशः पूर्व पूर्वको

एक पात्र में जौ छोड़कर जल, दो कुश-पवित्र इत्यादि पात्रों का आसादन करे। केवल आज्य संस्कार की विधि से घृत का संस्कार करे। "ओ३म् अनुत्वा०" मन्त्र को पढ़ता हुआ अनामिका अङ्गुली के अग्रभाग से बकरे को स्पर्श करे। 'ओमष्टकायै त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" मन्त्र से जौ छोड़े हुए जल से बकरे का प्रोक्षण करे। यह पशुप्रोक्षण का मन्त्र गोभिलीयगृह्य सूत्र में सूचित है। अग्नि कुण्ड से अंगार लेकर "परिवाजपति०" मन्त्र को पढ़ता हुआ बकरे के चारों तरफ घुमा देवे।

पशुपानार्थं जलं तूष्णीं दद्यात्। व्याहृतिभिरन्ये। पीतशेषमुदकं पशोरधोभागे सिञ्चेन्मन्त्रेण। अस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः पशुर्देवतोदकसेचने विनियोगः। आत्तं देवेभ्यो हविः। अथैनं पशुमुत्तरस्यां दिशि नीत्वा संज्ञपयन्ति। बहुवचनादन्ये बहवः संज्ञपनकर्त्तारः। सूत्रान्तरप्रसिद्धाश्शमितारो ग्राह्याः। एतेषां कल्पनमपि पात्रासादनकाले। ते च शमितारो देवदैवत्ये पशौ प्राक्शिरसमुदक्पादं संज्ञपयन्ति। पितृदैवत्ये दक्षिणाशिरसं प्रत्यक्पादं संज्ञपयन्ति। मृते पशौ यत्पशुरितिमन्त्रेण जुहोति। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता संज्ञप्त होमे विनियोगः। यत्पशुर्मायुमकृतोरो पद्भिराहत। अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः स्वाहा॥ अग्नय इदं न मम।

अर्थ—जौ छोड़ा हुआ जल को बिना मन्त्र बकरे के पीने के

लिए उसके आगे रख देवे। कुछ लोगों का मत है कि "व्याहृति मन्त्रों" से पिलाना चाहिए। पशु के पी लेने से शेष जल को "आत्तं देवेभ्यः हविः" मन्त्र से उसके नीचे गिरा देवे। बकरे को अग्नि के उत्तर ले जाकर मार डाले। "संज्ञपयन्ति" पद बहुवचनान्त है। बहुवचनान्त होने से यह अभिप्राय है कि "पशु वध के लिए यजमान से भिन्न कई एक व्यक्ति हों।" इन्हें पात्रासादन के ही समय बैठा लेना चाहिये। सूत्र में इनका नाम "समिता" लिखा है। वे समिता लोग देवताओं के लिये प्रोक्षित पशु को पूर्व शिर करके गिरा देवें। उत्तर को उसका पैर करके मारें। जो पशु पितरों के लिये होवे उसे दक्षिण शिर एवं पश्चिम पैर करके वध करे। जब पशु का प्राणान्त हो जावे उस समय यजमान "यत्पशुर्मायुम्" मन्त्र से एक घृताहुति प्रदान करे।

ततः पत्नी चोदकमादाय पशोर्मूर्ध्नि, सप्त द्वाराणि, स्तनचतुष्टयं, नाभि, श्रोणिमपानं च प्रक्षालयति। "क्षालनं दर्भकूर्चेन" इति कर्मप्रदीपोक्तेः। गवि स्तनचतुष्टयं नाजे। "पत्नी चेति च-शब्दाद्दर्भकूर्चस्योपादानम्" इति भट्टनारायणोपाध्यायः।

अर्थ—यजमान के आहुति प्रदान के पश्चात् उसकी धर्मपत्नी जल लेकर पशु के शिर, मुख, आँख, नाक, कान, चारो स्तन, नाभी और दोनों पार्श्व को धो देवे। कर्म प्रदीप में लिखा है कि कुशा की कूची बनाकर धोना चाहिये। चारों स्तनों को धोने की विधि गौ पशु के लिए है। बकरे के लिए नहीं। गोभिलगृह्यसूत्र प्रपाठक ३ खण्ड १० के "पत्नी च" सूत्र में "च" शब्द का अभिप्रय भाष्य-

कार नारायणमहोपाध्याय [illegible]
मानते हैं।

नाभेरग्रतः पूर्वासादितमविंग्र [illegible]
नुलोमं छित्वा मांसचर्मणोरन्तर्गता [illegible]
अत्र बहुवचनाद्वपोद्धरणकर्तृनिगम: [illegible]
पूर्वासादितशाखाविशाखयो: काष्ठयो: [illegible]
ग्नौ श्रपयेत्। ततः पक्वायां वपायां [illegible]
भूमिं शोणितं गच्छेत् तथा विशसतेति [illegible]
नोऽन्यान् प्रति वदेत्। एतेनाग्नेः पूर्वस्यां [illegible]
सनं ज्ञायते। शृतांवपामभिघार्य्योदगुद्वास्य [illegible]
रयेत्। ततः स्रुचिसकृदुपस्तीर्य्य कृत्स्नां वपां [illegible]
वदाय द्विरभिघारयति त्र्यार्षेयाणाम्। पञ्चार्षेयाणां [illegible]
द्विरुपस्तीर्य्य कृत्स्नां वपामवदाय द्विरभिघारयति। नमो
ऽष्टकायै स्वाहेति वपां जुहोति। अष्टकाया इदं न मम।

अर्थ—बकरे की नाभी के ऊपर पहले से आसादित कुशपीञ्ज को पूर्वाग्र रख कर उदर के चमड़े को सीध ऊपर की ओर [illegible]। मांस और चमड़े के बीच में रहनेवाली वपा (चर्बी सहित झिल्ली) को निकाल लेवे "उद्धरन्ति" क्रिया के बहुवचनान्त लिखने का यह अभिप्राय है कि "उसे कई एक आदमी सम्मिलित होकर निकालें। निकाली हुई वपा को दो शाखीय लकड़ी पर फैला कर रक्खे। जल से प्रोक्षण कर अग्नि पर पकालेवें। वपा पक जाने पर यजमान और लोगों को आज्ञा देवे कि "पशु के मांस को इस प्रकार अलग कीजिए कि उसका

रक्त भूमि पर न गिरे।" पशु-मांस को अग्नि के पूर्व में निकालना चाहिए। पश्चात् दूसरे वपा के ऊपर घृत छोड़ कर लकड़ी पर से उतार लेवे। पुनः उस पर घृत छोड़ देवे। यदि यजमान का तीन प्रवर हो तो एक बार, यदि पाँच हों तो दो बार स्रुवा से स्रुची में घृत लेकर ऊपर से शृता द्वारा स्रव वपा को रखले। ऊपर से दो स्रुवा घृत छोड़े। इसे "ओं अष्टकायै स्वाहा, अष्टकाया इदं न मम" मन्त्र से अग्नि में होम कर देवे।

ततोऽन्यत्कर्म स्थालीपाकवत्कर्त्तव्यम् । अत्र किञ्चिद्विचार्य्यते । ननूपस्थितिहोमप्रभृति वपाहोमान्तकर्मणां क्रमेणोपदेशान्मध्ये ब्रह्मोपवेशनादीनि कर्माणि कथं ? अत्र पूर्वमभिहितानि, सर्वकर्मपौर्वापर्य्यविरोधादिति चेन्न । वपाहोमविध्युत्तरं, "स्थालीपाकवृतान्यत्" इत्युपदिष्टान्यकर्मणां स्थालीपाकवत्सिद्धत्वात्, "हुत्वा चानुमन्त्रयेत" इत्यत्र च नोपस्थितहोमानुमन्त्रणयोर्मध्येऽनुपदिष्टब्रह्मोपवेशनादीनामपि कर्त्तव्यतायास्सूचितत्वाच्च । स्पष्टोऽयमर्थो गृह्यसूत्रभाष्ये नारायणीये । ततः प्राचीमेकशूलां, प्रत्यगग्रां द्विशूलां, वपाश्रपणीमग्नावनुप्रहरेत् । "अत्रानुशब्दप्रयोगाद्वपाश्रपणीप्रहरणात्पूर्वं वक्ष्यमाणकर्मोपयुक्तपात्रासादनं कर्त्तव्यम्" इति मन्यन्ते । अन्ये तु, "वपाश्रपणीहोमस्य वपाहोमोत्तरकालिकनियमार्थोऽनुशब्द" इत्याहुः ॥

अर्थ—उपरोक्त वपा होम के पश्चात् शेप कृत्य को पर्वस्थालीपाक विधि के अनुसार सम्पन्न करे। इस स्थल पर कुछ लोग विचार करते हैं कि— जब सूत्रकार वपा होमान्त तक ब्रह्म-वरण, उपवेशन आदि कृत्य अङ्कित नही किया है तो उपस्थित मध्याष्टका के होम कर्मों के मध्य वपा होमान्त कर्मों के उपदेश क्रम में ब्रह्मोपवेशनादि विधि क्यों लिखी गई है? वपा होम के पश्चात् स्थालीपाक के निर्देश से पूर्वा-पर से विरोध भी पड़ता है। परन्तु ऐसा नहीं है। "स्थालीपाक वृतान्यत्" सूत्र का अभिप्राय यह है कि—वपा होम विधि के पश्चात् जो शेप कर्म रह गए हैं उन्हें स्थालीपाक विधि के अनुसार समाप्त करे। "हत्वाचानुमन्त्रयेत्" अर्थात् ' आहुति प्रदान कर पश्चात् पशु का अनुमन्त्रण कृत्य करे" इस स्थान पर आहुति और अनुमन्त्रण के मध्य पहले से ब्रह्मा की अनुपस्थिति ही उसके उपवेसन आदि कृत्यों की आवश्यकता सूचित करती है। उपरोक्त अर्थ को भाष्यकार नारायण भट्टोपाध्याय ने गृह्यसूत्र भाष्य मे स्पष्ट लिख दिया है। वपा होम कर लेने के पश्चात् वपा श्रपणी को अग्नि में इस प्रकार छोड़ देवे कि उसके दो मुँह वाला अग्रभाग पूर्व तथा एक मुँह वाला शूलाकार मूल पश्चिम के तरफ पड़े। कुछ लोगों का अनुमान है कि सूत्र में 'अनु' शब्द का प्रयोग पात्रासादन के पश्चात् वपा श्रपणी को अग्नि कुण्ड में प्रक्षेप करने के लिए आया है। परन्तु कुछ लोगों का विश्वास है कि वपा होम के पश्चात् उसे अग्नि में छोड़ देने के अर्थ के प्रकाशनार्थ आया है।

ततोऽग्नेरुत्तरतो व्रीहीनुलूखलं मुसलं शूर्पं चरुस्थालीं पवित्रे मेक्षणद्वयं क्षुरं कांस्यपात्रत्रयं प्लक्षशाखायुक्तं प्रस्तरञ्चासादयेत्। अत्र पात्राणां द्वन्द्वश आसादनम्।

ततः सर्वाण्यङ्गानि गृहीत्वाऽग्नौ श्रपयेत्। वामं सक्थि क्लोमानं च वक्ष्यमाणान्वष्टक्याय स्थापयेत्। "तानि चाङ्गानि 'कर्मप्रदीपे'। हृज्जिह्वा क्रोडसक्थीनि यकृद्वृक्यौ गुदं स्तनाः। श्रोणिः स्कन्धशटा पार्श्वे पश्वङ्गानि प्रचक्षते। पार्श्वस्य वृक्यसक्थ्नोश्च द्वित्वादाहुश्चतुर्दश" ॥ अवत्तान्यङ्गानि बृहत्कांस्यपात्रे निक्षिप्य प्रकृतगृह्याग्नौ श्रपयति। अस्मिन्नेव क्रमेऽष्टकायै त्वा जुष्टं निर्वपामीति व्रीहीन्निरुप्यावहत्य त्रिष्फलीकृत्य प्रक्षाल्य श्रपयति।

अर्थ—अग्नि के उत्तर क्रमशः पूर्व पूर्वको धान्य, उलूखल, मूसल, सूप, चरुस्थाली, दो पवित्र, दो मेक्षण क्षुर, तीन कांस की थाली, प्लक्ष शाखा के साथ प्रस्तर के लिए सब आसादन करे। इस कृत्य में पात्रों को दो दो करके आसादन करना चाहिए। कर्म प्रदीप में हृदय, जिह्वा, क्रोड सक्थीनि, यकृत्, वृक्य, गुदा, स्तन, श्रोणी कन्धा, पार्श्व (बगल) ये पशु के प्रधान अङ्ग लिखा है। दोनों पार्श्व और हृदय पृथक् पृथक् करने पर १४ होते हैं। उपरोक्त अङ्गों को चाकू से काट काट कर एक पात्र में रखे। सब को ऊखा में रखकर अग्नि पर पकने के लिए रखे। पूर्णमास विधि के अनुसार "अष्टकायै त्वा जुष्टं गृह्णामि" वाक्ययोजना के साथ धान ऊलूखल में छोड़े। उसे कूट कर पूर्णमास विधि के अनुसार प्रक्षालन कर अग्नि पर पकने के लिए रख देवे।

ततः शृतमोदनचरुं मांसचरुं च प्रादक्षिण्येन पृथङ्मेक्षणाभ्यां मिश्रीकरोति। यद्यपि पशोः शा-

मित्राग्नौ श्रपणमुपदिष्टं, तथाप्यत्र "तस्मिन्नेवाग्नौ श्रपयति" इति सूत्रकृदुक्तेर्गृह्याग्नौ श्रपणं, न तु तस्मादुद्धृतेऽग्नौ। ततः शृतं चरुद्वयमभिघार्योदगुद्वास्य प्रत्यभिघारयेत्। अस्मिन्क्रमे परिसमूहनादिसमिदाधानान्तं कर्म कुर्यात्। ततः पूर्वमासादित एकस्मिन्कांस्यपात्रे मांसरसमवनयति। ततोऽग्नेः पश्चात्पूर्वासादिते बर्हिषि प्लक्षशाखां प्रागग्रां निधाय तस्मिन्कांस्ये मांसावदानानि स्थापयति। अथवा प्लक्षशाखायुक्तप्रस्तरं प्रागग्रमस्मिन्नेव कालेऽग्नेः पश्चान्निधाय तस्मिन्मांसावदानान्यासादयति प्रागपवर्गम्। ततोऽन्यस्मिन्कांस्यपात्रे द्वादशानामवदानानां पृथक्पृथगवदानधर्मेणावदानं कुर्यात्। पुनरन्यस्मिन्पात्रे स्विष्टकृद्धोमार्थं सर्वेभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरार्द्धपूर्वार्द्धेभ्यः पृथक्पृथगवद्यति। अत्रोपस्तरणादिकं प्रकृतिवत्।

अर्थ—पकते हुए भात और मांस को पृथक् पृथक् मेक्षण से चला देवे। यद्यपि मांसको सामित्र शाला में पकाने को कहा गया है, तथापि इस अष्टका यज्ञ में सूत्रकार गृह्याग्नि में ही पकाने को लिखा है, अतः इसी में पकावे। अग्नि कुण्ड से अन्यत्र अग्नि ले जाकर न पकावे। जब चरु और मांस दोनों पक जावें तो उनमें स्रुवा से घृत छोड़ देवे। अग्नि से उतार कर उत्तर भाग में रक्खे। पुनः दोनों में स्रुवा से घृत छोड देवे। परिसमूहन से समिदाधान तक कृत्य सम्पन्न करे। पहले से रक्खी हुई कांस की थाली

में मांस लेकर अग्नि के पश्चिम बिछाए हुए कुशाओं पर प्रथम प्लक्षशाखा को रखकर उसी पर रख देवे। अथवा इसी समय प्लक्षशाख और कुशाओं को रखकर उसी पर मांस रखे। उस कांस पात्र में पृथक् पृथक् अङ्गों का आसादन करे। दूसरे कांस पात्र में बारह जगह विभाग के क्रम से पृथक रक्खे तीसरे कांस पात्र में सब मांस खण्ड के पूर्व और उत्तर भाग से थोड़ा थोड़ा लेकर स्विष्टकृत आहुति के लिए रक्खे। यहां भी मांस विभागों में पहले और पीछे भी घृत का ढार देना चाहिए।

ओदनचरोरप्यवदानधर्मेण पूर्ववदेव पात्रे बिल्व फलप्रमाणमवदानम्। उत्तरार्द्धात्पूर्वार्द्धाच्च स्विष्टकृद-र्थमोदनचरोरपि स्विष्टकृत्पात्रेऽवदानम्। ततः स्विष्टकृद्धोमावदानं परिहाय पूर्वगृहीतैर्मांसावदानैः सह रसमप्येकीकुर्यात्।

अर्थ—भात को भी बिल्व फल के समान भाग ले लेकर पहले कांस पात्र में रख देवे। स्विष्ट कृतार्थ रखे हुए मांस के पात्रमें स्विष्टकृत आहुति के लिए चरुस्थाली के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध से भात लेकर रक्खे। स्विष्टकृतार्थ से भिन्न पहले के रखे हुए मांस खण्डों के साथ के भात को मांस के रस में मिला देवे।

तत आज्य-भागौ हुत्वा, चतुर्गृहीतमाज्यं गृही त्वाऽग्नावग्निरिति प्रथमया ऋचा जुहुयात् पञ्चार्षे-याणाम्। त्र्यार्षेयाणामपि चतुर्गृहीतमेवात्र पूर्ववद्विशेषा भावात्, चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वेत्यत्र विशेषोपदे-

शाच्च। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्विराट्त्रिष्टुप् छन्दोऽग्निर्देवता होमे विनियोगः। अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः। स नः स्योनः सुयजायजा च यथा देवानां जनिमानि वेद स्वाहा॥ अग्नय इदं न मम।

अर्थ—प्रथम आज्यभागान्त कर्यों को सम्पन्न करे। चार स्रुवा घृत स्रुची में लेकर "अग्नावग्नि०" मन्त्र से आहुति प्रदान करे। यहां प्रवर के अनुसार कुछ विशेषता न होगी। सबको चारही स्रुवा घृत लेना होगा।

ततः प्रथमपात्रे यद्गृहीतं मांसजातं तस्मात्तृतीयांशं हस्तेन गृहीत्वा स्रुचि संस्थाप्य द्वितीयतृतीयाभ्यामृग्भ्यां जुहोति। द्वितीयमन्त्रान्ते न स्वाहाकारस्तृतीयमन्त्रान्ते स्वाहाकारः प्रयोज्यः। अनयोः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽष्टका देवता होमे विनियोगः। औलूखलाः सम्प्रवदन्ति ग्रावाणो हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणाम्। एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा ज्योग्जीवेम बलिहृतो वयं ते॥ इडायास्पदं घृतवत्सरीसृपं जातवेदः प्रतिहव्या गृभाय। ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां ँ सप्तानां मयि रन्तिरस्तु स्वाहा॥ अष्टकाया इदं न मम।

अर्थ—पहली थाली में रखी हुई मांस खण्ड में से तृतीयांश

भाग हाथ से लेकर स्रुची में रख लेवे। "औलूखलाः०" मन्त्रों को पढ़ता हुआ आहुति प्रदान करे। दूसरे मन्त्र के अन्त में स्वाहा शब्द का प्रयोग न करे, किन्तु तीसरे के अन्त में करे।

पुनस्तस्मादेव मांसजातादेकमंशं हस्तेन गृहीत्वा स्रुचि निधाय चतुर्थीपञ्चमीभ्यामृग्भ्यां जुहोति। चतुर्थ्यन्ते न स्वाहाकारः पञ्चम्यन्ते स्वाहाकारं प्रयुञ्जीत। अनयोः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्ककुन्नीछन्दसी अष्टका देवता होमे विनियोगः। एषैव सा या पूर्वा व्यौच्छत्सेयमप्स्वन्तश्चरति प्रविष्टा। वधूर्जिगाय प्रथमा जनित्री विश्वे ह्यस्यां महिमानो अन्तः॥ एषैव सा या प्रथमा व्यौच्छत्सा धेनुरभवद्विश्वरूपा। संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली स्वाहा॥ अष्टकाया इदं न मम।

अर्थ—पुनः पहले के अनुसार मांस समूह के तृतीयांश को हाथ से लेकर स्रुची में रख लेवे। 'एषैवसा०' इन दोनों मन्त्रों को एक साथ पढ़ता हुआ आहुति प्रदान करे। यहां भी चौथे मन्त्र के अन्त में "स्वाहा" शब्द का प्रयोग न करे, किन्तु पांचवें के अन्त में करे।

पुनस्तस्मिन्नेवावशिष्टं मांसजातं हस्तेनादाय स्रुचि निधाय षष्ठीसप्तमीभ्यामृग्भ्यां जुहोति। सप्तम्यन्ते स्वाहाकारः। अनयोः प्रजापतिर्ऋषिर्बृहती छन्दोऽष्टका देवता होमे विनियोगः। यां प्रतिपश्यन्ति रात्रीं धेनु-

मिवायतीम् । सा नः पयस्वती दुहा उत्तरामुत्तराँ समाम् । संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्रि यजामहे । प्रजामजर्य्यां नः कुरु रायस्पोषेण सँसृज स्वाहा ॥ अष्टकाया इदं न मम ।

अर्थ—पुनः पहले के अनुसार आहुति से अवशिष्ट सब मांस खण्डों को हाथ से लेकर स्रुची में रख लेवे । "या प्रतिपश्यन्ति०" छठवें और सातवें मन्त्रों को पढ़ता हुआ आहुति प्रदान करे। सातवें मन्त्र के अन्त में "स्वाहा शब्द का प्रयोग करे ।

ततः पात्रान्तरे स्विष्टकृदर्थमवदाय यत्स्थापितं तत्सर्वं हस्तेन स्रुचि संस्थाप्याष्टम्यर्चोत्तरार्द्धे पूर्वार्द्धे जुहोति। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टप्छन्दोऽग्निर्देवता होमे विनियोगः । अन्विमन्नो अनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च हव्यवाहनः स नोऽदाद्दाशुषे मयः स्वाहा ॥ अग्नयेस्विष्टकृत इदं न मम । ततो व्याहृतिहोमादि तन्त्रशेषं पार्वणस्थालीपाकवत्समापयेत् । एवं प्रतिसंवत्सरमष्टकां कुर्यात् ॥

अर्थ—दूसरे कांस पात्र में स्विष्टकृत आहुति के लिए रक्खे हुए सब मांस खण्डों को एकही बार हाथ से उठा कर स्रुची में रख लेवे । "अन्विमन्नो०" आठवें मन्त्र को पढ़ता हुआ पहले दी हुई आहुतियों के इशान्य दिग् में आहुति प्रदान करे। इन पूर्वोक्त मांस आहुतियों के पश्चात् केवल घृत से भूः आदि व्याहृतियों द्वारा आहुति प्रदान करे। शेष वस्तु आहुत्यान्त कृत्य पूर्णमास विधि के अनुसार सम्पन्न करे । इस प्रकार प्रति वर्ष अष्टका-यज्ञ का दन करे ।

छागस्याप्यसम्भवे स्थालीपाकः कर्त्तव्यः । तस्य प्रयोगः । पशोः स्थाने स्थालीपाकं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, पात्रासादनकाले प्रकृतिवत्पात्राण्यासाद्य, चरु स्थालीद्वयमोदनचर्वर्थं मांसस्थानीयपायसचर्वर्थं च शूर्पद्वयं तण्डुलान् पयश्च कांस्यपात्रत्रयं प्लक्षशाखां मेक्षणद्वयञ्चासादयेत् ।

अर्थ—यदि बकरे का अभाव हो तो स्थालीपाक से अष्टका कृत्य को सम्पन्न करे । उस स्थाली पाक से सम्पन्न करने के प्रयोग को लिखते हैं । "पशोः स्थाने स्थालीपाकं करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे । पात्रा सादन के समय प्रथम पूर्णमास-स्थालीपाक के अनुसार पात्रों को आसादन कर पश्चात् एक चरु के लिये और दूसरी मांस के स्थान पर पायस चरु पकाने के लिए दो चरु स्थाली आसादन करे । दो सूप, चावल, दूध, तीन कांस की थाली, पाकड़-वृक्ष की शाखा और दो मेक्षण आसादन करे ।

निर्वापकालेऽष्टकायै त्वा जुष्टं निर्वपामीत्यादि तण्डुलप्रक्षालनान्तं कृत्वा, अन्यशूर्पस्थित पायसचर्वर्थ-तण्डुलान् पुरस्तादग्नेः संस्थाप्य यवोदकेनाष्टकायै त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति प्रोक्ष्य, गृह्याग्नेरङ्गार-मादायपशुवत्परिव्राजपतिरिति तण्डुलान् पर्य्यग्निक-रोति । ततः पर्यग्निकृतानामवहननादि कुर्यात् अत्र तण्डुलानामेकदेशं गृहीत्वा अन्वष्टक्यर्थमन्यत्र स्थापयेत् । ओदनचरुमन्यस्थाल्यां पायसचरुञ्चान्यस्था-

त्यां, दक्षिणतः पूर्वस्याधिश्रयणमुत्तरतोऽपरस्य, पृथ-ङ्मेक्षणाभ्यां मिश्रीकरोति । ततः कांस्यपात्रे पायस-चरोरास्रावणम् । ततोऽभिघारादि । अग्नेः पश्चाद्दर्भबर्हि-ष्योदनचरुमासाद्य प्लक्षशाखायुक्ते प्रस्तरे पायसच[illegible]ो-र्द्वादशपिण्डान् कृत्वाऽऽसादयेत् ।

अर्थ—एक चरु स्थाली में भात पकाने के लिये "अष्टकायै त्वा जुष्टं निर्वपामि" इत्यादि निर्वपन से चावल धोने तक कृत्य को पूर्ण मास विधि के अनुसार पूरा करे । दूसरे सूत्र में पायस चरु के लिए रक्खे हुए चावल को अग्नि-कुण्ड के पूर्व रख देवे । उसे "अष्टकायै त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" यव मिले जल में पवित्र डुबो कर प्रोक्षण करे । अग्नि-कुण्ड से अंगार ले कर जिस प्रकार पशु के चारों ओर घुमाया गया था वैसे ही 'परिवाज पति०" मन्त्र को पढ़ता हुआ चावल के चारों तरफ घुमाकर पुनः अग्नि में छोड़ देवे । अग्नि घुमाए हुए चावल को पुनः छाट पछोर कर साफ कर लेवे । इस चावल में से कुछ चावल अन्वष्ट का यज्ञ के लिये सुरक्षित अलग रख देवे । एक स्थाली में जल और दूसरी [illegible] पायस चरु पकाने के लिए चावल छोड़ कर एक [illegible] दूसरी को उसके उत्तर अग्नि कुण्ड पर रक्खे । अलग [illegible] से दोनों को [illegible] देवे । पक जाने पर उनमें स्रुवा से [illegible] देवे । अग्नि से [illegible] उसके उत्तर रक्खे और पुनः [illegible] । पायस चरु [illegible] से उतार कांस की थाली में [illegible] पूर्ण [illegible] परिस्तरण आदि कृत्य समाप्त [illegible] की स्थाली को अग्नि के [illegible] पायस चरु का १२ भाग [illegible] उन भागों [illegible] भिघारित कर लेवे [illegible]

वृक्ष की शाखा को रख कर उसी पर से पूर्व को झुकी हुई पायस चरु की थाली को रक्खे ।

अज्यभागान्ते मांसावदानवद् द्वादशपिण्डेभ्य-एकस्मिन् कांस्यपात्रेऽवदानधर्मेणावदाय, मांसाष्टकावदोदनचरुमप्येवं बिल्वफलमात्रं मेत्तणेनावदाय, स्विष्टकृदर्थमन्यस्मिन्कांस्यपात्रेबिल्वमात्रमवदाय, स्रुचि गृहीत्वा, मांसवदानहोमवदष्टच्चैन होमं कुर्यादन्यत्सर्वं प्रकृतिवत् ॥

अर्थ—पूर्णमासवत् अग्नि परिस्तरण से आज्य भागान्त कृत्य करे। १२ पशु मांस खण्ड के व्यवहारानुसारही पायश चरु का और बिल्वफल के बराबर भात भी रख लेवे। उन १२ पायस पिण्ड और भात से स्विष्टकृत आहुति के लिये अलग तीसरी थाली में रख लेवे। प्रथम चार स्रुवा घृत स्रुची में लेकर "अग्नावग्नि०" मन्त्र से आहुति प्रदान करे। पहले लिखी हुई अष्टका विधि के अनुसार स्रुची में बिल्वफल के बराबर पायस चरु पिण्ड ले कर 'उलूखलाः०' इत्यादि मन्त्रों से आहुतियों को प्रदान करे। स्विष्टकृत आहुति के पश्चात् शेष कृत्यों को पूर्णमास विधि के अनुसार सम्पन्न करे।

पशोः स्थाने पायसचरोर्विधानेऽप्युपस्थितहोमप्रभृति वपाहोमान्तानां पदार्थानां निवृत्तिस्तदुक्तमष्टकाप्रकरणे भट्टनारायणोपध्यायैः, 'अस्य होमस्य पशूपस्थानेन सहाभिसम्बन्धार्थस्तेनकिं ? भवेत्। पश्वभावेऽपि

स्थालीपाकं कुर्वीतेति तस्मिन् पक्ष उपस्थित होमस्य निवृत्तिः स्यात् । एवं चेदनुमन्त्रणासेचनसंज्ञसहोममन्त्राणामपि स्थालीपाकपक्षे निवृत्तिरेव स्यात् । प्रोक्षणमन्त्रस्तु स्थालीपाकपक्षेऽप्यविरोधात्स्यादेवेति' ॥

अथ— पशु के स्थान में पायस चरु द्वारा अष्टका यज्ञ के सम्पन्न करने में, वपा होम आदि कृत्य न होगी । गोभिलगृह्यसूत्र के अष्टका प्रकरण में भाष्यकार नारायणोपाध्याय ने इन्हे अनावश्यक लिखा है । यदि यह सन्देह उपस्थित हो कि "वपा होम आदि कृत्य अष्टका यज्ञाङ्गो की पूर्त्ति कैसे की जावेगी" तो उसका उत्तर यह होगा कि 'सूत्रकार ने पशु के अभाव में स्थलीपाक द्वारा अष्टका कृत्य को सम्पन्न करने का उपदेश किया है, स्थालीपाक में वपा पदार्थ का अभाव है, अतः वपा होम नहीं हो सकता । इतनाही नही किन्तु स्थालीपाक से अष्टका कृत्य को सम्पन्न करने में पशु का अनुमन्त्रण, उसके नीचे जल का गिराना, पशु संज्ञपन सूचक आहुति कृत्य भी स्थालीपाक द्वारा अष्टका करने में न होंगी । हां प्रोक्षण कार्य स्थालीपाक और पशु संज्ञपन दोनो ही स्थान में विहित है । अतः इसके करने में कोई आपत्ति नहीं है ।

'अपि वा स्थालीपाकेन' इतिवक्तव्ये प्रकृतिविभक्त्यतिक्रमः किमर्थ ? उच्यते, वपायागनिवृत्त्यर्थः । इतरथा पश्वभावेऽपि विलोपार्थमस्य स्थालीपाकेन यागो माभूदित्येतत्प्रकृति विभक्त्यतिक्रमेणैतन्निवर्त्तयति । स्थालीपाकप्रयोगोऽन्यत्रोक्तो यथा कर्मप्रदीपे । "चरितार्था श्रुतिः कार्य्या यस्मादप्यनु-

कल्पतः । अतोऽष्टर्चेन होमः स्याच्छागपक्षे चरावपि ॥१॥
अवदानि, यावन्ति क्रियेरन् प्रस्तरे पशो. । तावतः पाय-
सान् पिण्डान् पश्वभावेऽपि कारयेत्" ॥ २ ॥

अर्थ—अथवा "स्थालीपाकेन' करण कारक का स्वाभाविक प्रयोग न कर के "स्थालीपाकान्" द्वितीयान्त प्रयोग करने का अभिप्राय यही है कि स्थालीपाक में वपा होम नहीं हो सकता और उस विलोम विभक्ति प्रयोग का यह भी अभिप्राय है कि "पशु के अभाव में अष्टका यज्ञ नहीं हो सकता" ऐसा नहीं। पशु के अभाव में उसके अनुमन्त्रण आदि कृत्य न करके स्थालीपाक से शेष कृत्यों को करता हुआ अष्टका यज्ञ को पूरा किया जा सकता है।

उपरोक्त विचार, कर्मप्रदीप में लिखी विधि से स्पष्ट हो जाता है कि "जिस प्रकार पशु सज्ञपन द्वारा १२ मांस खण्डों का पृथक् पृथक् आसादन से ८ ऋचाओं द्वारा आहुतियों का अनुकल्पना की गई है, उसी अनुसार छाग (बकरा) के अभाव में पायसचरु में भी पिण्ड विभाजित कर आहुतियों से मन्त्रों को चरितार्थ करे। यहिं आस्तरण के ऊपर जितना विभाग पशु मांस का किया जाता है उतनाही पशु के अभाव में पायस चरु का पिंड विभाग करना चाहिए।

स्थालीपाक करणेऽप्यशक्तौ स्वस्या अन्यस्या वा गोर्यथा सम्भवं ग्रासमेषा मेऽष्टकेत्येतावता मन्त्रेण दद्यात्। तत्राऽप्यशक्तौ वनं गत्वा कक्ष मुपसमाधायैषामेऽष्टकेतिमन्त्रं पठत् । उक्तानां पक्षाणामन्यतमपक्षमाश्रित्य प्रत्यब्दमष्टका कर्त्तव्यैव। कलौ पैतृके कर्मणि

पशुबन्धस्य निषेधात्स्थालीपाकपक्ष एव मुख्यः॥ इति मध्यमाष्टकाप्रयोग.॥

अर्थ—यदि स्थाली पाक से भी अष्टका-कृत्य न कर सके तो गो ग्रास वना कर "एषा मे अष्टका" कह कर गौ को खिला देवे। इतना भी न करने का समर्थ हो तो वन में जाकर दोनों बाहु को उठा कर कहे कि 'यही मेरी मांसाष्टका है" प्रति वर्ष पशु संज्ञपन से आरण्यालापनान्त जैसी शक्ति हो उसके अनुसार अष्टका यज्ञ अवश्य करे। कलि में पायसचरु से ही करना श्रेष्ठ है, पशु से नहीं। यही मध्यमाष्टका का प्रयोग है।

अथान्वष्टक्यप्रयोग उच्यते। अष्टम्यां मध्याष्टकां कृत्वोत्तरेऽहनि नवम्यां दशम्यां वाऽन्वष्टक्यं कुर्यात्। तच्चापराह्णे पैतृकत्वाच्छ्राद्धकल्पोक्तनियमा विप्रनिमन्त्रणादिकं च। गृहस्याग्नेय्यां दिश्यष्टमे देशे चतुः प्रक्रमपरिमितां ततोऽधिकप्रक्रमपरिमितां वा दक्षिणापूर्वायतां वा चतुरस्रां वेदिकां निर्माय, पश्चिमद्वारं कृत्वा, परितः कटादिभिराच्छादयेत्। अत्र वक्ष्यमाणकर्म दक्षिणापूर्वाभिमुखेनैव कर्त्तव्यम्। प्रक्रमस्त्रिपदो ग्राह्यः। ततोऽपराह्णे यजमानः स्नात्वा, यज्ञोपवीत्याऽऽचम्य, प्राणानायम्य, देशकालौ सङ्कीर्त्य, प्राचीनावीती गोत्राणां पित्रादीनां तृप्त्यर्थमन्वष्टक्यं करिष्ये इति सङ्कल्प्य परिवृतदेशस्योत्तरार्द्धे उपलिप्ते देशे विदिक्कोणां समं चतुरस्रं स्थण्डिलमरत्निमात्रं पूर्ववत्संस्कृत्य भूर्भुवस्स्वरित्यौपासनाग्निमुपवीती प्रणयति। नात्र

ब्रह्मा । ततः प्राचीनावीत्याग्नेय्याभिमुखोऽग्नेः पश्चाद्दक्षिणा संस्थमुलूखलं मूसलं महद्वि श्शूर्पं चरुस्थालीद्वयं पवित्रद्वय मुदकपात्रं पयोदकं मेक्षणद्वयं स्रुवमाज्यं रजतभूषितं खापिरं शङ्कुं दर्भमुष्टिं सकृदाच्छिन्नकुशान् स्तरणार्थं सकृदाच्छिन्नप्रस्तरमुष्टिं यज्ञीयकाष्ठासानं कांस्यपात्रत्रयं समिद्वयं तिलान् दर्वीं पिञ्जलीत्रयं सौवीराञ्जनं तैल-चन्दन-क्षौम-दशासूत्राणि पिञ्जलीमेकाञ्चासादयत् ।

अर्थ—अब अन्वष्टका यज्ञ का प्रयोग लिखते हैं। माघ मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को मध्यमाष्टका समाप्त कर नौमी अथवा दशमी तिथि में अन्वष्टका नाम यज्ञ करे। यह यज्ञ दो पहर के पश्चात् होगा। इसमें पितृ संबन्धी होने के कारण श्राद्ध कल्प के अनुसार ब्राह्मणों के निमन्त्रणादि कृत्य भी होंगे। इस यज्ञ के लिये गृह से पूर्व और दक्षिण दिशा में आठ पग की दूरी पर १२ अथवा इससे अधिक पद (फाल या हाथ) की लम्बी एवं चौड़ी शाला बनावे। शाला का द्वार पश्चिम मुख बनाना चाहिए। शाला के चारो तरफ टाट आदि से ओट कर देवे। इसमे सब कृत्य दक्षिण और पूर्व मुख होगी। "प्रक्रम" शब्द का अर्थ तीन पग लेना चाहिये। यजमान दो पहर दिन के व्यतीत होने पर स्नान करे। यज्ञोपवीती होकर आचमन और प्राणायाम करे। प्राचीना वीती होकर "पित्र्यर्थमन्वष्टक्यं करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। घिरे हुए यज्ञशाला के आधे से उत्तर भाग में इशान कोण में एक हाथ लम्बी और चौड़ी चतुष्कोण वेदिका बनावे। उसे पृष्ट ८८ और ८९ के अनुसार संस्कृत करे। अपसव्य होकर "भूर्भुवः स्वः" को पढ़ता हुआ उसी पर गृहाग्नि को स्थापित करे। इस यज्ञ

में ब्रह्मानामक ऋत्विग न होगा आग्नेय कोन के तरफ मुख किये हुए प्राचीनावीती होकर अग्नि के पश्चिम क्रमशः दक्षिण को पात्रासादन करे। उलूखल, मूसल, चावल के सहित सूप, दो चरुस्थाली, दो पवित्र, जलपात्र, यव मिला कर जल, दो मेक्षण, स्रुवा, घृत, चाँदी से मढ़ाया हुआ खैर काष्ठ का शंकु, जड़ से काटा हुआ स्तरण के लिए ४ मूठी कुशा, यज्ञीय वृक्ष का बना हुआ पिड़ा, ३ काँस की थाली, दो समिद, लिलि, करछी, ३ पिञ्जली, इतर, चन्दन, सूत्र और एक और कुश पिञ्जली इनको आसाद करे।

तत आग्नेयमभिमुखोऽग्नेः पश्चाद्दक्षिणाग्रेषु दर्भेषू लूखलं दृढं संस्थाप्य तस्मिन् सकृद्गृहीतव्रीहिमुष्टिं पितृभ्यस्त्वा जुष्टं निर्वपामीतिमन्त्रेण होमपिण्डदानापेक्षितान् तण्डुलान् पितृतीर्थेन सकृन्निरुप्य, सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां मुसलमादाय, सकृद्व्रीहीनवहन्ति। ततः सकृत्फलीकृत्य सकृत्प्रक्षालयेत्।

अर्थ—आग्नेय मुख बैठ कर अग्नि के पश्चिम दक्षिणाग्र कुशा रक्खे। उसी पर उलूखल रखकर उसमें 'पितृभ्यस्त्वा जुष्टं निर्वपामि" मन्त्र से होम और पिण्ड के अवश्यकतानुसार एकही बार पितृ तीर्थ से धान छोड़े। दोनो हाथ से मूसल लेकर एकही बार कुटे। एकही बार छाट कर एकही बार धो लेवे।

ततो मध्यमाष्टकायां स्थापितं वामसक्थ्नः क्लोम्नश्च मांस पेशीमवच्छिद्य नूतनकाष्ठफलके संस्थाप्याणुशश्छिनत्ति यथा मांसमिश्रिता पिण्डा भवेयुः।

ततोऽणुशश्छिन्नं मांसजातं तस्मिन्नेवाग्नौ श्रपयति । पूर्वप्रक्षालिततण्डुलानपि पृथक्पात्रे श्रपयति । मध्यमाष्टकायां स्थालीपाकपक्षे मांसस्थानेऽत्रापि पायस चरुं कुर्यात् । मध्यमाष्टकायां मांसस्थानीय स्थालीपाके प्रक्षालिततण्डुलानामेकदेशं श्रपणात्पूर्वं संस्थापितं यत्तेनैवात्र पायसचरुकरणं न्याय्यम् । स्थाल्यां तण्डुलावापे एकपवित्रान्तर्द्धानम् । पृथक्पृथङ्मेक्षणेन मांसमोदनं चाप्रादक्षिण्येन मिश्रीकुर्य्यात् । मांसाभावे पायसचरुम् । ततश्शृतं मांस मोदनं चाभिघार्य्याग्नेर्दक्षिणात उद्वास्य चरुद्वयं न प्रत्यभिघारयेत् ।

अर्थ—मध्यमाष्टका के संज्ञपित पशु के सुरक्षित मांस खण्ड को लेकर नए काष्ठ पर रख कर चाकू से छोटे छोटे टुकड़ा काट देवे जिसे भात में पका कर पिण्ड देने के योग्य हो जावे । एक चरुस्थाली में उन मांस के टुकड़ों को और दूसरी में चावल को रख कर उनके पकने के अनुसार जल छोड़ देवे और दोनों को उसी अग्नि पर पकने के लिए रख देवे । यदि मध्यमाष्टका भी स्थाली-पाक ही से सम्पन्न किया गया हो तो उस समय के रखे हुए चावल का यहाँ भी दूध में खीर बनाना चाहिए ! स्थालियों पर एक एक पवित्र रख कर उनमें चावल छोड़े । अलग अलग मेक्षण से दोनों को प्रादक्षिण क्रम से चला देवे । इस प्रकार मांस के अभाव में पायस चरु पकावे । दोनों चरुओं के पक जाने पर उनमें स्रुवा से घी छोड़ देवे । उन्हें उतार कर अग्नि के दक्षिण रक्खे । पुनः उनमें घी न छोड़े ।

ततः परिवृतदेशस्य दक्षिणार्द्धे प्रादेशायामांश्चतुरङ्गुलखातांश्चतुरङ्गुलविस्तृतान्यवाकारान् सार्द्धाङ्गुलान्तरालान् वाय्वग्निदिङ्मुखान्तान् त्रीन् गर्त्तान् शङ्कुना कुर्यात् । ततः पूर्वकृतस्य गर्त्तस्य पुरस्ताद्विधिवत्संस्कृते देशे गर्त्तानां पश्चिमेनैकदेशमग्निमाहृत्य प्राङ्मुखो यज्ञोपवीती स्थापयति । ततो मूलसमीपच्छिन्नैर्दर्भैरेतमग्निं परिस्तीर्य्य मध्ये गर्त्तान् परिस्तृणोति । "अग्न्याशाग्रैः कुशैः कार्यं कर्षूणां स्तरणं घनैः । दक्षिणान्तां तदग्रैस्तु पितृयज्ञे परिस्तरेत्" इति कर्मप्रदीपस्मरणादग्निदिगग्रैः परिस्तरणं कर्त्तव्यम् । अत्रापि प्राचीनावीतमग्निदिगभिमुख्यं च कर्त्तुः । ततो गर्त्तानां पश्चाद्दक्षिणाग्रैः कुशैः प्रस्तरमास्तारयेद्दक्षिणाप्रवणम् । तस्मिन् प्रस्तरे काष्ठमयमासनमुपदध्यात् । आसनस्य स्थापनं नोपवेशनार्थं किन्त्वदृष्टार्थं, प्रस्तरे आसनासम्भवात् ।

अर्थ—यज्ञ शाला के दक्षिणार्द्ध में शंकू से एक बिलस्त लम्बा चार अंगुल चवड़ा और डेढ़ अंगुल गहरा यव के अकारका तीन गर्त्त खोदे । यजोपवीती होकर पूर्व गर्त्त के पूर्व भूमि का परिसमूहनादि संस्कार करे । गर्त्त के पश्चिम से अग्नि ले जाकर स्थापित करे । मूल के समीप से कटे हुए कुशाओं से इस अग्नि का परिस्तरण कर गर्त्त के मध्य में भी कुशा बिछा देवे । कर्म प्रदीप का वचन है कि "आग्नेय दिसा में कुशाओं का अग्रभाग किए हुए गर्त्त का सघन परिस्तरण करे" । पिण्ड दान के लिए गर्त्त से पश्चिम दक्षिणाग्र परिस्तरणकरना चाहिए । यह परिस्तरण दक्षिण को ढालूँ होना चाहिए । उसी पर

काष्ठासन (पीढ़ा) रक्खे। यह आसन प्रत्यक्ष व्यक्ति के लिए नहीं किन्तु अदृष्ट व्यक्ति के लिए रक्खा जाता है। कारण कि परिस्तरण पर किसी का आसन नहीं देखा जाता।

तस्मिन् त्रीण्युदकपात्राणि वक्ष्यमाणानि द्रव्याण्येकैकशः स्थापयेत्। अन्ये तु, "पुत्रादिः पूर्वमासादितानामेकमेकं यजमानस्याप्रादक्षिण्येनाहरति, यजमान आहृतं प्रस्तरे सादयति" इत्याहुः। प्रकृते प्रस्तरे चरुस्थालीद्वयं कांस्यपात्रं दर्वीमुदकं समिद्द्वयं पिञ्जलीमेकां चान्यान्यप्यासादयति। तान्युच्यन्ते। पत्नी प्रकृते बर्हिषि शिलां संस्थाप्य चन्दनादिगन्धद्रव्यपेषणं करोति। तस्यामेव शिलायां सौवीराञ्जनस्य घर्षणं कृत्वा तेनाञ्जनेन तिस्रो दर्भपिञ्जलीरार्द्रीकरोति। मध्येमध्ये किञ्चिदन्तरं कृत्वा ततश्चन्दनमञ्जनासक्तदर्भपिञ्जलीश्च तिलतैलं क्षौमदशां च स्वस्तरे स्थापयति।

अर्थ—उसी आस्तृत कुशाओ पर तीन पात्रों में जल और नीचे लिखी हुई सामग्रियों को रक्खे। कुछ लोगों का मत है कि "पुत्र पौत्रादि में से कोई पूर्वासाहित उक्त सामग्रियों को उठा कर प्रादक्षिण क्रम से यजमान को देवे और वह उन्हें आस्तरित कुशाओ पर असादन करे,,। पहले परिस्तरण किए हुए कुशाओं पर दोनों चरुस्थाली, कांसकी थाली, करछी, जल, दो समिद्, एक पिञ्जली इत्यादि सामग्रियों को आसादन करे। उन्हे विशेष विवरण के साथ

नीचे लिखा जाता है। यजमान की स्त्री उन आस्तरण कुशाओं पर सील रख कर उसी पर, केशर, कस्तुरी, हल्दी, कपूर, आदि सुगन्धित पदार्थों के साथ चन्दन घीस कर तैयार करे। उसी सील पर सुर्मा घीस कर उसी में तीनों पिञ्जलियों को बीच बीच में अन्तर देकर भिगो देवे। तत पश्चात् चन्दन, अञ्जन लगाई हुई तीनों कुस पिञ्जलि, तिल का तेल और रेशमी कपड़े का टुकड़ा आसादन करे।

ततः पूर्वनिमन्त्रितानिन्दितांश्छ्रेष्ठानुदङ्मुखानयुग्मान्ब्राह्मणान् पित्राद्यर्थं गर्त्तानां दक्षिणतश्शुचौ देश उपवेशयेत्। अत्र निमन्त्रणवरणक्रमो ऽन्यतो ग्राह्यः। विश्वेदेवार्थं युग्मब्राह्मणोपवेशनमप्यन्यतो ग्राह्यं, अस्माभिश्श्राद्धप्रयोगे वक्ष्यते। अत्र यावत्सूत्रोक्तं तावत्प्रदर्श्यते।

अर्थ—पहले से निमन्त्रित सदाचारी विद्या विनय मे श्रेष्ठ एक एक ब्राह्मणों को पितरों के लिए गर्त्तों के दक्षिण पवित्र स्थान पर बैठावे। इस स्थान में ब्राह्मणों के निमन्त्रण और विश्वेदेवा के युग्म ब्राह्मणों की उपवेशन विधि को श्राद्ध कल्प सूत्र से लेना चाहिए। कारण कि गोभिलाचार्य ने ब्राह्मणों का निमन्त्रण और विश्वेदेवा की विधि नहीं सूत्रित किया है। हम आगे श्राद्ध के प्रयोग में लिखेंगे। यहाँ पर जितना सूत्रित है उतना ही दिखलाते हैं।

प्राचीनावीत्युपविष्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्य आसनार्थं दर्भान् प्रदाय तूष्णीमुदकं दत्वा तिलोदकं

दद्यात् अमन्त्रेण । पितुर्नाम गृहीत्वा अमुक-शर्मन्नेतत्ते तिलोदकं ये चात्र त्वामनु याँश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा । अथात उक्तरूपेणैव पितामहस्य प्रपितामहस्य नाम गृहीत्वा तिलोदकं दद्यात् । तत गन्धान् पूर्वोक्तमन्त्रेण दद्यात् । अमुकशर्मन्नेष ते गन्धो ये चात्रेत्यादिः । "एततिलोदकं पूर्वासादितोदकपात्रेषु तूष्णीं जलमासिच्य मन्त्रेण दातव्यं न ब्राह्मणहस्तेषु" इति केचित् । ब्राह्मणहस्तेषु प्रकृतत्वात् इत्यन्ये । अस्मिन्काले ब्राह्मणानां गन्धाद्युपचारः कर्त्तव्यः ।

अर्थ—प्राचीनावीती होकर रखे हुए कुशों पर आसनार्थ कुशा देकर बिना मन्त्र जल प्रदान करे। पश्चात् अपने पिता का नाम उच्चारण कर "अमुक०" तिलोदक प्रदान करे। [illegible] पर उपरोक्त विधि के अनुसार पितामह और प्रपितामह को भी तिलो-दक प्रदान करे। तिलोदक के ही अनुसार गन्ध शब्द बोलकर चन्दनादि गन्ध प्रदान करे। कुछ लोगों का मत है कि पहले से रखे हुए पात्रों में बिना मन्त्र जल छोड़ कर उसे मन्त्र द्वारा प्रदान करे। केवल जल ब्राह्मणों के हाथ पर न छोड़े। कुछ आचार्यों का मत है कि "इस कृत्य में ब्राह्मणों के हाथ पर जल देना प्राकृतिक है अर्थात्—अवश्य देना चाहिए।" श्राद्ध कृत्य में इस स्थल पर ब्राह्मणों की चन्दन पुष्प माला आदि से पूजा करनी चाहिए।

ततोऽग्नौ करिष्यामीति पितॄननुज्ञाप्य कुर्वित्य-नुज्ञातस्त्रिरुदकाञ्जलिसेचनं पर्युक्षणं समिदाधानं च

कृत्वा, कांस्यपात्रे चरुद्वयं पृथङ्मेक्षणेनावदाय, संमिश्रय, मेक्षणेनातिप्रणीताग्नावुपघातं जुहोति। तत्र मन्त्रौ। अनयोः प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः पितरो देवता होमे विनि-योगः। स्वाहा सोमाय पितृमते। पूर्वाहुतिमन्त्रः। स्वाहा ऽग्नये कव्यवाहनाय। उत्तराहुतिमन्त्रः।

अर्थ—"अग्नौ करिष्यामि" वाक्य कह कर पितृ ब्राह्मण से आहुति प्रदान की आज्ञा लेवे। "कुरु" वाक्य से पितृ ब्राह्मण आज्ञा देवे। यजमान पर्व स्थाली पाक विधि के अनुसार अग्नि का उद-काञ्जलि और पर्युक्षण कर उसमें एक समिध चढ़ा देवे। दोनों चरु-स्थाली से सब चरु लेकर किसी पात्र में मिला लेवे। प्रथम स्रुवा से स्रुची में घृत छोड़ कर तब उसमें मेक्षण द्वारा हवि छोड़ी जावे तद् पश्चात् ऊपर से घृत छोड़ कर आहुति प्रदान करने को "उप-स्तीर्णाभिधारित" विधि और ऐसा न कर केवल हवि होम करने को उपघात विधि कहा जाता है। उपघात विधि से चरु लेकर "स्वाहा सोमाय पितृमते" पहली और "स्वाहाऽग्नये कव्यवाहनाय" दूसरी मन्त्र से दूसरी आहुति प्रदान करे।

"स्वाहापदोच्चारणे ऽग्नौ हुत्वा पश्चान्मन्त्रं समाप येत्" इति स्मृत्यन्तरोक्तं ग्राह्यम्। ततः समिदाधाना दि। ततो हुतशेषात्किञ्चित्पितृब्राह्मणेभ्यो दत्वा पिण्डा-र्थमवशेषयेत्। ब्राह्मणभोजनकाले श्रुत्यादिकं श्रावयेत्। अत्र भोजनार्थं ब्राह्मणोपवेशन-भोजनपात्रालम्भन-संतृप्तिप्रश्नादिकं वक्ष्यमाणमासश्राद्धप्रयोगवत्कर्त्तव्यम्।

पिण्डदानं ब्राह्मणानामुत्तरापोशनानन्तरमुच्छिष्टपात्र-सन्निधौ छन्दोगानां कर्त्तव्यमिति श्राद्धकल्पोक्तं ग्राह्यम्

अर्थ—यह स्मृत्योक्त विधि अनुकरण योग्य है कि "प्रथम स्वाहा शब्द को उच्चारणकर अग्नि में आहुति प्रदान करे, पश्चात् "सोमाय मन्त्र को पढ़े । यही विधि दूसरी आहुति की भी है । आहुति प्रदान के पश्चात् पर्व-विधि के अनुसार समिद होम कर अनुपर्युक्षण करे चरु में से थोड़ा थोड़ा ब्राह्मणों को भोजनार्थ देकर शेष हविको पिण्डों के लिए सुरक्षित रख देवे । ब्राह्मणों के भोजन के समय पुरुष सूक्त, पितृ-सूक्त इत्यादि मन्त्रों को उच्च स्वर से पढ़े । यहां पर भोजन के लिए ब्राह्मणों का उपवेशन, पात्रालम्भन, तृप्ति प्रश्न इत्यादि की विधि वही है जो मासिक श्राद्ध की है । छन्दोग सूत्र में लिखा है कि "ब्राह्मणों के आपोशान कृत्य कर लेने पर उनके भोजन पात्र के समीप ही में पिण्ड प्रदान करे ।" सामवेदीय विद्वानों को इसी विधि का अनुकरण करना चाहिए ।

अत ऊर्द्ध्वं पिण्डदानविधिमाह सूत्रकारः । अथ प्राचीनावीती वाग्यतो यजमानः सव्येन हस्तेन दर्भपिञ्जलीं गृहीत्वा, सव्याद्दक्षिणेन पिञ्जलीं गृहीत्वा, सव्येनान्वारभ्य, दक्षिणायां गर्त्तानां मध्ये रेखामुल्लिखेदपहता इतिइन्त्रेण । प्रतिगर्त्तं मन्त्रावृत्तिः । अस्य प्रजापतिर्ऋषिः पितृदेवता यजुर्ल्लेखोल्लेखने विनियोगः । अपहता असुरा रक्षाᳬसि वेदिषदः ॥ ततः सव्यहस्तेनातिप्रणीताग्नेरुल्मुकं गृहीत्वा, दक्षिणेनादाय, सव्येना-

न्वारभ्य गर्त्तानां दक्षिणभागे ये रूपाणीतिमन्त्रे स्थापयेत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्द उल्मुकस्थापने विनियोगः। ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुरास्सन्तस्स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाल्लोकात्प्रणुदत्वस्मात्॥ गर्त्तेषु दर्भानास्तीर्याथ पितॄनावाहयेदेत पितर इति मन्त्रेण। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः पितरो देवता पित्रावाहने विनियोगः। एत पितरस्सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः। दत्तास्मभ्यं द्रविणेह भद्र ँ रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छत॥

अर्थ—उपरोक्त विधि के पश्चात् सूत्रकार गोभिलाचार्य ने पिण्ड दान की विधि लिखी है। यजमान प्राचीना वीती होकर विना मन्त्र पिञ्जली हाथ में लेवे। दाहिने और बाएँ दोनों हाथों से पिञ्जली को पकड़े हुए गर्त्त के मध्य में "अपहता०" मन्त्र से दक्षिणाग्र लम्बी रेखा करे। प्रत्येक गर्त्ता में रेखा करने के समय पूरा मन्त्र का पाठ करे। दाहिने हाथ से अति प्रणीत अग्नि से अंगार लेकर "ये रूपाणि०" मन्त्र से गर्त्त के दक्षिण भाग में रख देवे। गर्त्त में कुशा बिछा कर "एत पितरः०" मन्त्र से पितरों का आवाहन करे।

अथोदकपात्राणि त्रीणि पूर्वमासादितानि गर्त्तानां सन्निधौ क्रमेण स्थापयेत्। ततो वामहस्तेन प्रथमगर्त्ते स्थापितमुदकपात्रं गृहीत्वा दक्षिणेनादाय सव्येनान्वारभ्य पितृतीर्थेन पूर्वकृतगर्त्तदर्भेषूदकं निनयेत्। तत्र

पितुर्नाम सम्बोधनान्तमसावित्यस्य स्थाने कृत्वा मन्त्रः पठनीयः । मन्त्रश्च । असाववनेनिक्ष्व ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा । अथाप उपस्पृश्य द्वितीयोदकपात्रं वामहस्तेन गृहीत्वा द्वितीयगर्त्तदर्भेषु पितामहस्य सम्बोधनान्तं नाम गृहीत्वाऽवनेनिक्ष्व ये चात्रेत्यादिना पितृतीर्थेनोदकं निनयेत् । अथाप उपस्पृश्य तृतीयोदकपात्रं वामहस्तेन गृहीत्वा प्रपितामहनामयुक्तेन पूर्वोक्तमन्त्रेण तृतीयगर्त्तदर्भेषु पितृतीर्थेन निनयेत् । सर्वत्रोदकनिनयनं दक्षिण हस्तेन, वामहस्तेन पात्रग्रहणं, सव्येनान्वारम्भश्च ।

अर्थ—आवाहन करने के पश्चात् पहले से रक्खे हुए तीनों जल पात्रों को गर्त्त के समीप में रख देवे । पहले गर्त्त के समीप के जलपात्र को वाम हाथ से लेकर दाहिने हाथ के पितृ-तीर्थ से गर्त्त मध्य रेखा पर स्व पिता का सम्बोधनान्त नाम उच्चारण कर "असाववनेनिक्ष्व०" वाक्य पढ़ता हुआ जल प्रदान करे । दूसरे गर्त्त में पितामह और तीसरे गर्त्त में प्रपितामह के नाम से प्रदान करे । सब श्राद्ध कृत्य में यही विधि अनुकरणीय है कि "वाम हाथ से जलपात्र को लिए हुए दाहिने हाथ के पितृ-तीर्थ द्वारा दोनों हाथों से सम्बन्धित जल प्रदान करे ।

ततो हुतशेषस्य ब्राह्मणभोजनार्थं पक्वान्नस्य चैकीकरणम् । ततः सव्येन हस्तेन दर्वीं गृहीत्वा, तत्तृतीयांशं दर्व्याऽवदाय, दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा, सव्येनान्वारभ्य,

पूर्वकृतगर्त्तदर्भेषु पिण्डं निदध्यात् पितुर्नामयुक्तमन्त्रेण। अमुकशर्मन्नेष ते पिण्डो ये चात्र त्वा मनुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा। अप उपस्पृश्य पितामह प्रपितामहयोः पिण्डौ द्वितीयगर्त्ते तृतीयगर्त्ते च पूर्ववत्क्रमेण स्थापयेत्। पितामहपिण्डदानमन्त्रे पितामहनामग्रहणम्, प्रपितामहपिण्डदानमन्त्रे प्रपितामहनामग्रहणमिति विशेषः।

अर्थ—होम और ब्राह्मण भोजन से शेष रखी हुई दोनों स्थालियों के खीरों को मेक्षण द्वारा एक में मिश्रित कर देवे। पुनः तीनभागों में विभाजित कर देवे। दर्वी द्वारा एक भाग को दाहिने हाथ पर लेकर वाम हाथ से भी स्पर्श किए हुए 'अस्मद्पितरमुकशर्मन्०" वाक्य से गर्त्त के मध्य में बिछाए हुए कुशाओं पर पिता को पिण्ड प्रदान करे। जल स्पर्श कर पूर्वोक्त विधि से नाम उच्चारण करता हुआ दूसरे गर्त्त में पितामह और तीसरे में प्रपितामह के लिए पिण्ड प्रदान करे। "शर्मन्" शब्द के स्थान पर क्षत्रिय "वर्मन्" और वैश्य "गुप्त" शब्द का प्रयोग करे।

यदि पित्रादीनां नामानि न जानाति, स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्य इति पितृपिण्डं स्थापयेत्, स्वधा पितृभ्यो ऽन्तरिक्षसद्भ्य इति पितामहपिण्डं, स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्य इति प्रपितामहपिण्डम्। अत्र केचित्, "पित्रादीनामन्यतमस्य नाम्न्यज्ञाते त्रयाणामपि सौत्रनामभिः पिण्डनिधानम्। बहुवचनार्थत्वाल्लोकत्रयसम्बन्धविधानात्प्रयोगैकरूप्याच्च। अन्ये तु, "पित्रादीनां मध्ये यस्य नाम न ज्ञायते तस्मै सौत्रनाम्ना

पिण्डदानम् यस्य तु नाम ज्ञायते तन्नामयुक्तपूर्वोक्त मन्त्रेण पिण्डदानमिति न्याय्यम्, निमित्ते नैमित्तिकस्य युक्तत्वान्नित्यमन्त्रानुग्रहाच्च" इति वदन्ति । यथोचितमत्र ग्राह्यम् ।

अर्थ—यदि पितृ पितामह और प्रपितामह में से किसी का नाम विस्मरण हो गया हो तो उन्हे "स्वधा पितृभ्यः०" वाक्यों से पिण्ड प्रदान करे। किसी किसी का मत है कि यदि पिता आदि तीनों में से किसी एक का नाम विस्मरण हो जावे तो पितृ पितामह और प्रपितामह तीनों को उपरोक्त वाक्यों से ही पिण्ड प्रदान करना चाहिए। कारण कि तीनों लोक के नाम बहुवचनान्त सूत्र में लिखा है और यहाँ पिण्ड-दान कर्म में ऐक्य सम्बन्ध है।" परन्तु कुछ लोगो की तो यही सम्मति है कि "पितृ, पितामह और प्रपितामह में से जिनका नाम उपस्थित न हो उन्ही के लिये "स्वधा० सूत्रोक्त वाक्य का प्रयोग करना चाहिये जिनका उपस्थित हो उनके लिये तो वही वाक्य हैं जो सर्व प्रथम पिण्डदान में प्रयुक्त हैं। यदि किसी निमित्त कार्य के मध्य में नैमित्तिक कर्म उपस्थित हो जावे तो उसकी प्रयोग की प्रधानता उतनेही के लिये है जितने के लिये उसको आवश्यकता है। यही न्याय युक्त सिद्धान्त ग्रहण करना चाहिए।

अत्र पित्रादिनामपरिज्ञाने पृथिविषदादिनामान्तरविधानादितः पूर्वविहितेष्वर्घ्यतिलोदकगन्धावनेजनोदकदानेषु पृथिविषदादीनां नाम्नां सम्बोधनविभक्त्यन्तानां प्रयोग उह्यः । ऊहो यथा । पृथिवि-

षदेतत्तेऽर्घ्यम्। अन्तरिक्षसदेतत्तेऽर्घ्यम्। दिविषदेतत्तेऽर्घ्यम्। एवं तिलोदकादिषु।

अर्थ—यहाँ पिण्डदान के प्रकरण में पितृ आदि के नाम विस्मरण हो जाने पर जो "पृथिविषद" आदि वाक्यों का प्रयोग बताया गया है उन्हें नाम न उपस्थित रहने पर अर्घ, तिलोदक, चन्दन आदि सब वस्तुओं के प्रदान में योजना करना चाहिए। जैसा ऊह का उदाहरण ऊपर लिखा गया है।

एवं त्रीन् पिण्डान्निधायात्र पितरो मादयध्वमिति जपति। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः पितरो देवता जपे विनियोगः। अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्॥ अप्रादक्षिण्येन पर्य्यावृत्योदङ्मुखो वाऽनुच्छसन्नमीमदन्त पितर इति जपति। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्युजुः पितरो देवता जपे विनियोगः। अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषाइषत॥ ततस्तेनैव पर्य्यावर्त्तमान आगत्योच्छसेत्।

अर्थ—उपरोक्त विधि से पितृ, पितामह और प्रपितामह को पिण्ड प्रदान कर "अत्र पितरो०" मन्त्र का जप करे। दाहिने नासिका के छिद्र से श्वास को लेते हुए "अमी मदन्त" मन्त्र का जप करे। दोनों मन्त्रों को पढ़ता हुआ परिक्रमा के अनुसार दाहिने और बाएं नासिका छिद्र से श्वास लेवे।

ततो वामहस्तेनाक्तदर्भपिञ्जलीं गृहीत्वा दक्षिणेनादाय सव्येनान्वारभ्य पितृतीर्थेन पितृपिण्डे

स्थापयेतिपितृनामयुक्तमन्त्रेण । मन्त्रश्च । अमुकशर्म-न्नेतत्त आञ्जनं ये चात्र त्वामनु याँश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा । अप उपस्पृश्य । एवं पितामहपिण्डे प्रपि-तामहपिण्डे च तत्तन्नामयुक्तमन्त्रेण दर्भपिञ्जलीं स्थाप-येत् । एवं तिलतैलं सुरभिचन्दनं च दद्यात् । अमु-कशर्म्मन्नेतत्ते तिलतैलमित्यूहः । अमुकशर्मन्नेतत्ते सुरभिचन्दनं । अन्यत्सर्वं पूर्ववत् ।

अर्थ—वाम हाथ से पिञ्जली उठाकर दाहिने हाथ में लेवे। वाम हाथ से स्पर्श किए हुए पिता के नामोच्चारण के साथ "अमुक शर्मन्नेतत्त आञ्जनं०" वाक्य से पिण्ड पर रख देवे। जल स्पर्श कर पूर्वोक्त विधि के अनुसार पितामह और प्रपितामह के पिण्ड पर भी पिञ्जली रक्खे। पूर्वोक्त वाक्यों के ही द्वारा तिलका तेल और सुग-न्धित चन्दन भी प्रदान करे।

अथ यजमान उत्तानदक्षिणपाण्युपरि वामहस्त-मधोमुखमितरेतरसंलग्नं कृत्वा पूर्वकृतगर्त्ते संस्था-प्य, नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः शूषायेति नमस्कुर्यात् । सव्योत्तानौ पाणी कृत्वा द्वितीयगर्त्ते, नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो रसायेति नमस्कुर्यात् । तृतीयगर्त्ते दक्षिणो-त्तानौ पाणी कृत्वा, नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो मन्यवे इति नमस्करोति। ततः कृता-ञ्जलिर्नमो वः पितरः पितरो नमो व इति जपति ।

एषां प्रजापतिर्ऋषिरुष्णिक्छन्दः पितरो देवता निन्हवे जपे च विनियोगः। नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरश्शूषाय। नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो रसाय। नमो वः पितरस्स्वधायै नमो वः पितरो मन्यवे। नमो वः पितरः पितरो नमो वः॥ ततः पत्नीमवेक्षते मन्त्रेण। मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः पितरो देवता पत्न्यवेक्षणे विनियोगः। गृहान्नः पितरो दत्त॥ ततः पिण्डानवेक्षते। मन्त्रस्यप्रजापतिर्ऋषिः पितरो देवता पिण्डावेक्षणे विनयोगः। सदो वः पितरो देष्म। ततो दक्षिणहस्तेन पूर्वासादितसूत्रं गृहीत्वा वामेनान्वारभ्य पितृतीर्थेन प्रथमपिण्डे निदध्यान्मन्त्रेण। असुकशर्मन्नेतत्ते वासो ये चात्र त्वामनु याँश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा॥ अप उपस्पृश्य पूर्ववत्पितामहनामयुक्तमन्त्रेण पितामहपिण्डे सूत्रं निदध्यात्, तथैव प्रपितामहपिण्डे सूत्रं निदध्यात्।

अर्थ—यजमान अपने दक्षिण हाथ को उलट कर उसी के ऊपर वाम हाथ को रक्खे। पहले गर्त्त पर रखकर "नमो वः०" मन्त्र को पढ़ता हुआ नमस्कार करे। वाम हाथ को उलटा कर "नमो वः० पितरो०" दूसरे गर्त्तपर, दाहिने हाथ को उलट कर तीसरे गर्त्त पर "नमो मन्यवे" मन्त्र से नमस्कार करे। हाथ जोड़े हुए "नमो वः० इत्यादि मन्त्र के शेष भाग का जप करे। सुग-

मना से साधारण व्यक्तियों के ज्ञानार्थ "नमोवः०" मन्त्र का पुरा पुरा पाठ विनियोग के साथ अङ्कित कर दिया गया है। "गृहान्न०" मन्त्र से पत्नी एवं "सदो वः०" मन्त्र से पिण्डों को देवे। पहले से आमादिन सूत्र को दाहिने हाथ से लेकर वाम हाथ में रख लेवे। वाम हाथ से पकड़े हुए पिता, पितामह और प्रपितामह के नामोच्चारण के साथ "एतत्ते वासो" वाक्य से पितृ तीर्थ से पितृ पिण्डों पर सूत रख देवे। पूर्वोक्त विधि के अनुसार जल स्पर्श करे।

तत आचान्तेषु ब्राह्मणेषु मास श्राद्धवत्सुप्रोक्षितमस्त्वित्यर्घ्यपात्रमुत्तानकरणान्तं कुर्यात्। ततः सव्येन पाणिनोदकपात्रं गृहीत्वा पितृतीर्थेन पिण्डान्परिषिञ्चेदूर्ज्जं वहन्तीरितिमन्त्रेण। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः पिपीलिकामध्योष्णिक्छन्दः पितरो देवता पिण्डपरिषेचने विनियोगः। ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुत स्वधास्थ तर्पयत मे पितृन्। ततो मध्यमपिण्डं पत्न्यै प्रयच्छति पुत्रकामा चेत्पत्नी, सा च मन्त्रेण प्राश्नाति। अस्य प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दः पितरो देवता पिण्डप्राशने विनियोगः। आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्कर स्रजम्। यथेह पुरुषः स्यात्॥ अथवा, यजमानपुत्रपौत्रभ्रात्रादिर्भक्षेत्।

अर्थ—उपरोक्त सूत्र दानान्त कृत्य के पश्चात् आचमन किए हुए ब्राह्मणों के प्रति श्राद्ध कल्प में मासिक श्राद्ध विधि के अनुसार "सुप्रोक्षित०" इत्यादि प्रश्नोत्तर और अर्घ पात्र को उतान करने तक कृत्यों को सम्पन्न करना चाहिए। वाम हाथ से जल लेकर दाहिने

हाथ के पितृ तीर्थ द्वारा "ऊर्जं०" मन्त्र से पिण्डाओं पर जल धारा प्रदान करे। यदि यजमान की स्त्री पुत्रोत्पन्न करने की अभिलाषिनी हो तो पितामह के पिण्ड को उसे भोजनार्थ दे देवे और वह "आधत्त०" मन्त्र को पढ़ती हुई भोजन कर लेवे। अथवा यजमान और उसके भाई पुत्र आदि खा जायें।

अभून्नो दूत इति मन्त्रेणोल्मुकं जलेनाभ्युक्ष्य द्वन्द्वं चरुस्थाल्यादिकं प्रक्षाल्यान्यत्र स्थापयेत्। अस्मिन्नेव क्रमे दक्षिणादानादिकं मासश्राद्धवत्कृत्वा ब्राह्मणान्विसर्जयेत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवतोल्मुकाभ्युक्षणे विनियोगः। अभून्नो दूतो हविषो जातवेदा अवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा। प्रादात्पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन् प्रजानन्नग्ने पुनरेहि योनिम्॥ ततो वामदेव्यं गीत्वा जले पिण्डान् प्रक्षिपेत्। प्रणीतेऽग्नौ वा क्षिपेत्। ब्राह्मणं वा भक्षयेत्। अथवा गवे दद्यात्। इत्यन्वष्टक्यप्रयोगः।

अर्थ—"अभून्नो दूत०" मन्त्र से उल्मुकाग्नि पर जल छिड़ककर दोनों चरुस्थालियों को धोकर सुरक्षित अन्यत्र रख देवे। श्राद्ध कल्प विधि के अनुसार दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को विदा करे। वामदेव्यसाम का गान करे। पिता और प्रपितामह के पिण्डाओं को जल में फेंक देवे। या अतिप्रणीत अग्नि में होम कर देवे, अथवा ब्राह्मण को भोजन करा देवे। अथवा गौ को खिला देवे। यही अन्वष्टका कृत्य का प्रयोग है।

अथ नान्दीमुखश्राद्धप्रयोगविधिरुच्यते । जातकर्मादिषु, पूर्त्तकर्मसु च, नान्दीमुखश्राद्धं कर्त्तव्यम् । तत्र पित्रर्थं युग्मान्ब्राह्मणानाशयेत् । प्रादक्षिण्येनासनाद्युपचाराः कर्त्तव्याः । तिलार्थे यवाः, अन्ये च विधयः कर्मप्रदीपोक्ताग्राह्याः । गोभिलसूत्रानुसारिणं श्राद्धप्रयोगमग्रे वक्ष्यामः ।

अर्थ—अब नान्दीमुख श्राद्ध के प्रयोग को लिखते हैं। यह श्राद्ध जातकर्म आदि संस्कार और तालाव, वाग इत्यादि इष्टापूर्त्तके आरम्भ समय में कर्त्तव्य है। इस श्राद्ध में पितृ, पितामह और प्रपितामह के लिए दो दो ब्राह्मणों को भोजन करावे। दाहिने क्रम से आसन आदि प्रदान करना चाहिए। तिलके स्थान में जौ प्रदान करना चाहिए। शेष विधि कर्मप्रदीप में लिखी हुई विधि के अनुसार कर्त्तव्य हैं। गोभिलगृह्यसूत्र के अनुसार श्राद्ध के प्रयोग आगे मण्डप-पूजादि के प्रकरण में लिखेंगे।

अथ पिण्डपितृयज्ञप्रयोगः । अन्वष्टक्यस्थालीपाकवत्पिण्डपितृयज्ञः कर्त्तव्यः । मांसचरुं ब्राह्मणभोजनं च वर्जयेत् । स चामावास्यायामन्वाधानदिने ऽपराह्णे कर्त्तव्यः । पिण्डपितृयज्ञं कृत्वा तस्मिन्नेव दिने मासश्राद्धं च ब्राह्मणभोजनपिण्डसहितं कर्त्तव्यम् । आहिताग्नेर्दक्षिणाग्नौ हविषश्रपणं तस्मादतिप्रणीताग्नौ होमः । अनाहिताग्नेर्गृह्याग्नौ हविषस्संस्करणम् ततो तिप्रणीऽताग्नौ होमः ।

अर्थ—अब पिण्ड-पितृ यज्ञ के प्रयोग को लिखते हैं। अन्वष्टक्य स्थालीपाक विधि के अनुसार पिण्ड-पितृ-यज्ञ भी कर्त्तव्य है। इस पिण्ड-पितृ-यज्ञ में मांस मिश्रित चरु और ब्राह्मण भोजन न होगा। इसे आमावास्या पर्व को अन्वाधान के दिन दो पहर के पश्चात् करना चाहिए। उसी दिन पिण्ड-पितृ यज्ञ के पश्चात् मास श्राद्ध के निमित्त भी ब्राह्मण भोजन कराकर पिण्ड प्रदान करे। आहिताग्नि द्विज पिण्ड-पितृ-यज्ञ के चरु को दक्षिणाग्नि में पकावे। अष्टका यज्ञ के अनुसार उसी दक्षिणाग्नि से अङ्गार लेकर पृथक् स्थापन करे। इस पृथक् स्थापित अग्नि को अतिप्रणीताग्नि कहते हैं। इसी अग्नि में "अग्नये कव्य०" और "सोमाय पितृ०" मन्त्रों से आहुतियों को प्रदान करना चाहिए। अनाहिताग्नि द्विज को गृह्याग्नि में चरु पकाना और उसी से अतिप्रणीताग्नि स्थापित कर उपरोक्त आहुतियों को प्रदान करना चाहिए।

आमावास्यायामपराह्णे वैश्वदेवबलिहरणं कृत्वा पितृणां तृप्त्यर्थं पिण्डपितृयज्ञं करिष्ये इति सङ्कल्प्य गृह्याग्निमुपसमाधाय प्राचीनावीती अग्नेः पश्चाद्दर्भेषूलूखलं मुशलं शूर्पमाज्यस्थालीं चरुस्थालीं पवित्रं व्रीहीन्मेक्षणं दर्वीं त्रीण्युदकपात्राणि स्रुवं शङ्कसमूलबर्हिर्मुष्टिं क्षौमदशां समूलकुशान् समिद्द्वयमेकां पिञ्जलीं कांस्यपात्रं तिलांश्च दक्षिणापवर्गमासादयेत्।

अर्थ—अमावास्या तिथि को दो पहर के पश्चात् वैश्वदेव-बलि कृत्य सम्पन्न करे। आचमन प्राणायाम करे। "पितृणां तृप्त्यर्थं०" योजना के साथ संकल्प करे। आहिताग्नि दक्षिणाग्नि एवं अनाहिता-

ति गृह्याग्नि को मंडित करे। प्रणीता जल से लेकर अग्नि के पश्चिम कुशा बिछाकर उसी पर ओखली, मुसल, सूप, आज्यस्थाली, चरुस्था-ली, पवित्र कुशा, चावल, मेक्षण, दर्वी, तीन जलपात्र, कुशा, शंकु, मूल से रहित एक मुट्ठीभर कुशायें, तेल के सम, एक सूर्प समूल और कुशा, दो पवित्र, एक [illegible], एक कांस की थाली और तिल क्रमशः दक्षिण को आसादन करे।

अथाग्नेः पश्चाद्दक्षिणाग्रदर्भेषूलूखलं संस्थाप्य व्रीहिनिर्वापप्रभृति चरुश्रपणान्तं कर्मान्वष्टक्यस्था-लीपाकोक्तविधिना कुर्यात्। ततोऽग्नेर्दक्षिणतश्च-रुमुद्वास्याग्नेर्दक्षिणत एकं गर्तं कुर्यात्। गर्त्तस्य दक्षिणतः पञ्चभूसंस्कारान्कृत्वा तत्र गृह्याग्नेरेकदेशं प्रणयति। ततो बर्हिषा प्रणीतमग्निं समूलकुशैर्दक्षिणाग्रैर्गर्त्तमध्ये च परिस्तरेत्।

अर्थ—अग्नि के पश्चिम दक्षिणाग्र कुशा बिछाकर उसी पर ओखल रक्खे। व्रीहि निर्वपन से चरु श्रपण पर्यन्त अष्टका कर्म के अनुसार सम्पन्न करे। चरु पक जाने पर उतार कर अग्नि के दक्षिण में रक्खे। दक्षिण में ही शंकु द्वारा दक्षिणाग्र एक गर्त्त बनावे। गर्त्त के दक्षिण पंचभूसंस्कार कर आहिताग्नि द्विज दक्षिणाग्नि से और अनाहिताग्निगृह्याग्नि से लेकर अग्निस्थापन करे। बर्हि कुशा को दक्षिणाग्र अति प्रणीत अग्नि के चारो तरफ और गर्त्त में भी बिछा देवे।

गर्त्तस्य पश्चात्प्रस्तरासादनम्। अञ्जनाभ्यञ्जन चन्दनानां नासादनं निषेधात्। नात्र ब्राह्मण उपवेशनम्। ततः पूर्ववत्पात्रेषु तिलोदकं दद्यात्। नात्राग्नौ

करणस्यानुज्ञा ब्राह्मणाभावात्। पूर्ववन्मेक्षणेन चरुमव दायाहुतिद्वयं कुर्य्यात्। अत ऊर्द्ध्वं प्राचीनावीती गर्त्त-लेखाकरणं पूर्ववत्कुर्यात्। नात्रोल्मुकः निधानं निधेधात् अत्र वा गर्त्तमध्ये स्तरणम्। तत आवाहनम्। ततो रेखायां दर्भेपूदकावनेजनं, पिण्डस्थापनं, पर्य्यावर्त्य जपञ्च पूर्ववत्कुर्यात्।

अर्थ—इस पिण्ड-पितृ यज्ञ में गर्त्त के पश्चिम आस्तरण कुशा को न रक्खे। घसा हुआ चन्दनादि भी न रक्खे। अष्टका के अनुसार ब्राह्मणोपवेशन भी न होगा। पहले के अनुसार पात्रों में तिलोदक प्रदान ब्राह्मणोपवेशनाभाव के कारण अग्नौ करण होम के लिए ब्राह्मण की आज्ञा भी अनावश्यक है। उक्त विधि के अनुसार मेक्षण द्वारा हवि लेकर "अग्नयेकव्य०" और "सोमाय पितृ०" मन्त्रों से दो आहु-तियों को प्रदान करे। आहुति के पश्चात् प्राचीन वीती हो कर गर्त्त के मध्य में अष्टका विधि के अनुसार दक्षिणाग्र रेखा करे। यहाँ उल्मुक नहीं रखना होगा। गर्त्त के मध्य में कुशा बिछा देवे। पूर्व-वत् पितरों का आवाहन करे। रेखा के ऊपर बिछाए हुए कुशा पर अवनेजन प्रदान करे। पिण्डाओं को प्रदान कर "अत्र पितरो०" इत्यादि मंत्रों के जप तक कृत्य सम्पन्न करे।

नात्राञ्जनाभ्यञ्जनचन्दनदानानि [illegible] निषे-धात्। ततोऽञ्जलिकूनजपः। ततः [illegible] पिण्डावेक्षणं वासोनिधानं चावशिष्टानि [illegible] केचित्, "वासोनिधाने पूर्ववत् [illegible]

वस्तु पिण्डपितृयज्ञविधेरन्वष्टक्यस्थालीपाकातिदेशाद्वासोनिधानं तत्रोक्तमन्त्रेणैवात्र विशेषानुक्तेः। मन्त्रकाण्डपठितमन्त्रः सूत्रान्तरविषयो भवितुमर्हतीति युक्तम्। ततः पिण्डपरिषेचनम्, मध्यमपिण्डदानम्, पात्रक्षालनजले पिण्डप्रक्षेपणञ्च। इति पिण्डपितृयज्ञप्रयोगः ॥

अर्थ—यहाँ चन्दनादि देना अनावश्यक है। पृथक् पृथक् मन्त्र द्वारा नमस्कार की भी आवश्यकता नहीं है। कृताञ्जलि कर 'नमो वः" मन्त्र का जप करे। पत्नी और पिण्ड का अवलोकन सूत्र प्रदान इत्यादि कृत्य अष्टका कर्म विधि के अनुसार सम्पन्न करे। कुछ लोगों का मत है कि पिण्ड पितृ यज्ञ में सूत प्रदान के समय केवल मन्त्र पाठ के अनुसार "नमोव०" मन्त्र को पढ़े। वास्तविक पिण्ड-पितृ-यज्ञ विधि अन्वष्टका विधान के अनुसार करने को लिखा है। उससे विशेष किसी मन्त्र का उल्लेख नहीं है। मन्त्र पाठ के अनुसार प्रयोग करना तो सूत्रान्तर विधि कही जा सकती है। पूर्ववत् पिण्ड-परिषेचन, पितामह पिण्डका पत्नी आदि को प्रदान, चरुस्थाली प्रक्षालन और पिण्डाओं को अग्नि अथवा जलमें प्रक्षेप या ब्राह्मणादि को भोजनार्थ प्रदान इत्यादि कृत्य सम्पन्न करे। यही पिण्ड-पितृ-यज्ञ की विधि है।

अथ शाकाऽष्टकाप्रयोग उच्यते। सा च माघमासे पौर्णमास्या अनन्तरं कृष्णाष्टम्यां कर्त्तव्या। तस्याः प्रयोगोऽपूपाष्टकाप्रयोगवत्कर्त्तव्यः। अत्रापूपानां निवृत्तिः। ओदनचरुं कृत्वा शाकव्यञ्जनं अपयेत्। शाकव्यञ्जनं चरुञ्च पृथङ्मेक्षणाभ्यां स्रुच्यवदाय मिश्रीकृत्याष्टकायै स्वाहेति जुहोतीति विशेषः। इति शाकाष्टकाप्रयोगः ॥

अर्थ—शाक अष्टका के प्रयोग को लिखते हैं। यह शाक अष्टका माघ-मास की अष्टमी तिथि को करना चाहिए। इस यज्ञ की विधि वही है जो अपूप अष्टका की है। इस में पूआ नहीं बनाया जावेगा किन्तु भात और शाक पकाया जावेगा। भात और शाक को अलग अलग मेक्षण द्वारा स्रुची में एक साथ लेकर "अष्टकायै स्वाहा" आहुति प्रदान करे। यही शाक अष्टका का प्रयोग है।

अथ प्रसङ्गाद्वपाहोममन्त्र उच्यते। पितृदैवत्येषु पशुषु वह वपामितिमन्त्रेण वपां जुहोति। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता वपाहोमे विनियोगः। वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान्पराचः। मेदसः कुल्या अभि तान्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषस्सन्तु कामात्स्वाहा। अग्नय इदं न मम। यद्यप्यत्राष्टकाव्यतिरिक्तं पितृदैवत्यपशुसहितं कर्म नोक्तं, तथाऽपि "श्रोत्रियेऽभ्यागते श्राद्धं महोक्षेण महाजेन वा दद्यात्" इत्यादिशास्त्रान्तरविहितकर्मान्तराभिप्रायेण वपाहोमे मन्त्रविशेषउक्तः। अनुपयोगात्स्पष्टमनुक्तत्वाच्च तस्य प्रयोगो नोक्तः। देवदैवत्येषु पशुषु जातवेदो वपया गच्छेतिमन्त्रेण वपां जुहोति। प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दस्तत्र-तत्रोद्देश्या देवता वपाहोमे विनियोगः। जातवेदो वपया गच्छ देवाँस्त्वँहि होता प्रथमो बभूव। सत्या वपा प्रगृहीता मे अस्तु समृध्यतां मे यदिदं करोमि। एतेषां पशूनां सूत्रान्तरे काम्यत्वावगमात्सूत्रकृद्भिरनुपदिष्टत्वाच्च नात्र प्रयोग उक्तः। येषु चरु-

कर्मसु होममन्त्रस्यानुपदेशात्तेष्वष्टकायै स्वाहा श्रवणायै स्वाहेत्यादयो मन्त्रा ऊह्याः ।

अर्थ—यहां प्रसंग से वपा होम के मन्त्र को लिखते हैं। देवता अथवा पितरों के लिए संज्ञप्त पशु की वपा को "वहवपां०" मन्त्र से होम करे। यद्यपि यहां अष्टका यज्ञ से भिन्न पितरों या देवताओं के कर्म का विधान नहीं है तथापि स्मृतियों में लिखा है कि यदि किसी के गृह पर वेदज्ञ अतिथि आजावे तो उसे बछवा अथवा बहुत बड़ा बकरा देकर सत्कार करे। इन सब शास्त्रान्तर विधान के अभिप्राय से वपा होम के मन्त्र को लिखा गया है। यहां पर अनावश्यक और स्पष्ट उल्लेख न होने के कारण पूर्ण प्रयोग नहीं लिखा गया है। देव-यज्ञ में संज्ञपित पशु की वपा "जात वेदो वपाया०" मन्त्र से प्रदान करे। इन पशुओं को अन्य गृह्यसूत्रों में विहित और गोभिलगृह्यसूत्र में अनुक्त होने के कारण इसका प्रयोग नहीं लिखा गया है। जिन चरुपाक कर्म में होम मन्त्र का उल्लेख न हो उनमें "अष्टकायै स्वाहा, श्रवणायै स्वाहा इत्यादि मन्त्रों का ऊह अर्थात् प्रयोग करना चाहिए।

अथ ऋणनिवृत्तिप्रयोग उच्यते। स्वस्य ऋणे प्रकर्षेण ज्ञायमाने, नष्टे धनिनि, तद्वंश्येषु चास्तसु, पालाशानां मध्यमपर्णेन यत्कुसीदमित्याज्याहुतिं जुहुयात्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता होमे विनियोगः। यत्कुसीदमप्रदत्तं मयेह येन यमस्य निधिना चराणि इदं तदग्ने अनृणो भवामि जीवन्नेव प्रतिदत्ते ददानि ।१।

यावद्दणं तावता द्रव्येणाज्यं गृहीत्वा होमः कर्त्तव्यः । अत्र क्षिप्रहोमविधिर्ग्राह्यः । इत्यृणनिवृत्तिप्रयोगः ॥

अर्थ—अब ऋण ग्रस्त पुरुषों के लिए उसे मुक्त होने का प्रयोग लिखा जाता है। यजमान अपने को अत्यन्त ऋण-ग्रस्त, धनी को नष्ट हुए तथा उसके वंश का अभाव जानकर पलाश पत्रों के मध्य के पत्र से "यत्कुसीदं०" मन्त्र से द्रव्य संख्या के अनुसार घृत की आहुति प्रदान करे। यह हवन कार्य क्षिप्र विधि से करना चाहिए। यही ऋण से निवृत्त होने का प्रयोग है।

अथ हलाभियोग प्रयोग उच्यते । अयमपि नित्यः काम्यश्च, नित्यप्रयोगपठितत्वात् । मन्वादिभिर्ब्राह्मणस्यापि जीवनार्थं कृषिकर्मणोऽभ्यनुज्ञातत्वात् । अस्य नोदगयनापेक्षाऽसम्भवात् । अथ वसन्त एव पुण्यनक्षत्रे हलाभियोगकर्माङ्गं नान्दीमुखश्राद्धम्, ब्राह्मणानुज्ञां, गणेशपूजनं च कृत्वा, हलाभियोगं करिष्ये इति सङ्कल्प्येध्माबर्हिषोरुपकल्पनादि-पूर्णपात्रदक्षिणादानान्तं पार्वणस्थालीपाकवत्कुर्यात् ।

अर्थ -अब हल जोतने के प्रयोग को लिखा जाता है। मनुस्मृति में ब्राह्मण और क्षत्रिय को भी जिविकार्थ कृषी कर्म करना लिखा है। अतः इनका भी हल जोतना नित्य कर्म है। जिस द्विज के यहां कृषि-कार्य नहीं होता है उसके लिए नैमित्तिक काम्य कर्म भी कहा जा सकता है। इस कर्म के आरम्भ में सूर्य के उत्तरायण होने की आवश्यकता नहीं रहती। कारण कि इसका समय कृषिके लाभालाभ के

आधार पर निश्चय किया जाता है। इस हलाभि योग कर्म को वसन्त ऋतु से आरम्भ करना चाहिए। जो द्विज प्रथम कृषि कार्य आरम्भ करे उसे नान्दी श्राद्ध, ब्राह्मण की आज्ञा और गणेश पूजन कर संकल्प करना चाहिए।*

इध्मा बर्हि के उपकल्पन से आरम्भ कर ब्रह्मा को पूर्ण-पात्र दान तक सब कृत्य पार्वण-स्थालीपाक विधि के अनुसार करना चाहिए।

निर्वापकाले,इन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि। मरुद्भ्यस्त्वा जुष्टं निर्वपामि। पर्जन्याय त्वा जुष्टं निर्वपामि। अशन्यै त्वा जुष्टं निर्वपामि। भगाय त्वा जुष्टं निर्वपामि। आज्य-भागान्ते चरुहोमाः। इन्द्राय स्वाहा। इन्द्रायेदं न मम। मरुद्भ्यस्स्वाहा। मरुद्भ्य इदं न मम। पर्जन्याय स्वाहा। पर्जन्यायेदं न मम। अशन्यै स्वाहा। अशन्या इदं न मम। भगाय स्वाहा। भगायेदं न मम। ततः स्विष्टकृतः प्रागाज्यहोमाः। सीतायै स्वाहा। सीताया इदं न मम। आशायै स्वाहा। आशाया इदं न मम। अरडायै स्वाहा। अरडाया इदं न मम। अनघायै स्वाहा। अनघाया इदं न मम। दक्षिणादानान्ते वामदेव्यगानं ब्राह्मणभोजनं

---

* यह कृषि कार्य भी आर्यों का बहुत ही प्राचीनतम कर्म है। इसे बसन्त ऋतु में आरम्भ करने से यही ज्ञात होता है कि ऊख से ही कृषी का वर्ष आरम्भ होता है।

च। एवं कृष्यारम्भे हलाभियोग स्थालीपाकं कृत्वा कर्षणं कुर्यात्।

अर्थ—हवि निर्वाप के समय "इन्द्राय०" इत्यादि मन्त्रों से हवि का निर्वपन करे। आज्यभाग आहुतियों के पश्चात् "इन्द्राय स्वाहा०" इत्यादि नाम मन्त्रों से उपस्तीर्णाभिघारित स्थालीपाक के चरु और "सीतायै०" इत्यादि केवल घृत से आहुति प्रदान करे। ब्रह्मा के पूर्णपात्र दान के पश्चात् वामदेव्य साम का गान करे। ब्राह्मण भोजन भी करावे। कृषि के आरम्भ में उपरोक्त विधि के अनुसार स्थालीपाक से यजन कर पश्चात् हल का जोतना आरम्भ करे।

ततः स्वीयक्षेत्रेषु सर्वेषु कृष्टेषु शरदि वसन्ते च सीतायज्ञः क्षेत्रस्य पूर्वार्द्धे उत्तरार्द्धे वा कार्य्यः। ततः सर्वक्षेत्रेषु बीज वपने कृतेप्रवपणयज्ञः कर्त्तव्यः। स्वीयसर्वशस्यलवनानन्तरं प्रलवनयज्ञः कर्त्तव्यः। पक्वं शस्यं क्षेत्रादाहृत्य यस्मिन् प्रदेशे खलीकृते तत्र खलयज्ञः कर्त्तव्यः। खलाद्गृहे धान्ये समागते पर्यायणयज्ञः। सीतायज्ञः शरदि वसन्ते च भवति। सीतायज्ञादिषु हलाभियोगस्थालीपाकोक्ता नव देवता आज्येन यष्टव्याः। अत्राज्यतन्त्रम्। 'क्षिप्रहोमतन्त्रम्' इति केचित्। ततः सीतायज्ञादीनामन्त उक्तकाले क्षिप्रहोमविधिनाऽग्नावाखुराजाय स्वाहेत्येकामाज्याहुतिं जुहोति। अत्राखुराजयज्ञं करिष्ये इति सङ्कल्पः।

अर्थ—कृषक द्विजों को खेत जोतकर बीज वपन के योग्य हो जाने पर वसन्त और शरद दोनों ऋतुओं में खेत के पूर्वाह्न में अग्निस्थापन कर सीता यज्ञ करना चाहिए। सब खेतों के बो जाने पर प्रवपन यज्ञ करें। जब अन्न उग जावे तो परप्रलवन यज्ञ करना चाहिए। हलाभियोग नामक कृत्य में जिन देवताओं के लिए स्थालीपाक से आहुति प्रदान करना लिखा गया है, प्रवपण, प्रलवन, और प्रयायण यज्ञों में भी उन्हीं देवताओं के लिए केवल घृत की आहुति प्रदान करे। कुछ लोगों का मत है कि सीता आदि यज्ञों को आज्यतन्त्र की विधि से सम्पन्न करे, परन्तु कुछ लोगो का मत है कि क्षिप्र होम विधि के अनुसार करना चाहिए। सीता आदि प्रत्येक यज्ञों के अन्त में क्षिप्र होम विधि से "आखुराजाय स्वाहा। आखुराजायेदं न मम"। मन्त्र से घृत की एक आहुति प्रदान करे। इस आहुति के संकल्प में "आखुराजयज्ञं करिष्ये" वाक्य की योजना करनी चाहिए।

अथेन्द्राणीस्थालीपाकप्रयोग उच्यते। अस्य स्थालीपाकस्यैकाष्टकेतिनामान्तरम्। प्रोष्ठपद्या ऊर्द्ध्वं कृष्णाष्टम्यामिन्द्राणीस्थालीपाकं करिष्ये इति सङ्कल्प्य सर्वं पार्वणस्थालीपाकवत्कुर्य्यात्। निर्वापकाले, इन्द्राण्यै त्वा जुष्टं निर्वपामीतिनिर्वापः। आज्यभागान्ते चरुमवदायैकाष्टकातपसेतिमन्त्रेणैकामाहुतिं जुहोति। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्द इन्द्राणी देवता स्थालीपाकहोमे विनियोगः। एकाऽष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रं। तेन देवा असहन्त शत्रून् हन्ता सुराणामभवच्छचीभिः स्वाहा॥

इन्द्राण्या इदं न मम। इति नित्यनैमित्तिकप्रयोग-विधिरुक्तः।

अर्थ—अब इन्द्राणी स्थालीपाक का प्रयोग लिखा जाता है। इस स्थालीपाक का "एकाष्टका" नाम भी है। आश्विनमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को "इन्द्रणी-स्थालीपाकं करिष्ये" वाक्य योजना के साथ सकल्प करे। सब कृत्य पर्वस्थालीपाक विधि के अनुसार करना चाहिए। "इन्द्राण्यै०" मन्त्र से हविका निर्वपन करे। आज्य भागान्त आहुतियों को प्रदान कर उपस्तीर्णभिघारित चरु से "एका-ष्टका०" मन्त्र को पढता हुआ आहुति प्रदान करे। यह नैमित्तिक प्रयोग है।

अत ऊर्द्ध्वं काम्येषु कर्मसु विधीनुपदेक्ष्यन्त्याचार्य्याः। "वक्ष्यमाणविधीनां पूर्वोक्तेषु नित्यनैमित्तिकेषु चानुष्ठानं भवतीति केचिदाचार्य्यामन्यन्ते" इति भगवान् सूत्रकार आह। वक्ष्य माणकर्मकरणमन्त्राणां "मन्त्र-काण्डे नित्यनैमित्तिककर्मोपयुक्तमन्त्रपाठान्तरमेव पाठात्काम्येष्वेवानुष्ठानं वेदपुरुषाभिप्रेतम्" इति शिष्टा-नामाशयः। अत एवास्माभिः पूर्वेषु कर्मसु न्यञ्च-करणं मन्त्रवत्परिसमूहनवैरूपाक्षप्रपदजपा नोक्ताः।

अर्थ—गोभिलाचार्य स्वगृह्यसूत्र प्रपाठक चतुर्थ के तृतीय खण्डिका तक के कृत्यो को लिख कर अब काम्य कर्म का उपदेश करते हैं। कुछ आचार्यों का मत है कि लिखी जाने वाली विधि पूर्वोक्त नित्य नैमित्तिक कर्मों में अनुष्ठेय हैं। यह गोभिलाचार्य का मत है। "आगे लिखे जाने वाले कर्मों के मन्त्रों का पाठ मन्त्र ब्राह्मण

में लिख चुके [illegible] उपयोगी मन्त्रों के पश्चात् [illegible] अतः इन्हीं शास्त्र वचनों में ही प्रयोग करना चाहिए । यह [illegible] पुरुषों का मत है । तदनुसार गोभिलाचार्य के [illegible] का [illegible] है कि "[illegible] प्रकरण के मन्त्रों को [illegible] और कार्य सब कर्मों में करना चाहिये, [illegible] पूर्वोक्त एवं पूर्वोत्तम [illegible] कृत्यों में भी शास्त्रों का [illegible], [illegible] परिसमूहन, देवताह्वान और प्रायः मन्त्रों का पाठ करना लिखा जाता है ।

काम्येषु कर्मसु तत्र होमेष्वग्निमुपसमाधाय पश्चादग्नेर्न्यञ्चौ पाणी प्रतिष्ठाप्येदं भूमेर्भजामह इति मन्त्रं जपति । वसुवन्तं रात्रौ धनवन्तं दिवा । "न्यञ्चकरणप्रकारः 'कर्मप्रदीपे' । दक्षिणं वामतो बाह्यमात्माभिमुखमेव च । करं करस्य कुर्वीत करणे न्यञ्चकर्मणः ॥ अस्यैव 'भूमिजप' इति संज्ञा । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो ऽग्निर्देवता भूमिजपे विनियोगः । इदं भूमेर्भजामह इदं भद्रꣳ सुमंगलम् । परा सपत्नान् बाधस्वान्येषां विन्दते वसु ॥ अन्येषां विन्दते धनम् । तत इमꣳ स्तोममिति तृचेनाग्निपरिसमूहनं कुर्यात् । "तत्प्रकारस्तु 'कर्मप्रदीपे' । कृत्वाऽग्न्यभिमुखौ पाणी स्वस्थानस्थौ सुसंहितौ । प्रदक्षिणं तथाऽऽसीनः कुर्यात्परिसमूहनम्" ॥ तिसृणां प्रजापतिर्ऋषिर्जगतीछन्दो ऽग्निर्देवता परिसमूहने विनियोगः । इमꣳ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव

सम्महेमा मनीषया। भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सꣳस-
द्यग्ने सख्ये मारिषामा वयं तव॥ भरामेध्मं कृण-
वामा हवीꣳषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणावयम्
जीवातवे प्रतराꣳसाधया धियो ऽग्ने सख्ये मारिषा-
मावयं तव॥ शकेम त्वा समिधꣳ साधया धियस्त्वे
देवा हविरदन्त्याहुतम्। त्वमादित्याꣳ आवाह तान्
ह्युश्मस्याने सख्ये मारिषामा वयं तव॥

अर्थ—काम्य कर्मों के होम कृत्य में अग्नि स्थापन कर, उसके पश्चिम अँगुलियों के बल हाथ को रख कर "इदंभूमेः०" मन्त्र का जप करे। यदि उक्त मन्त्र को दिन में प्रयोग करना हो तो "वसु" शब्द के स्थान पर "धन" शब्द का प्रयोग करे। कर्मप्रदीप में लिखा है कि "दाहिने और वाम दोनों हाथों को अपने सन्मुख हाथों के साथ हाथ करने को न्यञ्च कहते हैं" इसी मन्त्र को भूमि जप मन्त्र कहते हैं। "इमाँ स्तोम०" मन्त्र से अग्नि का परिसमूहन करे। कर्मप्रदीप में लिखा है कि "स्व स्थान पर बैठे हुए अग्नि के तरफ हाथों को फैला कर प्रदक्षिण क्रम से अग्नि का परिसमूहन करे।

होमात्पूर्वमनुपर्युक्षणानन्तरं वैरूपाक्षमन्त्रं जपेत्॥
द्विविधानि काम्यकर्माणि, होमयुक्तानि होमरहि-
तानि च, तत्र होमयुक्तेषु वैरूपाक्षजपः प्रपदजपश्च,
होमरहितेषु प्रपदजपमात्रम्।

अर्थ—होम के पहले एवं पर्युक्षण के पश्चात् वैरूपाक्ष मन्त्रों का जप करना चाहिए। काम्य कर्म जपात्मक और होमात्मक दो प्रकार से किए जाते हैं। होम कर्म में वैरूपाक्ष और प्रपद संज्ञक दोनों

का प्रयोग किया जाना है। जप में केवल प्रपद्द मन्त्रों का। "तपश्च०" से आरम्भ कर "महान मात्मान प्रपद्ये" तक श्वास को रोके हुए मन में जपकर "विरूपाक्षोऽसि०' मन्त्र का जप करे। यहां पर निगद में प्रपद को श्वास रुक कर विरूपाक्ष को बिना श्वास रुके हुए जप करना लिखा है।

तत्प्रकारः। तपश्च तेजश्चेत्यारभ्य महान्तमात्मानं प्रपद्ये इत्येतदन्तमनुच्छ्वसन्नर्थमनस्को जपित्वा विरूपाक्षोऽसीत्यारभ्योच्छ्वसन्निगदशेषं जपेत्। अत्र निगदे प्राणानायम्य जपः प्रपद्जपस्तद्रहितो वैरूपाक्षजप इति विवेकः॥ अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्निगदो रुद्ररूपोऽग्निर्देवता जपे विनियोगः। तपश्च तेजश्च श्रद्धा च ह्रीश्च सत्यञ्चाक्रोधश्च त्यागश्च धृतिश्च धर्मश्च सत्वं च वाक् च मनश्चात्मा च ब्रह्म च तानि प्रपद्ये तानि मामवन्तु भूर्भुवस्स्वरों महान्तमात्मनं प्रपद्ये। विरूपाक्षोऽसि दन्ताञ्जिस्तस्य ते शय्या पर्णें गृहा अन्तरिक्षे विमितꣳ हिरण्ययं तद्देवानाꣳ हृदयान्ययस्मये कुम्भे अन्तस्संनिहितानि तानि बलभृच्च बलसाच्च रक्षतो प्रमनी अनिमिषतस्सत्यं यत्ते द्वादश पुत्रास्ते त्वा संवत्सरे संवत्सरे काममप्रेण यज्ञेन याजयित्वा पुनर्ब्रह्मचर्य्यमुपयन्ति त्वं देवेषु ब्राह्मणोऽस्यहं मनुष्येषु ब्राह्मणो वै ब्राह्मणमुपधावत्युपत्वा धावामि जपन्तं मा माप्रतिजापीर्जुह्वन्तं मा माप्रतिहौषीः

कुर्वन्तं मा माप्रतिकार्षीस्त्वां प्रपद्ये त्वया प्रसूत इदं कर्म करिष्यामि तन्मे राध्यतां तन्मे समृध्यतां तन्म उपपद्यता॑ँसमुद्रो मा विश्वव्यचा ब्रह्माऽनुजानातु तुथो मा विश्ववेदा ब्रह्मणः पुत्रोऽनुजानातु श्वात्रो मा प्रचेता मैत्रावरुणो ऽनुजानातु तस्मै विरूपाक्षाय दन्ताञ्जये समुद्राय विश्वव्यचसे तुथाय विश्ववेदसे श्वात्राय प्रचेतसे सहस्राक्षाय ब्रह्मणः पुत्राय नमः ॥

काम्यकर्मानुष्ठानात्पूर्वं त्रिरात्रमुपवासः । अशक्तौ त्वेककाले भोजनं तच्च दिवा नक्तं वा । पुनः पुनरावर्त्यमानानां काम्यकर्म्मणां प्रथमारम्भे त्रिरात्रभोजननिषेधादिकं भवति । प्रतिपद्दिनेऽनुष्ठीयमाननित्यस्थालीपाकेन सह काम्यकर्मणां प्रयोगे तत्पूर्वदिनेऽनुष्ठीयमानौपवसथव्रतम्, न तु त्रिरात्रमुपवासो, नैमित्तिककाम्यकर्मसु निमित्तानामनियतत्वेन कर्म कृत्वा पश्चात्त्रिरात्रमुपवासादिकं कुर्यात् । इति काम्यकर्म्मपरिभाषा ।

अर्थ—यही उपरोक्त "प्रपद" और "विरूपाक्ष" संज्ञक मन्त्र हैं । काम्य कर्म के अनुष्ठान के पहले तीन दिन का उपवास करना चाहिए । यदि तीन दिन उपवास न कर सके तो रात्रि अथवा दिन में केवल एक समय ही भोजन करे । यदि बार बार काम्य कर्म का अनुष्ठान करना हो तो प्रति बार तीन दिन की उपवास की आवश्यकता नहीं होती । प्रतिपदा के दिन होने वाली पर्व-स्थाली

पाक-विधि के साथ काम्य कर्मों के प्रयोगारम्भ में उससे पूर्व दिन में किया हुआ उपवास ही काम्य कर्म का भी व्रत माना जाता है। इसके लिए पृथक् उपवास व्रत नहीं किया जा सकता। नैमित्तिक काम्य कर्मों में निमित्त कर्मों के कार्य नियत विधि के अनुसार समाप्त कर तत्पश्चात् तीन दिन का उपवास व्रत करें। यही काम्यकर्म की परिभाषा है।

अथ काम्यकर्मविशेषा उच्यन्ते। ब्रह्मवर्चसकामो ऽरण्यं गत्वा प्रागग्रेषु दर्भेष्वासीनः कामसिद्धिपर्यन्तं प्रपदमन्त्रं प्रयुञ्जीत। प्रपदजपविधानं तृचमेव। पुत्रकामः पशुकामो वोदगग्रेष्वासीनोऽरण्ये प्रयुञ्जीत। उभयकामस्योदगग्रेषु प्रागग्रेषु चासनम्। प्रपदप्रयोगार्थं प्रपदकर्मारम्भात्पूर्वं नान्दीमुखश्राद्धं, ब्राह्मणानुज्ञां, गणेशपूजनं च, कर्त्तव्यम् ॥

अर्थ—अब विशेष विशेष काम्य कर्मों को लिखा जाता है ब्रह्मतेज प्राप्ति का इच्छुक द्विज आरण्य (वन) में, जाकर पूर्वाग्र कुशासन बिछाकर उसी पर बैठे। जब तक उसकी कामना सिद्ध न हो तब तक "प्रपद" मन्त्रों के जप का अनुष्ठान करे। "प्रपद" मन्त्र के जप से "तपश्च तेजश्च" इस सूक्त जप का उपदेश जाना जाता है। पुत्र अथवा पशु की कामना हो तो उत्तराग्र आसन पर बैठ कर जप करे। यदि पुत्र और पशु दोनों की इच्छा हो तो पूर्वाग्र और उत्तराग्र दोनों ओर कुशासन बिछा कर बैठे। "प्रपद" मन्त्र के प्रयोग के लिए प्रथम नान्दी श्राद्ध, ब्राह्मण से आज्ञा और गणेश पूजन करना चाहिए।

अथ पशुस्वस्त्ययनकर्मोच्यते। उदगयने, शुक्लपक्षे, पुण्यनक्षत्रे, प्रातः कृतनित्यक्रियो गवां स्वस्त्ययनार्थं पशुस्वस्त्ययनकर्म करिष्ये इति सङ्कल्प्य, पूर्ववदग्निं प्रतिष्ठाप्य क्षिप्रहोमविधिना व्रीहियवौ मिश्रीकृत्य ताभ्यां सहस्रबाहुर्गौपत्य इतिमन्त्रेण जुहुयात्। नात्र परिसमूहन-विरूपाक्षप्रपदजपाः। "न कुर्यात्क्षिप्रहोमेषु द्विजः परिसमूहनम्। विरूपाक्षञ्च न जपेत्प्रपदं च विवर्ज्जयेत्" इति कर्मप्रदीपस्मरणात्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरुष्णिक्छन्दः प्रजापतिर्देवता पशुस्वस्त्ययनहोमे विनियोगः। सहस्रबाहुर्गौपत्यः पशूनभिरक्षतु। मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु मयि प्रजां प्रजापतिस्स्वाहा। प्रजापतय इदं न मम। ततो ब्राह्मणभोजनम्।

अर्थ—अब पशु स्वस्तयन कर्म कहते हैं। इसे सूर्य उत्तरायण होने पर शुक्ल पक्ष के शुभदायक नक्षत्र में करना चाहिए। प्रातः नित्य अग्निहोत्रादि कृत्य करने के पश्चात् "गवां स्वस्त्ययनार्थं पशु स्वस्त्ययनकर्म करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। पंचभू संस्कार कर विधिवत् अग्नि स्थापन करे। क्षिप्रहोम विधि से जौ और धान मिला कर उसी से "सहस्रबाहुः०" मन्त्र को पढ़ता हुआ एक सहस्र १००० आहुति प्रदान करे। इस अनुष्ठान में क्षिप्र विधि के कारण कर्मप्रदीप के वचनानुसार परिसमूहन कृत्य न होगा। "विरूपाक्ष" और "प्रपद" मन्त्रों का जप भी न होगा। होम कृत्य सम्पन्न कर ब्राह्मण भोजन करावे।

अथ परचित्तप्रसादकरकर्मोच्यते । यस्य पुरुषस्य प्रसादात्स्वकार्य्यानुकूलमिच्छेत्तस्मै महावृक्षफलानि कौतोमताख्यमन्त्रेण परिजप्य दद्यात् । मन्त्रित-फलान्यात्मन एकाधिकानि युग्मानि चत्वारि षष्टाष्टौ वा स्थापयेत् । वृक्षाश्च चूत-पनस-नारिकेर-बीजपूरा-दयः । एषामन्यतमफलान्यभिमन्त्र्य दद्याद्विशेषानुक्तेः । कौतोमतमितिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिपादनुष्टुप्छन्दो वागोषधी देवतेऽयुग्ममहावृक्षफलदाने विनियोगः । कौतोमतꣳ संवननꣳ सुभागं करणं मम । नाकुलीनाम ते माताऽथाहं पुरुषानयः । यन्नौ कामस्य विच्छिन्नं तन्नौ सन्धेह्योषधे ॥

अर्थ - दूसरे के चित्त को प्रसन्न कर लेने की विधि लिखते हैं। जिस पुरुष की प्रसन्नता से अपने कार्य की सिद्धी ज्ञात हो उसे महावृक्ष के फलों को "कौतोमतम्०" मन्त्र से अनुमन्त्रित कर प्रदान करे। वे देने के फल अपने से एक अधिक दो दो अर्थात् चार, छः अथवा आठ रक्खे। महावृक्ष से आम, कटहर, नारियल सोपारी आदि का अभिप्राय है। इनमें से किसी के फल को अभि मन्त्रित करके दे सकता है। इसके लिए सब सामान्य हैं, किसी में कुछ विशेषता नही है।

अथ वृक्षइवेतिपञ्चर्चप्रयोगा उच्यन्ते । तत्राद्यं पृथि-वीप्राप्त्यर्थं पार्थिवं कर्म, तच्च वृक्षइवेत्यादिपञ्चर्षविष-यम् । तदनुष्ठानायार्द्धमासमुपवासः । अशक्तावर्द्धमासं

दिवानक्तं वा पेयां पीत्वोपवसेत् । पेयाशब्देन यवागू-र्ग्राह्या । अथवा, यस्यां पेयायामात्मप्रतिबिम्बदर्शनं भवेत्सा ग्राह्या । इत ऊर्द्ध्वं यत्रार्द्धमासव्रतकथनं तत्राशक्तौ पेयापानं वेदितव्यम् । उपवासान्ते पौर्णमास्यां निशि ग्रीष्मेऽप्यक्षीणजलह्रदं गत्वा, अथवा, "मध्ये स्थण्डिलमन्ते च वारिणा परिसंवृत्तम् । अविदासिनं ह्रदं विद्यात्तादृशं कर्मणो सिद्धः" इति गृह्यासंग्रहोक्तलक्षणं ह्रदं वा गत्वा, नाभिमात्रजले स्थित्वा, चास्येऽक्षततण्डुलान् प्रक्षिप्य, मनसा पञ्चर्च उच्चार्य्य, प्रत्यृचमन्ते स्वाहापदमुच्चार्य्यास्येनोदके आस्यस्थतण्डुलान् जुहुयात् । प्रतिस्वाहाकारं होमः । अस्या ऋचः प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द आदित्यो देवताऽक्षततण्डुलहोमे विनियोगः । वृक्ष इव पक्वस्तिष्ठसि सर्वान् कामान् भुवस्य ते । यस्त्वेवं वेद, तस्मै मे भोगान् धुक्ष्वाक्षतान् बृहन् स्वाहा । आदित्यायेदं न मम । एवं वक्ष्यमाणाभिश्चतसृभिः स्वाहान्ताभिर्ऋग्भिरक्षततण्डुलान् जुहुयात्प्रत्यृचम् । एतैर्होमेन गृहक्षेत्रराज्यादिप्राप्तिः । अतः पार्थिवकर्मेति नाम ॥

अर्थ—"वृक्षइव०" इन पाँच मन्त्रों के प्रयोगों को लिखते हैं। उक्त मन्त्र विषयक प्रथम अनुष्ठान भूमि प्राप्ति के लिए पार्थिव कर्म है। इस अनुष्ठान में १५ दिन का उपवास कर्त्तव्य है। यदि १५ दिन के उपवास करने में समर्थ न हो तो दिन अथवा रात्रि में

एक वार यवागू पीकर १५ दिन व्यतीत करे। पीने योग्य वस्तु के कहने से जवागू ही का अभिप्राय है। अथवा जिसमें अपना प्रतिविम्ब देख पड़े उसे पीवे। इससे आगे जो जो उपवास १५ दिन के हैं उनमें यदि उपवास न कर सकना हो तो पीने योग्य पदार्थ पीकर व्रत पूरा करना चाहिए। उपवास व्रत कर लेने के पश्चात् पूर्णमासी के रात में ऐसे तालाव पर जावे कि जिसका जल ग्रीष्म ऋतु में भी न सूखता हो। अथवा चारो तरफ जल हो और मध्य में स्थल हो ऐसे गृह्यासंग्रह में लिखे हुए लक्षण युक्त तालाव पर जावे। नाभी मात्र जल में जाकर मुख में चावल भर लेवे। "वृक्षइव०" मन्त्रों को मन में स्मरण कर प्रत्येक मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द उच्चारण कर मुख के चावल से जल में आहुति प्रदान करे। इसी प्रकार 'ऋतसत्य०' अभिभागोसि०" "कोशइव०" आकाशस्यैष०" इन चारों मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द को उच्चारण कर आहुति प्रदान करे। इस होम कार्य से गृह, क्षेत्र भूमि आराज्य आदि की प्राप्ति होती है। अतः इस कृत्य का नाम पार्थिव कर्म है।

अथास्यामेवोक्तऋचि भोगार्थं कर्मोच्यते। त्रिरात्रमुपोष्योपवासान्ते पौर्णमास्यां मध्यान्हे यस्य धनिकस्य सकाशादात्मनो भोगान् साधयितुमिच्छेत्तस्य सन्दर्शने स्थित्वा वृक्ष इवेत्यृचाऽऽदित्यमुपतिष्ठेत्। एवमुपस्थानेनाभिप्रेतार्थसिद्धिर्भवति ॥

अर्थ—अब उन्हीं मन्त्रों में से स्वेच्छा भोग प्राप्ति करने का अनुष्ठान लिखते हैं। इस अनुष्ठान में तीन दिन का उपवास करे। तदुपश्चात् पूर्णमासी तिथि को जिस धनवान् पुरुष के साथ रह

कर उसके धन का सुख भोगना चाहता हो मध्यान में उसको देखता हुआ खड़ा होकर "वृक्षइव०" मन्त्र से सूर्य का उपस्थान करे। इस अनुष्ठान से इच्छा सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

अथ बृहत्पत्रस्वस्त्ययनप्रयोगः। तस्य फलं महावाहनानां हस्त्यश्वादीनामायुरारोग्यसिद्धिः। तदर्थमादित्ये परिवेषसंयुक्तेऽक्षततण्डुलान्द्वितीययर्चा क्षिप्र होमविधिनाऽग्नौ जुहुयात्। आदित्यपरिवेषस्या नियतकालत्वादेतत्कर्म कृत्वा पश्चात्त्रिरात्रव्रतमनुष्ठेयम्। अस्याः पूर्ववदृषिच्छन्दोदेवताः, पत्रस्वस्त्ययनार्थमक्षततण्डुलहोमे विनियोगः। ऋतँसत्ये प्रतिष्ठितं भूतं भविष्यता सह। आकाश उपन्निरज्ञतु मह्यमन्नमथो श्रियं स्वाहा। आदित्यायेदं न मम।

अर्थ—अब बृहत्स्वस्त्ययन का प्रयोग लिखा जाता है। इस अनुष्ठान का फल हाथी अश्व आदि प्रसिद्ध वाहनों के पाने की सिद्धि प्राप्त करना है। जिस समय सूर्य उदय हो और उसकी कीरिणि छिटकने लगें, उसी समय "ऋतं सत्य०" मन्त्र से जौ और चावल की अग्नि में आहुति प्रदान करे। यह होम कृत्य क्षिप्र होम विधि से होगा। सूर्य का प्रवेश अतिनियत है अतः आहुति कृत्य को सम्पन्न कर पश्चात् तीन दिन का उपवास व्रत करें।

अथ क्षुद्रपशुस्वस्त्ययनप्रयोगः। अस्य फलं क्षुद्रपशूनामजादीनामायुरारोग्यप्राप्तिः। यदा चन्द्रमाः परिवेषितो भवेत्तदा तिलतण्डुलान् तृतीययर्चा पूर्ववज्जुहुया-

त्पश्चात्तदुपवासः । अस्याः प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दश्चन्द्रमा देवता तिलतण्डुलहोमे विनियोगः । अभि भागोऽसि सर्वस्मिँस्तद्धु सर्वं त्वयि श्रितम् । तेन सर्वेण सर्वो माविवासन विवासय स्वाहा । चन्द्रायेदं न मम ।

अर्थ—अब छोटे छोटे बकरी भेड़ि आदि पशुओं के कल्याणार्थ स्वस्त्ययन का प्रयोग लिखा जाता है। इस अनुष्ठान का फल उक्त पशुओं की आरोग्यता प्राप्त करना है। जिस समय चन्द्रमा उदय हो और चांदनी छिटक रही हो उसी समय तिल और चावल द्वारा "अभिभागो०" मन्त्र से आहुति प्रदान करें। तीन दिन का उपवास व्रत भी करें।

अथ स्वस्त्यर्थकर्मप्रयोग उच्यते । यानर्थान् साधयितुं पुरुषोऽन्यत्र गच्छति गमनात्पूर्वं चतुर्थ्या ऋचाऽऽदित्योपस्थानं कर्त्तव्यं, तेनाभिप्रेतार्थवान् स्वस्तिमांश्च पुनरागच्छति । अस्या ऋचः प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द आदित्यो देवतोपस्थाने विनियोगः । कोश इव पूर्णो वसूनां त्वं प्रीतो ददसे धनम् । अदृष्टो दृष्टमाभार सर्वान् कामान् प्रयच्छ मे ।

अर्थ—अब स्वस्त्यर्थ प्रयोग लिखा जाता है। जब कोई पुरुष अश्व, हाथी आदि पर सवार हो कर अन्यत्र जावे तो उसे जाने के पहले "कोशइव०" मन्त्र से सूर्योपस्थान करना चाहिए। इसके करने से कुशल पूर्वक लवट कर गृह पर आ जाता है।

अथ प्रवासाद्गृहागमनप्रयोगः। पञ्चम्या सूर्यमुपस्थाय प्रवासाद्गृहमागच्छेत्। अस्या ऋचः प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द आदित्यो देवतोपस्थाने विनियोगः। आकाशस्यैष आकाशो यदेतद्भाति मण्डलम्। एवं त्वा वेद यो वेदेशानेशान् प्रयच्छ मे। वृक्ष इवेत्यादयः पञ्चर्चप्रयोगास्समाप्ताः।

अर्थ—अब प्रदेश से गृह पर आने की विधि लिखते हैं। "आकाशस्यैषा०" मन्त्र से सूर्य्योपस्थान कर गृह को आना चाहिए "वृक्षइव०" इन पांचों मन्त्रों का अनुष्ठान पूरा हुआ।

अथानकाममारकर्मप्रयोग उच्यते॥ तस्य फलं कुष्ठराजयक्ष्मादिभ्यः पापरोगेभ्यः परप्रयुक्ताभिचाराच्च यद्भयं तन्निवृत्तिः। तदर्थमहरहर्नित्यकर्मानुष्ठानान्ते भूर्भुवस्स्वरोँ३सूर्य इवेति मन्त्रमनकामराख्यं जपेत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरात्मा देवता जपे विनियोगः। भूर्भुवस्स्वरोँ३सूर्य इव दृशे भूयासमग्निरिव तेजसा वायुरिव प्राणेन सोम इव गन्धेन बृहस्पतिरिव बुद्ध्याऽश्विना विव रूपेणेन्द्राग्नी इव बलेन ब्राह्मणभाग एवाहं भूयासं पाप्मभागा मे द्विषन्तः॥ १॥

अर्थ—अब अनकामचार का प्रयोग लिखते हैं। इस अनुष्ठान के करने से कुष्ठ, राज-यक्ष्मा आदि रोगों से और दूसरे शत्रु के मारन, मोहन, उच्चाटन आदि अभिचार कर्मों से कष्ट नहीं होता है। प्रति

दिन प्रातःकाल नित्यकर्म के पश्चात् "भूर्भुवः स्वरो३ सूर्यश्च०" मन्त्रों को मन में जप करे।

अथालक्ष्मीनिर्णोद होमप्रयोग उच्यते। तस्य फलम लक्ष्मीनिवृत्तिरनेषां होमानामनुष्ठानं शुक्लपक्षे कृष्णपक्षे प्रतिपदि स्थालीपाके प्रधानचरुहोमानन्तरं स्विष्टकृद्धोमात्प्रागाज्येन कर्त्तव्यम्। तत्र पञ्चदश मन्त्राः। मूर्द्ध्नोऽधीत्यादयः षट्, या तिरश्चीति सप्तमी, वामदेव्यसाम्न ऋक्त्रयम्, व्याहृतयस्तिस्रः, अपेहीति, प्रजापते नत्वदेवतानीति च। षण्णां मन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवताऽलक्ष्म्यपनोदने विनियोगः। मूर्द्ध्नोऽधि मे वैश्रवणाङ्किरसोऽनुप्रवेशिनः। ललाटाद्धस्वगान् विघनान्विवृहामिव स्वाहा ॥ १ ॥ अग्नय इदं न मम। ग्रीवाभ्यो मे स्कन्धाभ्यां मे नस्तो मेऽनुप्रवेशिनः। मुखान्मे वद्भदान् घोरान् विघनान् विवृहामिव स्वाहा ॥ २ ॥ अग्नय इदं न मम। बाहुभ्यां मे यतोयतः पाष्णर्योरत्तुनानधि। उरस्तो वद्भदान् घोरान् विघनान्विवृहामिव स्वाहा ॥ ३ ॥ अग्नय इदं न मम। वक्षणाभ्यां मे लोहिनादान्यो निहान्यजिहानधि। उरुभ्यो निङ्गिलषो घोरान् विघनान् विवृहामिव स्वाहा ॥ ४ ॥ अग्नय इदं न मम। जङ्घाभ्यां मे यतोयतः पाष्णर्योरत्तुतानधि। पादयोर्विकरान् घोरान् विघनान् विवृहामिव स्वाहा ॥ ५ ॥ अग्नय इदं न मम। परिबाधं यजामहेऽणु-

जङ्घ॑शबलोदरम् । यो नोऽयं परिबाधते दानाय भगाय च स्वाहा ॥ ६ ॥ अग्नय इदं न मम । या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति । तां त्वा घृतस्य धारया यजे स॒ँराधन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा । स॒ँराधन्या इदं न मम । वामदेवीसाम्नामृचां वामदेव ऋषिर्गायत्रीछन्द इन्द्रो देवता होमे विनियोगः । कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता स्वाहा ॥ कस्त्वा सत्यो मदानां म॒ँहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु स्वाहा ॥ अभीषुणः सखीनामविता जरितृणां । शतं भवास्यूतये स्वाहा ॥ इन्द्रायेदं न मम । पूर्वाहुतिद्वयेऽप्येवम् । भूः स्वाहा । भुवस्स्वाहा । स्वः स्वाहा ॥ अपेहीति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवताऽलक्ष्म्यपनोदनहोमे विनियोगः । अपेहि त्वं परिबाध माविबाध विबाधथाः । सुगं पन्थानं मे कुरु येन मा धनमेष्यति स्वाहा । अग्नय इदं न मम । प्रजापत इतिमन्त्रस्य प्रजापतिऋषिः पंक्तिश्छन्दः प्रजापतिर्देवताऽऽज्यहोमे विनियोगः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय॒ँस्याम पतयो रयीणा॒ँ स्वाहा ॥ प्रजापतइदं न मम । इत्यलक्ष्मीनिर्णोदप्रयोगः ॥

अर्थ—अब अलक्ष्मी दोष दूर करने के प्रयोग को लिखते हैं। इसके अनुष्ठान से दरिद्रता दूर हो जाती है। शुक्ल पक्ष की पूर्णमासी तिथि के दूसरे दिन कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को पर्वस्थालीपाक की प्रधान आहुति के पश्चात् और स्विष्टकृत आहुति से पहले "मूलनोऽधि मे०" पन्द्रह मन्त्रों से घृत की आहुति प्रदान करना चाहिए। यही अलक्ष्मी निर्णोद प्रयोग है।

अथ यशस्कामोपस्थानप्रयोग उच्यते । प्रतिदिनं नित्योपस्थानानन्तरं यशोवृद्ध्यर्थं यशोऽहं भवामीत्यादिभिः पञ्चभिर्ऋग्भिरादित्यमुपतिष्ठेत । प्रातः काले, दिशः प्रातरह्नस्य तेजस इति पाठः । मध्याह्ने, मध्यन्दिनस्य तेजस इति पाठः । अपराह्ने, अपराह्णस्य तेजस इति पाठः । एषां मन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिर्निगद आदित्यो देवतोपस्थाने विनियोगः । यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशो विशां । यशस्सत्यस्य भवामि भवामि यशसां यशः ॥ १ ॥ पुनर्मा यन्तु देवता या मदपचक्रमुः। महस्वन्तो महान्तो भवाम्यस्मिन् पात्रे हरिते सोमपृष्ठे ॥ २ ॥ रूपंरूपं मे दिशः प्रातरह्नस्य तेजसः । अन्नमुग्रस्य प्राशिषमस्तु वयि मयि त्वयीदमस्तु त्वयि मयीदम् ॥ ३ ॥ यदिदं पश्यामि चक्षुषा त्वया दत्तं प्रभासया । तेन मा भुञ्ज तेन भुक्षिषीय तेन मा विश ॥ ४ ॥ अहर्नो अत्यपीपरद्रात्रिर्नो अतिपारयत् । रात्रिर्नो अत्यपीपरदहर्नो अतिपारयत् ॥ ५ ॥ इति यशस्कामोपस्थानप्रयोगः ।

अर्थ—यश प्राप्त करने वाले पुरुष के लिए उपस्थान का प्रयोग लिखा जाता है। प्रति दिन उपस्थान के पश्चात् यश फैलाने के लिए "यशोऽहं०" इन पाँचो मन्त्रों से सूर्य का उपस्थान करे। द्वितीय मन्त्र में "प्रातरन्हस्यतेज" शब्द के स्थान पर मध्यान्ह में "मध्यन्दिनस्यतेज." और सायंकाल में "अपरान्हस्य तेजः" पाठ का ऊह करे। यही यश कामना सिद्धि का उपस्थान है।

अथ स्वस्त्ययनकरोपस्थानमुच्यते ॥ तच्च प्रातः काले नित्योपस्थानान्ते आदित्यं नावमित्यृचोद्यन्तत्वेतियजुषा च कर्त्तव्यम्। सायमपरान्हे काले आदित्यं नावमित्यृचा प्रतितिष्ठन्तत्वेतियजुषा चोपस्थानं कर्त्तव्यम्। "उपस्थानमन्त्रे आदित्यपदश्रुतेरादित्यस्योपस्थानम्" इति शिष्टा मन्यन्ते। आदित्यं नावमारोक्षमितिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द आदित्यो देवता स्वस्त्ययनोपस्थाने विनियोगः। आदित्यं नावमारोक्षं पूर्णामपरिपादिनीम्। अच्छिद्रां पारयिष्णवीꣳ शतारित्राꣳ स्वस्तये। ओं नम आदित्याय, नम आदित्याय, नम आदित्याय। उद्यन्तमितिमन्त्रस्यप्रजापतिर्ऋषिर्यजुरादित्यो देवता पूर्वान्हप्रार्थने विनियोगः। उद्यन्तं त्वाऽऽदित्यानूदियासम्। प्रतितिष्ठन्तं त्वेतिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरादित्यो देवता सन्धिवेलायामपराह्णप्रार्थने विनियोगः। प्रतितिष्ठन्तं त्वाऽऽदित्यानुप्रतितिष्ठासम् ॥ इति स्वस्त्ययनकरोपस्थानप्रयोगः ॥

अर्थ—अथ कल्याण कारक उपस्थान का प्रयोग लिखा जाता है। इस उपस्थान को प्रातः काल नित्य उपस्थान के साथ करना चाहिए सायं काल में 'आदित्य०" और "प्रति तिष्ठन्त०" मन्त्रों से आदित्य का उपस्थान करें। विद्वान पुरुष ऐसे ही मानते हैं। यही स्वस्त्ययन कर्म का उपस्थान प्रयोग है।

अथाचितशतकामप्रयोग उच्यते। आचितः शकटभारः, शतमित्युपलक्षणं, तेन बहुशकटभारधनधान्यादिप्राप्तिफलमित्यर्थः। आचितशतकामः पूर्ववदर्द्धमासव्रतं शुक्लपक्षे कृत्वा, व्रतान्ते कृष्णप्रतिपदि द्रोणपरिमितं कृतौदनं ब्राह्मणान्भोजयित्वा, ऽस्तमयसन्धिवेलायां ग्रामात्प्रत्यग्गत्वा, चतुष्पथेऽग्निमुपसमाधाय, क्षिप्रहोमविधिनाऽऽदित्याभिमुखः प्रकृतव्रीहिकणान् जुहुयात्, भल्लाय स्वाहा भल्लाय स्वाहेतिमन्त्राभ्यां। भल्लायेदं न मम। तन्त्रशेषं समापयेत्। एवमेवोत्तरत्र कृष्णपक्षद्वये कर्त्तव्यम्। कृष्णपक्षद्वयमध्ये शुक्लपक्षे कर्त्तुर्ब्रह्मचर्यमात्रं, नतूपवासः। इत्याचितशतकामप्रयोगः।

अर्थ—अब अचितशतकाम का प्रयोग लिखा जाता है। अचित एक गाड़ी भर वस्तु को कहते है। यहाँ "शत" शब्द बहुत का बोधक है। अतः इस अनुष्ठान का यह अर्थ हुआ कि "इस अनुष्ठान से बहु संख्यक गाड़ी धनधान्य प्राप्त होता है। इस अनुष्ठान में पहले के समान १५ दिन का शुक्ल पक्ष में उपवास व्रत करे। कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि को एक द्रोण का भात बना कर

ब्राह्मण भोजन करावे। रात में सन्ध्या के समय ग्राम से पश्चिम जाकर चौराहे पर अग्निस्थापन करे। क्षिप्र होम की विधि से चावल की खुदी से "भल्लाय०" मन्त्रों से आहुति प्रदान करे। होम कृत्य को समाप्त करे। इसी प्रकार तीन कृष्ण पक्ष की प्रतिपद को होम करे। इन दोनों होमों के पहले शुक्ल पक्षों में उपवास न करना होगा किन्तु संयम नियम के साथ ब्रह्मचर्य्य व्रत करना चाहिए। यही पूर्वोक्त आचितशतकाम प्रयोग है।

अथ वास्तोष्पतियज्ञ उच्यते। तस्योदगयनादिकाल आदावेवोक्तः। तत्र प्रथमं गृहनिर्म्माणार्थं भूमिपरिग्रहाय लक्षणान्युच्यन्ते। "समं, तृणादियुक्तं, नदीतटाकादिभेदवृक्षपाषाणादिपतनप्रभृतिनिमित्तविशेषैर्भाविभिरविनाशि, प्रागुदगन्यतमदिगवस्थितप्रवाहोदकं, क्षीरिणीकण्टकयुक्तकटुयुक्तौषध्युत्पत्तिरहितम्, ब्राह्मणस्य गौरपांसुसहितम्, क्षत्रियस्य लोहितधूलिसहितम्, वैश्यस्य कृष्णरजस्कम्, मुद्गरादिभिरपि हन्यमाने विदारणरहितमेकवर्ण-मशुष्क-मनूषरं, सर्वदिक्षु मरुप्रदेशरहितं, सदाजलेनाक्लिन्नम्, ब्रह्मवर्चसकामस्य दर्भसंयुक्तं, बलकामस्य वीरणादिमहातृणसहितं, पशुकामस्य मृदुलतृणयुतं, चतुरस्रं, वोन्नतं मण्डलाकारं वा, सर्वदिक्षितरेतराभिमुखावस्थितस्वयमुत्पन्नाल्पगर्त्तयुक्तं, भूस्थानं जोषयेत्"। सेवयेदित्यर्थः। परिगृह्णीयादिति यावत्।

अर्थ--अब वास्तुपतियज्ञ लिखा जाता है। इसे भी सूर्य्य उत्तरायण होने परही करने को कहा गया है। पहले पहल गृह बनाने के लिए जिस प्रकार भूमि निश्चय करना चाहिए उसका लक्षण लिखते हैं।

गृह निर्माण की भूमि बराबर और दूब आदि तृण युक्त होनी चाहिए। गृह का निर्माण उस स्थान पर होना चाहिए जहां पर नदी का किनारा हो और वृक्ष आदि पदार्थ भविष्य में भी हो सकें। बहुत कांटेदार झाड़ी और कटु औषधियों से आच्छादित न होनी चाहिए। ब्राह्मण के लिए सफेद धूलि युक्त, क्षत्रिय के लिए लाल और वैश्यक के लिए काली मिट्टी वाली भूमि पर गृह बनाना श्रेष्ठ है। खनी खोदी विषम भूमि न हो। निरस ऊपर और चारो तरफ जल रहित और जल से हमेशा भिगी रहने वाली भूमि गृह बनाने योग्य नहीं है। विद्या उन्नति के चाहने वाले मनुष्य को वीरन तृण और पशुओं की उन्नति चाहने वाले पुरुष को कोमल तृण से युक्त भूमि पर गृह निर्माणकरना चाहिए। चतुष्कोण अथवा गोलाकार ऊँचा होना चाहिए। हर एक दिशाओं में प्राकृतिक छोटे २ जलाशय-युक्त भूमि को गृह के लिए नियत करना चाहिए।

तस्मिन्नुक्तलक्षणे प्रदेशे, "यशस्कामो बलकामः प्राग्द्वारं गृहं कुर्वीत, पुत्रपशुकाम उदग्द्वारं. सर्वकामो दक्षिणद्वारम्। प्रत्यग्द्वारं न कुर्वीत। अनुद्वारं न कुर्वीत।

अर्थ—उपरोक्त लक्षण युक्त भूमि पर गृह निर्माण कर यश और बल का चाहने वाला द्विज पूर्व को दरवाजा बनावे। संतान और पशु का इच्छुक उत्तर मुख, सब कामनाओं को पूर्ण होने के लिए दक्षिण द्वारा बनावे। पश्चिम मुख गृह का दरवाजा न बनावे। खिरकी अथवा अप्रधान दरवाजा भी पश्चिम मुख न बनावे।

गृहद्वारं न कुर्वीत" ॥ यथा गृहमध्ये सन्ध्योपासनहोमार्चनभोजनादीनि कुर्वतां गृहाद्वहिर्वर्त्तिनिन्द्यजनानां दर्शनं न भवेत्तथा गृहं कुर्वीत ॥ "वर्जयेत्पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणतस्तथा । न्यग्रोधमपरादेशादुत्तरे चाप्युदुम्बरम् ।१। अश्वत्थादग्निभयं ब्रूयात्प्लक्षाद्ब्रूयात्प्रमायुकाम् । न्यग्रोधाच्छस्त्रसम्पीडामक्ष्यामय उदुम्बरात्" ।२। प्रमायुका नष्टायुषः । अक्ष्यामय अक्षिरोगः । "आदित्यदैवतोऽश्वत्थः प्लक्षोऽयं यमदैवतः । न्यग्रोधो वारुणो वृक्षः प्राजापत्य उदुम्बर" इतिसूत्रादुक्तस्थानान्यतमस्थानस्थितानाश्वत्थादिवृक्षयुक्तस्थानं परिवर्ज्जयेत् । "स्थानान्तराभावेउक्तदिगवस्थितानश्वत्थादीन् समूलमुद्धरेत्" इति केचिद्व्याख्यातारः । समूलवृक्षोद्धरणे यस्य वृक्षस्य या देवतोक्ता तां देवतामभियजेत । अत्र विशेषानुक्तेरभियजेतेति सामान्यचोदनया तत्तद्देवताकवैदिकमन्त्रजपो वाऽऽज्यहोमो वोभयं वा ग्राह्यं, "तदुक्तं 'मनुना' । फलदानां च वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्" । किञ्च "एताश्चैव देवता अभियजेत" इति सूत्रचकारात्तत्तद्वृक्षदेवतायागा जपश्च कर्त्तव्यः । "मध्येऽग्निमुपसमाधाय कृष्णया गवा यजेत, अजेन वा श्वेतेन सपायसाभ्यां पायसेन वा" । ततो गृहनिर्म्माणानन्तरं गृहमध्येऽग्निं प्रतिष्ठाप्य गोपयसि कृतौदनेन सह श्वेतेनाजेन

यजेत । पशोरसम्भवे पायसेन चरुणा वा यजेत। तस्यैवं प्रयोगः ।

अर्थ—गृह की रचना ऐसी होनी चाहिए कि उसमें सन्ध्योपासन, अग्निहोत्र, देवार्चन भोजन आदि कार्य्य करते हुए मनुष्य को मार्ग में जाते हुए नीच जन न देख सकें। गृह के पूर्व पीपल, दक्षिण पाकड़, पश्चिम बड़, तथा उत्तर गूलर का वृक्ष न होना चाहिए। पीपल से अग्नि का भय, पाकड़ से अल्पायु, बड़ से अस्त्र से पीड़ा तथा गूलर से नेत्र रोग उपस्थित होते हैं। "प्रमायुक शब्द नष्टायु तथा "अक्ष्यामय" शब्द नेत्ररोग का बोधक है। पीपल का सूर्य, पाकड़ि का यम, बड़ का वरुण और गूलरि के प्रजापति देवता हैं। सूत्रकार के उपदेशानुसार पूर्वोक्त स्थानों पर पीपलादि वृक्षों से युक्त भूमि पर गृह को न बनावे। कोई कोई टीकाकार व्याख्या किए हैं कि "जिस स्थान पर गृह बनाना चाहता हो यदि उसमें गृह के चारो तरफ पीपल, पाकड़ बड़ और गूलर का वृक्ष पड़ता हो तो उन वृक्षों को जड़ से खोदवा देवे। जिन जिन वृक्षों को खोदना पड़े उन वृक्षों के देवताओं के नाम से यज्ञ करे। यहां पर वृक्ष-देवता के विशेष उपदेश न होने के कारण आदित्य देवता के वैदिक मन्त्रों का जप करे। अथवा उसी से आहुति प्रदान करे। अथवा जप और आहुति दोनों करे।

मनु भगवान लिखे हैं कि "फलने वाले वृक्ष को काटे तो उस वृक्ष देवता के मन्त्र का सौ बार जप करे। परन्तु "पीपलादि वृक्ष के देवताओं का यज्ञ करना चाहिये।"

सूत्रकार के वचनानुसार जिन पीपलादि वृक्ष को खोदवाना पड़ा हो उस वृक्ष देवता के मन्त्र का जप और यज्ञ दोनों करना चाहिए। गोभिलगृह्यसूत्र है कि "गृह के मध्य में अग्नि स्थापन कर

काली गौ से यजन करे। अथवा सफेद बकरा और चरु दोनों को एक साथ मिला कर यजन करे। अथवा पशु के अभाव में केवल खीर ही की आहुति प्रदान करे।

उपरोक्त सूत्रों का भाव यह है कि "गृह जब बन कर तैयार हो जावे तो उसके मध्य में वेदिका बनावे। परिसमूहन आदि संस्कार कर उस पर अग्नि स्थापन करे। काली गौ से यजन करे। यदि काली गौ से यजन न कर सके तो सफेद बकरा से यदि बकरा से न कर सके तो दो पात्रों में खीर पकाकर उन दोनों से अन्वष्टका यज्ञके अनुसार यजन करे। गौ बकरा और खीर इन तीनों में से यदि किसी से न कर सके तो केवल पायस चरु (खीर) ही से वास्तु यज्ञ सम्पन्न करे। यज्ञ का प्रयोग निम्नांकित है।

पुण्ये नक्षत्रे पुण्यतिथौ वास्तोष्पतियज्ञाङ्गं नान्दीमुखश्राद्धं कृत्वा, ब्राह्मणाननुज्ञाप्य, गणेशपूजनं च कृत्वा, वास्तोष्पतियज्ञं करिष्ये इति सङ्कल्प्याग्निमुपसमाधाय मध्याष्टकोक्तप्रकारेणाजमुपस्थाप्योपस्थितहोमादिवपाहोमान्तं कुर्यात्। पशुस्थानीयपायसचरुर्मध्याष्टकायां पशुस्थानोक्तस्थालीपाकवत्कर्त्तव्यः। तत्र प्रोक्षणे वास्तोष्पतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। निर्वापे वास्तोष्पतये त्वा जुष्टं न्निर्वपामीति विशेषः। वपाहोमे जातवेदो वपया गच्छ देवानिति मन्त्रः पूर्वमुक्तो देवदैवत्यत्वात्। चरुहोमे वास्तोष्पतये स्वाहेति मन्त्रः। सर्वत्र वास्तोष्पतय इदं न मम। अङ्गावदाने मध्याष्टकायां द्वादशोक्तान्यत्र चतुः

देशाङ्गानीति विशेषः। वपाहोमानन्तरं मध्याष्टकावत्पायसचरुं मांसचरुं च श्रपयित्वा प्लक्षशाखायुक्ताप्रस्तरे आसादयेत्।

अर्थ—शुभ दायक तिथि और नक्षत्र में नान्दी श्राद्ध करे। ब्राह्मण की आज्ञा लेकर गणेश पूजा आदि कृत्य सम्पन्न करे। संकल्पकर अग्निस्थापन करे। मध्यष्टका के अनुसार वपा होमान्त कृत्य पूरा करे। यदि केवल खीर से ही करना हो तो अष्टका विधि के अनुसार पायस चरु पकाना चाहिये। विशेषता केवल इतनाही होगी कि हवि प्रोक्षण निर्वपन में "वास्तोष्पतयेत्वा०" मन्त्र का ऊह करे। 'जात वेदो वपाया०" मन्त्र से वपा होम करे। कारण कि देवता सवन्धी वपा होम में इसी मन्त्र को प्रयुक्त करना लिखा है। "वास्तोष्पतय इदं न मम" से चरु की आहुति प्रदान कर त्याग करे। पशु अङ्ग के अवदान में मध्यष्टका में १२ और अन्य यज्ञों में १४ अवदान की विधि है। अष्टका से केवल इतनाही विशेष है। वपा होम के पश्चात् मध्यष्टका के अनुसार मांस और चरु पका कर पलक्ष शाखा के ऊपर परिस्तरण पर आसादन करे।

ततो नवे काष्ठे मांसावदानानि संस्थाप्यासुशश्छित्वैकस्मिन् कांस्यपात्रे संस्थाप्य तत्र वसाज्यपायसान्यवसिच्य सर्वं मिश्रीकरोति। ततः स्रुचि सकृदुपस्तीर्य्य त्र्यार्षेयश्चेद्यजमानो वसाज्यपायसमिश्रीकृतमांसावदानं हविषो मध्यात्त्रिवारं पूर्वार्द्धाच्च त्रिवारमवद्यति। पञ्चार्षेयश्चेदुक्तहविषो मध्याद्धिः पूर्वार्द्धाद्धिः पश्चार्द्धाद्धिरवद्यति। सकृदभिघार्य्य हविषोऽवदानस्थानानि च

पृथक्पृथगाज्येन प्रत्यभिघार्य्य वास्तोष्पत इतिमन्त्रेण जुहुयात्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो वास्तोष्पतिर्देवता वास्तोष्पतिहोमे विनियोगः। वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवानः। यत्ते महे प्रतितन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा। वास्तोष्पतय इदं न मम।

अर्थ—मांस को किसी नवीन काष्ट पर रख कर उसका टुकड़ा करे। कांस के पात्र में एकत्रित रख कर वसा, घृत और पायस सब एक में मिला देवे। तद्पश्चात् एक वार स्रुची में घी लेकर उसी में मिलाए हुए वसा घृत और खीर के मध्य पूर्व और उत्तर भाग से तीन वार लेकर रक्खे। यदि ५ प्रवर का यजमान होतो हवि के मध्य से दोवार पूर्वार्द्ध से दो वार और पश्चातार्द्ध से दो बार एवं छः वार हवि स्रुचो में लेवे। एक वार ऊपर से घृत छोड़ कर अवदान क्रम से पृथक् पृथक् हवि लिए हुए स्थान पर आज्य छोड़े। ' वास्तोष्पते" मन्त्र से आहुतिप्रदान करे।

पशुस्थाने पायसचरुपक्ते पायसचरुपिण्डांश्चतुर्द्दश कृत्वा, तान् घृतादिभिस्संसृज्यैकस्मिन् कांस्यपात्रे संस्थाप्य, प्रस्तर असाद्य, तस्माद्धविषो मांसावदानवत्सकृदभिघार्य्य, षट्कृत्वोऽवदाय, पुनः सकृदभिघार्य्यावदानस्थानानि प्रत्यभिघार्य, वास्तोष्पत इत्यृचा जुहोति।

अर्थ—यदि पशु संज्ञपन न कर सके तो उसके प्रति वदले में पकाई हुई पायस चरु (खीर) का १४ पिण्ड बनावे। उन पिण्डों

को घृत से परिप्लुत कर कांस की थाली में रखे। हवि के साथ थाली को प्रस्तर कुशा पर रख कर मांस के दश पायस चरु का भी अभिधारण करे। छः अवदान को बनाकर पुनः उस पर घृत का ढार देवे। अवदान स्थान को प्रत्यभिघारित कर "वास्तोष्पते०" मन्त्र से आहुति प्रदान करे।

ततो वामदेवीभिर्ऋग्भिस्तिसृभिर्महाव्याहृतिभिस्तिसृभिश्च षडाज्याहुतीर्हुत्वा प्रथमाहुतिवन्मांसावदानानि पायसचरुं वाऽष्टगृहीतमवदाय प्रजापतये स्वाहेति जुहोति। वामदेव्यस्तिस्र ऋचोऽलक्ष्मीनिर्णोदप्रयोगे उक्ताः। ततः स्विष्टकृदादिकं कर्म प्रकृतिवत्समाप्य वक्ष्यमाणान्दशबलीन्हुतशेषेण कुर्यात्। ततोऽग्नेः दक्षिणं गत्वा प्रथमं इन्द्राय नम इति पुरस्ताद्बलिं दद्यात्। वायवे नम इत्याग्नेये। यमाय नम इति प्रदक्षिणतः। पितृभ्यः स्वधेति निर्ऋतिदिशि। वरुणाय नम इति प्रतीच्याम्। महाराजाय नम इति वायव्याम्। सोमाय नम इत्युत्तरतः। महेन्द्राय नम इत्यैशान्याम्। वासुकये नम इत्यधस्तात्। नमो ब्रह्मण इति दिवि। अत्रापि बलिहरणे सुभूमिकरणमुभयतः परिषेचनञ्च वैश्वदेवबलिहरणवत्कर्त्तव्यम्। ततो वामदेव्यगानं ब्राह्मणभोजनञ्च। इति वास्तोष्पतियज्ञप्रयोगः।

अर्थ—पूर्वोक्त आहुति के पश्चात् "कयानश्चित्र०, कस्त्वा सत्यो०" और "अभीषुणः०" मन्त्रों से तीन और भूरादि व्याहृति

मन्त्रों से तीन एव छः घृत की आहुति प्रदान करे। प्रथम आहुति के अनुसार हवि लेकर "प्रजापतये स्वाहा। प्रजापतय इदं न मम" आहुति प्रदान करे। वाम देवी ऋक् अलक्ष्मीनिर्णोद-प्रकरण में पुरा पुरा अंकित हैं। पर्व-स्थालीपाक-विधि के अनुसार स्विष्टकृतादि कृत्य सम्पन्न करे। अग्नि प्रदक्षिण के पश्चात् अग्नि के पूर्व ' इन्द्राय नमः" अग्नि कोन पर "वायवे नमः" दक्षिण "यमाय नमः" नैऋत्य कोण में "पितृभ्यः स्वधानमः" पश्चिम "वरुणाय ननः', वामव्य कोनमे नमः "महाराजाय नमः" उत्तर में सोमायनमः" इशान में "महेन्द्राय नमः" नीचे। "वासुकये नमः" ऊपर "ब्रह्मणे नमः" इत्यादि बलियों को प्रदान करे। इस बलि-प्रदान में भी भूमिको सुन्दर परिस्कृत कर लेवे। बलि प्रदान के पहले और पश्चात् जल गिरावे। सब कार्य वैश्वदेव बलि के अनुसार करे। पश्चात् वामदेव्यसाम का गान करे। ब्राह्मण भोजन करावे। यही वास्तोष्पति यज्ञ का प्रयोग है।

ततः प्रतिदिनं वैश्वदेवे नित्यबलिहरणानन्तरं काम्यनया, प्राच्यै नमः। उर्द्ध्वायै नमः। अवाच्यै नम इति बलित्रयं कुर्यात्। एतस्य बलित्रयस्य पूर्वस्मिन् वास्तोष्पतियज्ञेऽपिदृशबलिहरणानन्तरमनुष्ठानं मन्यन्ते। प्रकृतबलित्रयस्य संवत्सरे संवत्सरे व्यतीते उत्तरदिने वा प्रयोगः। अथ व्रीह्याग्रयणयवाग्रयणयोर्मध्यकाले प्रति-दिनं प्रकृतकर्मणि बलित्रयं कर्त्तव्यम् ॥

अर्थ—वास्तोष्पपि यज्ञ कर लेने पर नित्य बलि वैश्वदेव करने के पश्चात् शुभ कामना की इच्छा से "प्राच्यै०" इत्यादि मन्त्रों से तीन बलि प्रदान करे। कुछ लोग वास्तोष्पति [illegible] ने के पहले

भी "पृथिव्यै नमः" इत्यादि दश बलियों के प्रदान के पश्चात् "प्राच्यै नमः" इत्यादि बलि प्रदान करना मानते हैं । अथवा उपरोक्त तीनों बलियों को प्रति वर्ष, वर्षा समाप्त सूचक दिवस में किया करे । या व्रीहि के नवान्न यज्ञ दिन से जौ के नवान्न यज्ञ तक नित्य करता रहे ।

अथ स्वस्त्ययनकर्मप्रयोग उच्यते ॥ अवणाकर्मण्याग्रहायणीकर्मणि चासादितानां व्रीहीणां फलीकृतानां मध्ये एकदेशं गृहीत्वाऽन्यत्र संस्थापयेत् । तानेवाक्षततण्डुलान् समादाय ग्रामात्प्रागुदग्वा गत्वा चतुष्पथे विधिवदग्निमुपसमाधाय क्षिप्रहोमविधिना हयेराक इत्येकैकयाऽक्षततण्डुलानञ्जलिना जुहुयात् । एषां चतुर्णां प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोहयादयो देवता आरण्याग्रहायणीकर्मणि स्वस्त्ययनहोमे विनियोगः । हये राके सिनीवालि सिनीवालि पृथुष्टुके । सुभद्रे पथ्ये रेवति यथा नो यश आवह स्वाहा । हयादिभ्य इदं न मम । ये यन्ति प्राञ्चः पन्थानो य उचोत्तरत आययुः । ये चेमे सर्वे पन्थानस्तेभिर्नो यश आवह स्वाहा ॥ हयादिभ्य इदं न मम । यथा यन्ति प्रपदो यथा मासा अहर्जरम् । एवं मा श्रीधातारः समवयन्तु सर्वतः स्वाहा ॥ हयादिभ्य इदं न मम । यथा समुद्रँस्रवन्तीः समवयन्ति दिशोदिशः । एवं मा सखायो ब्रह्मचारिणः समवयन्तु दिशोदिशः स्वाहा ॥ हयादिभ्य इदं न मम ।

अर्थ—अब स्वस्त्ययन कर्म के प्रयोग लिखते हैं। श्रवण और आग्रहायणी कर्म में हवि के लिये आसादित धान के चावलों को छाटने से पहले थोड़ासा निकाल कर रख लेवे। उन चावल के दानाओं को लेकर ग्राम से बाहर पूर्व अथवा उत्तर जावे। चौराहे पर पंचभू संस्कार कर अग्नि स्थापन करे। क्षिप्र होम विधि के अनुसार "हये राके०" मन्त्र को पढ़ता हुआ एक एक चावलों को हाथ से हवन करे।

इत्थमक्षततण्डुलैश्चतस्त्र आहुतीर्हुत्वा तन्त्रशेषं परिसमाप्य तूष्णीं कतिपयपदानि प्राच्यां गत्वोर्ध्वं पश्यन् वसुवन एधीत्यनेन मन्त्रेण त्रिरभ्यस्तेन देवजनेभ्य इति प्रकृताक्षततण्डुलानञ्जलिनोर्ध्वं क्षिपेत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्देवजना देवता ऽक्षततण्डुलानामूर्ध्वप्रक्षेपणे विनियोगः। वसुवन एधि वसुवन एधि वसुवन एधि। देवजनेभ्यः। ततः पुनरक्षततण्डुलान् गृहीत्वा ऽधस्तात्पश्यन् तिर्यगितरजनेभ्य इत्यञ्जलिना प्रक्षिपेत्। ततोऽत्रापि वसुवन एधि वसुवन एधि वसुवन एधि। इतरजनेभ्य इति प्रयोक्तव्यः। "तथेतरजनेभ्य" इतिसूत्रे तथाशब्दश्रवणात्। ततो बलिमनवलोकयन् प्रकृताग्निसमीपमागत्य होमबल्यवशिष्टानक्षतान् भ्रातृपुत्रशिष्यादिभिर्मित्रैश्च सह भक्षयेत्। ततो वामदेव्यगानम्। अस्य कर्मणः स्वस्त्ययनफलम्। इति स्वस्त्ययनकर्मप्रयोगः।

अर्थ—उपरोक्त चार आहुतियों को प्रदान कर शेष कृत्य समाप्त करे। विना मन्त्र चावल ऊपर को फेंके, पुनः चावल लेकर नीचे को देखता हुआ "वसुवन एधि" मन्त्र से नीचे को फेंक देवे ।

"तथेतरजनेभ्य" वाक्य का प्रयोग वसुवन के साथ करना चाहिए। गोभिलगृह्य सूत्र में "तथा" शब्द का उल्लेख है । जिससे निश्चय होता है कि उन बिखरे हुए चावलों को न देखता हुआ अग्नि के समीप चला आवे। होम और फेंकने से बचे हुए चावल को भाई, पुत्र, शिष्य, मित्र इत्यादि सब लोग भोजन कर जावें ।

अथ प्रसादकरकर्मोच्यते । अथ पुण्ये दिवसे प्रातर्नित्यकर्मान्ते क्षिप्रहोमविधिनाऽग्निं प्रतिष्ठाप्य वशङ्गमाविति मन्त्रेण व्रीहिहोमः, शङ्खश्चेतिमन्त्रेण यवहोमश्च कर्त्तव्यः । यस्य कस्यचित्पुरुषस्य स्त्रियो वा सकाशाद्द्रव्यप्राप्तिमिच्छति तस्य नाम मन्त्रेऽसावित्यस्य स्थाने प्रथमान्तत्वेन प्रयोक्तव्यम् । अनयोर्म्मन्त्रयोः प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्चन्द्रादित्यौ देवते पृथग्व्रीहियवहोमे विनियोगः । वशङ्गमौ देवयानौ युवꣳस्थो यथा युवयोः सर्वाणि भूतानि वशमायन्त्येवं ममासौ वशमेतु स्वाहा । चन्द्रायेदं न मम। शङ्खश्च मन आयुश्च देवयानौ युवꣳस्थो यथा युवयोस्सर्वाणि भूतानि वशमायन्त्येवं ममासौ वशमेतु स्वाहा । सूर्यायेदं न मम । तन्त्रशेषं समापयेत् । होमे यस्य नाम परिगृहीतं स तु प्रसन्नस्सन् सर्वस्वं होमकर्त्रे ददाति । उक्त-

फलप्राप्तिपर्यन्तं प्रतिदिनमेतत्कर्म कर्त्तव्यम् । इति प्रसाद-करकर्मप्रयोगः ॥

अर्थ—अब प्रसन्न करने के कर्म को लिखते हैं। यदि किसी व्यक्ति को प्रसन्न करना चाहे तो किसी पुण्यदायक नक्षत्र में प्रातः होम कर लेने के पश्चात् इस कृत्य को आरम्भ करे। क्षिप्र होम की विधि से अग्नि स्थापन करे। "वशङ्गमौ०" मन्त्र से धान और "शंखश्च०" मन्त्र से जौ की आहुतियों को प्रदान करे। पुरुष या स्त्री जिसके प्रसन्न करने की अभिप्राय से आहुति प्रदान करे उसका प्रथमान्त नाम मन्त्र के "असौ" पद के स्थान पर उच्चारण कर आहुतियों को प्रदान करे। होम विधि के अनुसार शेष कृत्य को सम्पन्न करे। आहुतियों के प्रदान में जिसका नाम लिया जाता है वह प्रसन्न होकर अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है। जब तक उपरोक्त फल प्राप्त न हो तब तक इन आहुतियों को नित्य करना चाहिए। यही दूसरों को प्रसन्न कर वस में करने का प्रयोग है।

अथैकाक्षर्य्यायामृचि चत्वारि कर्माणि फलभेदात्साधनभेदात्प्रथमतृतीययोरनुष्ठानाय पूर्वमर्द्धमासव्रतं, द्वितीयचतुर्थयोर्व्रतविशेषानुक्तेस्सामान्यं सूत्रोक्तत्रिरात्रव्रतं कर्त्तव्यम्। अथ क्रमेण तेषां प्रयोगा उच्यन्ते। तत्र प्रथममायुष्यकामस्यायुष्करं कर्म। तच्च पौर्णमास्यां रात्रौ, सम्पूर्णायुरभिवृद्ध्यर्थमायुष्करं कर्म करिष्ये इति सङ्कल्प्य विधिवदग्निं प्रतिष्ठाप्य क्षिप्रहोमविधिना खादिरान् समिल्लक्षणसंयुक्तान् शतं शङ्कूनेकाक्षर्य्या ऋचा जुहुयात्। अस्याः प्रजापतिर्ऋषि-

यजुर्वाग्देवता खादिरशङ्कुहोमे विनियोगः । आकूतीं देवीं मनसा प्रपद्ये यज्ञस्य मातरꣳ सुहवा मे अस्तु । यस्यास्तमेकमक्षरं परꣳ सहस्रा अयुतञ्च शाखास्तस्यै वाचे निहवे जुहोम्यामा वरो गच्छतु श्रीर्यशश्च स्वाहा । वाच इदं न मम । शङ्कूनां पृथक्पृथङ्मन्त्रेण होमः । ततस्तन्त्रशेषं समापयेत् । "शङ्कुलक्षणं 'कर्मप्रदीपे' । सत्वचः शङ्कवः कार्य्यास्तीक्ष्णाग्रावीतकण्टकाः । समिल्लक्षणसंयुक्ताः सूचीतुल्यास्तथायताः" ॥ १ ॥

अर्थ—"आकूतीं देवीं०" मन्त्र को एकाक्षरी मन्त्र कहते हैं। आयु वृद्धि, मारण, ग्राम-प्राप्ति और मोहन के लिए उक्त मन्त्र का अनुष्ठान कर्त्तव्य है। फल भेद के अनुसार अनुष्ठान की विधि चार प्रकार की हैं। पहले और तीसरे अनुष्ठान के आरम्भ करने के पहले १५ दिन का व्रत करना चाहिए। दूसरे और चौथे अनुष्ठान के लिए विशेष व्रत का उपदेश नहीं लिखा है। अतः इनके आरम्भ में गोभिलीयगृह्य सूत्र प्रपाठक ४ खण्ड ५ सूत्र ६ के अनुसार तीन दिन का व्रत करना चाहिए।

अब क्रम से उन प्रयोगों को लिखा जाता है। प्रथम आयुष्कर कर्म दीर्घजीवनाभिलाषी के आरम्भ करने के लिए है। अनुष्ठान से पहले १५ दिन का उपवास व्रत करे। पूर्णमासी की रात में आचमन प्राणायाम कर "सम्पूर्णायुरभिवृद्ध्यर्थमायुष्करं कर्म करिष्ये" वाक्य योजना के साथ संकल्प करे। पृष्ठ ६६ लिखी हुई विधि से अग्नि स्थापन करे। क्षिप्र होम की विधि से समिध के सदृश खैर की १०० लकड़ियों की "आकूतीं देवीं मनसा०" मन्त्र से आहुति प्रदान करे। खादिरकाष्ठ की शंकुनाम की समिद बनाई जाती

है। कर्म प्रदीप में लिखा है कि—इस शंकु समिद को "सहित बोकले के एक ओर का अग्र भाग नोकीली विना कांट का बनाना चाहिये। समिद के अनुरूप एक बिलस्त का होना चाहिए।" एक एक शंकु होम करना चाहिए। प्रत्येक शंकु आहुति के लिए बार बार मन्त्र को पढ़कर "स्वाहा" शब्द पर आहुति प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार शंकुओं की आहुति प्रदान कर शेष कृत्यो को समाप्त करे।

अथ वधकामस्य वधकरकर्मोच्यते। मारणकर्मेति नामान्तरम्। तत्करिष्यन् प्रथमकर्मोक्तकाले त्विप्रहोम-विधिनैकात्त्यर्यामन्त्रेण लोहमयान् सूचीतुल्यान् शतं शङ्कूनग्नौ जुहुयात्।

अर्थ—अब दूसरा वध कर्म लिखते हैं। इसका दूसरा नाम मारणकर्म है। यह भी पूर्वोक्त विधि के अनुसारही किया जावेगा। अन्तर केवल इतना होगा कि शंकु के बदले सूई के सदृश लोहे को कील की आहुति दी जावेगी।

अथ ग्रामकामस्यामोघनामकं तृतीयं कर्मोच्यते। तस्य प्रयोगः। पूर्वोक्तकाले ग्रामात्प्रागुदग्वा पर्वते चतुष्पथे वा गत्वा परितश्शुद्धं स्थण्डिलं परिकल्प्यारण्यैर्बहु-गोमयशुष्कैरेव तत्स्थण्डिलं भृशं प्रतापयेत्। निश्शेषा-ङ्गारापोहनानन्तरं भूमिर्यथा [illegible] युक्ता स्यात्तथा तप-नम्। ततोऽङ्गारान् सर्वानपस [illegible] मास्यं घृतेनाभ्यज्य

मनसैकाक्षर्य्यामन्त्रमुच्चार्य्यास्येन घृतं प्रतप्ते स्थण्डिले जुहुयात्। नात्र क्षिप्रहोमविधिः। अत्र यावदेवोक्तं तावदेव कर्त्तव्यमुदकहोमवत्। ततो ज्वलन्ती भूमिस्स्यात्तदा द्वादशानां ग्रामाणां शीघ्रं प्राप्तिः। होमानन्तरे धूमे जाते ग्रामत्रयावाप्तिः फलम्। अथवा षण्णमष्टानां वा। एतदमोघकर्मेत्याचक्षते॥

अर्थ—अब ग्राम प्राप्ति करने के अभिलाषी पुरुषों के लिये तीसरा "अमोघनात्मक" कर्म को लिखा जाता है। उसका प्रयोग निम्नाङ्कित है। पूर्णमासी के रात में ग्राम से पूर्व अथवा उत्तर पहाड़ी अथवा चौराहे पर जावे। चारो दिशाओं में पवित्र वेदिका बनावे। उपवास व्रत समाप्त कर पर्याप्त शुष्क गोमय लाकर वेदिका पर जला देवे, जिससे वेदिका भलीभाँति संतप्त हो जावे। उस पर से अङ्गार हटाने के पहले वेदिका भी उसी अङ्गार के सदृश ज्वाला स्वरूप हो जावे। अग्नि विधूम हो जाने के पश्चात् उसे शीघ्रता से फैला देवे। अति शीघ्र मुँह में घी भर लेवे। "आकूती देवी०" मन्त्र को मन मे स्मरण कर लपलपाती हुई वेदिका पर मुख से घी उगल देवे। यहाँ क्षिप्र होम की भी विधि न होगी। यहाँ पर जो कुछ विधि होगी वह जल आहुति प्रदान के समान होगी। यदि जलती भूमि पर घी उगलने से सफेद ज्वाला वल उठे तो १२ ग्राम की प्राप्ति होती है। यदि मुख से घी छोड़ने पर धूआँ होने लगे तो केवल तीन ग्राम की प्राप्ति होती है। अथवा छः या आठ ग्राम की होती है। यही अमोघ अनुष्ठान का प्रयोग है।

ततो वृत्त्यविच्छित्तिकामस्य वृत्तिप्रदकर्मोच्यते । वृत्तीनां पत्नीपुत्रगोभूमिधान्यहिरण्यादिसाधनानामविच्छित्तिर्वृत्त्यवच्छित्तिः । अनवाप्तानां तासां प्राप्तिश्च फलम् । तत्करिष्यन् त्रिरात्रव्रतं कृत्वा प्रतिदिनं सायम्प्रातर्विधिवनग्निं प्रतिष्ठाप्य क्षिप्रहोमविधिनैकाक्षर्य्यामन्त्रेण हरितगोमयान् जुहुयात् । स्मृत्यन्तरात्सायम्प्रातर्होमकालाविरोधेन प्रातर्होमानन्तरं सायं होमात्पूर्वं गोमयहोमः । विशेषानुक्तेः प्रातरेकैवाहुतिः । 'सायमपि तथा' इति केचिद्व्याख्यातारः। वार्षिकमासचतुष्टये प्रकृतं कर्म कर्त्तव्यं हरितगोमयलाभसम्भवादिति । पूर्ववत्तन्त्रशेषं समापयेत् । इत्येकाक्षर्य्यामन्त्रप्रयोगः ॥

अर्थ—यदि यजमान की इच्छा हो कि मेरी वृत्ति सुरक्षित रहे तो उसे चाहिए कि इस वृत्ति प्रदकर्म का अनुष्ठान करे। उक्त अनुष्ठान से स्त्री, पुत्र, गौ, भूमि, अन्न, और सुवर्ण आदि सम्पत्ति का विच्छेद नहीं होता । उपरोक्त धन लाभ करना भी इस अनुष्ठान का फल है । उक्त अनुष्ठान करने के लिए तीन रात का उपवास व्रत करे । प्रति दिन सायं और प्रातः काल में पंचभू संस्कार कर अग्नि स्थापन करे क्षिप्र होम विधि के अनुसार मुख में गोमय लेकर "आकूतीं देवी०" से आहुति प्रदान करे। दूसरी स्मृतियों में लिखा है कि जिसमें सायं और प्रातः होम में विघ्न न हो प्रातः होम के पश्चात् और सायं काल के होम के पहले उपरोक्त गोमय होम कृत्य सम्पन्न करे। कुछ लोगों की सम्मति है कि गोमय होम में आहुति संख्या के विषय का उल्लेख नहीं है। अतः सायं और प्रात दोनों समय एक एक

आहुति प्रदान करे । यथार्थ में चारों ग्राम में गीला गोबर, सुग-मता से प्राप्त होता है । अतः इन्हीं चार ग्रामों में उपरोक्त अनुष्ठान करना योग्य है । गोमय आहुति प्रदान कर सामान्य कृत्य सम्पन्न करे । यही एकाक्षरी मन्त्र का प्रयोग है ।

अथ सम्पदर्थं पण्यहोमप्रयोग उच्यते । तत्र त्रिरात्रमुपवासः । नत्वत्रैकभक्तव्रतं पुनर्वचनात् । व्रतान्ते ऽग्निं प्रतिष्ठाप्य क्षिप्रहोमविधिनेदमहमिमं विश्वकर्माणमितिमन्त्रेण पण्यहोमं कुर्यात् । होमानर्हरत्नादिपण्यप्राप्त्यर्थमाज्येन होमः । होमार्हपण्यधान्यादिप्राप्त्यर्थं तत्तद्द्रव्येणहोमः । आहुतिरेकैव सकृदेवानुष्ठानम् यथोक्तकाले, अथवा काम्यद्रव्यप्राप्तिपर्य्यन्तं वा ऽस्यावृत्तिः । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिरृषिर्निगदो विश्वकर्मा देवता पण्यलाभकर्मणि पण्यहोमे विनियोगः ॥ इदमहमिमं विश्वकर्माणं श्रीवत्समभिजुहोमि स्वाहा । विश्वकर्मण इदं न मम । ततस्तन्त्रशेषं समापयेत् ॥

अब धन लाभ के लिए पण्य नाम का प्रयोग लिखा जाता है । इस होम कार्य में तीन दिन का उपवास व्रत कर्त्तव्य है । इस उपवास में एक समय भोजन न होगा सूत्रकार इस अनुष्ठान में भी तीन दिन का व्रत करने का उल्लेख किया है । अतः इस अनुष्ठान में पहले कहे गये दिन रात के बीच में एक समय भोजन करने का नियम नहीं काम में आसकता । प्रथम तीन दिन का व्रतोपवास करे । व्रत पूर्ण हो जाने पर पञ्चभू संस्कार कर अग्नि स्थापन । करे

क्षिप्र होम विधि से "इदमहमिमं०" मन्त्र से आहुति प्रदान करे। यह आहुति घृत हवि की दी जावेगी। बाज़ार के यव आदि अन्न-प्राप्ति के लिए उन यवादि द्रव्यों से भी किया जा सकता है। परन्तु केवल एकही आहुति दी जावेगी। समय उपस्थित होने पर अनुष्ठान भी केवल एकही बार किया जाता है। अथवा जब तक मनोकामना सिद्धि न हो उक्त होम कार्य को करता रहे। शेष सब कृत्य पूर्ववत सम्पन्न करे।

अथ पण्यवस्त्रप्राप्त्यर्थं तन्तुहोमः। गोप्राप्त्यर्थं गोवाललोमभिः। पण्यस्य वाससस्तन्तून्त्समादाय प्रकृतमन्त्रेण पूर्ववज्जुहुयात् ॥

अर्थ—यदि बाज़ार के वस्त्रों को सुगमता से प्राप्त करना चाहता हो तो सूत से और गोओं को चाहता हो तो उसके लोम से आहुति प्रदान करे।

ततो यशस्कामस्य सहायकामस्य चोभयपक्षप्रतिपदि पूर्णहोम उच्यते। पौर्णमास्याः प्रतिपदि यागादर्वाग्दर्शे यागादूर्ध्वमुक्तफलसिद्ध्यर्थं पूर्णहोमं करिष्ये इति संकल्प्य क्षिप्रहोमविधिना जुहुयात्। पूर्णहोममन्त्रेण सकृदाज्यं यशस्कामश्चेत्, इन्द्रामवदादित्यृचा सहाय-कामश्चेत्। पूर्णहोममितिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषि[illegible]दोऽग्निर्देवता यशस्कामस्य पूर्णहोमे विनियोगः। [illegible] होमं यशसे जुहोमि योऽस्मै जुहोति वर[illegible] वरं वृणे यशसा भामि लोके स्वाहा।

मम। इन्द्रामवत्सादितिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्री-छन्द इन्द्रो देवता महायशकामस्य पूर्णहोमे विनियोगः। इन्द्रामवत्सान्नमो वः पश्चादहं यो ज्योतिर्मामन्येत सर्वं स्वाहा। इन्द्रायेदं न मम॥

अब यश और महायशा की इच्छा वाले मनुष्य के लिए पूर्ण होम की विधि लिखते हैं। पूर्णहोम की प्रतिपदा यज्ञ के पश्चात् इस आहुति को प्रदान करना चाहिए। यदि यश की कामना हो तो आचमन प्राणायाम और स्वस्तिवाचन करें। फिर होम विधि से एक बार घृत लेकर "पूर्ण होम०" मन्त्र से आहुति प्रदान करें। महायशा की इच्छा हो तो "इन्द्रामवत्सान्नमो०" मन्त्र से आहुति प्रदान करें।

अथ पुष्टाधिपत्यकामस्याधिपत्यप्रदकर्मोच्यते। तत्करिष्यन् पूर्वमष्टरात्रमुपोष्य व्रतान्ते औदुम्बरस्रुवच-मसेध्मानि समादाय, ग्रामात्प्रागुदग्वा निष्क्रम्य, चतु-ष्पथे ऽग्निमुपसमाधायेदं भूमेर्भजामह इति न्यञ्चौ पाणी कृत्वेमं स्तोममिति परिसमूह्याज्यतन्त्रेणाज्यसंस्कारान्तं कृत्वा, ऽग्निमनुपर्युक्ष्य, प्रपदवैरूपाक्षजपं कृत्वा, व्याहृति त्रयेण हुत्वाऽऽदित्याभिमुखो ऽन्नं वा एकछन्द-स्यमितिमन्त्रेण श्रीर्वा एषेतिमन्त्रेण चाज्यं जुहुयात्। अनयोः प्रजापतिर्ऋषिर्निगद आदित्यो देवता ऽऽज्य-होमे विनियोगः। अन्नं वा एकछन्दस्यमन्नँ ह्येकं भूतेभ्यश्छदयति स्वाहा। आदित्यायेदं न मम। श्रीर्वा

एषा यत्सत्वानो विरोचनो मयि सत्वमवदधातु स्वाहा। आदित्यायेदं न मम। तन्त्रशेषं समापयेत्।

अर्थ—यदि किसी पुरुष को इच्छा हो कि समाज में हमारा नाम बढ़ा चढ़ा रहे तो उसे आधिपत्यप्रद होम का अनुष्ठान करना चाहिए। इस अनुष्ठान के लिये ८ दिन का उपवास व्रत करना चाहिए। व्रत पूर्ण कर गूकरि वृक्ष के काष्ठ के बने हुए स्रुवा, प्रणीता इध्मा लेकर ग्राम से पूर्व अथवा उत्तर चौराहे पर जावे। विधिवदग्नि का स्थापन करे। अङ्गुलियों के बल हाथ भूमि पर रख कर "इदं भूमेर्भजामह०" मन्त्र का जप करे। "इमास्तोम०" मन्त्र से परिसमूहन करे। आज्य तन्त्र से घृत को संस्कृत कर अग्नि का पर्युक्षण कार्य करे, प्रपद और वैरुपाक्ष मन्त्रों का जप कर व्याहृति मन्त्रों से तीन आहुति प्रदान करे। सूर्य्यास्त के समय घृत ले ले कर "अन्नवा" और "श्रीर्वा" मन्त्रो से दो आहुतियाँ प्रदान करे। शेष कृत्य पर्व विधि के अनुसार समाप्त करे।

उक्तफल सिद्धये कर्मान्तरम्। अन्नस्य घृतमितितृतीयामाहुतिं गृह्याग्नौ जुहोति। अन्नाप्याज्यतन्त्रम्। अन्नस्य घृतमितिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्बृहतीछन्दो ऽग्निर्देवताऽऽज्यहोमे विनियोगः। अन्नस्य घृतमेव रसस्तेजः सम्पत्कामो जुहोमि स्वाहा। अग्नय इदं न मम।

अर्थ—जो फल उपरोक्त होम से बताया गया है उसी के प्राप्त करने के लिए दूसरा अनुष्ठान लिखा जाता है। "अन्नस्यघृतं०" मन्त्र से गृह्याग्नि में घृत की आहुति प्रदान करे। परन्तु गृह्याग्नि

[illegible] आहुति प्रदान करने से भी आज्य ग्रन्थ में [illegible] करने होंगे।

ततश्शेषं समाप्य ब्राह्मणे दक्षिणां दत्त्वा वामदेव्यगानं कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत् । इति पुत्राधिपत्यप्रदप्रयोगः ॥

अर्थ—उपरोक्त दोनों विधि से समाप्त [illegible] करके ब्रह्मा को पूर्ण पात्र दक्षिणा प्रदान करे। वामदेव्य गान का गान कर ब्राह्मण भोजन करावे। यही पुत्राधिपत्य का प्रयोग है।

अथ पशुकामस्य पशुप्रदप्रयोग उच्यते ॥ ततः[illegible] गोष्ठेऽग्निमुपसमाधायाज्यतन्त्रेण व्याहृतिहोमान्ते ऽन्नस्य घृतमितिपूर्वोक्तमन्त्रेणाज्याहुतिं कुर्यात् । ततस्तन्त्रशेषं समापयेत् । इतिपशुप्रदप्रयोगः ॥

अर्थ—पशु की इच्छा करने वाले पुरुषों के लिये पशुप्रद प्रयोग लिखा जाता है। गोशाला में अग्नि स्थापन कर आज्यतन्त्र से व्याहृति होमान्त आहुति प्रदान कर "अन्नस्य घृतम्०" मन्त्र से घृत की आहुति प्रदान करे। शेष कृत्य सामान्य रूप से समाप्त करे यही पशुप्रद प्रयोग है।

अथ गोषु नश्यमानासु तत्प्रशान्तये होम उच्यते । पूर्ववद्गोष्ठाग्निमुपसमाधाय क्षिप्रहोमविधिना लोहचूर्णानि अन्नस्य घृतमितिमन्त्रेण जुहुयात् । अस्य चीवरहोमकर्मेति नाम । उक्तानामाधिपत्यप्रदपशुप्रदचीवरहोमकर्मणां

परिभाषासूत्रोक्तकाले सकृदेवानुष्ठानम्, अभ्यासानुपदेशात् । सकृत्प्रयोगेणोक्तफलाप्राप्तावावृत्तिं वा कुर्यात् ॥

अर्थ – यदि गौओं में कोई संताप को प्राप्त हो गये हों तो उनके कल्याणार्थ होम की विधि लिखते हैं । उपरोक्त रित्यानुसार गोशाला में अग्नि स्थापन करे, क्षिप्र होम की विधि से लोह का पूर्ण "अन्नस्य०" मन्त्र से होम करे, इस होम का चीवर होम कर्म नाम है । उपरोक्त अधिपत्यप्रद पशुप्रद और चीवर होम कर्म अनुष्ठान केवल एकही वार होता है परिभाषा सूत्र में इनके लिए वार वार करने को नहीं लिखा है । हाँ यदि एक वार के करने पर अभिष्ट सिद्धि न हो तो दोवारा भी करे ।

अथ स्वस्त्ययनग्रन्थिकरणप्रयोगः । मार्गे गच्छतः प्रतिभये जाते स्वकीयस्यान्यस्य वा वस्त्रस्य दशानां त्रीन् ग्रन्थीन् कुर्यात् । अन्नं वा एक छन्दस्यमित्यादिभिरुक्ताभिस्तिसृभिर्ऋग्भिस्स्वाहान्ताभिरेकैकयर्चा एकैकग्रन्थिकरणम् । एतत्कर्मणा सहायानामपि स्वस्त्ययनम् ॥ इति स्वस्त्ययनग्रन्थिकरणप्रयोगः ॥

अर्थ – अब स्वस्त्ययन ग्रन्थिकरण का प्रयोग लिखा जाता है । यदि रास्ते में जाते हुए भय मालूम हो तो अपने या अपने साथ के मनुष्य के कपड़े में तीन गाँठ कर देवे । 'अन्नस्य०' उपरोक्त तीनों मन्त्रों से वारी वारी एक एक गाँठ खोले । इन्हीं मन्त्रों की सहायता से कल्याण होता है । यही स्वस्त्ययन ग्रन्थि करण प्रयोग है ।

अथाचितसहस्रकामस्याक्षतसक्त्वाहुतिप्रयोगः तत्र-रिक्तपक्षतिथिषु समाधाय क्षिप्रहोमविधिनाऽक्षतसक्त्वाहुतिसहस्रं पूर्वोक्ताभिरन्नपतेऽन्नस्येत्याद्याभिस्तिसृभिर्ऋग्भिः प्रत्यृचा न जुहुयात् । ततस्तन्त्रशेषं समापयेत् ॥

अर्थ—यह अनुष्ठान सहस्र कामनाओं के प्राप्त्यर्थ कर्तव्य है। इसके लिए विधिवत् अग्नि स्थापन कर क्षिप्र होम की विधि से उपरोक्त "अन्नस्य०" श्रीर्वाणपा०" और "अन्नस्य०" तीनों मन्त्रों से एक एक सहस्र अक्षत और सत्तू की आहुति प्रदान करे। शेष पूर्ववत् सम्पन्न करे।

ततो गवाश्वमहिष्यादिपशुकामस्य गोमयहोम प्रयोग उच्यते। तत्र रिक्तपक्षे वत्सस्य वत्सायाश्च गोमयमादायोक्ताभिस्तिसृभिर्ऋग्भिस्सहस्रं जुहुयात्। ऋचामभ्यासः पूर्ववत्। क्षिप्रहोमविधिरेकस्मिन्नेव दिने होमो न तु दिनान्तरे। "उक्तञ्च 'भट्टनारायणोपाध्यैः'। चतुर्णां वत्सरूपाणां प्रकृतानाञ्च गोमयम्। एकस्मिन्नेव पर्वाहे जुहुयात्सक्तुहोमवत्" ॥१॥ ततस्तन्त्रशेषं समापयेत्। इति गोमयहोमप्रयोगः॥

अर्थ—गौ, घोड़ा और भैंस पशु प्राप्ति के लिए गोमय प्रयोग लिखा जाता है। इस अनुष्ठान के लिए बछवा और बछिया के गोमय को लेकर "अन्नस्य०" "श्रीर्वाणपा०" और "अन्नस्य घृत०" मन्त्रों से आहुति प्रदान करे। इन मन्त्रों का पाठ पूर्ववत् होगा। क्षिप्र होम की विधि से केवल एकही दिन होम कार्य होगा। नारायण भट्टोपा-

ध्याय लिखे हैं कि "चार बछरओं के स्वाभाविक गोमय को लेकर केवल एक दिन प्रातः समय सत्तू होम के समान आहुति प्रदान करे। शेष पूर्ववत् कृत्य सम्पन्न करे। यही गोमय होम का प्रयोग है।

अथ क्षुद्रपशुकामस्याविपुरीष होम उच्यते। अविमिथुनयोः पुरीषमादाय पूर्ववत्सहस्रं जुहुयात्। उक्ताऋचः। ऋगभ्यासश्चोक्तः। इत्यविपुरीषहोमः॥

अर्थ—छोटे पशुओं की कामना हो तो भेड़ि की लेड़ी लेकर उपरोक्त विधि के अनुसार आहुति प्रदान करे। यह अविपुरीष होम है।

अथ वृत्त्यविच्छित्तिकामस्य कम्बूकहोम प्रयोग उच्यते। तस्य फलं विद्यमानवृत्तीनामविच्छित्तिः सातत्यमिति यावत्। अविद्यमानवृत्तीनां प्राप्तिश्च फलम्। तत्करिष्यन्नग्निं प्रतिष्ठाप्य क्षिप्रहोमविधिना कम्बूकान् सायम्प्रातर्जुहुयात्। क्षुधे स्वाहा। क्षुत्पिपासाभ्याꣳ स्वाहा। क्षुध इदं न मम। क्षुत्पिपासाभ्यामिदं न मम। तण्डुलानामवहननसमये निर्गतचूर्णानि 'कम्बूका' इत्यभिधीयन्ते। ततस्तन्त्रशेषं समापयेत्। इदं सायमाहुतेः। पूर्वं प्रातराहुतेः पश्चात्कर्त्तव्यम्। इति कम्बूक होमप्रयोगः॥

अर्थ – वृत्ति बिछेद न हो इस फल का इच्छुक पुरुष क्षिप्र होम विधि से "क्षुधे स्वाहा" क्षुत्पिपासाभ्यां स्वाहा" कम्बुक की आहुति प्रदान करे। इस होम से वर्त्तमान वृत्ति की रक्षा और भविष्य की

प्राप्ति दोनों ही फल होते हैं। चावल की खुद्दी को "कम्बुकः" कहते हैं। इस खुद्दी की आहुति को सायं काल की आहुति से पहले और प्रातः होम के पश्चात् करना चाहिए; शेष कृत्यों को पूर्ववत् सम्पन्न करे। यही कम्बुक होम का प्रयोग है।

अथ विषनिवृत्तिजपप्रयोग उच्यते ॥ विषयुक्तजन्तुभिः सर्पादिभिर्दष्टं पाणिमात्रं जलेनाभ्युक्षन्माभैषीर्न मरिष्यसीतिमन्त्रं जपेत्। अभ्युक्षणजपौ युगपदेव। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सर्पो देवता विषापनोदने विनियोगः। माभैषीर्न मरिष्यसि जरदष्टिर्भविष्यसि। रसं विषस्य नाविदमुग्रं फेनमिवास्यम्। अनेन कर्मणा विषनिवृत्तिर्ज्जीवनं च। इति विषचिकित्साप्रयोगः ॥

अर्थ—अब विष निवारण का प्रयोग लिखा जाता है। विषधर साँप आदि डँसे हुए प्राणी को सब से प्रथम स्नान करा देवे। पश्चात् "माभैषीर्न मरिष्यसि" मन्त्र का जप करे। इस प्रयोग से विष की निवृत्ति हो जाती है। विषधर से काटा हुआ मनुष्य जीवित रहता है। यही विष निवारण की चिकित्सा है।

अथ स्नातकस्य स्वस्त्ययनप्रयोग उच्यते ॥ स्नातको रात्रौ स्वापसमये तुरगोपायेतिमन्त्रेण वैणवं दण्डं शयनसमीपे स्थापयेत्। अथवा, "हस्ते स्थापयि त्वा निद्रां कुर्यात्" इति केचित्। एवं कृते चोरवृश्चिकसर्पाद्युपद्रवनिवृत्तिः। अस्यमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्दण्डो देवता

दण्डस्थापने विनियोगः। तुरगोपाय मा नाथ गोपाय अशस्तिभ्यो अरातिभ्यः स्वस्त्ययनमसि ॥

अर्थ—स्नातक के स्वस्त्यय का प्रयोग लिखा जाता है। स्नातक रात में सोने के समय "तुरगोपाय०" मन्त्रको पढ़ता हुआ बाँस की लाठी को जहाँ सोवे वहाँ रख देवे। अथवा हाथ में लेकर सोवे यह कुछ लोगों का मत है। इससे चोर आदि से रक्षित रहता है।

अथ कृमिचिकित्साजप उच्यते। पुरुषस्य स्त्रिया वा यस्मिन्नङ्गे कृमयस्सन्ति तदङ्गमभ्युक्षन् हतस्ते अत्रिणा कृमिरितिमन्त्र जपेत्। अभ्युक्षणजपौ युगपत्कर्त्तव्यौ। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्बृहतीछन्दो ऽत्र्यादयो देवताः कृमिपातने विनियोगः। हतस्ते अत्रिणा कृमिर्हतस्ते जमदग्निना। गोतमेन तिनीकृतो त्रैव त्वा कृमे ब्रह्मब्रह्ममवह्यम्। भरद्वाजस्येतिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिपादनुष्टुप्छन्दो भरद्वाजो देवता कृमिपातने विनियोग। भरद्वाज मन्त्रेण सन्तिनोमि क्रिमे त्वा क्रिमिꣳ ह वक्रतोदिनं क्रिमिमन्त्रानुचारिणं क्रिमिं द्विशीर्षमर्जुनं द्विशीर्षꣳ ह चतुर्हनुम्। हतः क्रिमीणामिति क्रिमिमिन्द्रस्येति मन्त्रयोः प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो भरद्वाजो देवता कृमिपातने विनियोगः। हतः क्रिमीणां क्षुद्रको हता माता हतः पिता। अथैषां भिन्नकः कुम्भो य एषां विषधानकः। क्रिमिमिन्द्रस्य बाहुभ्या-

मवाञ्चं पातयामसि । हतः क्रिमयस्साशातिका; सनीलमक्षिकाः । इति कृमिपातनप्रयोगः ॥

अर्थ—अब कृमि चिकित्सा जप का प्रयोग लिखा जाता है। पुरुष हो या स्त्री उसके जिस अंग में कृमि हों उसे जल से धो देवे। "हतस्ते" मन्त्रों का जप करे। यही कृमि पातन का प्रयोग है।

अथ पशूनां कृमिनिवर्त्तनजप उच्यते। पशूनामङ्गे विद्यमानकृमिपातनं कर्त्तुमिच्छेत्तदा कृष्टक्षेत्रे विद्यमानं लोष्टं गृहीत्वाऽऽकाशे गृहपटले निदध्यात्। तस्य लोष्ठस्य रेणुभिः पूर्वाह्ने कृमियुक्तपशोरङ्गं परिकिरन् पूर्वोक्तामृचं जपेत्। परिकिरन् सर्वतो विक्षिपतीत्यर्थः। एवं कृते पशोः कृमिनिवृत्तिः स्यात्। इति काम्यप्रयोगा उक्ताः ॥

अर्थ—अब पशुओं के कृमि निवृत्ति का प्रयोग लिखा जाता है। यदि पशुओं के अंग में कृमि पर जावें तो जुते हुए खेत से मिट्टी लाकर छप्पर आदि ऊँचे स्थान पर रखे। उस मिट्टी के धूल को लेकर प्रातःकाल पशु के उस अंग पर पूर्वोक्त "हतस्ते०" मंन्त्रों को पढ़ता हुआ छिड़के जहाँ कृमि पड़े हों। ऐसा करने से पशु के अंग के कृमि निवृत्ति हो जाते हैं। यही काम्य कर्म हैं।

अथ मधुपर्कप्रयोग उच्यते ॥ सति सम्भवे पुत्रदारादिभिस्सह यजमानो विष्टरौ पाद्यमर्घ्यमाचमनीयम्मधुपर्कं वस्त्रयुगलं यथाविभवमाभरणपात्रादिकञ्च समादायार्हणप्रदेशस्योत्तरतो गां बध्वोपतिष्ठेरन्नर्हणा पुत्रवाससेतिमन्त्रेण। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽर्हणीयो देवता धेनूपस्थाने विनियोगः। अर्हणा

पुत्रवाससा धेनुरभवद्यमे। सा नः पयस्वती दुहा उत्तरामुत्तराँ समाम्॥ अत्र, 'उपतिष्ठेरन्' इति बहुवचनात्पुत्रादयोऽप्युपस्थानकर्त्तारः। ततोऽर्हणीय इदमहमिमामितिमन्त्रं प्रतितिष्ठमानो जपेत्। यस्मिन्प्रदेशे पूज्यस्य पूजनं कर्त्तुमिच्छन् पूजक उपस्थितो भवेतत्र पूज्यो जपति। अथवा, यजमानो यस्मिन् कालेऽर्हणं कर्त्तुमारभते तदेदमहमितिमन्त्र जपेत्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरर्हणीयो देवता जपे विनियोगः। इदमहमिमां पद्यां विराजमन्नाद्यायाधितिष्ठामि॥

अर्थ—अब मधुपर्क का प्रयोग लिखा जाता है। जिसे मधुपर्क करना हो वह अपनी स्त्री पुत्र आदि कुटुम्ब के साथ पूज्य के लिए दो विष्टर, पैर, हाथ धोने और आचमन के लिए जल, मधुपर्क धोती दुपट्टा, भूषण आदि पूजा के स्थान में सँभाल कर रक्खे। सब सामग्रियों के उत्तर में गौ रक्खे "तिष्ठेरन्" बहुवचनान्त क्रिया के प्रयोग का अभिप्राय यही है कि पूजक के कुटुम्ब भी उपस्थान करें। पूज्य अथवा पूजक पूजास्थल मे खड़ा होकर "इदमहं०" मन्त्र का जप करे।

ततो यजमानो दर्भमयं विष्टरं विष्टरद्वयं वा पूज्याय दद्यात्। तत्प्रयोगो विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्। एवं पाद्यार्घ्याचमनीयमधुपर्कान्प्रत्येकं त्रिस्त्रिर्निवेद्य दद्यात्। विष्टरद्वयपक्षे विष्टरौ विष्टरौ विष्टरौ प्रतिगृह्येताम्। पादप्रक्षालनार्थमुदकं पाद्यम्। दध्यक्षत-

पुष्पसंयुतं जलमर्घ्यम्। आचमनार्थमुदकमाचमनीयम्। दधिघृतसंयुक्तं मधु मधुपर्कः।

अर्थ—पूजक कुशा के दो अथवा एक विष्टर को हाथ में लेकर 'विष्टरो०" वाक्य को कहता हुआ पूज्य के हाथ मे दे देवे। ऐसे ही पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय मधुपर्क इत्यादि सब पूजा सामग्रियों को प्रदान करे। यदि एक साथ दो विष्टर देना हो तो "विष्टरौ" इस प्रकार द्विवचनन्त का प्रयोग करे। जो जल पैर धोने के लिए दिया जाता है उसे पाद्य, हाथ धोने के लिए पुष्प आदि से युक्त जल को अर्घ्य, आचमन के लिए जल को आचमनीय, एवं पूज्य के भोजनार्थ दही मधु और घी को मधु पर्क कहा जाता है।

ततः पूजकदत्तं विष्टरमर्च्यः प्रतिगृह्णाति। विष्टरं या ओषधीरितिमन्त्रेणोदगग्रमास्तीर्योपविशेत्। विष्टरद्वये दत्ते एकं पूर्वं मन्त्रेणास्तीर्य्य द्वितीयं विष्टरमुत्तरमन्त्रेण पादयोरधस्तात्कुर्यात्। अनयोः प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द ओषधयो देवताः पूर्वविष्टरासादने, उत्तरस्य पादयोरधस्तादास्तरणे विनियोगः। या ओषधीस्सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः। ता मह्यमस्मिन्नासनेऽच्छिद्राः शर्म यच्छत। इतिपूर्वमन्त्रः। या ओषधीस्सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु। ता मह्यमस्मिन् पादयोरच्छिद्राः शर्म यच्छत। इत्युत्तरमन्त्रः॥

अर्थ—पूज्य पूजक से दिए हुए विष्टर को लेकर उत्तराग्र रखने और उसी पर "या औषधी०" मन्त्र को पढ़ता हुआ बैठे। यदि दो विष्टर दिए गए हों तो पहले मन्त्र से पहले और दूसरे से दूसरे को उत्तराग्र रख कर बैठे।

ततोऽर्चकः पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यतामिति ददाति. तदाऽर्च्यः यतो देवीरितिमन्त्रेण पाद्यं प्रेक्षते । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिऋषिर्विराट्छन्द आपो देवताः पाद्यप्रेक्षणे विनियोगः । यतो देवीः प्रतिपश्याम्यापस्ततो मा राद्धिरागच्छतु । ततः पूजकदत्तं पाद्यं गृहीत्वा पूज्यो जलेन स्वकीयसव्यं पादं सव्यं पादमवनेनिज इति मन्त्रेण प्रक्षालयति । अनयोर्मन्त्रयोः प्रजापतिऋषिर्निगदोऽर्हणीयश्रीर्देवता सव्यदक्षिणपादप्रक्षालने विनियोगः । सव्यं पादमवनेनिजेऽस्मिन् राष्ट्रे श्रियं दधे । दक्षिणं पादमवनेनिजेऽस्मिन् राष्ट्रे श्रियमावेशयामि ॥ ततः शेषेणोदकेन पूर्वमन्यमित्यनेन मन्त्रेणोभौ पादौ पूर्ववत्प्रक्षालयति । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिऋषिर्निगदोऽर्हणीयश्रीर्देवता पादद्वयप्रक्षालने विनियोगः । पूर्वमन्यमपरमन्यमुभौ पादाववनेनिजे । राष्ट्रस्यर्द्ध्या अभयस्यावरुद्ध्यै ॥

१४--पूजक पूज्य के विष्टर पर बैठ जाने के पश्चात् "पाद्य मन्त्र को तीन बार पढ़ता हुआ पाद्य जल को दे देवे । पूज्य "यतो देवी०" मन्त्र से जल को देख लेवे । पश्चात् पूजक के हाथ से लेकर "सव्यं पाद०" मन्त्र को पढ़ता हुआ वाम पैर को धोवे पश्चात् इसी मन्त्र से दाहिने को भी धोवे । केवल मन्त्र के स्थान में "दक्षिणं पादम्" पाठ बदल कर मन्त्र पढ़े । "पूर्वं मन्त्र०" मन्त्र को पढ़ता हुआ दोनों पैरों को धोवे ।

ततः पूजकोऽर्घ्यपात्रमादायार्घ्यमर्घ्यं प्रतिगृह्यतामित्युक्त्वा तेनैव पात्रेणार्घ्यमञ्जलावासेचयेत्। तदर्घ्यमञ्जलिनाऽन्नस्य राष्ट्रिरितिमन्त्रेण प्रतिगृह्णीयात्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरर्घ्यं देवताऽर्घ्यप्रतिग्रहणे विनियोगः । अन्नस्य राष्ट्रिरसि राष्ट्रिस्ते भूयासम् ॥ ततोऽर्चक आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयं प्रतिगृह्यतामिति दद्यात्। तद्दत्तमुदकमर्च्य आचामेत् यशोऽसीति सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुराचमनीयं देवताऽऽचमनं विनियोगः। यशोऽसि यशो मयि धेहि ॥

अर्थ--पूजक "अर्घ्यम्०" वाक्य को पढ़ता हुआ अर्घ्य जल को पूज्य के अञ्जलि में दे देवे। पूज्य "अन्नस्य०" मन्त्र को पढ़ता हुआ ग्रहण करे। पूजक "आचमनीयं०" वाक्य को पढ़ता हुआ आचमनीय जल प्रदान करे और पूज्य उस जल को लेकर एकवार "यशोऽसि०" मन्त्र से और दो बार विना मन्त्र आचमन करे।

ततः कांस्यपात्रे दधि मधु घृतं संसृज्य, संस्थाप्य, वर्षीयसा कांस्यपात्रेणापिधाय दद्यात्। ततोऽर्चकः पूर्वोक्तमधुपर्कपात्रं गृहीत्वा मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यतामिति वदेत्। ततोऽर्च्यो यशसो यशोऽसीत्येतावता मन्त्रेण प्रतिगृह्णीयात्। अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्मधुपर्को देवता मधुपर्कप्रतिग्रहणे विनियोगः। यशसो यशोऽसि ॥ ततो हस्ते दत्तं मधुपर्कं यश-

सो भक्षोऽसीतिमन्त्रेण त्रिः विबेत्तूष्णीं चतुर्थम् । हस्ते नैव मधुपर्कभक्षणमिति शिष्टाः । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुर्मधुपर्को देवता मधुपर्कभक्षणे विनियोगः । यशसो भक्षोऽसि महसो भक्षोऽसि श्रीर्भक्षोसि श्रियं मयि धेहि ॥ ततोऽर्घ्यो द्विराचामति । मधुपर्कशेषं ब्राह्मणाय दद्यात् । तत आचान्तोदकायार्घ्याय वस्त्रादिकं दद्यात् ॥

अर्थ--पूजक एक काँस पात्र में रक्खे हुए दही मधु और घी को दूसरे काँस पात्र से ढाँक कर "मधुपर्को०", वाक्य को पढ़ता हुआ पूज्य को दे देवे। पूज्य यशसो, मन्त्रको पढ़ता हुआ ले लेवे। "यशसो भक्षो०" मन्त्र को पढ़ पढ़कर मधुपर्क को तीन वार पीके किसी ब्राह्मण को दे देवे। आचमन कर लेने के पश्चात् पूजक पूज्य को वस्त्र,भूषण आदि प्रयत्न करे।

ततो गौर्गौर्गौरिति नापितो ब्रूयात् । ततोऽर्घ्यो मुञ्च गां वरुणपाशादितिमन्त्रं ब्रूयात् । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्बृहतीछन्दो गौर्देवता गोमोक्षणे विनियोगः । मुञ्च गां वरुणपाशाद्द्विषन्तं मेऽभिधेहि । तं जह्यमुष्य चोभयोरुत्सृज गामत्तु तृणानि पिबतूदकम् ॥ ततो माता रुद्राणामित्यनेन मन्त्रेण गामनुमन्त्रयते । अस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो गौर्देवता गवानुमन्त्रणे विनियोगः । माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः । प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥

अर्थ—नाई "गौः गौः गौः" उच्चस्वर से बोले। पुनः नापित के वाक्य को सुनकर "मुञ्चगां०" मन्त्र को पढ़ता हुआ गौ को बन्धन से छोड़ देने की आज्ञा देवे। "मातारुद्राणाम" मन्त्र को पढ़ता हुआ गौ को अवलोकन करे।

एवं मधुपर्केणाचार्यऋत्विजः, समावर्त्तनानन्तरं स्नातको, राजा, विवाहे वरः, प्रियोऽतिथिश्चेत्येते षट् पूज्याः। तत्तच्छाखोक्तविधिना मधुपर्कं दद्यात्। इति मधुपर्कप्रयोगः॥

अर्थ—उपरोक्त मधुपर्क विधि से आचार्य, ऋत्विक, स्नान के समय स्नातक, राजा, विवाह के समय वर और पूजा के पात्र हैं। ये आचार्यादि जिस शाखा के हों उनका मधुपर्क उन्हीं के गृह्यसूत्र के अनुसार करना चाहिए। यही मधुपर्क का प्रयोग है।

इति श्रीमद्राजाधिराजश्रौतस्मार्त्तानुष्ठानतत्परोदयप्रतापाख्यदत्त-
देववर्म्मसोमयाजिनो निदेशेन सुब्रह्मण्यविदुषा विरचितेयं
गोभिलीयगृह्यकर्मप्रकाशिका समाप्ता॥

॥ शुभमस्तु ॥

अर्थ—यह श्रीमान महाराज श्रौत स्मार्त्त अनुष्ठान में तत्पर सोमयाजी उदय प्रताप वर्म्मा की आज्ञा से विद्वद्वर सुब्रह्मण्य जी की बनाई हुई गोभिलीय गृह्यकर्म प्रकाशिका समाप्त हुई। एवं आवसथ्याग्नि सेवी श्री मान् महाराज राजेन्द्र बहादुर जी की आज्ञा से शुकदेव वर्मा कृत हिन्दी नुवाद समाप्त हुआ।

पढ़ता हुआ पृथक् या जो को दूसरी के साथ से कुशाओं के अग्र भाग का एक विस्तत्त काट देवे । नखों से न काटे । पवित्र छेदन और कुशाओं के मूल को ईशान कोण में फेंक देवे । जल का स्पर्श कर ले । बाएं हाथ में पवित्रों के मूल को पकड़े हुए "विष्णो, इत्यस्य मन्त्रस्य प्रजापतिः ऋषिः पवित्रे दैवते यजुः छन्दः अनुमार्जने विनियोगः" पढ़कर "विष्णोर्मनसा पूतेस्थः" मन्त्र को पढ़ता हुआ उन पवित्रों को दाहिने हाथ से जल लेकर धो देवे । धोए हुए पवित्रों को चरुस्थाली में उत्तराग्र रखकर उसमें चावल छोड़े । चावल छोड़ देने के पश्चात् पवित्रों को चरुस्थाली से अन्यत्र रख देवे । चरुस्थाली में इतना जल छोड़ देवे जिससे चरु अच्छी तरह पक जा सके । अग्नि पर रखकर अच्छी तरह पकावे ॥

शृते हविषि मेक्षणेन चरुं प्रादक्षिण्येन मिश्रीकृत्य स्रुवेणाज्यमादाय पवित्रेऽन्तर्द्धाय चरुमभिघार्याग्नेरुत्तरत उद्वास्य दर्भेषु संस्थाप्य, प्रतिष्ठितं चरुं स्रुवेणाज्येन सपवित्रं प्रत्यभिघारयेत् ।

अर्थ—पकती हुई हवि को मेक्षण से दक्षिणावर्त्त से चला देवे । पवित्रों को चरुस्थाली के ऊपर हाथ से पकड़े हुए उसी पर से स्रुवा से लेकर चरुस्थाली में घी छोड़ देवे और पवित्र और स्रुवा अपने २ स्थान पर रखकर चरुस्थाली को अग्नि पर से उतार कर उसके उत्तर कुशा पर रख देवे । पहले के समान पुनः चरुस्थाली में स्रुवा से घी छोड़े ॥

अग्निमुपसमाधाय पूर्वासादितैः कुशैः समन्तं परिस्तृणाति । पुरस्ताद्दक्षिणत उत्तरतः पश्चात् । सर्वतस्त्रिवृतं

पञ्चवृतं वा प्रागग्रैरुदग्रैर्दर्भैः परिस्तरेत्। पश्चादास्तृतदर्भाग्रैः पूर्वपरिस्तृतदर्भाणां मूलान्याच्छादयेत्। अवान्तरदिक्षु परिस्तृतदर्भाणां संयोगः। एष परिस्तरणन्यायस्सर्वेष्वाहुतिमत्सु नतु क्षिप्रहोमेषु।

अर्थ—अग्नि को इन्धन से प्रज्वलित कर दे। आसादित (पहले से रखे हुए) चारो मुट्ठी कुशाग्रों को लेकर अग्नि के पूर्व, दक्षिण, उत्तर और पश्चिम विछा देवे। सर्वत्र कुशाओं के अग्रभाग पूर्व रक्खे एवं तीन परत अथवा पाँच परत विछाना चाहिए और उन्हें इस रीति से बिछाना चाहिए कि पहले की विछाई हुई कुशाओं के मूल भाग को पीछे की विछाई हुई कुशाके अग्रभाग ढकते जावें। अथवा सबसे पहले पश्चिम विछावे, तत्पश्चात् दक्षिण और उत्तर विछाकर उनका अग्रभाग पूर्व की ओर इस रीति से मिला देवे कि त्रिकोण सा बन जावे। सब प्रकारके हवनमें परिस्तरण की यहीविधि है; परन्तु यह परिस्तरण-कार्य्य क्षिप्र होम में नही किया जाता है। (किसी-किसी ऋषि का मत है कि परिस्तरण के पश्चात् अग्नि के पूर्व, दक्षिण, उत्तर और पश्चिम इस प्रकार चार अथवा दक्षिण, उत्तर और पश्चिम इस प्रकार तीन परिधि रक्खे। उन परिधियों के अग्रभाग पूर्व और उत्तर को होने चाहिए*।)

अग्नेरुत्तरतः प्रोक्षणपर्य्युक्षणाद्यर्थं तोयपूर्णं स्रुवं प्रणीतामासादयेत्। नवाऽऽसादयेदित्येके। ततः पूर्वासादितानष्टादशेध्मानादाय युगपत्तूष्णीमग्नौ प्रक्षिपेत्।

अर्थ—अग्निकुण्ड के उत्तर भाग में यदि प्रथम से प्रणीता न

---

*परिधीनप्ये के कुर्वान्ति शामीलान् पार्णान् वा। गो०गृ० सू० प्र०१ सं०७ सू०१६।